दर्दपुर

क्षमा कौल



दर्दपुर

(उपन्यास)

दर्दपुर

क्षमा कौल

With profound regards & Love to
Dr. Sh. R. L. Bhat.
[illegible]
28.10.05.

भारतीय ज्ञानपीठ

ISBN 81 - 263 - 1010 - 3

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 747

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली - 110 032

आवरण : श्यामा
आवरण-सज्जा : अशोक भौमिक

पहला संस्करण : 2004
मूल्य : 300 रुपये

© डॉ. क्षमा कौल

DARDAPUR
(Novel)
by Kshama Kaul

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

First Edition : 2004
Price : Rs. 300

धार्मिक आतंक की सतायी
विश्व की सभी स्त्रियों के नाम

दोद क्या ज़ाने यस नो बने,
गमुॅक्य जामुॅ छिम वलिथ तने
गरॅ गरॅ फीरुॅस पेयम कने,
डयूठुम नुॅ कांह ति पनुॅनि कने।

—ललद्यद

(दर्द वह क्या जाने
जिस पर न बने
गम के वस्त्र हैं
मैंने पहने
घर घर घूमी
संगसार हुई
कोई नहीं था
मेरे कने (साथ)।)

जैसे माहौल में जिये हम लोग
आप होते तो खुदकुशी करते।

—विद्यारत्न आसी

हम बचाएँगे
अपने बीज
और विरोध अपना

—अग्निशेखर

दर्दपुर

भाग : एक

''उनसे दो टूक कह देना है कि हम उनके लिए कोई आर्थिक मदद लेकर नहीं आयी हैं।'' सुमोना ने उसे समझाया।

''हमें उनसे कहना है कि हम तुमसे मिलने आयी हैं। हम तुम्हारा दु:ख बाँटने आयी हैं।'' सुमोना ने फिर अपना सबक दोहराया ताकि कोई भी, किसी प्रकार की गलती न कर बैठे। खासकर सुधा।

''पर हम दु:ख किस रूप में बाँटेंगी?'' सुधा ने पूछा।

''उनकी दु:खभरी कथाएँ सुन-सुन कर।''

''हम वहाँ कितने घण्टे रहेंगी।''

''डेढ़-दो से अधिक नहीं। वह गाँव खतरनाक नुक्ते पर कायम है। ठीक उसी दर्रे के पार पाकिस्तान है। और वही दर्रा आतंकवादियों का आवागमन का मार्ग भी।''

''हम कितना सुन पाएँगी इतने कम समय में?''

''अब जितना भी...।'' सुमोना ने हल्की खीझ-सी दिखाते हुए ऐसी आवाज पैदा की, मानो कह रही हो हमारे मतलब की बात हमें एक मिनट में सुनाई देगी...फर्क यह है कि बात सुननी आए।

अब सुधा चुप हो गयी। आगे कोई प्रश्न नहीं। 'उसे कम बोलना और कम प्रश्न, कम से कम सुमोना से करना, सीखना चाहिए' सुधा स्वयं से मुखातिब हुई।

❑❑

सर्दी तीखी होती जा रही थी। वह सोफे पर बैठ अविराम अश्रु बहा रही थी। कितने अश्रु स्थगित किये गये। कब-कब नहीं किये। क्योंकि फुर्सत नहीं थी और जीना था। आगे बढ़ना था। जीते हुए दिखना था। बहादुर दिखना था। अश्रु बहाते हुए नहीं दिखना था। फलाँ...फलाँ...फलाँ...आदि...इत्यादि...वगैरा वगैरा। और कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ कि दु:ख की पराकाष्ठा में भी ये कमबख्त अश्रु निकले ही नहीं। आँखें सूख गयीं रेतीले खड्डों की तरह। होठों पर एक आँसुओं-सी गीली मुस्कान चिपकी रही। विचित्र-सी। हैरान कर देनेवाली। उसे खुद और औरों को भी।

उसकी इस मुस्कान को आँखें बाहर निकलकर हवा में उड़ती देख रही थीं...और कह रही थीं...'नहीं भई होठो! वह बात नहीं। यह मुस्कान वास्तविक अर्थ में किसकी समझ में आएगी। किसी की भी नहीं। शर्त लगाओ चाहो तो।'

हुआ भी था उन दिनों ऐसा ही। और वह उस दन्दाने की कथा खुद को सुनाये जा रही थी—बार-बार।

दन्दाना मर गया। बेचारे के दाँतों की आकृति ऐसी थी कि लगता था हर समय वह दाँत बाहर करके हँस रहा है। जब मर गया तो लोगों ने सोचा—मुआ दिल्लगी कर रहा है...मर कहाँ गया है...मुस्करा तो रहा है।

वह अपने पति के साथ लखनऊ से जम्मू आयी थी, आना आवश्यक था। अथाह दुःख, अनिश्चय उसके चेहरे पर ठहरा था और उसने उन्हीं, सदा बाहर हवा में उड़ते रहनेवाली आँखों से देखा था कि वही इस वक्त दन्दानी है। जम्मू पहुँच ज्यों-ज्यों घर निकट आता जा रहा था, उसकी निरीहता और बेबसी उसके अस्तित्व पर छाती जा रही थी। घनघोर। पता नहीं अन्दर क्या फैसला होगा। उसकी सास उसके पति को कहेगी—'छोड़ दे इसे।' वह छोड़ देगा। कहेगा—'मैं कुछ नहीं कर सकता। अब तू जाने, जैसे भी हो अपना चारा कर ले।'

गली के पहले मोड़ पर देखा सरदार सतवन्त सिंह गुजर गये हैं और उस दिन वहाँ 'रस्म पगड़ी' की गहमा-गहमी है। सरदार सतवन्त सिंह की बहू आँसू पोंछ रही थी। सतवन्त सिंह अक्सर धूप सेंकते, माला फेरते दुहाई देते रहते थे...कि उनकी बहू उनकी सेवा नहीं करती। दन्दानी ने खुद को कहा और कहीं तीसरी बनकर जरा सी मारक हँसी हँस भी ली। अदृश्य शरीर से। और खुद से कहा—'कुछ नहीं कह सकते कि क्या है सरदार सतवन्त सिंह की बहू के इन अश्रुओं का अर्थ।'

आश्चर्य की बात है कि तत्काल उसके पति की निगाह उस पर पड़ी और कहा, "हँस रही हो! यह हँसने की वेला है?"

वह समझाना चाहती थी उसे—'पतिदेव! मैं कतई नहीं हँस रही। किस बात पर हँसूँगी? क्या कारण है कि मैं हँसूँगी? मैं तो सतवन्त सिंह से ईर्ष्या करती हूँ। मैं उसे बताना चाहती हूँ...दिखाना चाहती हूँ कि बहू पर उसके लगाये सब लांछन गलत साबित हो रहे हैं...वह जार-जार रो रही है...मानो ससुर न होकर पिता हो...और सतवन्त सिंह तुम? तुम क्या माला जपते थे...और सतवन्त सिंह तुम जीना चाहते जरजर देह के बावजूद...काश! तुम मुझसे जीवन-मृत्यु का विनिमय करते...क्योंकि जिन्दगी के दरवाजों पर मैं जी-तोड़ ठुक-ठुक लगा रही हूँ...कोई भी नहीं खुलता।' और आश्चर्य की बात है। परम आश्चर्य की...कि आँखें, उसने देखा, उसकी फिर उदास माहौल में बाहर उड़ रही हैं...भिनभिना रही हैं...दुःखी

करनेवाली मक्खियों की तरह...और कह रही हैं—'देखा न दन्दानी। दन्दानी कहीं की। मूर्ख दन्दानी औरत। अभी देख भीतर तेरा क्या हाल बनेगा। चल तो दन्दानी।'

"मैं हँस नहीं रही थी। पीड़ा से मुख की मुद्रा विरूप हो उठी थी स्वामी।" वह चाहती है कि कहे अपने पति से जिसने उसकी डेढ़ वर्ष की बच्ची गोद में उठाकर उसे आभार-ग्रस्त कर लिया है। पर वह कहती नहीं। सिर्फ चौड़ा-लम्बा, आड़ा-तिरछा करके अपने चेहरे को वापस अपनी जगह पर लाना चाहती है और उन समानान्तर भिनभिना रही मक्खियों (आँखों) से पूछना चाहती है '...क्या मैं...मेरा चेहरा ठीक लग रहा है अब...? अपनी जगह आ गया है क्या मेरा चेहरा?' ऐन मौके पर मक्खियाँ भी आँख मारती हैं...नहीं कहतीं कुछ साफ-साफ।

❑❑

आज अश्रु थे कि आन पड़े थे चक्रवात की तरह। वह सोफे पर बैठी, चौकड़ी मार, अश्रुओं के साथ अनन्त की ओर बहना चाहती है। उसे, इत्मीनान है कि सुमोना और गुलशनआरा कम-से-कम उसके पति नहीं। आतंकवादी नहीं...या यों ही कोई गैर-पुरुष भी नहीं। उन्हें वह कतई दन्दानी नहीं दिखती होगी। या शायद वे दिन गये हैं, वे उसके दन्दानी होने के दिन या दन्दानी-सी दिखने के दिन।

उसने तुरन्त कान पकड़े। 'नहीं नहीं, मुझे इतना इत्मीनान नहीं लाना चाहिए भीतर। आखिर हूँ स्त्री ही।'

पर अश्रु? क्या बात है अश्रु-बन्धुओ? मैंने कोई आरजू मिन्नत नहीं की कि तुम कृपालु हो उठे। कृपा...अश्रुओ। कृपा। यह भगवान गणपति की कृपा है।

दोपहर के समय श्रीनगर पहुँचकर सुमोना और वह राउटर के दफ्तर पहुँच गये। उसने सुमोना से कह दिया था—'आज गणपति के दर्शन करें सुमोना?' उसकी आवाज में प्रार्थना थी, अनुरोध था।

मुश्ताक ने सुमोना को देखते ही चाबियों का छल्ला हाथ में उठाया और तेजी से बाहर आया। अर्थपूर्ण दृष्टि से उसे देखा। उसे भी मुश्ताक की दृष्टि का अर्थ बखूबी मालूम था...और उसकी इच्छा का अर्थ मुश्ताक समझता था। जरूर सुमोना और मुश्ताक के बीच टेलीफोन वार्ता हो चुकी थी उनके यहाँ पहुँचने से पहले।

"हम सब शिव के पुजारी हैं, आदिकाल से। चलो गणपतियार के दर्शन कराएँ मैडम को।" मुश्ताक बोला और कार धीमी गति से चल पड़ी।

"अजीब नागहानि हुई। अच्छे-भले हम तरक्की की राह पर चल रहे थे, क्या अल्लाह को मंजूर था।" वह फिर बोला। वह चुप थी और मुश्ताक के सर्वप्रथम वाक्य की ध्वनि और उस वाक्य को कहते हुए उसकी मुखमुद्रा उसके

मन में तैर रही थी। सोच रही थी उसके सामने गाड़ी के और और आगे बढ़ते जाने के साथ-साथ ही आश्चर्यलोक खुलता जाएगा। एक अविश्वसनीय...अद्भुत आश्चर्यलोक...जो शायद उसने सपने में देखा था कभी...देखा है कभी...क्या कभी देखा भी है... ?

अचानक सपने की धरती उपस्थित हुई। बदले हुए गली-कूचों में से गुजरी कार। उसने अपने साथ अहंकार कर लिया था—मैं पहचान लूँगी गणपति का भव्य द्वार जहाँ की ओर मुख करते हुए ही दृष्टि वितस्ता की मस्त लहरों पर नाव-सी सवार हो जाती...जहाँ से सूरज अपनी धूप की पतंगें भेजता और हम लूटते और काटते...मन की करते। तोबा, वह पहचान न पायी। कार आगे बढ़ गयी थी...फिर वापस आयी थी...क्योंकि आगे हब्बाकदल होने के निशान मिले थे जो मुश्ताक ने पुष्ट किये थे।

कड़ी काँटेदार तार को पार कर, फिर एक गुफानुमा बंकर पार कर, वह घुस आयी। अब आपा नहीं थी। वह वह नहीं थी। और नीचे से बह रही वितस्ता एक फव्वारा बनकर उसके भीतर चली आयी थी। उसे मालूम नहीं था कि वह दहाड़ भी मार सकती है। सन्न थी वह। आँखें अस्तित्व खो गयी थीं। डूब गयी थीं। मक्खियों-सी भी बाहर, समानान्तर भिनभिना नहीं रही थीं। गुलशनआरा उदार-मना होना चाहती थी। उसके भीतर शायद एक ईमानदार इच्छा थी, इसलिए वह उसके साथ-साथ गर्भगृह तक चली आयी थी। सुधा पुरोहित मोहन बोय को ढूँढ़ रही थी। और गणपति के चरण छूती। बार-बार। मानो हाड़-मांस के चरण हों। उसने उस छुअन को जीना चाहा...और कह भी दिया...''देखो छू रही हूँ आपको। सचमुच हूँ तुम्हारे सामने हे गणपति। हूँ न... ? छू रही हूँ न तुम्हारे चरण...तुम भी छू रहे हो मुझे...और गणपति की मूर्ति अश्रुओं में डूबी है...वह दहाड़ों पर नियन्त्रण नहीं रख पा रही...सुरक्षाकर्मी अपनी-अपनी आँखें गीली पा रहे हैं...और मोहन बोय सामने प्रकट हो जाते हैं...''...मैं खिड़की से कूद पड़ा, और आया। तुम्हें देखते ही...मानो तुम्हें नहीं, कोई सपना देख रहा होऊँ... ।'' यह कहते-कहते मोहन बोय ने देखा सुधा उसके चरण पागलों की तरह छू रही है और रो रही है...बेलगाम...मस्त। मानो रोने की मस्ती चढ़ी हो उस पर...जी भरकर रोने की...और मोहन बोय भी रो रहे हैं। वह उसे डूबी आँखों से एकटक देख रही है...और अन्तर में कह रही है, 'तुम ही गणपति हो...सचमुच हो...देखो तुम्हारी नाक सूँड़ में बदल चुकी है...तुममें हवा पर सवार होने की सिद्धि है...तभी छलाँग मारकर आये हो...तुम देख सकते...तभी मैं आती दिखी...तुम ही गणपति हो।'

मोहन बोय ने बताया, ''...मैं दरवाजे से निकलूँ तो बहुत समय लगता...सुरक्षा के कारण मेरा दरवाजा भिन्न है... खिड़की से कूदना सुरक्षा नियमों के खिलाफ

है, पर इस समय उन्होंने भी कुछ नहीं कहा...क्योंकि उन्होंने देखा कि तुम आयी हो...तुम...तुम मतलब दिद्दा...और बताना जाकर प्रभु से कि यहाँ की दीवार पर, यानी गणपति की दीवार पर, पीला रंग मिटाकर आतंकवादी हरा रंग पोतना चाहते थे...जिसमें सरकार और यहाँ के स्थानीय मुअतबरों की भी मसलहत थी...और उस रण्डी की औलाद और भट्टों के माथे के कलंक रैणा की भी, पर ऐसा हमने होने न दिया। एक सुबह जब देखा हरा रंग चढ़ा है...जमीन आसमान एक किया मैंने और दो दिन बाद फिर वापस अपना रंग पुतवाया...मरूँगा तो क्या बिगड़ेगा...मरूँगा...गणपति की भेंट चढ़ूँगा...अगले जन्म में कश्मीर का राजा बनकर आऊँगा...मगर तुम बहू-बेटियों को बचना जरूरी था। मेरी दोनों बेटियाँ फूला और सरला मिश्रीवाला कैम्प में रहती हैं...खैर...प्रभु से कहना...वहाँ से आवाज बुलन्द करें...कि यहाँ देवी-द्वार घोर असुरक्षित है...कोई सुरक्षा नहीं...''

''ठीक है। ठीक है। जरूर कहूँगी। जरूर।''

गुलशनआरा जल्दी बाहर आकर कार में बैठ गयी थी। उससे एक सैनिक ने पूछा था—'क्यों भगाया आप ने इन्हें यहाँ से? क्यों नहीं लाते हो इन्हें वापस?'

गुलशनआरा स्त्री है। काश स्त्रियों के वश में होता कुछ। पुरुष? पुरुष आतंकी। पुरुष ने तबाह किया...पूरा कायनात। स्त्री उसके पुरुषत्व की कालिख पर बराबर रो रही है। सोचा हो गुलशन ने। गुलशनआरा ने उसे कार में बैठकर बतायी थी सैनिक की कही बात और उसके बाद एक सूनापन छा गया था।

❑❑

सोफे पर बैठे हुए बह रहे ये अश्रु उन्हीं की निरन्तरता है। वर्षों बाद वे उसकी आँखों के आसमान पर आच्छादित होकर अन्ततः बरस गये। मानो गणपति ने सारे विघ्न हटा दिये हों। सुमोना देख रही है और कुछ सोच रही है।

और सुधा नितान्त शिशिर में आ गयी वर्षा के झूले में झूल रही है...परम आनन्द में। सद्-चिदानन्द में। बह रहे हैं अश्रु। बह ही रहे हैं...। 'देखूँगी कब रुकेंगे।' वह सोचती है।

❑❑

उसने उठकर धूप-बत्ती जलायी और मन-ही-मन आँख मूँद कर गणेश जी और मोहन बोय को अर्पित की और टेबल पर स्थिर की।

''मुझे एलर्जी होती है इस धुएँ से...यह धूप बत्ती बाहर रख दे...।'' सुमोना ने कहा और रोक लगा दी। उसके भीतर फूट पड़े वर्षों बाद के आनन्द में।

वह चुप रही और सोचने लगी। देखा सुमोना अर्थपूर्ण ढंग से गुलशन से

आँखें मिला रही थी। 'अच्छा वह गुलशन की चिन्ता कर रही है।' शायद उसकी धूप-बत्ती से कुफ्र का धुआँ फैल रहा है। जो कि गुलशन के धर्म को कदाचित् दूषित कर रहा है और सुमोना को चिन्तित। 'मेरे धर्म और मेरी संवेदनशीलता की उसे कोई चिन्ता नहीं।' कहती वह खुद से।

''वह चाहती है कि गुलशनआरा का ख्याल रखने में मैं भी उसकी मदद करूँ। आखिर मैं हिन्दू हूँ... भट्टिनी।''...

''भला क्या फर्क पड़ता है तेरे होने से या न होने से।'' उसने ऐसे कहा मानो सुमोना बनकर वह सुधा से कह रही हो।

''तुम धूप-बत्ती उठाकर रख आओ बाहर, अगर एलर्जी होती है।'' सोफे पर बैठे-बैठे ही सुमोना की आपत्ति से अविचल रहने के भाव को अपने पर स्थिर किये उसने कहा।

वह चुप रही। उसपर एक नजर डालकर। शायद वह सोच रही थी कि इसकी इतनी हिम्मत! कहती है, तुम रख आओ बाहर। बजाय एकदम बुझाने के...आखिर मैं...मैं...मैं...सुमोना हूँ...यानी संस्था की प्रतिनिधि। एक अमीर-तरीन संस्था की प्रतिनिधि। यह क्या है? क्या है यह? एक ऐसे समुदाय की प्रतिनिधि जिसकी कोई हस्ती नहीं। जिसकी स्त्रियाँ 'अच्छी बच्चियाँ' हुआ करती हैं और पुरुष 'अच्छे बच्चे'। अच्छे सुशील बेटे।

वह सुमोना को देख, फिर आँख मूँद अपने अन्तर्द्वन्द्व में लीन हो गयी। चाहा कि उन यन्त्र सरीखी आँखों को जादूगर के यन्त्र की तरह भीतर उपस्थित कर पूछे कि यह भला क्या माजरा? हालाँकि उसे कुछ ज्यादा आश्चर्य नहीं है इस पर। तब भी वह कुछ ज्यादा विवरण जानना चाहती है।

कोई विवरण नहीं मिल रहा। बिलकिस के रोजे हैं। वह सुन रही है कि बैरे को ऑर्डर देकर सुमोना गुलशनआरा के इफ़्तार का इन्तजाम कर रही है। वह सोचती है कि शायद सुमोना उससे भी पूछेगी कि वह शाम को भोजन में क्या लेना पसन्द करेगी। मगर सुमोना के चेहरे का माहौल ऐसी सम्भावना से दूर-दूर तक दूर प्रतीत हो रहा है। वह किसी भी प्राथमिकता में कहीं सम्मिलित नहीं कहीं।

इसलिए उसने सोचा कि वह किसी ऐसी चीज के बारे में सोचे जो उसे खोने के बाद पुनः प्राप्त हुई। जैसे गणपति...या मोहन बोय...या उसके पाँव के नीचे की इस क्षण की ज़मीन ही।

आह! कुछ ही मीलों पर उसकी माँ का घर है...फिर थोड़ा और आगे बढ़ो...तो उसका स्कूल। स्कूल? हाँ हाँ स्कूल। बड़ा-सा, भव्य-सा स्कूल। स्कूल के ऐन सामने हाल। हाल? वह हाल? जहाँ सुबह प्रार्थना होती...'सुजले, सुफले, सुजने, सुमने। जय भारत मातृ अनन्तगुणे...सुजले' जब वह छोटी थी तो दसवीं

की बड़ी-बड़ी लड़कियाँ मंच पर चढ़कर प्रार्थना करवातीं। उनमें दिलशाद हुआ करती। अज़रा हुआ करती। क्या यह सच है? क्या वे संस्कृत भाषा में भारत का गुणगान करती थीं? 'जय भारत मातृ अनन्तगुणे सुजले..., और मंच पर दिलशाद है। डॉ. दिलशाद और डॉ. अज़रा ज़ैदी! कहाँ होंगी वे इस समय? क्यों न मैं उनकी खोज करूँ? हूँ... ? कैसे...कहाँ, किससे पूछूँ... ?

यदि वे कहेंगी—'...हम वे नहीं...हमें कुछ नहीं याद...हम नहीं जानती...'

या कहें—'...ओ...सुधा...हम नहीं जानती थीं कि हम कुफ़्र कर रही थीं... खुदा हमें बख्श दें...या अल्लाह...हमारा वतन हमारे ही दीन के नाम से है...'

सुधा कुछ क्षण निर्जीव-सी हो उठी...दिलशाद और अज़रा के सामने...गाते हुए मन के अन्तिम प्रकोष्ठ के वाद्यवृन्द पर सुजले, सुफले, सुमने, सुवने...जय भारत मातृ अनन्तगुणे...चाहती है...सामने सुमोना भी यह गाए और गुलशन भी...।

यहाँ बगल में उसका कॉलेज है...इसी डल के उस छोर पर वह विश्वविद्यालय जहाँ शिव और शक्ति (शंकराचार्य और हारीपर्वत) से रोज रूबरू होती और बीच में सतीसर का चिह्न डलझील।

शिव उठा और किया ताण्डव। पार्वती रोक न पायी।

और भरसक सुधा को राज्ञी की याद आयी। अकेली। उदास। वही काँटेदार तार और बंकर और पुलिस...वाले। और राज्ञी। विषण्ण। मनुष्य या भक्त के स्पर्श को तरसती सिन्धु। एक मन्त्र सुनने को ललकती सिन्धु।

फिर गणपति के काँटेदार तारों में वह फँस गयी। निकल ही नहीं पा रही उनसे। मोहन बोय की काँगड़ी दहक रही थी और पुलिसकर्मियों की सिगड़ियाँ भी।

हमारे ईश्वर बन्दी बना लिये गये हैं? क्या यह सच है? क्या यह भी सच हो सकता है? क्या वास्तव में बिलकिस का ईश्वर ईश्वर है? और मेरा ईश्वर... ?

❑❑

उसने आँखें खोलीं। कमरे में सरसराहट हुई थी। सुमोना धूपबत्ती उठाकर बाहर ले जा रही थी। 'देखो मेरे ईश्वर! तुम ईश्वर नहीं...और मैं कुछ भी नहीं कर सकती...कोई तुम्हारी... मदद...हूँ हु...कुछ भी नहीं।' उसने स्वयं से कहा और अविचलित रहने की कोशिश के सहारे रही भी।

सुमोना की तरफ कतई नहीं देखना चाहा। न गुलशन की तरफ ही। सिर्फ अपनी तरफ। अपने भीतर। मन्त्रों के माध्यम से अपने अन्तर्द्वन्द्वों की काँटेदार तार में उलझ उठी वह।

वह सबसे कहेगी देखो हिन्दू से ही हिन्दू का दु:ख नहीं समझा जाता।

देखो हिन्दू स्वयं मुसलमान को बिगाड़ रहा है। हिन्दू में 'अच्छा बच्चा' होने की बीमारी ने कैंसर की तरह घर कर लिया है। मुसलमान में 'गुण्डा या बिगड़ा बच्चा' होने की बीमारी ने कैंसर का रूप लिया है। दोनों कैंसर लाइलाज होते जा रहे हैं और हमारे मुल्क को खा रहे हैं। हमें खा रहे हैं। 'मैं यह कह दूँगी सबसे। हाँ सबसे कहूँगी मैं। मगर किससे कहूँगी मैं?'

मीनाक्षी से कहेगी वह। सुजाता तिक्कू से कहेगी। बातफसील। कहेगी? इन सबसे कहेगी? उसके भीतर कोई दानव उसी पर हँस रहा है। उसके संकल्पों की खिल्ली उड़ा रहा है। वह फिर से दन्दानी बन रही है। पूरी, पक्की दन्दानी। इस जगत में हर मोड़ पर कोई न कोई जन्म ले चुका होता है उसे दन्दानी बनाने के लिए। वह भी दिल खोल के बनती है। हारती है और सोचती है—नहीं वह नहीं हारी। या...अन्ततः जीत उसकी है...हँ हँ हँ जैसे मोहन बोय सोचता है कि अगले जन्म में वह कश्मीर का राजा होगा।

इसलिए वह सोचती है कि जीत उसकी है, उनकी नहीं। फिर इस सोच पर भी वह हँसती है। आखिर समस्या कहाँ है? क्या वह अभी अपरिपक्व है, इतनी उम्र होने पर भी। क्या वह प्रौढ़ नहीं? कहीं वह पागल तो नहीं। जब एक स्त्री पुरुष से मार खाती है तो वह स्त्री होती है, जब उसका समुदाय ही दूसरे समुदाय से मार खाता है तो वह समुदाय हो जाती है। पूरी-पूरी। उसे आज तक कभी तय करना नहीं आया साफ-साफ कि वस्तुतः होना क्या चाहिए। जैसे मीनाक्षी को साफ पता है कि उसे एक संस्थान होना है...न भारतीय...न अन्यीय...बस संस्थानीय। तदनुसार उस संस्थान का झुकाव जिस पन्थ या समुदाय की तरफ है, वह समुदाय होना है।

इसी तरह सुजाता तिक्कू के सामने लक्ष्य साफ है कि उसे वह होना है जिससे वह संस्थान की 'अच्छी बच्ची' करार दी जाए और बकौल उस संस्थान के मानवीय पक्षधर भी।

नहीं नहीं। वह किसी से नहीं कहेगी ये बातें। सुमोना की ये अपमानजनक हरकतें, चुपचाप देख लेगी और इस विष को पी लेगी। चुपचाप। आखिर हवा, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, आकाश तो गवाह हैं। इस निरीह छटपटाहट और बेबसी में वह अब और दन्दानी नहीं बन सकती।

❑❑

वितस्ता ने अपना पानी वापस खींच लिया हो कहकर कि 'बस अब द्रष्टा बन जाओ...।'

"इफ़्तार की घण्टी बज गयी गुलशन। लो खजूर खा लो...।" सुमोना ने

गणपतियार जाते समय गुलशन के इफ़्तार की तैयारी पूरी तरह कर ली थी। गुलशन को खजूर पेश किया। और गुलशन ने रोजा तोड़ा।

वह चुपचाप, ध्यानमग्न थी। ध्यान टूट गया है। पर टूटते-टूटते लगे हाथों वह सोच रही है कि सत्य तो यह है कि उस रात उसकी सास और उसके पति ने घर से न निकालकर उस पर बड़ी कृपा की थी। वर्ना...वर्ना...वह कहाँ जाती इस भयानक ठण्ड में।

वह ठण्ड जम्मू की थी। यह तो श्रीनगर है। इस ठण्ड की शिद्दत कुछ और है। उदासी ही कुछ और है। उदासी ? हाँ उदासी ? बिल्कुल बेकली। उदासी। क्या इसको द्रष्टा की तरह देखा जा सकता है ?

—चिनार के पत्ते ताँबई हो गये हैं।

—और झड़ रहे हैं।

—जो सबसे मजबूत पत्ता होगा, सबसे अन्त में गिरेगा।

गेस्ट हाउस में आने के बाद जब वह और सुमोना बाहर एस.टी.डी. पर फोन करने निकली थीं तो बाहर अचानक हुर्रत मिली थी। हुर्रत ? एक बेहद हसीन औरत। एक मर्द की मारी हुई और हँसाने में अव्वल...हँसमुख...खुद पर हँसने में अव्वल। उसका सारा जज्ब किया त्रास और दुःख मानो उसके भीतर किसी मीठे पानी की झील में तब्दील हो चुका हो। वह हँसती है अपने अकेलेपन पर भी। कहती है—एक दिन श्रीनगर को साफ रखने का ऐसा पागलपन सरकार पर सवार हो गया कि कूड़ेदान बाँटने लगा। मैंने सोचा जब बँट ही रहे हैं कूड़ेदान मुफ़्त में तो मैं भी क्यों न लूँ। मैंने अपने इलाके के जमादार से कहा, ''भई ! एक मुझे भी दीजो...कूड़ेदान।''

''अच्छा...कहाँ पे आना है मोहरतमा।'' जमादार आली ने पूछा।

''वह जो इस ट्रांसफार्मर के दायीं तरफ घर है। दरवाजा पीछे से है। वहाँ मेरी नौकर होगी...दे आना।''

दो-तीन दिन हुर्रत ने कूड़ेदान का इन्तजार किया पर नहीं आया कोई देने तो हुर्रत ने सोचा...भला माजरा क्या है ? जमादार से पूछूँ तो सही।

''आपने कूड़ेदान नहीं पहुँचाया घर। जमादार साहब !...क्यों ?''

''अरे हज़रत...मोहतरमा...ऐसा नहीं। पर हमें जरा अपनी रजिस्टर पर कुछ प्राब्लम आ रही है। कूड़ेदान किसके नाम से चढ़े। नौकर ने उस बन्दे से कहा, जिसे मैंने कूड़ेदान देने भेजा था, कि वहाँ कोई मर्द मालिक नहीं...मैडम है। पर हमें तो इजाजत है...मालिक वाले घरों में ही कूड़ेदान दे आना...उस मालिक के नाम को रजिस्टर में चढ़ाकर। बस यही अड़चन थी।'' हुर्रत हँस दी और बोली,

''जिस कूड़े सरीखे मर्द को मैं कूड़ेदान में कब की फेंक चुकी हूँ, उसी मर्द की जरूरत आज मुझे महज उस कूड़ेदान के लिए पड़ रही है... सुभान अल्लाह...जा भई जा... मैं कूड़ेदान बाजार से खरीदूँगी...तू मर्दोंवालियों में बाँट अपने कूड़ेदान और चढ़ा अपनी रजिस्टर पर नाम।'' सब-की-सब स्त्रियाँ इस पर लोट-पोट हो गयी थीं...और मंजरी बोल पड़ी थी—''शी इज़ डार्लिंग...पर्सन...इजण्ट शी।''

हुर्रत के पास है अकेलापन...और ढेर सारा स्पेस...और कुदरत की तरफ से जीते जाने की आज्ञा...थोड़ी-सी स्थित...प्रज्ञा...है ही।

''कितना उदास होता है इस मौसम में कश्मीर।'' हुर्रत बोली थी।

''ओह शुक्र है। यही बात मैं सुमोना से बराबर कह रही थी कि इस मौसम में चिनार के ताँबई पत्तों के रूप में मानो मैलनकोलिया गिरता और फैलता हो। अजीब बात है हुर्रत और वह कश्मीर को उस समय उसकी सही शक्ल में पहचान रहे हैं! विचित्र बात है। इसका मतलब है इतने वर्षों की दूरी के उपरान्त भी कश्मीर को लेकर उसके भीतर कुछ भी नहीं बदला।...कुछ भी कम नहीं हुआ...कुछ नहीं...तिनका भी नहीं...।

''हाँ, सुधा भी कह रही थी यही बात। पर मुझे ऐसा नहीं लगता था।''

''इसके लिए...यानी यह समझने के लिए इस मिट्टी से उगना जरूरी है।'' सुधा बोली और सुनते ही सुमोना का स्विच बन्द हो गया।

''तो क्या मैं इस मिट्टी से नहीं उगी हूँ।'' सुमोना के चेहरे पर रोष इकट्ठा हुआ।

सुधा कुछ न बोली। सुमोना को अपने रोष के साथ त्याग-सा दिया।

❑❑

गणपतियार जाने के बाद अहदूस में एक बैठक का आयोजन किया था सुमोना ने। जहाँ फरहत, जमीला, इजा, सभी आ रही थीं ताकि कल की और आगे के दिनों की यात्रा की रणनीति पर विचार और मतैक्य स्थापित किया जा सके।

बैठक समाप्त होने पर जब नीचे सड़क पर एक-दूसरे से विदा लिया जा रहा था तो जमीला बोली, ''यह मौसम काट खाता है...इतना उदास करता है कि मैं दिल्ली भागने की सोच रही हूँ...कुछ दिनों के लिए ही कम-से-कम...।''

''यह बात सुधा भी कह रही थी...और अभी हुर्रत समधिन से मिलने जा रही थी तो रास्ते में मिली! यही बात वह भी कह रही थी। मैं अब इस पर गौर करूँगी। वर्ना मुझे तो यहाँ हर मौसम में खूबसूरत ही दिखता है।''

''खूबसूरती कितनी उदास भी होती है, यह जानना खूबसूरती को जानने के बाद का दूसरा जरूरी कदम है।'' सुधा का उद्‌गार था।

''सच।'' सुमोना ने कहा। और इस पर वे सभी स्त्रियाँ हल्के से हँस दी थीं।

अब इफ़्तार के खजूरों पर उसकी नज़र फिसल रही है। सुमोना ने उसे नहीं कहा कि लो तुम भी लो...बस गुलशन को देने के बाद रख दिये। अपने मुँह में कुछ एक डालने के बाद।

❑❑

कश्मीर का उसका अतीत और ये वर्तमान के क्षण उसके सामने आतंकियों की तरह खड़े हैं। दोनों में से उसे रास्ता बनाकर निकलना है, उस पर सुमोना की ये बेलज्जत हरकतें। ये संवेदनहीन हरकतें। वह चुप हो जाना चाहती है। शान्त हो जाना चाहती है। उसके भीतर भयंकर चीत्कार है, आर्तनाद है। वह उन्हें ढो रही है और बेहद बोझिल है। उसने सोफे से उठने के लिए चौकड़ी खोली और एक खजूर मुँह में डाला।

"अब तो भोजन मिलना चाहिए। गुलशनआरा को भी खाना होगा।"

"हाँ, ठहर जाओ। अभी वह नमाज पढ़ रही है।" सुमोना ने कहा।

तीनों इस गेस्ट हाउस के सूट में ठहरी हैं। सुमोना ने एक अतिरिक्त बिस्तरा उसके लिए लगवाया।

खिड़की की तरफ बुखारी है, जो ठण्डी पड़ी है।

"खाली पेट में ठण्ड ज्यादा लगती है, बुखारी जलवा दें?" सुधा ने कहा।

"नहीं। मुझे बुखारी की गर्मी से परेशानी होती है।" सुमोना ने कहा।

"लेकिन मुझे नहीं होती...मुझे गर्मी चाहिए। हमें सेंकने की आदत है। क्या नाम है इस बैरे का? मैं उसे बता दूँगी बुखारी जला देगा।"

"बैरा नहीं है...मिसेज वजीर का माली है नूर मुहम्मद।"

"नूर मुहम्मद, बुखारी जला दीजिए। ठण्ड बहुत ज्यादा है। खाना भले ही मत दीजिए।"

थोड़ी देर में लकड़ियों का गट्ठर लेकर नूरा सूट में आया और बुखारी जलाने में जुट गया।

इतने में गुलशन भी आ गयी, अपनी जायनिमाज तहाते हुए।

"हो गया?" सुमोना ने पूछा।

"हूँ...।" बिलकिस ने उत्तर दिया।

"खाना लगवाएँ?"

"हाँ...हाँ...फौरन।"

'जितनी देर में खाना आएगा तब तक नूरा के पास जाकर बुखारी जलाने की सुखद प्रक्रिया को देखना, भूख में खाना सूँघने के समान है।' सुधा ने सोचा और नूरा के पास जाकर लकड़ियाँ तोड़ने लगी और नूरा से कश्मीरी में बातचीत

का सूत्र शुरू किया। उसे यह सुमोना के हाथों मिली उपेक्षा, भूख और ठण्डक से उपजी उदासी कम करने का सर्वोत्तम तरीका नज़र आया।

''गाँव के हो या यहीं श्रीनगर...।''

''गाँव का।''

''किस गाँव के हो?''

''सिंहपुर।''

''कौन सिंहपुर?''

''सिंहपुर पट्टन।''

''आप यहाँ कहाँ की...?''

''गाँव संग्राम की और शहर श्रीनगर की भी...।''

''श्रीनगर में किस जगह?''

''पिता का घर कनीकदल में और पति का घर नयी सड़क।''

''घर है अभी...?''

''नहीं भई। कुछ भी नहीं है। संग्राम गाँव में कुछ जमीन है और कुछ नहीं। छोड़ो यह बात, तुम बताओ अपने गाँव की बात।''

''आप संग्राम की हैं...वहाँ हमारे रिश्तेदार भी रहते हैं। मैं जाया करता था बचपन में अक्सर। पण्डित मुहल्ला चरागाह के पार था न।''

''पण्डितों के सेबों का क्या करते हो?''

''कुछ नहीं उनके सब पेड़ काट-काटकर जला दिये गये हैं। अगर आर्मी दखल नहीं देती तो गाँव के लोगों ने बाँटनी शुरू की थी आपस में पण्डितों की जमीन...पर आर्मी ने जमीन को बचाने का बीड़ा उठाया...आप वहाँ किनकी हैं...?''

'मैं? मैं तो पूरे गाँव की हूँ...पूरे कश्मीर की...' उसने अपने भीतर कहा और फिर बाहर नूरा से बोली, ''...किनकी?''...वह कुछ सोचने लगी। नूरा बुखारी में लकड़ियाँ लगा चुका था और अब मिट्टी का तेल छिड़कता जा रहा था लकड़ियों पर। उसे लगने लगा ये वही पण्डितों के बागों की लकड़ियाँ हैं...सेबों के पेड़ों की कीमती टहनियाँ और तने जिन्हें नूरा अब दियासिलाई दिखाएगा। ...गर्मी फैलेगी...हमारे जिस्म गर्माएँगे। हमें आनन्द मिलेगा। लकड़ी से नहीं पूछा जाता है कि वह किसकी है?...या क्या उसे जलाया जाना चाहिए या नहीं...या क्या वह जलाया जाना पसन्द करेगी या नहीं। उसे ज्यों ही मौका मिले, लूटा जाता है, जलाया जाता है। गर्माया जाता है खुद को, आनन्द-विभोर किया जाता है खुद को...ठीक स्त्रियों की तरह।

''...मैं...मैं हृदयनाथ की बेटी हूँ...। ''

"...ओ...अच्छा...। आप तो बाद में श्रीनगर में ही रहते थे।"

"हाँ।"

वह देख रही है कि सुमोना को उसका नूर मुहम्मद के साथ इस तरह बातें करना अच्छा नहीं लग रहा। नूरा ने बुखारी में लाल लपटें पैदा की।

बैरा टेबल पर खाना रख चुका था।

"सुधा, खाना खा लो।" सुमोना बोली। 'शुक्र है...वह बोली तो कि खा लो वर्ना उसे गुलशन की ही परवाह है।' शायद उसे नूरा और उसके बीच हो रही बातचीत को तोड़ने का अच्छा बहाना मिला।

"अच्छा नूरा...तुमसे और बातें करूँगी। कितनी अच्छी बात है कि तुम लगभग मेरे गाँव-भाई हो।"

नूर मुहम्मद को अच्छा लगा। चेहरा लाल हो आया, और उसकी खातिर बुखारी अच्छे से जलाने में जुट गया।

"क्या बातें हो रही थीं।" उसके खाना शुरू करते ही सुमोना ने पूछा। यह प्रत्याशित प्रश्न था।

नूरा को गाँव-भाई पाकर या उससे कश्मीरी में बतियाकर सुधा के चेहरे पर भी गर्व की परत बैठ गयी थी, यह वह स्वयं भी उन सदाबहार रहनेवाली भिनभिनाती मक्खियों या कभी-कभी तितलियों के माध्यम से देख रही थी और देख रही थी कि सुमोना भी उस परत को देख, चीह्न रही है। पर्वत शृंखलाओं-सी पराजय के बीच में से ये छोटे-छोटे विजय के उभार ही उसके लिए गनीमत।

"अरे मेरा गाँव-भाई निकला। पापा को जानता है...बहुत बातें हुईं इससे गाँव के बारे में...।"

"मिलिटेंसी के बारे में...?"

"नहीं, अभी करूँगी मैं इससे आतंक के बारे में बातें।"

वह आतंकवाद को आतंकवाद न कह कर मिलिटेंसी कहती है।

❑❑

जब वह अहदूस में थी तो सोच रही थी कि वह अहदूस में क्यों है, घर में क्यों नहीं।

और जब वह गेस्ट हाउस की तरफ जा रही थी तो सोच रही थी कि वह गेस्ट हाउस क्यों जा रही है, घर क्यों नहीं जा रही? और खुद को याद दिला रही थी कि क्या यह सच है कि इस घटना को हुए अर्सा होने को आ रहा है।

"जमीला कल शायद नहीं आ रही...।"

उसने अहदूस में जमीला को कल के दौरे पर साथ आने से इनकार करते

हुए देखा था और देखा था सुमोना को उसके इनकार को इकरार में बदलने की अजहद आरज़ू-मिन्नत करते हुए। लगभग पाँव पड़ते हुए। पर जमीला ने कतई नहीं मानी उसकी मिन्नतें। कहा, 'बच्चा ठीक नहीं है।' यूनिवर्सिटी पन्द्रह तारीख को बन्द हो रही है। वही एक अध्यापिका है, जिसने पाठ्यक्रम पूरा नहीं पढ़ाया क्योंकि बीच में वह लाहौर गयी थी किसी कॉन्फ्रेन्स में भाग लेने। उसे यह भी याद आया कि सीढ़ियों से उतरकर जमीला पूरे दबाव के साथ दिल्ली एयरपोर्ट पर हुई दिक्कतों के बारे में बोली थी और दिल्ली के एयरपोर्ट अधिकारियों एवं भारत सरकार को खूब-खूब गालियाँ दी थी...मानो सुधा को भारत सरकार और एयरपोर्ट अथॉरिटी की प्रतिनिधि मानती हो और सुमोना का दिमाग ठिकाने लगा रही हो। ज्यों ही सड़क तक पहुँची थी तो वह एयरपोर्ट भूलकर कश्मीर के उदास मौसम के चंगुल में फँस चुकी थी और कहने लगी थी कि उसका मन दिल्ली भागने को हो रहा है। ''यहाँ उदासियाँ शरदभ्रों की तरह आच्छादित हैं। उदासियों का घटाटोप है।'' सुधा ने सोचा—'वाह रे मन। कैसा है यह मन।' सुधा मन में गा उठी—'ऊधो मन न भये दस-बीस...एक हुतो सो गयो श्याम संग...।' ऊधो गोपियों के दस-बीस मन नहीं। बस एक है जो श्याम के संग गया है।

जमीला तुम्हारे कितने मन हैं भई? एक इस उदासी से घबराकर दिल्ली भागना चाहता है और दूसरा दिल्ली की अड़चनों को किसी तरह भी पार कर—लाहौर। एक मन हिन्दुस्तान में। एक पाकिस्तान में।

''भोजन अच्छा बना है।'' वह बोली। शायद उसे माहौल कटा-कटा-सा लग रहा था, या भोजन की खुशी उसे इतनी थी कि उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि वास्तव में वह भोजन कर रही है। वह भोजन के स्वाद और माहौल को सूत्रबद्ध रखना चाहती है। उसकी बात पर न गुलशन ही कुछ बोली और न सुमोना ही।

शायद सुमोना सोच रही है—काश वह भी कश्मीरी भाषा जानती होती, तब वह भी नूरा से उसकी भाषा में बातें कर सकती।

''तो जमीला कल नहीं आ रही।'' इससे पूर्व जब यही प्रश्न उसने सुमोना से पूछा था तो वह चुप रही थी पर अब इसी प्रश्न को दोहराकर वह सुमोना को उत्तर देने के लिए विवश कर रही है।

सुमोना बात-बात पर विचित्र मुँह बनाती है। उसके मन में कई किस्म के खिंचाव आ चुके हैं। उसे सुधा की हर बात में, हर प्रश्न में महीन व्यंग्य सुनाई पड़ता है। ज़िन्हें वह साफतौर पर व्यंग्य की संज्ञा भी नहीं दे सकती, न ही प्रश्नों की संज्ञा ही। सुमोना कुण्ठित हो रही है। उसका ताजा साक्ष्य नूरा के साथ मातृभाषा में सुधा की बेलौस और आत्मीय बातचीत से उपजी सुमोना की परेशानी।

'मातृभाषा! प्रणाम तुम्हें मेरी मातृभाषा! मातृभूमि! मैं तुम्हें वापस पाऊँगी...मातृभाषा से। मेरी मातृभाषा....मेरा शस्त्र।' उसने ये मन्त्र सरीखे शब्द स्वयं से कहे।

'सुमोना जिसके बगैर कुण्ठित हो रही है, जबकि सबसे वह एक धृष्ट की तरह कहती फिरती है कि कश्मीर के वर्तमान हालात पर जिस किस्म का अनुसन्धान वह कर रही है, कोई नहीं करता, न कर ही सकता है।'

सुमोना अक्सर अपने लिए कई विशेषणों का प्रयोग स्वयं करने से हिचकिचाती नहीं, खासकर कश्मीर के सन्दर्भ में और यह भी कि वह कश्मीरी है। उसके पिता कश्मीरी हैं। उसका नाम सुमोना धर अरोड़ा है। पिता का धर उसने नहीं छोड़ा है। माता उसकी बंगाली है। यह मुलाकात के आरम्भिक दौर में सुमोना ने सुधा से कहा था, पर अब जब भी किसी से उसका नवीन परिचय होता है तो वह बताती है कि उसकी माता भी कश्मीरी है। सिर्फ पति उसके पंजाबी हैं। यह परिचयगत नवीन संशोधन अब सुधा ने भी नोट किया है, और वह इस मामले में भरसक सावधानी बरतती है। उस दिन गंजू साहब को परिचय देते समय जब यह संशोधन सुमोना ने किया था तो वह बोली थी, ''अच्छा! अच्छा! माता भी तुम्हारी कश्मीरी है, अच्छा...ओह...हो...ठीक है...हाँ ठीक है ओह!''

❑❑

बुखारी की गर्मी और खाने की महक से कमरे का माहौल बदल गया। उन तीनों के दिलों का आलम मगर कतई अलग-अलग था। गुलशन के दिल का हाल कमसिन उदास था। और उसके दिल का हाल जटिल। शायद गुलशन के भीतर भी घटनाओं के घटाटोप का जाल था और उसको सुलझाना उसके लिए दुष्कर। गुलशन भी अपने कश्मीरी होने की कीमत अदा कर चुकी थी क्योंकि उसका पिता कॉमरेड था।

उसे अजीब-सी भूख लगी थी। एकदम लज्जित कर देने वाली भूख। सुबह से खाया नहीं था कुछ। इस शहर में अब रोजे के दिनों में दिनभर खाने को कुछ नहीं मिलता। यदि आप दूसरे धर्म के भी हों तो भी। आप खा पाएँगे कुछ इफ़्तार में ही, या सहरी में ही, यह धर्मान्धता का जहर है। इसीलिए अहदूस से भी भूखे ही निकलना पड़ा था।

बैरा जितने चावल रख के गया था, उसे लग रहा था वे उसके लिए भी नाकाफी हैं...और नाहक सुमोना सोचेगी कि कितने चावल खाती है।

मगर अजीब तमाशा हुआ। इतनी मारक भूख भी चावलों के दो-तीन कौर पेट में चले-जाने के बाद ही शान्त हुई। और उसे कतई नहीं लगा कि चावल

कम हैं और मँगाने पड़ेंगे।

"धन्यवाद प्रभु। रखियो लाज हमारी...प्रभु जी...ओ" मुँह, जीभ, होठों की व्यस्तता के बावजूद उसने शुक्राना गाया।

'यह किस शान्ति से आपने मेरा पेट भर दिया। हे महादेव।' उसके भीतर ने उसके भीतर से कहा। यह धन्यवाद के उल्लास का वाक्य था।...'शायद मुझे किसी और चीज की भूख हो...भोजन की नहीं...उसे क्या कहते हैं...शायद संसार की किसी भाषा में उसके लिए अभी कोई शब्द या वाक्य या व्याकरण नहीं है...हाँ शायद...अर्थ एक शब्दहीन...हाँ।" उसके भीतर ने फिर से उसके भीतर से कहा। वह प्लेट रखकर शीघ्रता के साथ बुखारी के पास गयी।

"सुमोना, खाना खाकर भी बड़ी ठण्ड लगती है।" यों ही सूत्रबद्ध रखने का प्रयास वह करती है। कमरे में उनके खाना खाने की प्रक्रिया में होनेवाली ध्वनियों और बुखारी में आग जलने की ध्वनियों के अलावा बस सन्नाटा है।

सुमोना उसे एकटक देखती रही...उसने उसका देखना देखा। समझ गयी...सुमोना कह रही है, "अजीब हो। कहती हो भूखे पेट ज्यादा ठण्ड लगती है, अब पेट भर गया तब भी ठण्ड लगती है...तुम्हारे दिमाग का कोई ठौर हो तब न?"

उसे पता है सुमोना को उसकी धूपबत्ती से लेकर बुखारी जलाने तक आपत्ति ही आपत्ति है। एलर्जी है।

❑❑

लेकिन सुमोना को क्या मालूम इस बुखारी की विशेष गन्ध से...गर्माहट से उसके संवेदनों का तीव्र सम्बन्ध है। यह बुखारी नहीं उसके प्राणों में, अन्तःकरणों में बनी एक कोठरी है...जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है...जीवन की ऊष्मा है,...आनन्द है। क्या नहीं है वहाँ। मात्र उसकी गन्ध में। उसी में उसका गाँव है। गाँव में अनन्त चीजें। गाँव की चरागाह में फैले उपले जिन पर गाँव की गृहलक्ष्मियों के हाथों के नक्श हैं...जो अमर है...अमिट है...अजन्ता अलोरा की तरह...प्रेम करते हुए स्त्री-पुरुष, प्रेम करती हुई वह अपने पति के साथ...खजुराहो की मूर्तिवत्...अमिट... अज्ञेय...अभेद्य...सदा नित्य...नित्य-नूतन।

सुमोना! इस समयावधि में अब एक विशाल मंच बन गया है। जहाँ खेल होते रहते हैं। जहाँ उसकी नर्तक-आत्मा नाचती रहती है। मुक्ति तो उसे कब की मिल चुकी है। मुक्ति और क्या होती है। मुक्ति वह पा चुकी है। सारी सृष्टि उसके भीतर समा चुकी है...और वह—नर्तक-आत्मा नाचती रहती है इस सब पर। अपने अन्दरूनी मंच पर। यह ललद्यद की नर्तक-आत्मा में विलय पा गयी है। कौन है जो देख रहा है सुमोना? किस की आँख में दम है?...जहाँ वह नंगी नाचती

है...चलती फिरती है...उसके सब-के-सब वे प्रियजन, जो उसे उसी के भीतर यह नाच नाचते देखते हैं, भी वही होते हैं। अरे सुमोना। उसके बाहर कुछ भी नहीं...कुछ भी नहीं। सारा ब्रह्माण्ड उसके भीतर आ चुका है।

देखो न यहाँ उसके ताऊ की बुखारी जल रही है। सब कुछ वैसे का वैसा है। कुछ भी परिवर्तन नहीं। क्या एक क्षण भी नहीं बीता तब से?

दिन में उसने ताऊ के घर को देखा था। वीरान। भाँय-भाँय कर रहा। मानो पुकार उठा हो, 'दिद्दा ओ दिद्दा...मेरी लाडली...ऐसे कन्नी काट कर मत जा...आ मुझे मिल...मुझे छू...मुझे भी ले चल...वहाँ जहाँ हो तुम सब।' ये आवाजें सुधा ने सुनी थीं। सड़क के किनारे दूर तक। लगभग बडशाह कदल तक घर चुप नहीं हो रहा था। उसने यासीन से कहा था, ''देखिए यह मेरे ताऊ का घर है।''

यासीन, जो उस समय गाड़ी चला रहा था, ने सिर ऊपर करके देखा था। उसका चेहरा लाल हो आया था। पता नहीं ग्लानि से या लज्जा से?

और एक मारक-मर्मान्तक चुप्पी छा गयी थी।

वहीं उसी घर के आँगन में गहमागहमी है। ताऊ गर्मी में बैठे हैं—कम्बलों के बीच। बहू रेणु बुखारी में लकड़ियाँ डाल रही है। शाम का वक्त है। सर्दी बढ़ गयी है। ताई किचन में निर्देश दे रही हैं। इन्दिरा गाँधी जैसी उसकी ताई। उसे वह इसी नाम से पुकारती। उसने पाया है ताई का बेहद सम्मान करते हुए अपनी माँ को। कितनी महान है उसकी माँ। ताई से ईर्ष्या नहीं करती, उसका सम्मान करती है। कहती है—'यह मेरी दूसरी माँ है। बहुत कुछ मैंने इन्हीं से सीखा। वर्ना यह भी गाँव भाँडीपुर की, मैं भी गाँव की...पर यह सभ्य, सुसंस्कृत जैसे इल्मयाफ्ता हो...और मैं मस्त उझड़।'

पर अब माँ के माँ जैसी होने पर गर्व करती है ताई। कहती है—'तुम्हारी माँ...उस जैसी स्त्री इस पूरे ब्रह्माण्ड में मिलना असम्भव है...।'

रेणु ने बुखारी में और लकड़ियाँ डाल दी हैं। उसकी नर्तक आत्मा के पंख हैं...बाहर उड़कर देखती है। ताऊ के घर के आँगन के ऊपर आसमान लाल है। यह अगले दिन मौसम साफ होने का संकेत नहीं बल्कि पता नहीं किसी दूर-दराज के मौसम के संकेत का संकेत है।

वह पहुँच जाती है अपने पिता के घर में और वहाँ छोटे से आँगन में देखती है आसमान लाल है। तारे अदृश्य। मानो कोई साजिश रचने के लिए लाल कोठरी में घुस गये हों। पापा दुबके हुए हैं कोने में। हुक्का पी रहे हैं। धागा लपेट रहे हैं। मौन हैं। स्वयं में सन्तुष्ट हैं। 'यस्तु आत्मरति एव या आत्मतृप्तश्च मानवा...।'

यहाँ आत्मरति का अर्थ बदल जाता है। भाभी किचन की मद्धिम रोशनी में कुछ पका रही हैं। माँ के महिम्नस्तोत्र के टूटे-फूटे पाठ के स्वर पूरे वातावरण

में फैल रहे हैं। पता नहीं क्या हो गया है पापा को प्रायः माँ को झिड़कते हैं, ''पाठ जरा धीमे से किया कर।''

''क्यों, तुमसे सुना नहीं जाता...।''

माँ तुरन्त प्रतिक्रिया करती है।

''नहीं भई। यहाँ...आसपास।''

''आज अचानक क्या हो गया। मैं तो सदा से पाठ इसी स्वर में करती हूँ। बैठो चुपचाप...बैठे तो हो। सीधे बताओ कि तुमसे नहीं सुना जाता।'' और उसकी माँ कमरे से चली गयी।

पापा बैठे-बैठे बुदबुदाये थे—हाथों को और अंग-विन्यास को इस तरह घुमाया था...कहा था...''समझती नहीं...कहीं की...।''

पापा सूँघ रहे थे लाल आसमान की गन्ध शायद।

दो माह पूर्व ऊपरी मुहल्ले में सुबह-सुबह बजने वाले भक्ति-संगीत के कैसेट मन्दिर में बजाना डी एस पी खान ने बन्द करवाया था। युवा होने के नाते उसका खून खौल गया था। सुना था कि पण्डित लोग बड़ी आसानी से मान गये थे और भक्ति-संगीत बजाना बन्द कर दिया था। शायद उसी की दहशत है पापा के भीतर।

लेकिन लाउडस्पीकर के भक्ति-संगीत और माँ के गायन के स्वर में जमीन-आसमान का अन्तर है, अन्तर था... उसकी नर्तक आत्मा सोचती है।

हवा पर सवार होकर वह जाती है पति के घर। भयंकर विकर्षण के बीच उसका पति है अथाह आकर्षण। वह सीधे ऊपर जाकर उसकी भुजाओं में खो जाना चाहती है। उसके चुम्बनों में दब जाना चाहती है। उसने उससे विवाह किया है...वह उसके साथ कुछ भी कर सकती है...ओह उसकी आकांक्षाओं पर काले साये हैं। वह उसकी भुजाओं तक पहुँच ही नहीं पाती।

वह ऊपर नहीं जाएगी। दहलीज से ही वापस मुड़ गयी। सामने देखा नूरा कुछ और लकड़ियाँ लेकर आ रहा है। सोने से पूर्व बुखारी को खूब गर्म करने के लिए ताकि सुबह सहरी तक बुखारी खूब गर्म रहे।

बैरा आकर बर्तन समेट रहा था। सुमोना उसको गुलशन के लिए सहरी का प्रबन्ध करने को कह रही थी।

''पाँच बजे सहरी होती है। जगाना गुलशन को।''

''अरे फिर गुलशन! तुम मुझे भी जगाना...मैं भी उठूँगी...बल्कि मैं उससे पहले ही उठूँगी।'' सुधा ने कहा।

''वैसे मैं आदतन स्वयं ही जाग जाऊँगी।'' उसने फिर कहा।

सुमोना ने उसके सभी शब्दों की उपेक्षा की थी। और उसने उसकी उपेक्षा

के लिए अब कवच तैयार कर लिया है।

''नूर मुहम्मद, आपने पढ़ाई की है कुछ?''

''हाँ, दसवीं का इम्तहान दिया था, आर ही रह गया। फिर दूँगा दूसरे सत्र में, शायद पार लग जाऊँ।''

''शादी हो चुकी है?''

''नहीं। कुड़माई हो चुकी है। पहले कुछ कमाने लग जाऊँ...तब शादी करूँगा।''

''जमीन है...?''

''हाँ, थोड़ी-सी। पर उससे क्या होता है।''

''मिसेज वजीर क्या तनख्वाह देती है?''

''एक हजार...और कभी कुछ ऊपर से दे तो दे...।''

''नूर मुहम्मद, तुम्हारे गाँव के कुछ लड़के आतंकवादी बने?''

''हाँ, क्यों नहीं...लगभग सात। उनमें तीन एनकाउण्टर में मारे गये और दो का कुछ पता-पैगाम ही नहीं...दो ने समर्पण किया। अब कांग्रेस के नेता हैं। और सरकारी नौकरी भी मिली है। मैं भी सोचता था कि नौकरी पाने के लिए यही ठीक है। मिलिटेण्ट बनो। सरण्डर करो। और नौकरी पाओ। और शाबाशी भी...और हो सका तो किसी अच्छी पार्टी का नेता भी। मगर मुझे नेतागिरी का कतई लालच नहीं। बस नौकरी मिल जाए।''

''तो किया क्यों नहीं वैसा?''

''विधवा माँ ने नहीं माना। कहा मैं कम खाऊँगी।''

''तुमने समझाया नहीं कि सरण्डर करूँगा बाद में।''

''बताया। कहती है सरण्डर करने तक भी जिन्दा बचोगे इसकी क्या गारण्टी है। या सरण्डर करने के बाद भी जिन्दा बचोगे, इसकी भी क्या गारण्टी है। सरण्डर किये हुओं को खुद आतंकवादी मारते हैं...गद्दार मानकर।''

''सही कहा है। देखो, माँ कैसी कवच होती है, सन्तान के लिए। बड़ी समझदार होनी चाहिए।''

''अरे माँ तो...।''

''तुम्हें क्या लगता है। यह सब जो हुआ, अच्छा हुआ क्या? क्या है तुम जैसों की राय?''

''बहुत बुरा हुआ। बहुत ज्यादा बुरा हुआ। देखिए न उदासियाँ, दुःख और दहशत, आशंकाएँ और आप सबकी बद्दुआएँ काम कर गयीं।''

''यह तो तुम कह रहे हो। नेता तो खुश हैं। पैसेवाला तबका खुश है। या जिन्होंने हमारा माल-असबाब घर-बार लूटा, वे खुश हैं...उन्हें लगता है उन्होंने

हमें निकालकर लगभग-लगभग आजादी पा ली। अब इस्लाम के नाम पर आतंकवादी देशों जैसे पाकिस्तान, अरब इत्यादि और हिन्दुस्तान के नाम पर हिन्दुस्तान से पैसे ऐंठते हैं। हमारी नौकरियाँ, हमारी जड़ें, हमारे घर, ऐंठ लिये। है न?''

''जो कुछ करता है, पैसेवाला तबका ही करता है। सारे फैसले वही कर रहा है। सारा आतंकवाद वही ला रहा है। हम कौन हैं? मगर...हम देख रहे हैं न कुछ और भी...मसलन किसी ने लालच की कि चलो पण्डित भाग गये, अब ऐसे प्रपंच करो...उन्हें कौड़ियों के दाम दो, मकान हड़प लो, जमीन हड़प लो। ऐसा करनेवाला कहीं का नहीं रहा। कहीं का भी नहीं। कुछ-न-कुछ हादसा हर किसी के साथ हुआ...।''

सुधा जोर से हँस दी। उसे नूरा की मासूमियत पर भी हँसी आयी और बोली, ''अरे नूरा, यह तुम मुझे ढाढ़स बँधाते हो। मान लो उन सबके साथ कुछ-न-कुछ हादसा भी हुआ, मगर उससे हमें क्या मिला। कुछ भी तो नहीं वापस। है न?''

''हाँ...पर मैं आपको ढाढ़स नहीं बँधा रहा...कुरआन की कसम सच कह रहा हूँ...मसलन...मैं बताऊँ...वह घर आप देख रही हैं? वह...जहाँ हरी बत्ती जल रही है बरामदे पर...'' उसने पर्दा हटाकर खिड़की के शीशे से झाँककर देखा और नूरा के बताये मकान को उसकी दृष्टि ने अन्ततः पकड़ ही लिया।

''पण्डित जी.एल. रैणा का घर है। बताइए पचास लाख से कम की कोठी नहीं है न। पाँच लाख भी नहीं दिये सूअर ने।''

''तो...।''

''अब यह पागलों का संसार है। मालिक इस घर में आने के दो दिन बाद पागल हो गया...और...''

''अरे....रे...रे... ?''

''और फिर लड़की का खाविन्द जो बडशाह कदल में बड़ा व्यापारी था—गोली लग गयी फायरिंग के दौरान...सटाक से...नयी-नयी शादी हुई थी...ससुराल वालों ने घर से निकाल दिया...अब यहीं दिन गिन रही है...पण्डित मकान में...। मिसेज वजीर कह रही थी कि पण्डितों का घर उनको फला नहीं।''

''ऐसे ही एक और किस्सा है—मेरी नज़र में, जवाहर नगर में...। उन दिनों दलाल खूब कूद पड़े थे बाजार में। उन्हें कहते ही थे भट्टों के घरों के दलाल। यानी भट्ट-दलाल। सब कूद पड़े थे लूट में। सब चाहते थे...उसे...न... उसे पण्डित घर मिले। घर भी शानदार होगा और कीमत भी...कुछ नहीं के बराबर....बस कब्जा जमाने की बात थी।''

''हाँ...हाँ...पर यह लूट तो जारी है।''

''हाँ...जवाहर नगर का वह घर किसी गाँव के व्यक्ति ने खरीदा था। जिस दिन प्रवेश किया, उसी दिन भूत उनको खाने को दौड़े, आवाजें हुईं। जो-जो देखने गया...उसके भी भूत पीछे पड़ गया।''

सुधा को हँसी दबानी पड़ी अपने दोनों फेफड़ों में...''फिर?''

''फिर क्या? वही पागल हो जाना। वह, यह। अब वे फिर वापस गाँव जा चुके हैं। घर में ताला लगाया है। उसका खरीददार ढूँढ़ रहे हैं और कोई उस मकान को खरीद नहीं रहा। उन्होंने वह घर एक ऐसी विधवा से कौड़ियों के दाम खरीदा, जो जम्मू के शरणार्थी शिविर में रह रही है।''

''तो यह बात है?''

''तो क्या।''

''अरे नूर मुहम्मद यह अजीब सूचना दी तुमने। इसका मतलब है कि कुदरत है।''

''अरे बहन...कुदरत है...कुदरत ही रहेगी...कुदरत ही थी। न हिन्दू था, न मुसलमान था।''

''अच्छा? तुम तो फिलॉस्फर हो...तुम नूर हो सचमुच।'' और वह सोचने लगी कि अगर यह उसका सहज उद्गार है तो नूर मुहम्मद एक मुक्त-आत्मा है। सचमुच नूर। नूर इस संसार में प्रकाशकीटों की तरह घूम रहे हैं—वाह।

उसकी तितलियाँ (मक्खियाँ) फिर बाहर मँडराने लगीं...उसे बता रही हैं...आप चमक रही हैं...नूरा का नूर आपके चेहरे पर बैठ गया है।

''यह कौन है?'' नूरा ने सुमोना के बारे में सुधा से पूछा।

वह उसके अंग-विन्यास से समझ गयी थी कि सुमोना के बारे में जिज्ञासाएँ उसके भीतर बड़ी देर से हैं।

''हमारी बॉस। अफसर है हमारी।'' उसने भी चुटकी-सी ली।

''अच्छा?''

''हाँ...हाँ। दिल्ली से आयी है। तुम लोगों के लिए कुछ करना चाहती है। हम लोगों के लिए भी कुछ करना चाहती है।''

''क्या करेगी?''

''कुछ भी। जो करना जरूरी है। तुम बोलो क्या करना जरूरी है?''

''तो मुझे नौकरी क्यों नहीं देगी?''

''अरे नूरा, यह औरतों के लिए कुछ करना चाहती है।''

''औरतों के लिए? तो फिर मेरी माँ के लिए करो कुछ? कोई मदद।''

''नहीं, ऐसे नहीं। अगर वह कुछ काम जानती हैं तो उस काम को आगे बढ़ाने में यह उसकी मदद कर सके।''

''पर वह तो कुछ नहीं जानती।''

''लेकिन नूर मुहम्मद, पट्टन के लोग तो सम्पन्न हैं। जमीनें और सेबों के बाग हैं उनके पास।''

''सारा पट्टन सम्पन्न नहीं। हाँ, पलहालन के लोग बहुत सम्पन्न हैं। और वहाँ के पण्डितों के तो क्या कहने।''

''पलहालन? अरे पलहालन?...अरे अरणिमाल का गाँव?'' उसे रोमांच हो आया। मानो उसकी पूर्वजन्म की स्मृति को नूर मुहम्मद ने जगाया हो। कहीं नूरमुहम्मद ही उस जन्म का गुल मुहम्मद तो नहीं? अरणिमाल? अरणिमाल... पलहालन? वह नाम-सुख में रम-सी गयी है। कौन थी वह घोर स्वाभिमानी स्त्री। उपेक्षिता स्त्री। गीत गाती स्त्री। प्रतीक्षा कर रही स्त्री। अपने प्रियतम की मूर्खता पर हँसती हुई स्त्री...खाँसी से मरती हुई स्त्री।...खाँसती है वह स्वयं। वह सचमुच खाँस रही है। खाँस रही है।...अरे नूर मुहम्मद उर्फ गुल मुहम्मद बुखारी में धुआँ हो गया है...जिन्दगी में धुआँ हो गया है और धुएँ ने उसके फेफड़ों के अन्दर घुसकर जगह बना ली है...बुखारी में गीली लकड़ी है...लकड़ी रो रही है...धुआँ कर रही है। अरणिमाल को मरना है...कूच करना है...प्रयाण करना है...उसका प्रियतम पति, छलिया पति आएगा, जब उसकी अर्थी निकल रही होगी।

''तुमको कुछ पता है पलहालन की अरणिमाल के बारे में...?'' सुधा ने नूरा से पूछा।

''हाँ, सुना है। सिंहपुर पट्टन में भी लोग जानते हैं।''

''तुम पलहालन जाते हो?''

''मेरी माँ वही की है...।''

''तब तो वह अरणिमाल को जानती होगी...मतलब सुना होगा उनके बारे में, उनकी जिन्दगी के बारे में...है न...।''

''हाँ...शायद।''

उसने क्षण भर में भाँप लिया कि इस प्रसंग में नूर मुहम्मद को कोई खास रुचि नहीं। वह अपने भविष्य की बात करना चाहता था, और सुधा थी कि उसे अज्ञात अतीत में उलझाना चाहती थी।

अरणिमाल की बात छेड़ने के बाद और उस बात में नूरा की अरुचि या अज्ञान देखने के बाद उसकी रुचि और अधिक बातें करने में समाप्त हो गयी जबकि नूरा की मुखाकृति से, और उसके बहुत लगन से बुखारी जलाने से सुधा को लगा था कि नूरा को कुछ कहना है। कोई निजी बात या समस्या।

वह कुर्सी से उठी और बिस्तर पर आ गयी, ताकि नूरा जाए। इस घड़ी वह अपनी आभ्यन्तर रंगशाला में कुछ अभिनीत करना चाहती है। उसे अरणिमाल ने

झकझोरा है। वह उसके साथ समय बिताना चाहती है...पलहालन में। वह अभिनीत करेगी अपना मरना। अरणिमाल का मरना। ललद्यद का कुछ दाने अन्न खाना। हब्बाखातून का अजीज लोन के पैरों पर आरजू मिन्नत कर, फिर नितान्त वीरान में भाग वहाँ खून के आँसू रोना और विवश-विरहिणी के गीत गाना। पता नहीं क्या-क्या है उसके पास। कितने-कितने जीवन्त पूर्वजन्म। जिनको वह अपनी रंगशाला में प्रस्तुत करेगी अपनी ही प्रेक्षा के अन्तर्गत। नूर मुहम्मद चला गया।

गुलशन का बिस्तर दरवाजे के पास था, अत: वह उठी और दरवाजे पर चिटकनी चढ़ा ली। उसने काँगड़ी की कमी महसूसते हुए कहा—'काश! एक जोश काँगड़ी होती।'

गुलशन एक सदियों पुरानी हँसी हँस दी...जो सुधा के मन भायी। ...जिस हँसी के वातावरण में सुमोना एक अपरिचित की तरह खो गयी। बिस्तर में घुसते ही सुमोना ने पूछा, "अबकी बार क्या बातें हो रही थीं नूर मुहम्मद से?"

"कुछ खास नहीं। यों ही! इधर-उधर की हाँक रहे थे। नथिंग सब्सटेंशल।"

सुधा को सुमोना की इस उत्सुकता पर परम आश्चर्य हो रहा है और मन में यह बात अब साफ हो रही थी कि सुमोना धर चाहे कितनी ही अँग्रेजी जानती हो, कश्मीरी भाषा का एक शब्द जानने के लिए छटपटा रही है।...तड़प रही है। ताकि वह भी नूरमुहम्मद यानी कश्मीर के तृण मूल के साथ बात कर सके, पूरी निजता के साथ।

यों तो सुमोना सतह पर खूब तैरती रहती है। फलाँ अलगाववादी नेता से साक्षात्कार, फलाँ नरमपन्थी मगर अलगाववादी नेता से जेल में मुलाकात, फलाँ मन्त्री को सलाम...फलाँ को नमस्कार...और फलानी को विश...हाय...हैलो।

"अरे मैंने अरणिमाल के बारे में जानना चाहा था इससे, पर इसकी दिलचस्पी वहाँ नहीं थी। यह शायद जानता भी न हो कुछ...यों तो कह रहा था कि उसकी माता पलहालन की बेटी है। अरणिमाल का गाँव। जानती हो न उसे—अरणिमाल को?"

वह चुप रही। सुधा समझ गयी कि वह न भी नहीं कहना चाहती। वह जिज्ञासु आँखों से उसे देखती रही।

"अरे एक प्रमुख कवयित्री। सुमोना! कश्मीर के बारे में एक आश्चर्यजनक बात कहूँ—यहाँ (कश्मीर में)स्त्री को हमेशा पृष्ठभूमि से धकेला गया। पुरुष के अपने अहंकार के कारण, इस्लामी उत्पीड़न के कारण, स्वयं इस्लाम के कारण...पर जितना धकेला गया...वह उतनी श्रेष्ठतम भी बनती गयी...जैसे अरणिमाल...जैसे हब्बाखातून। ललद्यद की बात ही कुछ और है, वह विश्व की सिरमौर ठहरी। यह शक्तिपीठ है भई। यहाँ की स्त्रीशक्ति है। हर कहीं स्त्री शक्ति है, जिससे पुरुष

डरता है। —जानती हो कविता की उदात्तता और महानता का जहाँ तक सवाल है स्त्री उच्चतम शिखर पर है। ललद्यद के रूप में। अध्यात्म के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर है। अपने जीवनकाल में उसे एक ग्रास अन्न ठीक से नहीं मिला पर अन्त में योगिनी कहलायी। उसने अध्यात्म के रास्ते क्रान्ति की। विद्रोह किया। आज पुरुष स्त्रियों से ज्यादा उसकी श्रेष्ठता का बखान करते हैं। अरे विचित्र बात है। तुम्हें कुछ दिलचस्पी है इस बात में...अरे सबसे दिलचस्प बात यह है कि ललद्यद के नंगा नाचने का सही अर्थ अभी तक नहीं लगा पाये हैं वे। उसके नंगे चित्र इस तरह बनाते हैं कि दिल करता है या उस चित्रकार का सिर फोड़ें या वह चित्र फाड़ डालें। या ललद्यद के नंगी नाचने की भद्दी कल्पना के चित्रण के लिए जार-जार रोकर ललद्यद से माफी माँगें...सो गयी क्या सुमोना... ?''

''नहीं-नहीं, सुन रही हूँ, और सोचती हूँ...हमें स्त्रीवाद के सन्दर्भ में इन बातों पर एक अलग कॉन्फ्रेन्स करनी चाहिए।''

उसने करवट बदली और अपने आवेगों के आलिंगन में बँधकर सोचा कि सुमोना को सिर्फ वह नुक्ते चाहिए जिन पर कॉन्फ्रेन्स करे, शोध और चिन्तन नहीं।

हर बात को लेकर वह बाजार में पहुँच चुकी होती है।

''अच्छा गुडनाइट।'' गुलशनआरा बोली। मानो बोल रही हो...अब यह फजूल वार्ता बन्द करो। मैं एक रोजेदार हूँ और सुबह सहरी के लिए मुझे उठना भी है।

अब कमरे में मौन था। कुछ क्षणों में सुमोना की खर्राटें यह जता रही थीं कि वह गहरी नींद की गोद में है...पर गुलशन के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। हो सकता है वह जाग रही हो अभी...अभी भी।

❑❑

सुधा हारी हुई बेचैन है। खिन्न और असहाय है मानो अचानक कीड़े में बदल चुकी हो। जैसे लगे हैं, उसे कई पीड़ित परिवारों के सदस्य जम्मू के तम्बुओं में मात्र मानवीय आकार की लकीरों से लैस कीड़ों में बदल चुके हैं...सुधा सोचती है कि उसमें वे मानवीय लकीरें भी नहीं शेष। एक सम्पूर्ण कीड़ा। एक दन्दानी।

और यह कीड़ा कमाल करता है। मनुष्य की तरह सोचता है। मनुष्य होने से थक नहीं गया है निमिष भी। प्रायः माँ की कथा उसे स्मरण हो आती है और इस समय वह फिर उसी कथा के दृश्य उसके नेत्रों में नाचने लगते हैं—माँ कहती है—यानी भट्टिनी कहती है—एक खोपड़ी जब पहाड़ के ऊपर के शिखर से झरने में गिरी और विभिन्न पत्थरों से टकराती हुई नीचे नीचे बहती जा रही थी। खोपड़ी का जीवट देखो कि जब भी एक विशाल पत्थर से टकराती तो पीड़ा की तड़प

के जोर से बोल उठती-बस प्रकृति! इससे ज्यादा जोर से नहीं मारना...तब दूसरे बड़े पत्थर से टकराती तो फिर खोपड़ी चीत्कार कर उठती...फिर चीत्कार...फिर फिर यही चीत्कार कि अन्त में प्रकृति उपस्थित हुई और बोली—'अब इससे ज्यादा मार मैं तुमको क्या मारूँ...मेरी भी शक्ति की पराकाष्ठा को तुम लाँघ गयी हो...धन्य हो भई, तब भी कहती हो कि बस इससे अधिक मार नहीं मारना।'

'तो प्रकृति कब उपस्थित होगी। होगी क्या?' वह सोचती है।

और कीड़ा मानव की तरह सोच रहा है और सोच रहा है मनुष्य होने के लिए। जानता है कि मनुष्य होकर भी वह कुछ नहीं कर सकता/सकती। वह छू कर देख रही है अपनी उँगलियों से अपनी उँगलियाँ, अपने हाथों से हाथ और बाँहें और सिर और सब कुछ मगर वह आश्वस्त नहीं अपने मनुष्य होने के बारे में...वह तुलना करती है...और उसे दीप्ति की सख्त याद आती है। जो अपनी विचारधारा के दिनों में साम्यवाद की बातें करती और मुसलमानों का पक्ष लिया करती कुछ ज्यादा ही। बुद्धि बड़ी खतरनाक चीज होती है, लेकिन बुद्धि और हृदय मिलकर विचारधारा से मुक्त भी करती हैं। और दीप्ति को यह मुक्ति मिल गयी है...पर ठीक से ठोक-पीट के बाद।

''हम भारतीय हिन्दुओं पर मुसलमान भाइयों के प्रति सहिष्णु होने का विशेष दायित्व है। भले ही मुसलमान कम सहिष्णु हों।''

''मगर कश्मीर में उन्होंने इसी का सहारा लेकर हमारे साथ जो किया उसका...क्या होगा?''

''इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ वे जाहिल हमारे साथ करते हैं, ठीक उसी सिक्के में हम भी जवाब दें।''

''दीप्ति...जाहिल...शब्द का अच्छा अर्थ है, वे जाहिल नहीं...अबू जहल तो शास्त्रार्थी था, विचारक था, तार्किक था...तमाम शास्त्रार्थ को ताक पर रखा जाए, तर्क न किया जाए, विचार न किया जाए, सोच पर ताला लगाया जाए, सदा के लिए, मुहम्मद ने अबू जहल की खोपड़ी मूर्तियों के साथ मार-मार कर तोड़ दी। आखिर जान के लाले पड़ गये अबूजहल को और मुहम्मद के धर्म में अन्तरित हुआ। जान बची और लाखों पाये। जो तर्क करता है मुसलमानों में जाहिल कहलाता है...समझी। जैसे अरे जाहिल...मने काफिर कहलाता है। जैसे हम भट्ट...जो अभी तक बचे हैं...बीज-भट्ट हैं...अपने को अपने धर्म में बनाये हुए हैं, रोके रखे हैं। पर अब की तो दीप्ति, उनको भी नहीं बख्शा गया जो इस्लाम में जाने को भी तैयार थे, जान की खातिर।''

दीप्ति चुप हो उठी थी। शायद विषण्ण थी। शायद सोच रही हो सुधा के अनुभवों ने सुधा को भी अन्धी बना दिया है...या सोच रही हो...हाँ सच है

'सहिष्णु' शब्द पर गौर किया जाए, फिर से गौर। व्याख्या...एक पुनर्व्याख्या। ''पर करेगा कौन?''

''हम। दीप्ति, सिर्फ हम? जिन्होंने धर्मान्धता की अमानवीयता के अंगारों पर पैर रखकर अपने को जिन्दा-साबुत निकाल दिया। ईश्वर के दिये प्राणों को बचाकर ईश्वर को कृतकृत्य किया...दीप्ति, हम कश्मीरी भट्ट। हमें भारत के तथाकथित बुद्धिजीवियों के होश भी ठिकाने लगाने हैं...जो मुसलमानों की पहल पर हुए दंगों पर मुसलमानों की पीठ थपथपाते हैं और हिन्दुओं को गरियाते हैं। वाह री उनकी कौमियत। हम उन्हें समझा देंगे। हम पर जीवित रह पाने के बाद का यह बड़ा सरोकार है, दीप्ति।''

कहते हुए सुधा दीप्ति के चेहरे की हर महीन गतिविधि पढ़ने की ताक में थी कि क्या वह उसके हर उद्‌गार को हृदयंगम करती है, या वमन करती है।

''आखिर हमारे पास दर्शन है, दीदी।'' यह दीप्ति की दलील थी।

''इतना विराट होना...यह एकतरफा प्यार, मुहब्बत, इश्क अब भी जायज है क्या दीप्ति? जब करतूतों पर से पर्दा उठ चुका है?'' सुधा ने पूछा था।

''मतलब...और बातें छोड़ ही दो...कल की दिल्ली में हुई 'मजहब बचाओ' रैली ही लो, मुसलमानों की,...क्या तुम उसका विश्लेषण करती हो? कर सकती हो? तुम्हीं कर सकती हो दीप्ति। मैं ही कर सकती हूँ। और कोई नहीं कर सकता। हिन्दुस्तान के किसी भी कोने में बैठा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता।''

दीप्ति, बस एकटक देख रही है प्रश्नाकुल होकर। और सुधा समझ गयी। दीप्ति के मस्तिष्क और मन के मिश्रण से निकला उसके मुख के चक्कर काटता, शब्दों को खोजता, उनमें बँध जाने को आतुर एक प्रश्न साकार दिखा था...और सुधा ही बोली थी...

''हिन्दुस्तान पर बहुत बड़ी कालरात्रि छानेवाली है, और बहुत बड़ी क्रान्ति आनेवाली है—दोनों के बीज कश्मीर में हैं।''

इस पर अपना धैर्य खोते हुए, मुँह में रोटी का कौर चबाना स्थगित करते हुए दीप्ति ने पूछा, ''कैसे? यानी?''

ऐसा कहकर सुधा जानती थी कि उसने काफी बड़ा खतरा उठाया था। पर उसमें घनघोर आत्मविश्वास था कि वह दीप्ति में यह बैठाने के लिए सारी सच्ची और बेबाक दलीलें अपने पास रखती है। उसने दीप्ति की आँखों में आँखें गड़ाकर कहा, ''देखो, कालरात्रि छा जाएगी और वह उन्नीस जनवरी 1990 की कश्मीर में उत्पन्न कालरात्रि का एक बृहत्तर प्रत्युतर होगी...यह एक बड़ी विस्तृत कालरात्रि होगी दीप्ति। तुम ही अभी उद्‌धृत कर रही थीं मौलाना बुखारी द्वारा जलसे में बोले शब्द...ज़रा फिर दोहराओ दीप्ति...हाँ दोहराओ न...अगर यहाँ शान्ति और देशप्रेम

की क्रान्ति आएगी, वह लाने वाला एक कश्मीरी पण्डित ही होगा। धर्मान्ध मन की नंगई को जिस तरह कश्मीरी भट्टों ने देखा है, उसकी अश्लीलता को जिस तरह कश्मीरी भट्टों ने जाना है, कोई नहीं जान सकता।''

दीप्ति ने हामी भरी। ''तुम सच कहती हो...सच...सचमुच...अब इस सच को बोलने का साहस चाहिए क्योंकि इस देश के संविधान में यह सच बोलने की मनाही है।''

सुधा दीप्ति के इस स्वीकार से प्रसन्नचित्त थी। दीप्ति, जो अपने साम्यवादी इत्यादि मित्रों के प्रभाव से कला के छद्म से लेकर हिन्दूवादियों के छद्म को उघाड़ने की कोशिश में सहमत है, ने शायद सुधा की बात में एक क्लिष्ट और वर्जित सत्य भाँपकर उसे तोड़ने की हिम्मत नहीं की। अभी-अभी वही तो कल हुई 'मजहब बचाओ' रैली में बुखारी मौलाना के भाषण का अंश उद्धृत कर सुना रही थी, जो कि सुधा पहले ही पढ़ चुकी थी। ''मुसलमानों पर शक किया जाता है कि वे हिन्दुस्तान से ज्यादा मदीना और मुन्नवरा से प्यार करते हैं...उन्हें हम बताना चाहते हैं कि मुसलमान आई.एस.आई. के एजेण्ट नहीं...इस देश के जर्रे-जर्रे से प्यार करनेवाले हैं...।''

''मैं पढ़ चुकी थी...।'' सुधा बोली। ''कौन बताए इस देश को कि इन शब्दों के प्रत्यय, उपसर्ग, निगूढ़तम अर्थ, छाया अर्थ, सिर्फ हम, सिर्फ हम समझते हैं। कोई मँजा हुआ राजनेता, देशभक्त, ज्ञानी, विश्लेषक, अन्वेषक इससे बेहतर इन शब्दों के माने नहीं समझ सकता।''

दीप्ति ने कौर चबाना जारी रखते हुए फिर जोरदार हामी में सिर हिलाया। भीतर कमरे से दौड़ती हुई सुधा की भानजी सिम्मी आयी और जल्द-अज़-जल्द अपना विचार फेंका, ''अगर देश के जर्रे-जर्रे से प्यार है तो 'देश बचाओ रैली' इसका नाम क्यों नहीं रखा 'मजहब बचाओ' क्यों? मजहब को क्या हो गया इनके? इनके मजहब ने तो हमें स्मृतियों का रोग दिया। ...स्मृतिरोगी हो गये हैं हम। कोई समीक्षक या विश्लेषक भारत के प्रचार-प्रसार तन्त्र में जो इनसे कहे कि तुम पाकिस्तान का साफ नाम न लेकर उसे खाली स्थान बनाते हो और मदीना-मुन्नवरा का नाम उस जगह पर भरकर अपने को नंगा होने से बचाते हो...ओ कट्टरपन्थ के अलमबरदारो!...जिस थाली में खाते हो, उसी में छेद करते हो...फरामोशो क्योंकि पता है तुम्हें तुम्हारे नंगे मन देखकर, कोई उसे अलफाज में बताने का साहस नहीं करेगा। क्योंकि पता है तुम्हें कि संविधान में ऐसा करने से रोक लगायी गयी है। क्योंकि पता है तुम्हें कि इस देश में फैशन हो गया है हिन्दुओं की भर्त्सना करना, और मुसलमानों की गलतियों की उपेक्षा करना और इस लिहाज से महात्मा गाँधी की तरह महामानव दिखना। ग्रस लिया है इस रोग ने इस देश के कवियों

को, कलाकारों को, बुद्धिजीवियों को, लेखकों को, जिन्हें कायदे से सच ही कहना है, चाहे वह कितना भी अपरूप हो, विरूप हो, रूपहीन हो, महीन हो, वर्जित हो...ओह।''

''वाह...भई...क्या बात कही...सिम्मी इतनी अक्लमन्द और चिन्तनशील हो गयी है...मैं जानती नहीं थी...यह तो डिस्कवरी है...वेल सैड...वेल सैड...यंग लेडी...कीप इट अप...वण्डरफुल...तुम्हारे हाथ में भट्टों की और देश की बागडोर हो...ब्रावो।'' दीप्ति दीप्त हो उठी थी। ''प्रामिसिंग जनरेशन आप बडिंग वीमेन...हुर्रा।'' फिर दीप्ति ने जोड़ा और सिम्मी की पीठ थपथपायी थी। सुधा प्रसन्नात्मा थी...सिम्मी की डिस्कवरी में।

''...मौसी, क्या आपको नहीं लगता है कि 'मजहब बचाओ' नाम रैली को देकर इन्होंने हिन्दुओं को भड़काया, उन्होंने खतरा उठाया है।'' सिम्मी का हौसला दीप्ति ने बुलन्द किया था और अतिरिक्त उत्साह में पानी पीकर वह वहीं कुर्सी लाकर दोनों मौसियों के साथ शमूलियत करने लगी।

''नहीं भई, हर हिन्दू वैयक्तिक है और हर मुसलमान सामुदायिक यानी समाज—यानी धर्म में महदूद समाज।''

''लेकिन हम जानते हैं न मौलाना बुखारी ने रिक्त स्थान में जिन दो शब्दों को भरा है, वहाँ वास्तव में पाकिस्तान है, जिसे बोलकर वे खतरा नहीं उठाएँगे अभी...और...यानी अक्लमन्दों के लिए इशारा काफी है।'' सुधा बोली।

''...मगर हम भट्टों के लिए भी इशारा काफी है...।'' सिम्मी ने कहा।

''मगर किस काम की यह अक्लमन्दी भला?''

''आखिर क्या किया जा सकता है?'' दीप्ति ने चिन्ता जाहिर की।

''कुछ नहीं...कुछ भी नहीं।'' उसने फिर इस पर जोर दिया।

''तुम्हें याद है दीप्ति, आयशा क्या कहा करती थी?''

''कि उसका दीन सबसे ऊँचा दीन है इस पूरे कायनात में।''

सुन वे तीनों हँस पड़ीं। सुधा क्षणभर के लिए अपनी सामूहिक हँसी के बारे में सोचने लगी। ''अपनी यातनाप्रद स्मृतियों में हास्य की खोज करना कितना मर्मान्तक है दीप्ति? है न।''

''यह सुनकर तब मेरे तन-बदन में आग लग गयी थी पर मैं बोली कुछ नहीं। क्योंकि मुझे उस समय यह ज्ञान नहीं था कि सभी धर्म अपने-अपने स्थान पर, अपने-अपने अवलम्बियों के लिए श्रेष्ठ होते हैं...पर संस्कार था कि मैं चुप रही थी। कुछ न बोली थी, अन्तरतम में यह सोचते हुए कि वस्तुतः मेरा धर्म ही श्रेष्ठ है...मैं...मात्र पाँचवीं कक्षा की बच्ची थी...दीप्ति और वह अधेड़ उम्र की औरत। और मैंने इस मुद्दे पर मौन रहना श्रेष्ठ समझा था।''

''और मेरे अन्दर भी यही प्रतिक्रिया हुई थी।'' दीप्ति की स्मृति थी।

''आयशा लेकिन शरीफ थी।'' भीतर से टी.वी. पर धारावाहिक देख रही भट्टिनी ऊँची आवाज में दख्लन्दोज़ हुई।

''उसकी सास बहुत खराब थी...है न माँ?'' दीप्ति ने भी ऊँची आवाज में कहकर माँ की दख्लन्दोज़ी का उत्तर दिया। मगर कुछ चुटकी लेते हुए।

''हाँ और क्या?'' माँ अपनी मैत्री के प्रति सत्यनिष्ठ थी।

''तभी वह अच्छी लगती थी तुम्हें माँ...क्योंकि वह तुम्हारे सामने अपनी सास और पति के अत्याचारों को सुनाती रहती थी...।'' दीप्ति फिर बोली।

''यह भी खूब है यार...जब सास के अत्याचार हों, पति के अत्याचार हों, धर्म के भेद मिटते हैं...हैं न?'' सुधा बोली थी।

भट्टिनी चुपचाप इन आधुनिकाओं, शिक्षिताओं की चुटकियों पर बस मुस्कराती रही और मौन रही...जैसे कह रही हो...शब्द पढ़े बिना हमने सुखमय समय व्यतीत किया जैसे-तैसे तुम्हारा सशब्द जीवन...क्या हुआ भई? तुम अपने समय का सबसे बड़ा प्रश्न बन चुकी हो ओ स्त्रियो!

''हाँ महोदया। लेकिन तुम्हें उनसे क्या लेना-देना। तुमने उसके शनील के फिरनों पर थूक-थूककर उनकी क्या हालत कर दी थी?'' सुधा ने फिर उसकी विजयगाथा को सामने लाया जिसे पता नहीं इस क्षण दीप्ति याद करना चाहती थी भी या नहीं।

''इतना ही तो सुकून भी है मेरे पास दीदी और यही मलाल भी है...क्या करूँ...यही भयावह द्वन्द्व है दीदी।''

''मैं समझती हूँ दीप्ति। पाप उसकी बेटियों ने किया और फल उस बेगुनाह ने भोगा।''

''इस तरह के पाप-पुण्य लेकिन हमारे साझा होते हैं मादाम! ज्यादा द्वन्द्वरत रहने की जरूरत नहीं...उन्हें मलाल नहीं हमें निकाल फेंकने का, तुम्हें मलाल है आयशा के फिरनों पर थूकने का...वाह...ग्रेट।''

फिर वहाँ एक स्मृति-गुम्फित दुःखमय मौन छा गया। किसी ने किसी से कुछ भी कहना श्रेयस्कर न समझा हो, ऐसा नहीं पर सभी को कोई हवा लहर की तरह पीछे धकेल गयी। हर बूँद को अपने अलग ढंग से।

❑❑

ऐसा नहीं था कि भट्टिनी सदा उदास रहती हो। लेकिन अधिकांश वह चिन्तामग्न ही रहती। उसके प्रसन्नचित्त होने के क्षण विरले ही होते थे। पर जब आयशा आती तो वह रंगीन तक हो उठती। वह उसकी प्रेम-सम्बन्धी परामर्शदाता भी

पायी गयी थी।

उस दिन धूप बेहद गुलाबी थी। और जब आयशा सीढ़ियाँ चढ़ती हुई पायी गयी तो भट्टिनी की बेटियाँ पंखमयी हो गयीं।

''आ गयी अब फुर्सत।'' भट्टिनी ने आयशा का उलाहना-भरा स्वागत करते हुए देखा कि आयशा के हाथ में नायलॉन की टोकरी भी है। और उस टोकरी में जरूर कुछ नफीस असबाब है जो आयशा भट्टिनी को दिखाने के लिए साथ लायी है! उसकी दोनों बेटियाँ भी टोकरी में क्या है—देखने को बेचैन हो गयीं।

आयशा बैठ गयी थी इत्मीनान से। ''ये कपड़े लायी हूँ...मायके से। गयी थी न। उस मरी ने अभी नहीं देखे। सोचा तुम्हें दिखाऊँ।'' कहते हुए वह तरतीबवार अपने नफीस तीन शनील के फिरन अलग-अलग शोख रंग के और अलग-अलग दिलकश जरी की कढ़ाई वाले खोलने लगी। जबर्दस्त, शानदार। उसी उसी रंग की सलवारें जिनके पहुँचे जरी की कढ़ाई से काढ़े। देखकर दीप्ति और सुधा आनन्द और ईर्ष्या से भर उठी थीं।

आयशा ने भट्टिनी से शुभकामनाएँ और कपड़ों की तारीफ के शब्द सुनते-सुनते कपड़ों की वापस तह लगानी शुरू की कि अचानक उसने अपना मुँह दो घुटनों के बीच नीचे किया। भट्टिनी समझ गयी कि आयशा भरसक रो पड़ी है और अपनी गीली आँखें छिपा रही है।

''रोओ मत आयशा। इसे झेलना है। जब तक सास है तब तक तो कम से कम।'' फिर एक विराम देते हुए आयशा के कन्धे पर हथेली रखकर बोली, ''तुम खुद उसके पास नहीं जाती...तुम प्रणय-निवेदन कर सकती हो। वह खुश हो जाएगा। माँ ने जो गुस्सा उसके भीतर तुम्हारे खिलाफ भरा है, भूल जाएगा...ज़रा नाचना पड़ता है औरत को...।''

आयशा भट्टिनी की तरफ कातर भाव से देखने लगी और बोली, ''पर ऐसी खतरनाक नौबत कभी नहीं आयी बाबी...इतने लम्बे वक्त तक उसने मुझे कभी नहीं छोड़ा...कभी भी नहीं...लगता है वह कहीं और...।''

शायद बच्चों की इर्द-गिर्द उपस्थिति के कारण वह पूरा वाक्य न बोल बाकी भट्टिनी के खुद समझने के लिए छोड़ दिया...और फिर एक खेप आँसुओं की उसकी आँखों में भर गयी।

''कल मेरा नुस्खा आजमाना। और कहीं उसका दिल है—यह तुम्हारा शक कोरा बकवास है। औरतें पेड़ों पर नहीं उगतीं आयशा, पर वह जिद निकाल रहा है।''

धूप निर्विघ्न थी, पर मुलायम। कम गर्म या उष्ण भर।

❑❑

दीप्ति और सुधा ने जब देखा कि उनकी माँ और आयशा आपस में कुछ वर्जित बातों में डूबी हैं तो दीवार फाँदकर आयशा के घर पहुँच गयीं। दरवाजे से जातीं तो आवाज हो जाती, माँ का ध्यान टूटकर उनकी तरफ जाता। माँ का उनपर सख्त पहरा था। अत: माँ आयशा से बातों में डूबी रहे, उसके लिए वे दीवार का इस्तेमाल करतीं।

कमरे में आयशा की दोनों बेटियाँ दिल और वही यानी दिलशाद और वहीदा अपनी गूँगी और लार टपकाती बहन महया से कुछ हँसतीं। और हर हँसी के साथ उसकी छटाँकभर लार टपक जाती।

''आइए आइए।'' दिल और वही ने दीप्ति और सुधा का स्वागत किया।

''माँ आपके यहाँ है न?'' दिल ने पूछा।

''हाँ हाँ...बातों में मस्त हैं।'' दोनों बहनों ने एक साथ कह दिया।

वे गुड़ियों के लालच से वहाँ जातीं। उनकी बिसाती की दुकान थी और बहुत दिलचस्प चीजों का कबाड़ उनकी अटारी पर पड़ा रहता। सबसे दिलचस्प उनमें टूटी गुड़ियाँ होती थीं।

''ऊपर चलें?'' दीप्ति ने दिल और वही के सामने एक प्रस्ताव या सुझाव रखा।

वे चारों महया को वहीं छोड़ अटारी पर चढ़ गयीं। टीन के छत से छनकर आ रही मीठी गर्मी से उनको अटारी का वातावरण जादुई-सा लगा। दीप्ति और सुधा कबाड़ में एक-एक खिलौना देखकर चमत्कृत होतीं। हर टूटा खिलौना उनको बेहद कीमती और बेहद काम का नजर आता। वे एक-एक को देखकर छोड़ देतीं एक तरफ। यह काम करते हुए सुधा के मन में कहीं माँ का वाक्य घुमड़ रहा था कि आयशा को पति, जो उससे रूठा है, से प्रणय-निवेदन करना चाहिए। और सोचती प्रणय वही जो शायद जब रात में उसकी नींद खुली है और उसने अपनी माँ को अपने पिता के संग हिलते-डुलते पाया है। इस पर दूर तक कल्पना करते हुए वह खिलौनों पर वापस लौटती।

''यह उठाएँ...इससे खेलेंगे।'' दोनों ने दिल और वही से अनुरोध किया। ये दो गुड़िया थीं, प्लास्टिक की थोड़ी भिन्नता के साथ निर्मित दोनों के वस्त्र साड़ी थी...दोनों के आभूषण इतने थे कि देवियाँ लगती थीं।

''हाँ, चलो ले लो...कोई बात नहीं।'' उन दोनों ने उदारता दिखायी। फिर वे चारों लगभग कूदते हुए नीचे आयीं।

''अब हमारे घर खेलें, आओ। तुम्हारी माँ भी वहीं है।''

चारों कूदते फाँदते ऊपर आयीं। खेल के लिए बैठते ही उन्होंने देखा कि आयशा की कपड़ों की टोकरी माँ ने अपने दो सन्दूकों के बीच में सुरक्षित रखने

के लिए धँसा के रखी थी। शायद आयशा वे कपड़े शाम को घर ले जाएगी जब अँधेरा होगा। और उन्हें यह अच्छा लगा। और वे खेलने लग गयीं। दुलहन...दुलहन।

''दुलहन...हाँ ठीक है।''

''लेकिन दूल्हा?''

''दूल्हा वहाँ था क्या कबाड़ में?'' वहीदा दिलशाद से बड़ी थी अतः उसने आज्ञा का स्वर निकाला।

''था...लाया होता।'' दिल ने जताया।

''चलो लेकर आते हैं जल्दी से।'' सुधा ने कहा।

''अच्छा ऽ ऽ ऽ...चल बैठ...सब हमारे घर से लाएगी।'' वहीदा ने कहा। सुधा सन्न और चुप।

''हमारे पास है नहीं।'' दीप्ति ने अनुनय से स्थिति को समझाना चाहा। उनमें उत्कट इच्छा थी खेलने की।

''हम क्या करें...एक चीज तो तुम लाओ तभी खेल होगा।''...गुड़ियों को ध्यान से देखते हुए दिल बोली।

खेल जो होने जा रहा था रुक गया। एक कटुता धीरे-धीरे फैलने लगी।

''और सुनो यह तुम्हारी हिन्दू भगवती है...।'' वहीदा ने कहा।

''यह तो गुड़िया है।'' सुधा ने उसे दुरुस्त करना चाहा।

''नहीं, यह भगवती है। गुड़िया भगवती...हम इसका ब्याह नहीं रचाएँगे। यह हिन्दू है काफिर है,...हम इसे पाखाने में फेंक देंगे...।'' दिलशाद ने पूरी फिजा में आग लगा दी और आतंक फैला दिया।

सुधा और दीप्ति दोनों उत्तेजित और चिन्तित हो उठीं। अचानक खेल-खेल में उन्हें सच्चा युद्ध लड़ने की नौबत आन पड़ी।

''ऐसा कहना पाप है...ऐसा नहीं कहना चाहिए...पाप माने गुनाह।''

दीप्ति ने उन्हें समझाने की शुरूआत की।

''हाँ, हम आपके अल्लाह, खुदा की इज्जत करते हैं, तुमको हमारे भगवान भगवती की इज्जत करनी चाहिए।''

''ऐ ऐसा नहीं। सबसे अजीम और ताकतवर हमारा खुदा है।'' दिलशाद बोली।

''हाँ, पर हमारा भगवान भी बड़ा और ताकतवर है, भगवती भी।'' सुधा ने फिर विनम्र होकर उसे समझाना चाहा।

''ऐ तेरे भगवान की माँ की...खुदा ही ताकतवर है...मैं तेरी भगवती को उस पर वार दूँगी...बलाय दूँगी। समझी।'' दिलशाद ने तकरार बढ़ायी।

दीप्ति तमतमायी...और बोली, ''ऐ मेरे भगवान को गाली मत दे, समझी...''

''ऐ भट्टिनी, क्या कर लेगी तू...'' और उठ कर दिलशाद ने दीप्ति के गाल पर जोरों का तमाचा मारा।

और सुधा से ताब न हो पायी। सामने छोटी बहन पर दिल को हाथ उठाते देख उसने लपक के दिलशाद के बाल जोर से खींचे ''...हमारे भगवान के लिए ऐसा कहती है...तू गायब...हो जाएगी...तू मर जाएगी। देखना तू नेस्तनाबूद हो जाएगी। हमारे शिवजी महाराज और पार्वती महारानी तुझे नाबूद करेंगी।''

''अरे जा, तू गायब हो जाएगी। जो खुदा को नहीं मानता...उनको कोढ़ होता है...तुझे कोढ़ हो जाएगा...तुम दोनों को कोढ़ हो जाएगा...देखना...माँ कहती है...।'' वहीदा बोल रही थी।

''चल फिर तेरी माँ के पास...।'' सुधा ने वहीदा की हथेली पकड़कर उसे खींचना चाहा। वातावरण में चीख-पुकार पैदा हुई थी। दीप्ति चुप-चुप रो रही थी।

परन्तु माँ के पास वहीदा जाने से डर गयी। उसने छोटी बहन को इशारा किया। दोनों गुड़ियाँ काँख में दबायीं और कूदते-फाँदते गायब हो गयीं।

माँ तक उनका शोर पहुँच चुका था। वह 'दिद्दा दिद्दा' की आवाजें लगा रही थी...पर दिद्दा और दीप्ति ने कोई उत्तर न दिया। वातावरण फिर शान्त हो गया तो वह पुकारना छोड़ आयशा के साथ फिर बातों में जुट गयीं।

❑❑

सुधा और दीप्ति सन्न थीं। लेकिन चुप बने रहना उनके लिए लाजिमी था। वर्ना उनकी माँ उनको डाँटती कि वे दीवार फाँदकर आयशा के घर क्यों गयीं और गुड़िया क्यों माँग लायीं। और आगे के लिए उनके साथ खेलने पर प्रतिबन्ध लगा देती। क्योंकि लड़ाई बनाये रखने से बड़ों का काम भले ही चलता हो पर बच्चों का नहीं चलता।

कुछ देर बाद दीप्ति और सुधा ने देखा कि आयशा जा रही है और भट्टिनी से कह रही है, ''बाबी, टोकरी फिलहाल यहीं रहने देती हूँ—कल आकर या शाम को ले जाऊँगी। कल वह चुड़ैल जब जा ही रही है।''

''ठीक है।'' भट्टिनी बोली।

❑❑

दीप्ति और सुधा में अपमान की तेज और भीषण आग थी, जिसके बारे में वे किसी को बता भी नहीं सकती थीं। इसलिए उन्हें क्रोध कहीं स्वयं पर भी था।

सन्ध्या होनेवाली है। करफली मुहल्ले की तंग गलीनुमा सड़क पर मस्जिद में निमाजियों का आगमन तेज हुआ। दिवा ग्वालिन के दही और दूध के विराट

बर्तन लगभग खाली होने को आये। और घर की अटारी, जो अँग्रेजी के एल आकार की थी, में सिर्फ रसोई के हिस्से में बत्ती थी...सड़क की तरफ नहीं, जहाँ ऐन सामने से थोड़ा-सा हटकर मस्जिद थी। यहाँ बिजली का न लगाना सुरक्षा के लिहाज से भी समझदारी का कदम था। इसलिए दूसरी तरफ जहाँ जलती बत्ती का छनता हुआ मद्धिम प्रकाश दूसरी तरफ तक सरक आता। वहीं एक बड़े से प्लेटफॉर्मनुमा ताक के नीचे भट्टिनी के दो सन्दूक थे, जिनके बीच में बड़े सम्मानित और सुरक्षित ढंग से भट्टिनी ने आयशा के फिरनों की टोकरी रखी थी। और देर शाम तक स्कूल का होमवर्क करने के बहाने सुधा और दीप्ति यहीं पर टिकी थीं। बीच-बीच में आज की घटना पर वे चिन्ता व्यक्त करती उसके मूल कारणों पर सोचने का प्रयत्न करतीं और प्राय: बदला लेने के बारे में भी सोचतीं।

"हमने भी कहा होता कि हम तुम्हारे अल्लाह को पाखाने में फेंक देंगी... ।" दीप्ति ने सुधा से कहा।

"उनका खुदा...अल्लाह हो तब न...हमारी भगवती जैसी गुड़िया तो उसके हाथ में थी। वह तुरन्त फेंक सकती थी। खतरा था।"

"हाँ ऽ ऽ।"

"लेकिन बोल तो सकती थीं हम।"

"नहीं, वह फिर भगवती को फेंक ही देती।"

"अरे वह भगवती नहीं थी, गुड़िया थी।"

"फिर हम डरे क्यों? हमें क्या हो गया। हम उससे बोलते कि वह भगवती नहीं गुड़िया है।"

"बोला तो था मैंने। वह मानने को तैयार नहीं थी।"

"हमें डरना नहीं चाहिए था। कहना था, करो जाकर क्या करना है। फेंको कहाँ फेंकनी है यह गुड़िया।" सुधा ने सुझाव दिया था।

"हमें पाप नहीं लगता?"

"कैसा पाप?"

"भगवती सोचती कि उसकी रक्षा नहीं कर पाये।"

"अरे पागल, जब वह भगवती थी ही नहीं... ।"

"खैर जो भी हो अगर अगली बार कभी कहीं ऐसा कुछ हुआ तो मैं बेखौफ होकर बोलूँगी जाकर फेंको... ।"

"नहीं, नहीं, ऐसा अपने मुँह से कहना भी नहीं। सोचना भी नहीं। यह तो हारना हुआ। सोचो, ऐसा आगे कभी कुछ होगा ही नहीं। न हमें उनके कबाड़खाने में रखी गुड़ियों से खेलने का लालच ही होगा।"

''माँ भी तो नहीं लाती न गुड़िया हमारे लिए कभी!'' दीप्ति ने निःश्वास फेंका।

❑❑

यह आयशा की टोकरी है। इसमें सुन्दर शनील के जरी की कढ़ाईदार तीन फिरन रखे हैं।

''देखें तो ये फिरन फिर से दीदी?'' दीप्ति ने कहा।

सुधा अपनी तख़्ती और कलम फेंककर उठ खड़ी हुई और टोकरी को दो सन्दूकों के बीच से छुड़ाकर अपनी गोदी में रख लिया। सुधा ने ही उनका एक-एक तह खोलना शुरू किया। दोनों ईर्ष्या से जल उठीं और दोनों की ईर्ष्या और अपमान आपस में बादलों की तरह टकराया।

''थू...थू...थू...थू...।'' एकाएक सुधा ने लाल रंग ज़री से दमकते फिरन पर थूकना शुरू किया।

''थू...थू...थू...थू।'' दीप्ति को भी बदले का यह तरीका बढ़िया लगा और उसने शाही-नीले रंग के चमचमाते फिरन को खोलकर उसकी तहों में थूकना शुरू कर दिया।

वे दोनों फिरनों और सलवारों की शानदार तहें खोलती गयीं और थूकती गयीं। उनका मुँह सूख गया। और थूक तक मुँह में नहीं बचा। दीप्ति उठकर एक दवाई की शीशी और थोड़ा पानी लायी और फिरनों में उँड़ेल दी। सुधा भी पांनी के घूँट मुँह में भर-भरकर फिर फिरनों में उँड़ेलने लगी। और अन्त में सुधा ने अपनी तख़्ती लिखने के लिए बनायी मुल्तानी मिट्टी की दवात भी फिरनों की तहों में डाल दी। अब फिरन बदरंग हो गयी। वे जल्दी हड़बड़ाते हुए अब कपड़ों को वापस तह लगाने लगीं। वापस टोकरी में कपड़ों को रख दिया। दोनों ने अपने-अपने मन में कहा—'अब देखो परिणाम!' लेकिन एक आग उनके भीतर कम हुई थी। एक कसक उनके बालमन में बनी हुई थी जिसकी जगह अब चोरी-छिपे ग्लानि ने ली थी। दिलशाद और वहीदा उनको बर्बर ढंग से अपमानित कर गयी थीं और सुधा और दीप्ति ने उसका बदला कायरों की तरह लिया। आयशा के सुन्दर फिरन बर्बाद करके। अच्छी आयशा के कपड़े। शरीफ आयशा के कपड़े। माँ की प्रिय मित्र के कपड़े। हे भगवान! अब वे दोनों चुप और दुगुनी चिन्तित थीं। अपमान कुछ-कुछ भूलकर उसकी जगह भय और ग्लानि ने ली थी कि जब आयशा कपड़े देखेगी, माँ से शिकायत करेगी, तब उनकी क्या हालत होगी। माँ सख़्त है। मौत के घाट भी उतार सकती है। बोरी में भरकर वितस्ता में फिंकवा सकती है। माँ अब के जिन्दा नहीं छोड़ेगी।

लेकिन अपने प्रभु का, भगवती का अपमान कैसे झेलतीं वे। पता नहीं यह बात वे माँ को समझा पाएँगी। उनके पास न रास्ते हैं न शब्द।

❑❑

प्राय: जब भट्टिनी के पास काम नहीं होता तो वह बच्चों के साथ हँस-खेल नहीं लेती। बेहद गम्भीर मुद्रा में आकर दूर आकाश की तरफ दृष्टि गड़ाकर देखती रहती, चुपचाप। नाराज-सी। सुधा और दीप्ति उसकी इस नाराजगी वाले रूप से त्रस्त हो उठतीं और सोचतीं कि वह अन्य माताओं के एकदम उलट क्या विचार करती है। किस पर नाराज़ है। क्या अपने होने पर? या तीन बेटियाँ होने पर? ऐसे क्षण विरले होते जब माँ उनको प्रसन्न और प्रफुल्ल मिलती। बाद में जब वे दोनों माँ के इस तरह सोचते रहने पर सोचतीं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचतीं कि माँ शायद यही सोच रही है कि इतनी लड़कियाँ क्यों पैदा की। इनको कैसे ठिकाने लगाए? या इनको कैसे बचाए? उन्हें जैसे अपने होश सँभालने के क्षण से ही यह बोध मिला था कि उन्हें इस संसार में लड़कियाँ बनकर नहीं आना चाहिए था, बल्कि लड़के। और इसकी सारी जिम्मेदारी चूँकि उनकी थी, अत: उसमें असफल रहने पर पूरा-का-पूरा अपराध भी उन्हीं का है। माँ जरूर इसीलिए प्रसन्न कम और उदास ज्यादातर रहती है। इसलिए जितना हो सके माँ से भयभीत रहें।

❑❑

वे दोनों अपने किये अपराध के परिणामों पर काँप रही थीं और परिणाम की विभिन्न कल्पनाएँ कर रही थीं। वे यह भी कभी-कभी कामना करती थीं कि हो सकता है कि आयशा ये कपड़े इसी तरह बिना देखे सन्दूक में रख दे, पर उनका मन कह रहा था कि ऐसी सम्भावना लगभग न के बराबर है। यदि ऐसा होगा तो यह चमत्कार होगा।

''मैं सुबह शिवजी पर रत्नदीप चढ़ाऊँगी।'' सुधा बोली।

''पैसे हैं?''

''पापा से लूँगी, कहूँगी चाहिए, पेंसिल लानी है।''

दीप्ति भी प्रार्थना करने लगी कि माँ की ऊँची आवाज सुनाई दी। दोनों के प्राण सूख गये। पर माँ कह रही थी कि कुण्डी खोले। दरवाजा कोई खटखटा रहा है। शायद आयशा आ गयी है। अब तो जिन्दगी की आशा छोड़ ही दें। पर सुधा के चेहरे पर नूर लौट आया, जब देखा कि दरवाजे पर लसभोय ने ठुकठुक लगा रखी थी। माँ उन्हें लसकाक कहती थी।

यह घर के वसिष्ठ थे। यहाँ हर घर का एक-एक वसिष्ठ हुआ करता है।

यानी पारिवारिक गुरु या पुरोहित। लसकाक पठित पण्डित है। श्रीमद्भगवद्गीता उनके कण्ठ में और अन्य अनेक स्तोत्र उनके जिह्वाग्र पर वास करते हैं। बुद्धि के इतने कुशाग्र कि थोड़े से अभिनय के साथ स्वस्थ मज़ाक करना उनका शगल था।

''नमस्कार।'' सुधा बोली। इस नमस्कार में एक गुप्त धन्यवाद भी था जो कि लसकाक को कभी पता नहीं चलेगा शायद। और लसकाक का हास्य शुरू हुआ। ''जीती रहो...क्या मैं उसी घर में आया हूँ...कौल साहब के घर में, जिनकी पत्नी उनके हुक्के जितनी लम्बी है?''

वे हँसते हुए ऊपर आये। सुधा ऊपर आकर दीप्ति के साथ आयशा के बदले लसकाक के आने का जश्न मनाने लगी। शायद उनको क्षमादान मिले कुदरत की तरफ से।

''जगद्वीपाकारं जलधिवलयं तेनकृतिमि... ।'' सस्वर गाते हुए लसकाक ऊपर पहुँच गये। माँ बहुत अभिभूत होती थी जब लसकाक कण्ठस्थ संस्कृत धाराप्रवाह सस्वर गाते...वे इसी पंक्ति को बार-बार दोहराते हुए ऊपर पहुँचे...इसके आगे नहीं बढ़े। शायद वह शिव से मुखातिब हों।

प्रणाम इत्यादि हुआ। कुछ राहत की साँस लीं सुधा और दीप्ति ने। वे अपने होमवर्क वाले कोने में दुबकी अपने दिल की धड़कनें सुन रही थीं और अपने-अपने मन में प्रतिज्ञा कर रही थीं कि भगवान अब की बार बचा ले। आइन्दा विवेक से काम लेंगी न कि क्रोध और प्रतिशोध से। वे अब समझ रही थीं कि प्रतिशोध कितना खतरनाक होता है, चाहे वह स्वयं भगवान के लिए ही क्यों न लिया जाए।

''भगवान हमारी रक्षा करेंगे, मुझे यकीन है।'' सुधा ने कहा।

''कैसे?'' और दीप्ति 'तथास्तु' की ध्वनि निकालते हुए गहरी आकांक्षा के साथ यथार्थवादी ही होना चाहती है।

''क्योंकि हमने भगवान के लिए ही तो प्रतिशोध लिया है।''

''यह बात जरूर है पर फिर भी पता नहीं क्या होगा हमारा। भगवान इतनी व्यावहारिकता में विश्वास नहीं रखता।''

सुधा के अन्तरतम में एक दृढ़ विश्वास था कि सच ही ईश्वर है, क्योंकि प्रायः उसे सच से एक आन्तरिक मुक्ति का प्रसाद मिला था। वह उसका स्वाद चख चुकी थी। मगर वह बड़ा विषैला था—मगर भीतर कहीं जिसे स्वयं वह नहीं थहा पाती, वहाँ पता नहीं क्यों कोई लहर-सी उठ दौड़ती है...और मुक्त करती है...यह मोक्ष भी उसकी समझ में नहीं आता पर...कुछ...तो कुछ तो होता है जरूर।

❑❑

माँझियों की काली-कलूटी लड़की भी चौथी कक्षा में उसके साथ बैठ गयी थी और उसे सताने लग गयी थी। उसने उसकी तख्ती को धक्का मारकर परे करते हुए कहा था, ''काली-कलूटी कहीं की।''

और जुबैदा रो-रोकर हलकान हो गयी थी। वह इतनी संवेदनशील कि काली-कलूटी कहने पर रो-रोकर जमीन-आसमान एक किये दे रही है...कि मैडम जब आएगी उस बच्चे की जान ही लेगी जिसने उसे रुलाया। कहीं सुधा के किसी मन को यह अच्छा भी लग रहा था कि वह कम-से-कम प्रतिक्रिया तो कर रही है, ज्यादातर बच्चे वहाँ संवेदनशून्य या यों ही लड़ते रहनेवाले होते हैं...।

पर जुबैदा रोये जा रही है। मैडम आयी तो पूछा, ''जुबैदा, क्यों रो रही हो?''

''मुझे काली-कलूटी कहा गया मैडम।'' परन्तु जुबैदा ने यह नहीं कहा कि काली-कलूटी उसे किसने कहा। वह डर रही थी क्योंकि सुधा मैडम की प्रिय शिष्या और स्कूल की 'लायक बच्ची' में शुमार थी।

''किसने कहा तुम्हें काली-कलूटी? नाम बताओ—मैं उसे चोटी से पकड़कर बाहर दफा कर दूँगी।'' मैडम ने कहा।

''बोलो, जुबैदा बोलो...।'' पर ज़ुबैदा नहीं बोल रही थी और चुप हो गयी थी।

सुधा को लगा कि अब हद हो गयी। वह डर रही है सच बताने से, उसका नाम बताने से। वह झटके से उठकर बोली, ''मैडम। यह गलती मैंने की है। मैंने ही मैडम।''

''तुमने?'' मैडम अवाक्-सी और जुबैदा भी आश्चर्यचकित।

''हाँ, मैडम। मैंने यह अपमान किया जुबैदा का क्योंकि यह अपनी तख्ती मेरे बस्ते पर चढ़ाये दे रही थी।''

''ठीक...मगर ये शब्द?''

''नहीं कहने चाहिए थे मैडम। कह दिये गलती की।''

मैडम उसे कई क्षणों तक देखती रही एकटक। और कुछ नहीं बोली। कुछ क्षण बाद जुबैदा के सिर पर हाथ फेरते हुए मैडम ने सान्त्वना की भाषा के साथ कहा, ''बैठ जाओ जुबैदा।''

''जुबैदा, मैं तुमसे माफी माँगती हूँ।'' सुधा बोली।

अगले दिन मैडम इस घटना का जिक्र अन्य अध्यापिकाओं से कर रही थी कि यह कोई विचित्र जीव है। बच्चे इसके उलट करते हैं।

इस घटना के बाद सुधा के मन में एक खोज का बीज पड़ गया था कि एक मनुष्य को जो सामान्यतया करना चाहिए उसका उलट करे तो सीधा होता है

क्या ? और जो नहीं करना चाहिए वह करे तो सामान्य बात नहीं। सुधा को उस दिन इस स्वीकार से एक नन्ही-सी मुक्ति मिली थी जो उसने रात को बिस्तर में लेटकर महसूस की थी और माँ से इस घटना का जिक्र किया था। माँ ने उसे अलग से बुरी तरह से डाँटा था, जुबैदा के लिए ऐसे वचनों का प्रयोग करने के लिए, पर जब वह चाहती थी, माँ उसके प्रायश्चित्त वाले पक्ष पर भी गौर करे, माँ ने साफ उपेक्षा की थी। बाद में चालीस वर्ष बाद सुधा ने जाना कि अच्छा ही किया कि माँ ने उस समय वैसा व्यवहार किया। सख्त व्यवहार। उससे उसका चिन्तन दृढ़तर से दृढ़तम हुआ। अपराध तो बने रहे पर प्रायश्चित्त भी दृढ़तर होते गये। निरानन्द और आनन्द का हेतु मनुष्य स्वयं होता है। दोनों उसे चाहिए। एक के बिना दूसरे की पहचान नहीं।

❑❑

वे दोनों उस तरफ के हिस्से में आयीं जहाँ कमरे के साथ रसोई थी। लसकाक अपनी पाकिस्तानी कबाइलियों की दास्तान पर आ जमे थे। लसकाक प्रायः अपनी इन्हीं स्मृतियों से दो-चार रहते थे। मानो स्मृतियों का एक शिलाखण्ड तोड़कर अन्त में उसमें से किसी माणिक्य, किसी हीरे या नीलम को पाने की जिद और अटल विश्वास हो उसे।

''जब कबाइली बारामूला पहुँच गये तो हम जान गये कि भूकम्प यहाँ तक आ पहुँचा। पृथ्वी चप्पा-चप्पा पाँवों के नीचे से खिसकती चली जाती थी।'' लसकाक की किस्सागोई ठीकठाक मगर किस्सा बेहद हृदय-विदारक था—''मनकाक मेरे पिता यानी मनभोय या मनहरनाथ जाडू ने कहा, 'बेटा अशर्फियाँ एक पोटली में बाँधकर जमीन में गाड़ दे और सारे सिक्के जो हैं, उन्हें कुएँ में फेंक आ।' मैंने यह काम तन्मयता से रात को किया। अल्लसुबह हमें घर छोड़कर श्रीनगर शरणार्थी शिविर में जाना था। औरतें बेहद असुरक्षित थीं...उन्होंने बारामूला में एक रिहायशी कैम्प बनाया था। जहाँ वे औरतों को उनके मर्दों को मौत के घाट उतारने के बाद कयाम कराते, और उनसे आनन्दित भी होते। विरोध करने वाली को हश्र के बाद जमीन में गाड़ देते या टुकड़े-टुकड़े कर फेंक देते। हमारे घर में कुआँ था जिसमें से आसपास के इलाके के लोग पानी भरते। मनकाक उसे साफ-सुथरा रखवाते। मनकाक के पास दौलत की कोई कमी नहीं थी। ढाके की मलमल की चादर कन्धों पर रखना। कराची के लट्ठे का फिरन गर्मियों में पहनना। कण्डीदार लोई का फिरन सर्दियों में और सफाझक केसरी साफा। जैसे कोई महाराज हों।

''सो मैंने एक चादर की छोर में कागजी रुपये बाँधकर वट्टू के बीचोंबीच

गड्ढा खोदकर उसमें डाल दिया। और तमाम सिक्के कुएँ में डाल आया। तब टाठा (मनकाक) ने कन्धे पर एक पोटली उठाकर मेरे साथ श्रीनगर का रुख किया। मेरी बुआ और चाची को पहले ही रवाना कर चुके थे हम श्रीनगर के लिए।

"जब हम उस छोर पर पहुँच गये जो अन्तिम होता है और दूसरे गाँव का आरम्भ होता है तो हमने देखा भयावह दिखने वाले पठान विकराल चेहरे और काया वाले, कन्धों पर बन्दूकें लिये, आगे गाँव की तरफ बढ़ रहे हैं। हमारी जान निकल गयी। टाठा ने अब मुझे बचाने में अपनी अक्ल खर्च की। वह चाहते थे कि मैं बचूँ। अपनी आस तो उसने छोड़ ही दी थी।"

कमरे में सन्नाटा था। सब दहशत से भरे जा रहे थे। दरअसल लसकाक की इस ट्रैजिक कथा के साथ यात्रा कर रहे थे और भयंकर रूप से जिज्ञासु थे कि फिर क्या हुआ। जबकि हो चुका था। पर इस प्रकार का अतीत बराबर जीवितों के साथ चिपका रहता है, मुड़-मुड़कर आँख मारता रहता है, और आँख दिखाता रहता है।

"टाठा ढेर हो चुका था। उसकी टाँगें उसके प्राणों के निकलने के साथ फड़फड़ा रही थीं। मैं दौड़कर सईदों के बाग में एक पेड़ की खोखल में लगभग घुसकर, छिप गया था। और भयावह ढंग से रो रहा था। शायद टाठा यही एक सुकून लेकर स्वर्ग सिधार गये कि मैं बच गया। जब वे नोकदार पैजार पहने हुए आततायी आगे बढ़े तो मैं शून्य में धाड़ें मार-मार कर रोया और टाठा-टाठा पुकारता रहा...शायद मैं उसके बाद बेहोश हो गया होऊँगा।"

भट्टिनी खोस में चाय ले आयी। लसकाक ने कथा को अस्थायी विराम दिया। फिरन के बाजू को दुगनाया और चाय का खोस और दूसरे बाजू से कुलचा पकड़कर एक चुस्की ली। और कथा जारी रखने के भाव को उतावलेपन के साथ मुख पर रखकर आगे कुलचे को निगलते हुए चाय के साथ अतीत के विष को उगलता गया। इतनी भयावह स्मृतियों का विष यहाँ हर जीवित ने अपने मन से लेकर आकण्ठ रोके रखा है। पूरा सुनाते हैं...फिर सुनाते हैं...भूल जाते हैं कि सुना चुके हैं...कई बार...फिर सुनाते हैं...यह खाली नहीं होता। पूरा-का-पूरा भरा रहता है "पूर्णस्य पूर्णं आदाय पूर्णमेव अवशिष्यते।" यह सत्य इस घर के बच्चों को, इस प्रान्त के नवागन्तुकों को अपनी-अपनी बारी से पता चला।

"मैंने जब आँख खोली, मैं नींद से जागा था। मैंने देखा कि मैं आफताब चाचा के साथ हूँ। और उसके घर के लोग भी कोने में दुबके पड़े हैं। सबके मुख मलिन और उदास हैं। कपड़े फटे और गन्दे हैं। चेहरे विदीर्ण और मलिन हैं। नीचे कहीं टाट और कहीं दरी बिछी है और कमरा खचाखच लोगों से भरा पड़ा है। विभिन्न गाँव के लोगों से। कुछ स्त्रियाँ रो रही थीं और कुछ पुरुष भी सुबक रहे

थे। और कुछ स्त्रियाँ और पुरुष रोते हुओं को ढाढस बँधा रहे थे। कुछ बच्चे इसी हाल में खेल भी रहे थे। एक आदमी अपने हाथ में रजिस्टर लिये बारी-बारी से सबके नाम लिखता जा रहा था। मैं तो पहले कुछ क्षणों के लिए कुछ समझ न पाया। और दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा। टाठा को ढूँढ़ने लगा...टाठा टाठा...पुकारों से मैंने आसमान सिर पर उठा लिया।

"आफताब जू मेरे चाचा मुझे सान्त्वना देने की कोशिश कर रहे थे। समझा रहे थे कि टाठा स्वर्ग लोक सिधार गये हैं। अब वह वापस नहीं आएँगे। पर चाची और बुआ को आफताब जू ने गणपतियार और नयी सड़क वाले शरणार्थी शिविर बनी धर्मशालाओं में खूब ढूँढ़ा था, पर नहीं मिलीं। सारी रजिस्टरें भी जँचवायीं। पर कोई सुराग नहीं। फिर पता चला कि श्रीनगर में कुछ विद्यालयों को भी शरणार्थी शिविरों में बदल दिया गया है। स्कूलों की छुट्टी की गयी है। आफताब जू ने एक पोटली से कुलचे निकाले और एक मुझे देते हुए कहा—'खाओ।' मैं क्या खाता?...मैं सारी बात समझ नहीं पा रहा था। भूख मुझे थी पर अनिश्चय और भय के मारे मैं खा नहीं पा रहा था। मैंने मना किया। आफताब जू ने समझाया—'बेटा आपातकाल है। कुछ खा लो। बच गये हो तो अब खुद को बचा लो। खाना तो है आखिर। यहाँ सब दुःख के मारे हैं...पर सब खा भी रहे हैं।' गम में भूख भी ज़ोरों की लगती है। यह मैंने तभी जाना था। आखिर जिन्दा रहना है—आफताब जू बोले थे—'देखो यहाँ हर किसी का कोई-न-कोई मारा गया है। तुम कुलचा खा लो। हम काठलेश्वर स्कूल वाले शरणार्थी शिविर में जाकर बुआ और चाची को ढूँढेंगे।'

"मैंने कुलचे का एक कौर खाने की कोशिश के साथ उसके फिरन को पकड़ कर उसे चाची और बुआ की खोज में फौरन निकल पड़ने के लिए मजबूर किया। 'चलो फिर, कहाँ है वह शिविर? कहाँ हैं चाची और बुआ?' वे दोनों स्त्रियाँ विधवा थीं और टाठा रूपी चिनार की छाया में अपना वैधव्य व्यतीत कर रही थीं। वह छाया हट गयी है, उन्हें पता भी न था।" बहुत देर से लसकाक ने चाय की एक चुस्की भी न ली थी। भट्टिनी ने देखा और समझ गयी कि विषैले अतीत में आकण्ठ डूब गये हैं लसकाक।

"लसकाक...चाय भी पीजिए...ठण्डी हो रही है...अब यह सब हो ही चुका हैं...क्या करें...।"

तुरन्त लसकाक ने चाय की चुस्की भी ली और कुलचे का कौर भी खाया। मानो वह गा रहे हों—'रोएँगे हम हज़ार बार कोई हमें सताए क्यों...दिल ही तो है न संगे खिश्त...दर्द से भर न आए क्यों...?' और सुधा आगे की यह हृदय-विचारक कथा सुनने को बेचैन हो रही थी। सुधा सोच रही थी कि माँ को पता

नहीं क्या जरूरत पड़ी लसकाक का ध्यान चाय की तरफ ले जाने की।

''और उसके बाद।'' सुधा से अब रहा नहीं गया।

''फिर बेटा। आफताब जू ने एक ढूँढ़ फिर मारी पूरी धर्मशाला में फिर काठलेश्वर जाने के लिए बाहर आकर हमने ताँगा लिया।

''मगर मुझे याद है। जैसे कल शाम का भोजन। उस ताँगेवाले ने हमसे एक पैसा भी नहीं लिया।'' वह उस मुसलमान ताँगेवाले के प्रति कृतज्ञ था आज भी। आजीवन।

''क्यों नहीं लिये पैसे?'' फिर सुधा ने पूछा।

''क्योंकि हम शरणार्थी थे और अपने सम्प्रदाय के कुकृत्य की ग्लानि उसमें थी। वह जरूर कोई सन्त था।''

सुधा लसकाक का मुँह हैरानी से ताकने लगी।

''हाँ, वह मुसलमान था। सभी मुसलमान एक जैसे थोड़े होते हैं। नेक भी तो होते हैं मुसलमान। कुछ दु:ख को आत्मौपमेन देखते हैं...कुछ सोचते हैं पण्डित मरे, वे माल लूटें। पण्डित भागे वे माल हड़पें। पण्डित मरे वे जिएँ। पर वह ताँगेवाला ऐसा नहीं था। और रास्ते-भर पाकिस्तानी कबाइलियों को उसने खूँखार गालियाँ दी थी...मेरे दिल की गहराइयों में वह आज भी विराजमान है।

''काठलेश्वर में घुसते ही मेरा दिल और तेज़ी से धड़का। मन में कई सवाल उठ खड़े हुए। अगर चाची और बुआ नहीं मिलीं? क्या उन्हें टाठा की खबर है? सारे श्रीनगर में अफरा-तफरी थी। सड़कों पर शरणार्थियों की भीड़ थी। अफवाहें तेज थीं। दिशाओं में मानो राख उड़ रही थी। काठलेश्वर बहुत बड़ा भवन था। बड़े-बड़े हालों में लोग अँटे पड़े थे। दरअसल पाकिस्तानी कबाइलियों ने गाँव के गाँव उजाड़े थे। उत्तर कश्मीर के सभी गाँव हिन्दुओं से खाली हो चुके थे। कथाएँ उनकी अनन्त थीं। रुदन अन्तरिक्ष में जहाँ ध्वनि-भण्डार है वहाँ पहुँच-पहुँचकर भण्डार हो रहा था।

''आफताब जू में घोर चिन्ता थी। वह एक-एक चेहरे को बड़ी ही धँसी हुई दृष्टि से देख रहे थे। यहाँ भी कुछ स्त्रियाँ रो रही थीं। कुछ पुरुष अपने फिरनों को लम्बा ओढ़कर सोये पड़े थे। कुछ बच्चे भी नींद और थकान में गुम थे। कुछ कुलचे और कहवा पी रहे थे, जो सुधार समिति ने बाँटने का इन्तजाम किया था। कुछ लोग दरियाँ माँग रहे थे और कुछ कम्बल माँग रहे थे। मैं भी हर स्त्री के चेहरे को आँखें गड़ा-गड़ा कर देखता। पर बुआ और चाची कोई न होती। कोई न थी। स्थिति दारुण होती जा रही थी।''

दरवाजे पर फिर ठुकठुक हुई। सबका ध्यान भंग हुआ। सब वर्तमान में लौटे। अगर आयशा हुई...तो? तो क्या? सुने जरा कबाइलियों ने किस बेरहमी से

लसकाक के टाठा की हत्या की। बेचारे की चाची और बुआ दोनों विधवाएँ कैसे लापता हैं। किसी भी शरणार्थी शिविर में नहीं मिल रहीं। लसकाक अनाथ हो गया, यतीम। उस हिसाब से उन दोनों ने तो उसका खास अहित नहीं किया है। बस कुछ मखमल के कपड़े गन्दे किये हैं जिन्हें धोकर साफ किया जा सकता है। किसी को जान से तो नहीं मार डाला न। उनमें कुछ साहस आ चुका था। मानो उन्होंने तुच्छ ही सही कबाइलियों के महागदर का बदला लिया हो।

❑❑

पर दरवाजे पर यह जिगरी थी। पण्डित पूरणकौल की मौसेरी बहन। यानी सुधा की बुआ और भट्टिनी की ननद। यह प्रसन्नता की बात थी। 'शायद आयशा ने बिना देखे ही अपने फिरन सन्दूक में रख दिये हैं। शायद।' यह आशापूर्ण सोच उन दोनों में हर बार कौंध रही थी।

सन्ध्या की वेला निकट आ रही थी। लसकाक को हब्बाकदल पहुँचना था। इधर जिगरी के आने से विषय-वस्तु और वातावरण की सुगन्ध ही बदल गयी थी। सब विषैले अतीत से सुखद समागम की ओर भागने के लिए तुले थे। लसकाक ने चाय खत्म कर खोस रखते हुए उठने का उपक्रम किया और 'जगद्वीपाकारं' का गायन भी शुरू करते हुए दहलीज से ऊँची आवाज में बोले, "सौभाग्यवती भट्टिनी! शुक्रवार को अष्टमी का व्रत है। बस यही बताने आया था।"

"अच्छा, अच्छा। अष्टमी शुक्र को है...ठीक है...जल्दी आइएगा। क्षीर का प्रसाद तैयार रखूँगी...परार्पण करना है न?"

लसकाक इन तिथियों पर नैवेद्य की पूजा कर यजमानों से यथाशक्ति दक्षिणा प्राप्त कर परिवार का भरण-पोषण करता है।

और सीढ़ियाँ उतरते-उतरते लसकाक ने अपने गायन के बोल बदले। संस्कृत से कश्मीरी पर आ गये, "रंग-सदुरस मंज़ फोटुमुत इ सोरुय ज़गत ज़न् रंग् किन्य सुर्ख़ी सान।..." सुधा लसकाक के पीछे-पीछे उतर रही थी ताकि कुण्डी लगा ले दरवाज़े की...तब लसकाक मुड़कर और ठहरकर सुधा के सिर पर हाथ रखकर बोले, "यानी यह सारा संसार हे माँ! तेरे कारण शक्ति के सुर्ख रंग में डूब चुका है...इसीलिए ब्रह्माण्ड का रंग लाल हो उठा है...समझी हाँ।" और चल दिये...सुधा सोच रही थी उसकी बुआ और चाची के बारे में...उससे उत्सुकता रोकी न गयी—"बुआ और चाची मिली थीं क्या?"

"ओ तुम उसी आलम में हो अभी। अष्टमी को आकर पूरी कथा सुनाऊँगा। कितनी बार तो सुना चुका हूँ।" कहकर वह तेजी से चले गये। सुधा सोच रही

थी कि टाठा के मरने के बाद...आज तक लसकाक किसके बूते से बने हुए हैं और गीत भी गा रहे हैं...संस्कृत में...अरे?

❑❑

गहन काला तथा गहन प्रकाश मिलकर सुर्ख बनता है। लसकाक चले गये। सुधा के मन में कुछ रंगत काली-काली अपनी दुनिया की भरकर। उसके तईं तो लसकाक गये...बुआ और चाची को ढूँढ़ने काठलेश्वर के शरणार्थी शिविर में...काठलेश्वर में पड़े हैं शरणार्थी असंख्य और वे बैठे हैं...निष्क्रिय...कुछ कर ही नहीं रहा कोई...कितनी सदियों से यहाँ लसकाक अपनी बुआ और चाची की खोज में हैं...टाठा को तड़पते हुए प्राण त्याग करते हुए देख रहे हैं...पिता के जिस्म से खून के फव्वारे उठते हुए देखते हैं...कितनी ही बार...अन्तिम बार।

❑❑

लसकाक को बुआ और चाची अगले दिन शाम को बेर के पेड़ों के पास वाले प्राइमरी स्कूल में मिली थीं। वहाँ भी शरणार्थी शिविर बनाया गया था।

तुरन्त बारामूला में शेरवानी के भारत-प्रेम और बलिदान से कबाइलियों का मंसूबा असफल हुआ था। भारतीय फौजें आगे बढ़ी थीं...कुछ कबाइली गदर करते-करते शालटेंग तक आन पहुँचे थे जहाँ भारतीय सेना ने उन्हें घेरकर वहीं उनकी सामूहिक कब्र बना दी थी। भट्टिनी प्रायः इस प्रसंग पर बात छिड़ते ही कहती-शालटेंग की दुर्गन्ध लगभग दो वर्षों तक इस शहर को दूर-दूर तक परेशान करती रही और असंख्य चीलों, गिद्धों और कौओं ने उधर बहुत देर तक अपना स्थायी निवास बना लिया था। जब तक कि सरकार ने जंगलात का बहुत बड़ा महकमा और भण्डार वहाँ न खोला, तब तक वह लगभग वर्जित क्षेत्र बन चुका था और यों ही उस तरफ किसी के जाने की हिम्मत नहीं होती।

लसकाक और अन्य शरणार्थी लगभग बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस दिनों के बाद अपने-अपने घरों को वापस रवाना कर दिये गये थे। वह सपरिवार आफताब जू के साथ लौटे थे...और दूर से ही दिखाई दिया था कि अभी भी धुएँ की लम्बी-लम्बी लकीरें ऊर्ध्वमुखी और जीवन्त हैं। जहाँ-तहाँ अधजली लकड़ियाँ फैली हैं। मकानों की अधटूटी दीवारें जहाँ-तहाँ खड़ी हैं। गाँव का भूगोल नया है। गाँव क्या है घरों की चिता जला रहा श्मशान है। छत नाम की चीज कहीं दिखाई ही नहीं दे रही। जहाँ-जहाँ जिस-जिसने अपनी कुछ मूल्यवान चीजें गाड़ रखी थीं वे आशा और चिन्ता में मरे जा रहे थे और लसकाक के दिमाग में भी कुएँ में फेंकी रेज़गारी और कमरे में दबायी पोटली बसी हुई थी। और वह अपने और पोटली के बीच

की दूरी जल्द-से-जल्द तय करना चाहता था।

कुछ लोग जिन्दगी भर तोतो चान की तरह उस जगह की शिनाख्त ही नहीं कर पाये जहाँ उन्होंने पोटलियाँ दबा रखी थीं। वर्षों तक वे जमीन खोदते रहे...पर निरर्थक। लसकाक को भी कभी आज तक अपनी पोटली नहीं मिली। और जब कुएँ में रेज़गारी के लिए जाल फेंका तो वहाँ जाल का डण्डा किसी लाश से टकराता रहा। लसकाक ने शरणार्थियों को मिली घर बनाने की लकड़ी से अपना घर दूसरी तरफ सेबों के बाग में बनाया था...कुएँ से दूर...झोंपड़ीनुमा।

❑❑

सरकार ने शरणार्थियों के लिए गाड़ियों का इन्तजाम कर रखा था। पर उन दिनों गाड़ियाँ थीं ही कितनी। अत: बेसब्री और शरणार्थी जीवन की यातनाओं से मुक्ति पाने के लिए लोग ताँगों में अपने-अपने घरों को रवाना हुए थे। हालाँकि वहाँ घर नहीं थे, पर ज़मीन थी। आफताब जू ने भी ताँगा किया था। क्योंकि ताँगे में सब परिवार जन आते उनके। ताँगा तीन दिनों में बारामूला पहुँचा था। तीनों दिन दहशत और यातना के चरम के थे। आफताब जू सोच रहे थे कि गाँव पहुँच पहले किसी तरह टाठा का श्राद्ध और पिण्डदान सम्पन्न करा दें।

लसकाक सोच रहे थे अब नयी जिन्दगी देखनी है। कैसे शुरू होती है। पूरी अक्लमन्दी और होशियारी के साथ। ताकि ऐसा फिर कभी न हो। पाकिस्तान से कबाइली फिर कभी न आएँ। शायद यही बात हर मस्तिष्क में थी। एक विजय भावना भी कि चलो अपने घरों में वापस तो लौट आये। जो स्त्रियाँ अकस्मात विधवा हो गयीं...समय के बहाव के साथ वैधव्य प्राप्ति की दारुण घटना के क्षण का अक्षुण्ण बहाव बना रहा उनके साथ...बहता रहेगा...पता नहीं कितनी दूर-दूर तक मृत्यु पर्यन्त। जिन स्त्रियों के साथ बलात्कार हुआ...हवा में उनकी व्यथा डोलती रही, रहेगी बहुत-बहुत देर तक, दूर तक बहने वाले वायु-गट्ठरों में। जो यतीम हुए अपने अन्तकाल तक प्रश्नमय रहेंगे स्वयं से...कि क्यों भला वे यतीम किये गये...क्योंकि भट्ट थे। जैसे लसकाक। जो बच्चों को प्राय: कहते रहते—''बच्चो! मैं तुम्हें गरीबी न देता। मैं भी था किसी शहंशाह का बेटा। मगर काश। भट्ट न होता बच्चो! तुम कुछ और ही होते अगर...टाठा...।'' इस तरह बच्चे इस हुए जुल्म के लिए दाँत भींचते जो होने से रोकने के लिए वे इस धरती पर तब उपस्थित भी नहीं थे...कहाँ-कहाँ तक पसरती है विवशता त्रासदी की प्रभु।

❑❑

जिगरी बातों में रम चुकी थी। पर सुधा ने सुना कि लसकाक का ही सन्दर्भ था।

"कबाइली लूट की बात दोहरा रहा था। सैकड़ों बार दोहरा चुका है।" भट्टिनी ने कहा। मनुष्य सुख से ज्यादा दुख को पुनः-पुनः जीता है। शायद उससे नजरें मिलाये रख सकने का अपना दम दिखाता रहता है और उसको न आने देने के लिए भी अपनी चौकसी दिखाता हो। वर्ना लसकाक, जिसने सैकड़ों बार कबाइली दास्तान बतायी है, क्यों कर इस मौके पर भी बताता। शायद उसके पास जीवन का ले-देकर इतना ही लूब्बो-लुबाब था।

"है भी कबाइली हमले का किस्सा ऐसा ही। हर एक के पास अपना अलग-अलग।" जिगरी बोली।

"तुमने भी देखे हैं कबाइली जिगरी?" सुधा ने पूछा...और दीप्ति भी उत्सुक नजरें जिगरी के चेहरे पर गड़ाये वहीं बनी रही, मानो कह रही हो कि यह प्रश्न मेरी ओर से भी है।

"ओ ऽ ऽ...। पूछो मत। बुरी तरह। बहुत ही बुरी तरह। हमें सूचना मिल गयी थी कि वे गाँव-के-गाँव तहस-नहस करते हुए आ रहे हैं...भागो। उनके पहुँचने से पहले ही गाँव के कुछ बड़े-बूढ़े युवतियों और महिलाओं को लेकर भाग गये। और हम भागते-भागते द्यलिना की एक सराय में रुक गये। वहाँ सुन्नी कम थे और शिया ज्यादा। सबने कहा यहाँ खतरा कम है और कहा कि यहाँ कबाइली गदर करके निकल चुके हैं। स्थानीय लोगों ने हमें चावल दिये और एक भागे हुए हिन्दू घर के बर्तन। हमने एक जगह मिट्टी खोदी और चूल्हा बनाया। और एक मिट्टी की हाँड़ी में मूँग चढ़ाया जो वहाँ के ही किसी कृपालु मुसलमान ने दी थी। और दूसरी पीतल की देग में चावल। हम भूख से पागल हुए जा रहे थे। और उस गाँव के उन कुछ मुसलमानों की यह भावना देखकर हम विभोर हो उठे और समझने लगे कि शायद आपदा टल गयी है और हम बच गये। मैं और मुहल्ले की एक और लड़की चूनी मेरे साथ खाना बनाने में जुट गयी थी। चावल भी उबल रहे थे और दाल भी...ज्यादा-से-ज्यादा सब लोग आधे घण्टे के अन्दर-अन्दर खाना खाते। मैंने एक लम्बा फिरन पहन रखा था फलालेन का, सिर पर एक स्कार्फ बाँध रखा था। मेरी शादी के लिए दूल्हा ढूँढ़ा जा रहा था... अब समझ लो मैं कितनी जवान थी। मैं इस काम में जुटी परेशान थी...टाँगें छिल रही थीं। जल्दी, घबराहट, भूख, मृत्यु का भय, खाना बनाने और खाने और परोसने के लिए बर्तनों की कमी...सब कुछ जैसे मैं ही ढो रही थी...मैं...थी।" उसने भट्टिनी को एक इंगित से कहा कि वह ऋतुमती थी। और भट्टिनी ने ध्वनिहीन ढंग से सि हिलाकर कहा—'अच्छा समझ गयी।'

और हुआ क्या कि चावल और दाल तड़-तड़-तड़ उबल रहे थे कि भयानक आवाजें आने लगीं। आ गये। आ गये। वे...आ गये... स्थानीय लोग हल्ला मचाते

हुए आ गये...और दहशत के मारे फिर वहाँ से सरपट भाग गये...भागते-भागते...सिर्फ भागते ही रहे।

"दाल और चावल?" भट्टिनी की दोनों बेटियों ने मारक जिज्ञासा की।

"बस उबलते रहे। उसके बाद आज तक पता नहीं क्या हुआ उस दाल और चावल का। बाद में पता चला कि किसी स्थानीय मुसलमान ने ही उन्हें हमारे वहाँ होने की सूचना दी थी, उन्होंने एक टोली वापस भेज दी थी।"

"ओह! लेकिन आप तो कह रही थीं कि उन्होंने ही आपको शरण और आश्रय यहाँ तक कि खाना पकाने का सामान तक दिया।"

"हाँ, पर सब एक जैसे थोड़े होते हैं...था कोई एक परिवार भला...बाकी...कोई एक कट्टर था उनमें से, सोचा क्यों बच गये वे काफिर...बिना गदर।

"हममें से एक राजदान परिवार की लड़की को वे लोग उठाकर ले गये। तमाम कोशिशों के बावजूद आज तक उसका कोई सुराग नहीं मिला। उसकी लाश भी नहीं मिली। उसके शरीर के टुकड़े भी शायद कहीं नहीं मिले। क्या हुआ उसकी देह का, क्या हुआ उसके साथ, आखिरकार कहाँ गयी वह...आज तक पता न चल पाया। अहँ...यह बड़ा असहनीय है...पर लोग भागते हुए, गोलियाँ खाते हुए...ज़ख्मी होते हुए...बच गये और खुहुन गाँव पहुँच गये। उसके बाद हमने एक अद्भुत चीज देखी। लम्बे-लम्बे कद वाले चौड़े-चौड़े कन्धों वाले खाकी वर्दी पहने, बन्दूकें लिये, ज्वलन्त आँखों वाले सरदार आगे बढ़ते जा रहे थे...और हमें रोककर उन्होंने कहा—'जय हिन्द...डरने की बात नहीं अब...हम अब आ गये हैं। दुश्मन को भूनते जा रहे हैं...आप आज रात यहीं रुकिए...फिलहाल अपने गाँव में घुसिए मत...हम जब तक न इशारा करें...' और वह रात कयामत की रात थी भट्टिनी...उस रात की दास्तान ही अलग है...एक पूरी किताब उस रात पर लिखी जा सकती है...।"

"तो लिखो न जिगरी...।" दीप्ति ने कहा।

"क्या लिखूँ...सिर अपना...जब कोई लफ्ज न पढ़ना आता न लिखना...किताब लिखूँगी...लो जी...पर है...मेरे पा़स है किताब वाली सारी कथा है...एक-एक के पास...पर कौन लिखे भई, खैर! हमने वह रात वहाँ काटी। भूख के मारे बच्चे रो-रो कर बेहाल हो रहे थे। बड़े उस पर भी प्राण दिये जा रहे थे। पर जैसा कि भारतीय फौज के उन सरदारों ने कहा था वैसा करना जरूरी था क्योंकि हम जीवन और घर के सपने किसी भी सूरत में देखना नहीं छोड़ रहे थे।

समाँ विकराल शरद की शीत और उदास रात का था। यह कोई गाँव नहीं था। खेत थे। द्यलिना गाँव के ग्रामीणों के धान के खेत। फसल कटे खाली निचाट,

उदास खेत। फसल उस साल जबर्दस्त बनी थी। अक्सर लुटेरे इसी मौसम में आया करते थे। पाकिस्तानी कबाइली भी आये, शरद की उन रातों, खूनी रातों में।''

❑❑

दरवाजे की कुण्डी खोलने इस बार टॉठी उतरी। और आयशा दाखिल हो गयी। सुधा और दीप्ति के मन में समायी सोयी दहशत खूँखार आँखों से उठ गयी। अब इसमें कोई सन्देह नहीं था कि आयशा इस समय क्यों आयी है। क्या करने आयी है। 'शायद जिगरी से मिलने आयी हो।' सुधा ने दरअसल दूरस्थ कामना की। ठीक उसी व्यक्ति की तरह जिसकी फाँसी के तमाम जरूरी इन्तजाम हो चुके हों, पर फिर भी अन्तिम क्षण तक वह सोचे कि 'हो सकता है बच ही जाए कोई बड़ी बात नहीं।' पर उसने खिड़की से नीचे झाँका। आँगन पार करते हुए आ रही आयशा के हाथ में उसने देखा—वही टोकरी, वही फिरन। चेहरे पर गहरे अवसाद और क्रोध की सघन परत।

''बाबी कहाँ हो... ?'' वह भरे गले से बोली। वर्ना उसे क्या यह मालूम नहीं था कि भट्टिनी इस समय कहाँ होगी। जो कि रसोई में चूल्हे के सामने थी, और घरौंदे के ऐन नीचे बनी छोटी-सी जगह में घास की चटाई पर बैठ जिगरी से कबाइलियों की दास्तान सुन रही थी।

''हाँ, आयशा?'' भट्टिनी ने अनुक्रिया की।

''अरे पता नहीं मेरे कपड़े किसने बरबाद किये हैं। तुम्हारी बेटियों का काम तो नहीं यह कहीं। मेरे कलेजे में चाकू चल गये बाबी। इसमें पानी, दवाई, तख्ती लिखने की दवात, थूक, पता नहीं क्या-क्या डाला गया है...'' और वह धीमे-से रुआँसी हो आयी।

भट्टिनी के भी होश उड़ गये और उसे तत्क्षण इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि करतूत उसकी बेटियों की ही है। वह समझ नहीं पायी कि उसे अपनी बेटियों से कैसे निपटना चाहिए। क्या सजा उन्हें देनी चाहिए। आयशा कितनी सजा से सन्तुष्ट हो जाएगी।

''तुमने किया है?'' वह चण्डी रूप में आकर पूछने लगी...पूरे चण्डी रूप में।

''नहीं।''

''सच बताओ...नहीं की बच्ची...यह तुम्हारा ही काम है,'' कहते हुए भट्टिनी वापस रसोई में गयी। एक जलाने के लिए रखी लम्बी लकड़ी हाथ में लायी और

दोनों को बारी-बारी से तड़-तड़-तड़ मारने लगी। यह परवाह किये बिना कि मार बच्चियों के किस अंग पर पड़ रही है। वह आयशा को प्रसन्न करना चाहती थी। अपने बच्चों के बदले उसका पक्ष लेना चाहती थी और उसे दिखाना चाहती थी कि माँ होकर भी उसने अपने बच्चों के साथ तनिक भी पक्षपात नहीं किया।

''सच बोलो—वक्रियों! नहीं तो मार डालूँगी। आज नहीं बचोगी...सच बोलोगी तो बचोगी...वैसे भी मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं।''

''नहीं माँ...।'' वे हाँ के भयावह परिणाम को जानती हैं। और विकराल रूप से पिटती जा रही हैं, और देख रही हैं कि आयशा उनकी यह हालत देख जरा भी नहीं पसीज रही।

''मत मारो बच्चियाँ हैं। अब ये मानेंगी भी तो क्या होगा। कपड़े तो खराब हो चुके हैं। वे ठीक थोड़े न होंगे।'' आयशा के होठों से ये शब्द निकल रहे थे, जिनका उसके दिल से जरा-सा भी तअल्लुक न था। शायद उसको कुछ-कुछ करुणा दोनों बच्चियों पर आनी शुरू हुई हो मगर क्रोध उसके भीतर विष की तरह फुँफकार रहा था।

''लाओ ये ऐसे नहीं मानेंगी। बोरी में भर दो दोनों को और वितस्ता में फेंक आओ।'' बड़े अपराध की प्रायः यही सजा सुनायी जाती, उसके बाद बच्चे क्षमा माँगते और आगे वैसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा करते जिसके लिए उन्हें सजा मिल रही होती। तब बोरी तहकर के अपनी जगह रखी जाती। मगर आज तो क्षमा का सवाल ही नहीं था। अपराध अक्षम्य था। उन्हें सौ फीसदी वितस्ता में फेंके जाने की बात सच लग रही थी। उन्हें मृत्यु का उसी तरह भय लगने लगा जैसे आसन्न मृत्यु पर होता है।

इतने में जिगरी खड़ी हो गयी और ऊँची आवाज में बोली, ''बड़ी क्रूर है तू रे भट्टिनी भाभी। मैं तो ऐसे शब्द बच्चों के लिए मुँह से निकाल भी नहीं सकती और तू करने पर उतर आयी...क्या तमाशा है...तेरा काम इनके बिना चलेगा तो मुझे दे दोनों...क़ातिल कहीं की...मैं पाल लूँगी। गलती की...क्या गलती की...कपड़े धो के साफ हो जाएँगे...किसका गला काटा है...किसकी जान ली है दोनों ने...ज़रा मैं भी तो जानूँ, किसको खुश करने के लिए तू माँ का दिल भी अपना निकाल फेंक रही है...छिः छिः...त्राहि त्राहि...ओह ओह...हे प्रभु। मैं नहीं जानती तू ऐसी है...क्या हुआ कपड़ों को...ज़रा इधर ला...कल मैं ड्राइक्लीन करके दूँगी।'' जिगरी को आयशा पर जबर्दस्त गुस्सा आ रहा था। वह यों भी...इस क्षण अभी-अभी कबाइलियों की स्मृतियों की जानलेवा गिरफ्त में थी।

''हाँ हाँ, मत मारो बच्चियों को बाबी। मत मारो। इनको मारने से क्या मेरे कपड़े ठीक हो जाएँगे।''

जिगरी की भाषा का केन्द्र आयशा है, आयशा समझ गयी थी। तब दूसरी बार आयशा ने जब कहा मत मारो तो शायद वे शब्द मानीखेज़ हो उठे हों। यह काम जिगरी के तेवरों ने आयशा के भीतर किया था।

दोनों बच्चियों का सारा मुँह गर्दन तक आँसुओं से तर-ब-तर था। और इसी भयावहता में उन्हें आशा हो उठी कि शायद अब जीवनदान मिले।

भट्टिनी उन पर अपशब्दों की बौछार कर रही थी। आयशा के दु:ख से वह बहुत दु:खी थी। "तुम पर त्रेठ पड़े वक्रियो! तुम तो जीना हराम कर देती हो। इस तरह के काम करने हैं तो तुम्हारे लिए बेहतर है मरना। मर ही क्यों नहीं जाती हो...और..." हाँफते हुए वह रसोई में आकर चूल्हे की लकड़ियाँ चूल्हे के भीतर सँभालते हुए लगाने लगी ताकि चूल्हे के दोनों मुँहों में अग्नि की लपटें बराबर अनुपात में जाएँ और उबलते चावलों को कड़छी में उठाकर देखने लगी कि क्या चावल गल गये हैं या साबुत हैं।

वातावरण में थोड़ा-सा सुधार आ गया था। भट्टिनी जोरदार से जोरदार अल्फाज में आयशा के कपड़ों के लिए अफसोस जाहिर करती जा रही थी। जिगरी उस सबकी उपेक्षा करते हुए दोनों बच्चों को थपथपा रही थी, सहला रही थी, चुप करा रही थी और उनकी हिचकियाँ बन्द ही नहीं होतीं। दोनों के आँसू पोंछ रही थी, जिगरी उन दोनों को बारी-बारी से पानी के घूँट पिला रही थी।

❑❑

रात का सन्नाटा और सूचीभेद्य अन्धकार। यह कृष्णपक्ष का शिखर समय है। दोनों बच्चियाँ बीच-बीच में गहरी नींद में भी हिचकियाँ ले रही थीं।...ये उस यातना के बाद की जीवित बचने की खुशी की हिचकियाँ थीं। भट्टिनी को अब बहुत सन्ताप और अफसोस था। वह कहती—'हे भगवान! कितना मारा मैंने दोनों बेचारियों को। तब जाकर आयशा का कलेजा कुछ ठण्डा हुआ था।'

आयशा के घर में भी सन्नाटा था। बाहर गहरी काली शरद और शिशिर की संक्रान्ति रात्रि थी। ठण्डी। भट्टिनी अपने पति को समूची घटना सुना रही थी, जो बच्चियों की पिटाई हो चुकने के बाद काम से लौटा था।

❑❑

और सुधा की स्मृति में उसी शिशिर का एक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम उभरता है...धीरे...धीरे...

लगभग दस-पन्द्रह मवालियों की भीड़। 'नाले-तखबीर-अल्लाहो अकबर' करते हुए फिर उसी नारे को दुहराते हुए आ गयी और खोडावानी की दुकान पर

टूट पड़ी। खोडावानी थरथर काँपते हुए अपनी ठुड्डी पकड़ हाथ जोड़ उनसे अर्ज़ करने लगा—भाइयो!...बख्श दो...मेरा नुकसान न करो। मैं दो मिनट में दुकान बन्द किये देता हूँ।'' वह बड़ी शीघ्रता के साथ खण्डयाजों की टोकरी अन्दर रख आया। इतने में उसकी गुलाबी और सफेद मीठी खीलों की टोकरी को होली के रंगों की तरह बिखेर दिया गया। कुछ लोग ग्रास के ग्रास मुँह में डालते हुए और कुछ मुँह में एक ग्रास देने के बाद फिरनों की जेबों में डालते जा रहे थे। कुछ लोग उसकी मूँगफली की टोकरी को फैलाने लगे। ताकि फैलाते हुए उसे लूटकर अपनी जेबों में भी डाल सकें। मुँह चल रहे थे भीड़ के खीलों, मूँगफलियों की चपचप और नारों से। नाले तखबीर अल्लाहो अकबर नारों से। कुछ मवाली इस दुकान की लूट में अपने साथियों को व्यस्त देखकर तथा अपने लिए वहाँ पर्याप्त जगह न पाकर सीधा दिवा ग्वालिन के पास आ धमके। उसकी दुकान में पनीर से भरी बड़ी-सी परात, दही की बड़ी-सी हाँडी और दूध से भरी अल्युमुनियम की देगची दुकान पर बनाये घरौंदे पर रखी थी। वह बड़ी तेजी से उस क्षण एक दो खरीददारों को निपटा रही थी। जब वे दिवा के पास पहुँचे तो भरसक ठिठके-से। क्योंकि यह स्त्री थी। स्त्री भी कैसी...उन्हीं की जात धर्म की। पर उससे बढ़कर थी रोबीली, गठीली और हठीली। ''अम्मी! दुकान बन्द कीजिए।'' भीड़ ने अदब से अर्ज़ की।

''करूँगी बच्चो! मेरे जिगरपारो! करूँगी क्यों नहीं, करूँगी। अरे तुम कहते हो तो क्या मैं नहीं करूँगी। पर मुझे पहले समझाओ तो कि माजरा क्या है? क्या पाकिस्तान बन रहा है? बखुदा...वजह कुछ भी हो...मैं अभी दुकान बन्द करूँगी।'' यह कह उन्हें मनोवैज्ञानिक तसल्ली देने के लिए अपने एकमात्र गूँगे बेटे को बुलाया, ''ऐ अजीमा!'' जो घबराया देख रहा था ''चल दुकान बन्द करनी है बेटा...यह उठा पनीर की परात, रख दे अन्दर...हाँ तो बच्चो...बोलो कारण।'' दिवा के सामने लगभग सब-के-सब ऐसे हो गये थे जैसे माँ के सामने बेटे। दिवा के चेहरे का दबंगपन उनके दिलो-दिमाग में सेंध लगा गया था। दिवा का एक विचित्र रूप और तेज था, जिसका वर्णन करना कठिन है। हालाँकि उसके दोनों कपोलों पर चेचक के दाग थे...पर वे भी मानो भगवान ने नगीने जड़ने के लिए खड्ड बनाये हों और दिवा के चेहरे पर उन नगीनों की दमक पहले ही विराज गयी हो और काम में व्यस्त हो जाने के कारण वह नगीने जड़ना भूल गया हो।

वे दिवा को उत्तर देने ही वाले थे कि सड़क के सिरे से ज्यादा लोगों की भीड़ आती नजर आयी, जिनमें से कुछ छातियाँ पीट रहे थे और बोल रहे थे, ''असि गछि मोयि पाख—असि रोव मोयि पाख।'' हमें चाहिए पवित्र बाल, खो गया हमारा पवित्र बाल...''

अब दिवा के होश उड़ गये। वह अत्यधिक तेजी से दुकान का दरवाजा बन्द करने लगी। कभी वह दरवाजा बन्द करती, कभी एक धौल अपनी छाती पर भी मारती—नाले तखबीर...एक लम्बा आलापयुक्त नारा फिर उठ गया। भीड़ दुगुनी हो गयी, और आधी से ज्यादा बगल की मस्जिद में घुस गयी।

भट्टिनी के घर में और दिल में अजीब दहशत और अफरा-तफरी है। घरों की इस लम्बी कतार में उसी का एकमात्र घर हिन्दू है। 'हे भगवान! क्या ज़िन्दगी है।' उसने मन में सोचा। ऐसे हालात में हिन्दू घरों की ऐसी हालत हो जाती जैसे बीच समुद्र में पहुँची नाव और एकाएक उसी क्षण एक अनियन्त्रणीय तूफान। और भविष्य का पता नहीं। पर ज्यादातर तो कबाइली हमले के बाद ऐसे तूफानों में से नाव निकल ही आती है सुरक्षित और जीवन फिर चलने लगता है मस्त। नदी फिर बहने लगती है अलमस्त। मौजभरी। शान्त...पर भीतर से भयावह हलचल की अन्तःतरंगों से आपूरित।

भट्टिनी का पति काम पर गया है और वह चिन्तामग्न है। चिन्ता के मारे उसका हृदय चीत्कार कर रहा है। उफ्! भट्ट होना भी क्या अभिशाप है यहाँ। प्रभु जन्म देना था हिन्दू का तो कहीं बीच हिन्दुस्तान में पैदा करता। रह-रहकर मरना। जी-जीकर मरना यह भी कोई जीना हुआ।

❑❑

बहुत थोड़े लोगों के पास रेडियो है। जिसे डर-डर के सुना जा रहा है। आजाद कश्मीर की खबरों की मसखरेपन से भरी आवाज का दूर से अन्दाज लगाया जा सकता है। निम्नस्तरीय ये खबरें बेसिर-पैर हैं। शत्रुभाव का प्रोपेगैण्डा, बेहद हास्यास्पद स्तरहीन। यहाँ तक कि यदि वह किसी भी कट्टर और मूर्ख मन को तुष्ट करें भी फिर भी सूचना की विश्वसनीयता के सन्दर्भ में सन्तुष्ट नहीं कर सकता। बस यों ही मजाकों को सुनने जितनी गम्भीरता के साथ ही उसे कट्टरपन्थी मुसलमान भी सुनते हैं।

भट्टिनी के मन में एक तीव्रेच्छा पैदा हुई कि उनके पास भी रेडियो होता काश! और सोचा कि अब दस काम छोड़कर वह एक रेडियो पति से खरीदवाएगी ही! 'हम तो सूचनाओं के मर्कज में जी रहे हैं। अपने पास रेडियो होता तो अभी पता चलता कि सच क्या है और झूठ क्या। आकाशवाणी झूठ तो नहीं बोलता, उसे भला क्या जरूरत है झूठ बोलने की। दुनिया भर का झूठा है पाकिस्तान और आजाद कश्मीर या पाकिस्तानी मकबूजा कश्मीर। अजीब माजरा है, आजाद कश्मीर का नाम हिन्दुस्तान में पाकिस्तानी मकबूजा कश्मीर है और पाकिस्तान में आजाद

कश्मीर और कश्मीर का नाम पाकिस्तान में हिन्दुस्तानी मकबूजा कश्मीर है और हिन्दुस्तान में कश्मीर। दिलचस्प उलटफेर है।

❑❑

''खिड़कियाँ बन्द कर दो''—भट्टिनी ने बच्चों के लिए आदेश निकाला। वे खिड़कियों से देख रहे थे, मवालियों की कारगुजारियाँ। भीड़ का फिर एक और हिस्सा मस्जिद में घुस गया था।

''ये लोग अब मीटिंग करेंगे माँ।'' भट्टिनी की बड़ी बेटी टॉठी बोली। छोटी दो बेटियाँ सुन रही थीं। डर भी रही थीं और उत्सुक भी हो रही थीं।

वे दोनों एक-दूसरे के विचारों-भावों में सम्मिलित थीं। अपने विश्लेषण में घुली-मिली थीं। माँ और बड़ी बहन की आँखों से देखने की शक्ति लेकर फिर देखने की कोशिश में लगी थीं कि ये क्या परिस्थितियाँ हैं जिनमें वे जनमी हैं।

भाई अपने किस्म का अलग और अकेला था। वह अपने विचारों को उनके विचारों में शामिल नहीं करता। शायद सारे हालात का आनन्द लेता। वह अपने ढंग का पुरुष विकसित हो रहा था। अबूझ-सा।

❑❑

खिड़कियाँ बन्द करके भीतर बिजली जला दी गयी। अजीब चिन्ता-भरा वातावरण भीतर बन गया। पता नहीं मस्जिद के भीतर क्या निर्णय लिये जाएँगे। भट्टों के साथ क्या सुलूक करना है, यह कैसे तय किया जाएगा। उनकी चिन्ता यही थी। भट्टिनी का हृदय पति की प्रतीक्षा में धक्‌धक् कर तेज और बेतरतीब तबले की मानिन्द बज रहा था...मस्तिष्क में आशंकाएं उग रही थीं।

'ऐसे में आयशा क्या सोच रही होगी,' यह सोच रही थी सुधा और दीप्ति। ''उसे इस समय हम पर गुस्सा आ रहा होगा। हमने उसके फिरन जो गन्दे कर दिये। हम हिन्दू हैं। हमें ऐसा नहीं करना चाहिए था। अगर वह यह बात मस्जिद में सबसे कह देगी तो'—दीप्ति ने अपना भय और शंका व्यक्त की। सुधा के रोंगटे खड़े हो गये। एक विचित्र सिहरन ऊपर से नीचे तक दौड़ गयी...और शरीर का एक-एक बाल खड़ा हो गया। उसे भयंकर ठण्ड लगने लगी और अवाक्-सी रह गयी वह। मानो उसने सुना हो कि मस्जिद से निकलते ही भीड़ उन पर टूट पड़ेगी...और...और...हे भगवान।

''लेकिन ऐसा वह थोड़े न करेगी।'' दीप्ति बोली। मगर सुधा की कँपकँपी कम न हुई।

एक खास अन्तराल के मौन के बाद सुधा बोली, ''माँ को आयशा से बोलना चाहिए। कोई बहाना करके। कुछ भी। ताकि वह ऐसा कुछ न करे। उसका मूड जानना चाहिए।''

सुधा दौड़कर उस तरफ की खिड़की पर गयी, जिस तरफ आयशा के घर का मुँह था। उसने देखा आयशा का पति यानी दिल और वही का पिता आ चुका है। और फिर एक भयंकर सिहरन पैदा हुई। उसका अपना पिता अभी काम से नहीं लौटा। और वह भट्ट है। हिन्दू है। उसका दफ्तर दूर है। बहुत दूर। पता नहीं क्या होगा आज। वह भीतर आयी और माँ से कहा, ''माँ वहीदा का पापा आ गया है।''

''हाँ हब्बाकदल में उसकी दुकान है। दुकान बन्द करवायी होगी भीड़ ने।''

''पापा न जाने क्यों नहीं आये अभी।''

''सरकारी नौकर हैं बेटा वह। उन्हें तो अपनी ड्यूटी पूरी करनी है। आएँगे...भगवान से प्रार्थना करो।''

शायद आँगन में आयशा इन बातों के कुछ अंश सुन रही थी।

''बाबी। चिन्ता मत करो। भाई साहब जल्दी आएँगे। फिक्र करने की जरूरत नहीं। ये बेचारे थोड़े न कुछ गलत कर रहे हैं। ठीक ही तो कर रहे हैं। आखिर इतना बड़ा जुल्म। मोए मुकद्दस आखिर किसने चुराया होगा। बड़े कुफ्र और कयामत की बात है।''

भट्टिनी को सान्त्वना अच्छी लगी। उससे भी ज्यादा अच्छी लगी उसके बच्चों को। पड़ोसी कितना बड़ा ढाढ़स और प्रकाश होता है। दीप्ति और सुधा जिस आशंका में मरी जा रही थीं, उससे उबर गयी...और उल्टे आयशा के फिरनों को गन्दा करने की ग्लानि का वाकया उनके दिलों में गहरा गया।

''बाबी। डर लग रहा हो तो आओ यहाँ थोड़ी देर बच्चों के साथ।'' आयशा ने किंचित ऊँची आवाज में कहा।

''नहीं नहीं, अब आ ही रहे होंगे।'' भट्टिनी ने शुक्रिया के स्वर में मना किया। शायद आयशा भी औपचारिकतावश ही बोल रही थी। और टॉठी ने उसके अपने यहाँ बुलाने का कुछ और ही अर्थ निकाला। क्या पता वह उन्हें वहाँ शब्दों का सन्त्रास देगी। एक धीमा और महीन सन्त्रास कि हिन्दुस्तान को ऐसा काम नहीं करना चाहिए था। पवित्र बाल नहीं चुराना चाहिए था। ऐसा करके उसने ठीक नहीं किया। टॉठी अपने मन में सोच रही थी।

''माँ दीनुक थम छुम सीनस प्यठ। है न माँ।'' टअठी ने अपनी माँ भट्टिनी से कहा। यानी दीन का खम्बा आयशा की छाती पर है...वह ढो रही है। वह समझ रही थी कि वास्तव में आयशा का मन इस समय भीड़ के साथ है। भीड़ का जज्बा

उसके जज्बे के साथ एकाकार है। कैसे खोता है दीन के बरास्ते आदमी विवेक। इस सोच में वह अपनी बुद्धिमान माँ की सहमति जुटाना चाहती थी।

''चुप...ऐ तुझे...।'' माँ ने शिद्दत से डाँट दिया कि उसे इस समय इन टिप्पणियों और उद्गारों को भीतर रोकना चाहिए। वर्ना हम नहीं जानते क्या।

भट्टिनी के कान गली की आहटों की तरफ लगे थे। उसे पति की चिन्ता थी। क्षण-क्षण बढ़ती ही जा रही थी।

''ये लोग सोचते हैं कि पवित्र बाल हिन्दुस्तान ने चुराया है?'' दीप्ति अपनी बड़ी बहन के पीछे-पीछे किचन तक यह जिज्ञासा शान्त करने गयी।

''हाँ भगवान के लिए चुप रहो। दफा हो जाओ।''

किचन में टॉठी चावल का भगोना निथार रही थी।

''लेकिन दीदी वह पवित्र बाल हिन्दुस्तान के किस काम आएगा? क्या वह ऐसा ही पवित्र बाल है जैसा हमारे सिर में।''

''हाँ, बिल्कुल।''

''तो यह पवित्र बाल हिन्दुस्तान के किस काम आएगा चुराकर।''

''दफा हो जाओ...तुम छोटी हो, यह सब नहीं समझ सकती।''

अक्सर उसे दीदी डाँटती है। और इर्द-गिर्द की चीजें समझने में बिल्कुल नाकाबिल समझती है।

❑❑

भट्टिनी अब चिन्ता की तेजी में घर के चक्कर लगा रही थी और हर क्षण के अगले क्षण दरवाजे की कुण्डी खटक जाने के इन्तजार में मुस्तैद थी।

सड़क पर भीड़ तो नहीं थी। पर दुकानों की मचानों पर मुहल्ले के मुसलमानों की भीड़ थी जो कि आज की इस अलमनाक घटना पर एकमत एक राय हो रहे थे। मत और राय इस बिन्दु पर एक थी कि पवित्र बाल हिन्दुस्तान सरकार ने ही साजिश के अन्तर्गत गायब करवाया है। वह मुसलमानों को दु:खी करना चाहता है। उन पर अपनी हुकूमत और तानाशाही लादना चाहता है। उन्हें जनतन्त्र से वंचित करना चाहता है।

कुण्डी का खटखटाना ऐसा था मानो हजारों मुर्दे एक साथ जी उठे हों।

'कैसे आये?' 'देर क्यों हुई?' 'रास्ते में परेशानी तो नहीं हुई।' 'यह सब क्या हो रहा है' 'रास्ते में भट्ट होने के नाते किसी ने परेशान तो नहीं किया?' आदि इत्यादि उन पर हुई प्रश्नों की बौछार में से कुछ महत्त्वपूर्ण और जरूरी प्रश्न थे।

❑❑

बिट्टू चिलमची लाया। टॉठी गर्म पानी लायी। पिता के हाथ आज इतने काले थे कि मांस का रंग कहीं दिख ही नहीं रहा था।

''यह क्या? इतना काम किया है आज?''

''आज इसीलिए तो देर हुई। गाड़ियाँ निपटानी पड़ीं। हंगामी हालात थे दिनभर।''

''डर तो नहीं था किसी बात का?''

''जरा भी नहीं। किस बात का। गलत हुआ है। ऐसा नहीं होना चाहिए था। किसी की साजिश है। किसी धर्म के साथ इस तरह की अपमानजनक हरकत करना सरासर गन्दी राजनीति है।''

''किसकी?''

''क्या पता? कहते हैं बख्शी की।''

''पर वह भी तो मुसलमान है।''

''है तो मगर हुकूमत गिरी है उसकी। इसलिए बौखलाया है। राजनेताओं का कोई धर्म नहीं होता है।''

''इन्हें हिन्दुस्तान पर शक तो नहीं है?''

''नहीं नहीं। बिल्कुल नहीं। कुछ गुण्डा टाइप लोग ऐसी बात बीच में डालना चाहते हैं मगर चल नहीं पाती बात आगे। हाँ, पाकिस्तान सरकार ऐसा प्रोपेगैण्डा पाकिस्तान रेडियो या आजाद कश्मीर के रेडियो सदा-ए-कश्मीर से करना चाहता है—पर फिलहाल लोगों पर उसका कोई असर नहीं दिखता।''

''एक रेडियो क्यों नहीं खरीदते?''

''खरीदेंगे। अब तो खरीदना ही पड़ेगा।''

''शुक्र है हिन्दुस्तान पर इन्हें सन्देह नहीं हो रहा। रहम है खुदा का। कृपा है ईश्वर की। मैं तो कल शिवालय में रत्नदीप जलाऊँगी।''

''हो...हो...ऐ...सुन हम भी गम में बराबर के शरीक हैं। हिन्दुस्तान सरकार खुद बेहद परेशान है इस बात को लेकर। तुम तो जानती हो हिन्दुस्तान ऐसा पाप नहीं कर सकता। गाँधीजी तो हर धर्म की कितनी कद्र करते थे।''

''अच्छा आ गया यह गाँधी बुड्ढा तुम्हें याद। पता नहीं किस पण्डित का घर जल रहा होगा उस समय जब उस महात्मा के बच्चे को कश्मीर में 'रोशनी की किरण' नजर आयी।'' भट्टिनी कुशाग्र बुद्धि है और माहौल के नब्ज़ पर उसका हाथ होता है। कौम के मन की थाह तक उसका मार्ग तय होता है।

❑❑

बिट्टू मिट्टी का तेल लाया। मैल छँट नहीं रही थी। पिता बातें भी कर रहे थे और हाथों की कालिख छुड़ाने का संघर्ष भी।

'कितनी पवित्र कालिख है।' भट्टिनी ने मन में सोचा। 'कितना पवित्र अन्न खाते हैं हम...श्रम का, सुकृत का...।' उसने फिर अपने से ही कहा...'काश! यह मारामारी न होती...कितना सुखमय जीवन था।' उसने फिर अपने आवेगों की निरन्तरता बनाये रखी। पर कुल मिलाकर जीवनमूल्यों को बहुमूल्य देने वाली भट्टिनी भीतर-ही-भीतर गौरवान्वित हो उठी।

"तो तुम बाहर से आये हो। कुछ कहो न। लोग क्या कह रहे थे? क्या कर रहे थे?" भट्टिनी ने पति पर बाहर के हालात बताने के लिए दबाव डाला।

"क्या कर रहे थे...कहा न...दु:खी थे। गमगीन थे। रो तक रहे थे। पवित्र बाल के मिल जाने तक कुछ लोग रोजा रखेंगे...सचमुच रो रहे थे बहुत लोग। औरतें छातियाँ पीट रही थीं...रो रही थीं...।"

"अब क्या होगा?"

"चोरी करने वाले को चुराया माल वापस करना पड़ेगा।"

"पर चोर है कौन?"

"अब...क्या पता...?" उसने खीझकर कहा।

❑❑

वह भोजन करने लगे। भट्टिनी का मन बेहद उत्सुक है जानने के लिए कि चोरी किसने की है? क्या चोर की शिनाख्त हो गयी है? क्या अटकलें लगायी जा रही हैं...वगैरा...वगैरा। उसकी इच्छा इस सारी घटना की तहों में जाने की थी। इसीलिए वह बातें कुरेद-कुरेदकर निकाल रही थी और उसको मन के किसी भीतरी प्रकोष्ठ में विश्वास था कि यह कोई घिनौनी साजिश है।

बच्चों और भट्टिनी ने पण्डित पूर्ण कौल को सारा किस्सा बयान किया जो कि दिन में घटित हुआ। खोडावानी दर्जी और दिवा ग्वालिन के दुकानों की लूट, भीड़ के नारे, मस्जिद में सबका खूँखार होकर घुसना और बाद में अर्धसैनिक बलों का छा जाना और फिर कर्फ्यू का लग जाना।

"आप कैसे आये पापा?" कर्फ्यू की बात आकर बिट्टू ने जिज्ञासा की।

"पास मिल गया बेटा। खास पास। कल मुझे जल्दी जाना भी है। आजकल हमारी ट्रकों में सेना को इधर-उधर पहुँचाया जाता है तैनात करने के लिए। हंगामी हालात है अब।"

सुनकर भट्टिनी और बच्चे हल्के से भयभीत हो गये। हर एक में भय अपनी-अपनी संवेदनशीलता और समझदारी के अनुसार समाया।

❑❑

भट्टिनी बर्तनों की सूखा-माँझ राख में कर रही थी और देख रही थी कि उसका पति काँगड़ी की आग तेज कर सोने की तैयारी कर रहा है, जो बहुत-बहुत थका है दिन-भर के काम से। पर भट्टिनी ने उससे एक जिज्ञासा की, ''एक बात मेरी समझ में नहीं आती। आयशा कह रही थी कि पवित्र बाल कोई हाथ में ही नहीं ले सकता। जो ऐसी कोशिश करता है...उसी वक्त दोजख की आग उसे खा जाती है, तो फिर चुराने वाले का यही हश्र हो जाना चाहिए। आयशा यह भी कह रही थी कि उसको हाथ में लेने वाला बड़ा दीन-धर्म का पक्का, पाँचवक्त निमाजदार, ईमानदार माने पक्का मुसलमान होना चाहिए।''

''तो होगा न। जरूर कोई मुसलमान ही है जिसने पवित्र बाल चुराया है।''

''पर ये लोग तो अपने धर्म के साथ ऐसा नहीं कर सकते। बड़े पक्के होते हैं कट्टर।''

''अरे भई गद्दी के आगे सब बकवास है...धर्म...वर्म सब...अब तुम्हें क्या समझाऊँ...।'' उसने और बात करने में अरुचि दिखाते हुए आँखें मूँद लीं।

बाहर अर्धसैनिकों के बूटों की आवाजें थीं। वे गश्त लगा रहे थे। टॉठी ने कमरे की बत्ती बुझाकर हौले से खिड़की का पल्ला आधा खोला। बाहर का जायजा लेने के लिए। खोडावानी की बन्द दुकान की मचान पर दो सैनिक बूटों समेत लेटे थे। और लगभग दो-तीन दिवा ग्वालिन की दुकान की मचान पर कुछ खा रहे थे। बीच में दर्जी की दुकान के पास धीमी-धीमी लगभग बुझने के करीब आग जल रही थी। कड़ाके की ठण्ड के कारण शायद सैनिकों ने ये लकड़ियाँ जलायी थीं। इसके अलावा बाहर कुछ न था सिवा ठिठुरन, अँधेरे और सन्नाटे के। टॉठी ने बिना आवाज किये खिड़की का पल्ला बन्द किया। 'पता नहीं कल क्या दृश्य होगा' सोचकर।

❑❑

धम्म-धम्म-धम्म-धम्म।

धाँय-धाँय-धाँय-धाँय।

शम्म कठ हाय-हाय।

....

नाले तखबीर अल्लाहो अकबर

नाले..........

नाले.........

टॉठी उठी। देखा उसकी माँ पहले ही जाग चुकी है। कोशिश कर रही थी कि बच्चे न जागें। पर टॉठी जाग गयी। वह कल सोयी ही थी इस महानाटक

की अनिश्चित परिकल्पना के साथ। उसने बिजली जलानी चाही, मगर माँ ने हाथ दबोचा—नहीं। बिजली नहीं जलाना। बहुत बड़ा जुलूस आ रहा है—

असि क्याह करव . असि मा मरव

असि क्या करव : असि हा मरव

यह ताजा कलाम था। 'हम क्या करें अब? हम तो मरेंगे अब।'

और दूसरी कविता यों थी :

असि करव सीन चाख

असि रोव मोये पाख यानी कि

हम अपने सीने चाक करेंगे...

हमारा पाक पवित्र बाल खो गया है। यह नयी कविता जुलूस की एक नयी खेप गा रही थी और कभी-कभी अपने मस्तकों पर हाथ उठा-उठाकर मार रहे थे।

शब्दों और शब्दों के बलाघात पर दोनों यानी भट्टिनी और उसकी बेटी ध्यान दे रही थीं। भट्टिनी ने बेहद नजदीक लाकर घड़ी टॉठी को थमा दी। "जरा वक्त देख क्या है? लगता है आधी रात है।"

"चार बजे हैं।" वक्त बोलकर उसका मन हो रहा था कि धीमे-से बिना आवाज किये खिड़की का एक पल्ला खोलकर देखे कि वे अर्द्धसैनिक इस समय कहाँ हैं। और जुलूस कितना लम्बा है और कितना गुज़र गया है। और यह जो कुछ बर्तनों को पटकने जैसी आवाजें हो रही हैं, जुलूस के साथ-साथ यह सब वास्तव में हो क्या रहा है।...पर माँ के डर से अपनी जिज्ञासाएँ अपने भीतर दबोच रही है।

अचानक स्त्रियों का स्वर-समूह दूर से आता-सा लगा। और तेजी से नजदीक आता-सा लगा। अब उनका दुखद गायन साफ सुनाई दे रहा था—

"मोए मुकदस पाक को...।"

"सीना न क्यों यह चाक हो। इत्यादि...।"

जुलूस के इस हिस्से में भट्टिनी और टअठी की विशेष दिलचस्पी थी। क्योंकि ये स्त्रियाँ थीं। स्त्रियाँ स्त्रियों को भी भाती हैं।

"रातभर सोयीं नहीं शायद...।" टॉठी बोली।

"ज़्यादातर तो सोये नहीं होंगे आज।"

"हम भी कौन-सा सोये।"

जुलूस आगे आया, वे ध्यान से सुनने लगीं। उनके उच्चारों पर विशेष कान रखने लगीं।

स्त्रियों के जुलूस का जो दस्ता उनकी खिड़की के ऐन नीचे से गुजर रहा

था, उनमें से कुछ हँस रही थीं। कुछ उनमें से आपस में बातें भी कर रही थीं। दो-तीन नारे न लगाकर अलग से गाये जा रही थीं—

"पाकिस्तानो वन्दयो जान
हिन्दुस्तानो द्रायो तान
पाकिस्तान मैं तुम पर बलिहारी और हिन्दुस्तान तेरे टुकड़े हो जाएँ।"

"ओए हरामज़ादी...तेरे टुकड़े हो जाएँ।"

भट्टिनी ने फुसफुसाकर वापस कहा। और अपना स्त्री धर्म निभाया। फिर बेटी से बोली, "बता अपने पिता को। कल कह रहा था। अरे नहीं हिन्दुस्तान के प्रति इनका कोई बुरा भाव नहीं। यह क्या है...यह सद्भाव है? उसको मन की थाह लेनी आती न। खाती हैं हिन्दुस्तान का—गाती हैं पाकिस्तान का। चुड़ैलें कहीं की। हिन्दुस्तान तुम पर मैं बलिहारी और पाकिस्तान तेरे टुकड़े-टुकड़े हो जाए...हिन्दुस्तानो वन्दयो जान, पाकिस्तानो द्रायो तान," मानो एक अशुभ का अशुभ भट्टिनी ने मन्त्र उलटाकर काट दिया हो। बस यही। यही जानना चाहती थी भट्टिनी। "हुँह पिस्सू की उतरेगी खाल? मुसलमान बनेगा यार? अरे कभी नहीं...बिल्कुल नहीं।"

टॉंठी के मन को भी उन मुसलमाननियों ने ठेस पहुँचायी थी, हिन्दुस्तान को गाली देकर। वह माँ के इस उद्गार से प्रसन्न हो उठी। मानो दोनों माँ बेटी ने उनको रंगे हाथों पकड़ा हो।

"माँ, कल तुमने देखा था आयशा भी कैसे बोल रही थी हमारे साथ...लगा नहीं तुम्हें उसका चेहरा बदला-बदला मानो पवित्र बाल हम ही ने चुराया हो...या हम इस घटना से खुश हुए हों...।"

"यह जीना भी कोई जीना है। रोज़ अपने देश को दी जा रही गाली सुनो। उनमें रहो जो आपको सुना रहे हैं कि जो देश तुम्हारा है हमारा नहीं है। और तेरा पिता कह रहा था कल भी '...नहीं इन्हें हिन्दुस्तान के प्रति कोई दुर्भाव नहीं।' अब देखा सद्भाव।" वह हिन्दुस्तान के खिलाफ सुने अपशब्दों से उपजे क्रोध को अब इसी तरह उतार रही थी। पति को कोस कर।

वह भी जाग गये थे और रसोई वाले कमरे में हुक्का पी रहे थे। वातावरण में पहले ही धीमी फिर तेज तम्माखू के धुएँ की गन्ध फैल गयी थी।

"सुलगायी चिलम तुमने" भट्टिनी पास आते-आते अधिकरपूर्ण स्वर में बोली। उसके अन्दर कई कारणों से तनाव था। और अपने पति के प्रति एक जटिल-सा गुस्सा। पति मौन अपना हुक्का बेफिक्री के साथ पीते रहे। और भौंहें नचाते रहे...मानो कह रहे हों कि क्या मिश्रण बनता है तम्बाकू के धुएँ और पत्नी की डाँट मिलकर।

पृष्ठभूमि में जुलूसों की शृंखला बनी हुई थी। अत: भट्टिनी की मन की

आँखों का इस समय यही मंच था। जहाँ भविष्य का अन्दाज लगाया जा सकता था और भूत की घटनाओं के कारण ढूँढ़े जा सकते थे।

''मोए मुकद्दस पाक...।'' इत्यादि गाती हुई एक जुलूस की टुकड़ी भट्टिनी के घर के नीचे से जा रही थी। एक हल्के मौन और विराम के बाद भट्टिनी पति से बोली। ''तुम कल क्या बोल रहे थे कि हिन्दुस्तान के लिए इनके मनों में दुर्भाव नहीं। यही न?...अभी औरतों का जुलूस गया...सालियाँ क्या-क्या बक रही थीं हिन्दुस्तान के लिए।''

''हाँ, तो औरतें थीं न...त्रिय बुद्धि प्रलयं गति।'' यह आधा कश्मीरी और आधा संस्कृत सूत्र पूर्ण कौल का प्रिय अर्धवाक्य था। भट्टिनी की बेटियाँ जब तक बड़ी नहीं हुईं तब तक वह भी इस सूत्र से आक्रान्त रहीं। उसके बाद एक बार जब बेटियों के सिखाने पर वह पलटकर पति से बोली थी—त्रिय बुद्धि प्रलयं न गति। और उसके बाद भट्टिनी के पति ने यह अर्धवाक्य विसर्जित कर कभी नहीं बोला।

इस समय इस सूत्र से भट्टिनी के मन को वाकई बहुत सहारा मिला। ''हाँ सचमुच वे औरतें थीं।'' उसने खुद को खुद ही ढाढ़स बँधाते हुए दोहराया। मर्दों के जुलूस की कई टुकिड़याँ गुजर गयीं...किसी ने भी यह फालतू बकवास नहीं की। बस दु:ख भरे नारे लगाये। ईमानदारी के साथ। 'सचमुच पुरुष अच्छे होते हैं।'...वह मन के किसी कोने में मान गयी। यों ही पुरुष पुरुष नहीं कहलाते, यों ही इस दुनिया रूपी पतंग की डोर पुरुष के हाथों में नहीं दी भगवान ने। यकीनन कुछ बड़प्पन तो होता ही है पुरुष में। स्त्रियाँ...वही ओछी और कमतर और नामसमझ हुँ हु...जैसे अभी कुछ क्षण पूर्व की वे जुलूसवालियाँ।

इस बीच टॉठी ने खिड़की का पल्ला थोड़ा-सा खोलकर देख लिया था कि ये जो उठापटक की आवाजें आ रही थीं, ये देगचियाँ, लकड़ियाँ, कलछियाँ और अन्य अनेक ताँबे के बर्तन थे। मस्जिद की ठीक दीवार के साथ ही आग जलायी जा रही थी और बड़ी-बड़ी विशाल देगचियाँ उस पर रखी जा रही थीं। यह तफसील उसने माँ और पिता के सामने प्रस्तुत की।

''आग जलायी है?''

''हाँ, एक देगची में कुछ पक रहा है। अर्धसैनिक बेचारे उस आग के आस-पास अपने हाथ गर्म कर रहे हैं...बेचारे...।''

''...ये कुछ नहीं कह रहे?''

''...नहीं कुछ नहीं...बल्कि ममगुण्डा तो कह रहा था...करो करो गर्मी...रात को बड़ी ठण्ड थी।''

यह सुनकर भट्टिनी को अच्छा लगा। और पति की कल की बातों पर कुछ-

कुछ विश्वास हो आया कि हिन्दुस्तान पर न आरोप है...न सन्देह...बस चोर कोई अपने ही घर का है...और वह जो स्त्रियाँ थीं...फसाद फुटजियाँ थीं। 'फसाद की पुड़ियाँ'।

एक गहरा इत्मीनान वहाँ फैल गया जो भट्टिनी के भीतर ही नहीं अँटा, बल्कि बाहर तक पसर गया, "अच्छी बात है। हमसे ये लोग चावल या पैसा माँगने आएँगे तो हम देंगे...क्यों नहीं...हमें भी शिरकत करनी चाहिए इनके गम में।"

"हमसे थोड़े न माँगेंगे।"

"माँगेगे क्यों नहीं...हाँ अगर मागेंगे।"

"और क्या दे देना। हाथ उठाकर देना। आखिर जिन्दगी के गुजर का सवाल है।" पति बोला।

❑❑

गुलशन उठकर चिटकनी खोल रही थी। ठुकठुक उसने नींद में ही सुनी थी। वह सहरी खाएगी। उसे भी उठना है। उसने कल सोते समय गुलशन से विनय की थी कि 'सहरी के समय मुझे भी जगाना।'

किन्तु गुलशन ने जगाया नहीं। वह ठुकठुक के कारण जाग गयी। वैसे भी वह सारी रात सोयी कहाँ थी।

कहाँ-कहाँ के अतीत उसने फिर से चलायमान नहीं किये। एक अच्छा-खासा सिनेमाघर हो उठी थी वह। और वह स्मृतियों की दारुणता को बराबर रौंदने का प्रयत्न कर रही थी। माटी कहे कुम्हार को तू क्या रौंदे मोय, इक दिन ऐसा आएगा (होयगा) मैं रौंदूँगी तोहे...मैं रौंदूगी तोहे...बिना होठ हिले, बिना शब्द की ध्वनि किये उसके भीतर-के-भीतर में कबीर आये और प्रभातफेरी कर गये।

उसने चाहा कि वह याद करे कि यहाँ आज उसने सपना क्या देखा। पर उसे याद नहीं आया। लाख कोशिश करने पर भी नहीं। क्या उसने कोई सपना नहीं देखा। ऐसा हो सकता है क्या? क्या वह सोयी नहीं? लेकिन सोयी तो वह थी। उसे अच्छी तरह याद है। वह सोयी और सपना नहीं देखा। मतलब उसने आज सचमुच नींद की। माँ की गोद में थी वह आज की समूची रात। अभी वह कहाँ है? घर में नहीं एक होटल में...यानी गेस्ट हाउस में। जहाँ उसे होटल में नहीं रहना चाहिए वहाँ वह होटल में है। जहाँ उसके पिता के दो-दो घर हैं, वहाँ वह होटल में है। जहाँ पति का घर है, जहाँ उसके जन्म-जन्मान्तरों के पड़ोसी और पड़ोस की माँ-सी माताएँ हैं, वहाँ वह होटल में है। जहाँ उसकी धरती है, आकाश है, वहाँ वह होटल में है।

कितना पास है वह घर जहाँ से उसे उस रात निकाला गया था। वह

आरामगाह...वह घर जहाँ उसने हमेशा मस्ती की, माँ की छाँव देखी, पिता का लाड़ पाया। वे कमरे, वे दीवारें, वह दहलीज, वे नल, वे बरामदे कितने पास हैं। पर वह कहाँ है। उसे लगा कि उन सब निर्जीव वस्तुओं की आत्माएँ उग आयी हैं। प्राण फुँक गये हैं उनमें, ताकि वे भी तड़पें। दोनों में विरह है। वह वहाँ नहीं जा सकती। वे इसके पास नहीं आ सकते।

उसके घर की तरफ जाता हुआ वह मोड़ और उस मोड़ के अन्त पर, दूसरे मोड़ की शुरुआत पर मैनेजर अलीमुहम्मद का बँगला और हाजी दुकानदार।

सुधा हब्बाकदल से राखियाँ खरीदकर लायी थी, तो अली मुहम्मद ने देखा था। वह जानती थी कि अली मुहम्मद उसके पिता का अफसर है इसलिए उसके दिल में उसके लिए एक रौब था। ''ला मुझे बाँध राखी।'' अली मुहम्मद सड़क पर उसे रोककर बोला था। तब वह पाँचवीं कक्षा में पढ़ती थी। उसे संकोच हुआ था।

''बाँध मुझे राखी। मैं तेरा बुड्ढ़ा भाई, बड़ा भाई।''

राखी बँध गयी। घर पहुँच उसने पिता से कहा तो पिता बोले, ''अरे वह! अली मुहम्मद। मलंग आदमी है। सन्त ठहरा...पक्का सन्त।'' पिता ने उसकी तारीफों की झण्डी लगा दी थी।

राखी बाँधकर जब वह जा रही थी तो अली मुहम्मद ने कहा था, ''जा मेरी नन्ही-सी बहन, प्यारी-सी बहन। जा तुझे खूब अच्छा-सा दूल्हा मिले। तू खूब पढ़े-लिखे।''

सुधा को सुख और दु:ख की समान चक्रवाती अनुभूति हुई। क्या अली मुहम्मद सचमुच था। क्या वह कोई सपना तो नहीं था। ओ...वह ऐसी क्या तरकीब लड़ाए...कि यह जान सके कि यहाँ इसी धरती पर अली मुहम्मद था। उसका राखीवाला--सन्त भाई। उसका बुड्ढा भाई, बड़ा भाई।

एक नीम स्मृति का मद उस पर फिर छाने लगा था कि एक दिन उसका बुड्ढा भाई, बड़ा भाई सिधार गया। ऐसे लोगों से पहले ही खाली करा ली गयी थी यह धरती। फिर आये भूत, जिन्न, हत्यारे। क्या यह सत्य है कि इस धरती पर ऐसे मुसलमान थे। किससे कहें यह कथा भला किससे कहें? ये अन्तर की बातें, ये जिगर के तीर...आगे चला नहीं जाता।

पिछली बार वह गुरप्रीत के साथ पिता के मुहल्ले में गयी थी। उस दिन गुरप्रीत अपनी कार विशेष रूप से इसलिए साथ लायी थी कि वह उसे घर देखने ले जाएगी। अपनी थोड़ी अल्हड़ भाषा में वह बोली थी, ''सुधा, मैं गाड़ी लायी हूँ, तुम्हें ले जाऊँगी आज घर। मैं एक नेक काम करूँगी आज...दो दिलों को मिलाऊँगी।'' गुरप्रीत की रोमाण्टिक भाषा अच्छी थी। पता नहीं क्या होती है

संवेदनशीलता—वह सोचने लगी। जटिल-दु:खद सुखों और जटिल-सुखद दु:खों का उस पर अब प्राय: आक्रमण होता रहता था। वह अपने मन में भी इस जटिल स्थिति का विश्लेषण नहीं कर पाती।

❑❑

उस दिन उसने बेहतरीन साड़ी पहनी थी। वह भी कैसी हो गयी थी। दिल्ली से आने वाली स्त्रियों का पूरा जत्था कमीज-सलवार पहनकर आया था। पर सुधा बाजाप्ता साड़ी, अटहोर डेजिहोर को लम्बा तानकर बड़ी-बड़ी बिन्दी लगाकर जाने का निश्चय करके आयी थी।

सुमोना ने उसे जीप में झिड़का था, ''तुमने अटहोर-डेजिहोर निकाले नहीं?''

''नहीं।''

''निकालने चाहिए थे।''

''निकालने चाहिए थे? क्यों?'' उसने पूछा था कड़ुआहट का एक घूँट पीते हुए।

''अरे नहीं...तेरी मर्जी।'' कहकर सुमोना ने बहुत कुछ कहा था। पर इसके आगे इसपर उन दोनों में कोई संवाद विनिमय नहीं हुआ।

❑❑

वह सजधजकर आयी है। ईश्वर की कृपा से उसे बहुत लोग कहने लगे हैं कि उसके चेहरे पर एक आभा निखर आयी है। एक दिन गीता ने उससे कहा था, ''अरे यह गौरवर्ण, यह चमक, यह तुम्हारे चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी...क्या मैंने कभी तुम्हें अच्छे से देखा नहीं, या यह अचानक तुझ पर नूर छा गया...या...यह क्या करिश्मा है...।''

उसने भी वाक्‌चातुर्य का प्रयोग कर कहा था, ''दरअसल यह तेरी आँखों का नूर मेरे चेहरे पर से प्रतिबिम्बित हो रहा है।''

'अगर यह सच है जो गीता ने कहा तो शायद यह तपोतेज़ हो। संघर्ष से उद्‌भूत। हाँ, हो भी सकता है। गीता कभी हल्की बात नहीं कहती।'

कॉन्फ्रेन्स के कल और परसों के सत्रों में जब वह आयी तो सबने उसे कहा, ''अरे! आप बहुत सुन्दर लग रही हैं।''

''तो मैं सुन्दर हूँ...और सुन्दरता को और निखारूँगी। सर्वोत्तम पोशाक पहनूँगी। सिन्दूर बिन्दी लगाऊँगी...अटहोर...डेजिहोर एक विशिष्ट अन्दाज में लटकाऊँगी...मुझमें तेज है...और वहाँ मायके के मुहल्ले में जाऊँगी... उनके हृदय

अपने तेज से जलाऊँगी...उनको दिखाऊँगी...देखो लुटेरो...तुमने हमारा सब कुछ छीना, लूटा और भगाया मगर उस मालिक ने फिर जमकर हमारा साथ दिया। हमें पहले से दुगुना दिया...हमें सब कुछ दिया।...सब कुछ जो तुमने हमसे लूटना चाहा था...वह हमारे साथ-साथ रहा...साथ-साथ चला। देखो वह आज भी मेरे साथ आया है...अब जलो...अब और मरो। पछताओ अपनी करनी पर।''

तुरन्त वह एक तीव्र अट्टहास से भर उठी...हँ हँ हँ हँ...हँ हँ हँ हँ हुँ...यह उसकी कुण्ठा तो नहीं? यह उसका जबर्दस्त पराजय-बोध तो नहीं...यह उसकी लाचारी...बेबसी तो नहीं? ...हँ...कहीं...यह...। लेकिन वह यह प्रश्न किससे पूछ रही है। अगर कहें कि हाँ यह उसकी कुण्ठा है...पराजय है तो उसे दुःख लगेगा...अगर कहें कि नहीं ऐसा कुछ भी नहीं है तो उसे विश्वास नहीं होगा।

❑❑

वह कॉन्फ्रेन्स बीच में ही छोड़कर अपने कमरे में आयी थी। इरादे के मुताबिक सज-धजकर उतरी और गुरप्रीत की गाड़ी में बैठ गयी। उसके भीतर गुरप्रीत के प्रति आभार था और गुरप्रीत के भीतर एक महान पुण्य कमाने का सन्तोष एवं गर्व। भीषण तेज गति थी उसकी आकांक्षाओं की। उत्सुकताओं की। ''आह! मेरे घर। मेरे पिता। मेरे माता। मेरे सपनों में बसने वाले घर। मेरी नींद में रहने वाले घर। देखो! आ रही हूँ तुम्हारी तरफ। ईश्वर ने क्या दिन तय किया था हमारी मुलाकात का। आहा मेरे घर। बस अब थोड़ी दूरी पर ही सूनेपन की कैद में मेरे घर। मैं तुम पर वारी जाऊँ। मैं तुम्हारी आत्मा की बलि चढ़ूँ। मैं तुम्हारी खिड़कियाँ...दरो-दीवार चूमूँ। देखो चूम रही हूँ मैं तुम्हारी तरफ जाने वाले सारे पग—देखो। घर! मैं आ रही हूँ तुम्हारे पास। उड़कर आ रही हूँ प्रिय।''

''मैं सुन्दर हो उठी हूँ। मैं ठीकठाक हूँ। बच्चे ठीक-ठाक हैं। माँ? हाँ माँ भी ठीक है। पापा ठीक हैं। हम सब ठीक ही हैं...तुम्हारी दुआओं से घर, सिर्फ तुम्हारी दुआओं से।'' गुरप्रीत गाड़ी लाल मण्डी फिर महालेखाकार दफ्तर से घुमा कर ले गयी। जगह-जगह मार्ग-अवरोधक और बंकर थे।

अरे गुरप्रीत गाड़ी को मगरमल बाग से ले गयी। उसके ताऊ का विशाल घर फिर से भाँय-भाँय कर रहा है। उसे लगने लगा कि उसकी विशाल हो रही बाँहें सुधा के गले को बाँधे जा रही हैं अनुनय के साथ—विनय के साथ—''मुझे ले चलो न यहाँ से दिद्दा। इस अन्तहीन निर्जनता से मुक्त करो न...इस अनन्त अन्धकार से छुटकारा दिला दो न मुझे। क्या तुम्हें याद नहीं जब तुम खेला करती थीं मेरी गोद में। ताऊ मना करते थे...मैं नहीं न करता था...मैं कहता था न...खेलो...खेलो...जी भरकर खेलो...मेरी चौड़ी छाती पर खेलो...मेरी...प्यारी...नन्ही

गुड़िया...तुम्हें कुछ याद नहीं...?''

''मैं जानती हूँ...जानती हूँ मैं सब...याद है मुझे सब कुछ...मेरे ताऊ के घर...मेरे घर। अब हम आपस में भी वैसे कहाँ रहे। मैं ताऊ को तुम्हारे साथ ही ताऊ मानती पर वहाँ मैं उन्हें अपने बेटों या यों कहूँ अपने चचेरे भाइयों का पिता ही मानती हूँ। सच तो यह है वह भी सोचते हैं कि मैं भी उनकी बेटी कहाँ रही...कायापलट ने हर चीज की काया ही पलटी। पिछले दिनों जम्मू में उनका हाल पूछने गयी थी तो बोले थे, ''अब तुम मेरी बेटी-सी नहीं रही।'' मैं दु:ख से भर गयी, ''नहीं मेरे प्यारे-से ताऊ...मेरे पिता जैसे ताऊ...जैसे मैं अपने नन्हे से पिता और नन्ही-सी माँ को प्यार करती हूँ...ताऊ तुम्हें भी करती हूँ...नन्हे-से ताऊ...और उस इन्दिरा गाँधी-सी ताई से भी आयी लव यू आल...रियली आयी लव...।'' सुनकर सब हँस दिये थे। मैंने ताऊ से यह तुम्हारी ओर से भी कहा था...मेरे ताऊ के घर। तुम्हारे अस्तित्व में वे सब मौजूद हैं...सब के सब। इन सब घरों में वे सब हैं जो वहाँ रहा करते थे...यह दारुण है...अवर्णनीय है...कैसे कहें...कैसे समझाएँ।''

गुरप्रीत बोली, ''क्या सोच रही हो...।'' अँग्रेजी में।

''तुम अपने साथ कुछ बोल रही थी।''

''अच्छा।''

''अरे हाँ।''

''गुरप्रीत यह ताऊ का घर आया न...एक पूरा जीवन ही आया मेरे सामने। कितनी बातें, कितनी गहन-गूढ़ बातें, कितनी उलझी हुई गुत्थियाँ...कितनी एक-दूसरे पर चढ़ी...भीड़ हुई गहन, गम्भीर, जटिल स्मृतियाँ, कितनों का तो शिकार हो जाता है आदमी। गुरप्रीत! इस आँगन में मैं खेली हूँ। इस सड़क पर सैकड़ों बार चली हूँ। यहाँ से घर और घर से यहाँ प्राय: आयी हूँ। अब यही रास्ता, यही घर मुझसे शून्य है। मेरे उन सबसे शून्य हैं जिन्हें मैं अपना ताऊ, सारिका, ताई, माँ...पता नहीं क्या-क्या, अपना ईश्वर मानती हूँ। यह संसार मुझसे आपूरित था। अब मेरे प्रेतों से ओत-प्रोत है।

''गुरप्रीत सच बताऊँ मुझे एक विभ्रम हो रहा है, देखो ताऊ का घर पीछे छूट रहा है, मुझे लग रहा है वहाँ अन्दर मेरी ताई है...जो कि रसोई में कुछ पका रही है। नौकर को कुछ निर्देश दे रही है। मुझे लग रहा है कि शायद माँ भी वहाँ है। ताई से मिलने गयी है। मुझे लग रहा है वह सब कुछ वैसे का वैसा ही है। कुछ भी नहीं हुआ इस बीच। मैं स्वप्न देखकर जाग रही हूँ जैसे और देखो तुम्हारी गाड़ी में ताऊ के घर से अपने पिता के घर जा रही हूँ। जहाँ सब हैं। माँ राजयोग गयी है, मुरली सुनने। दिन के समय जाती थी। बगल में उनका आश्रम था। भाभी

जरूर चाय बना रही होगी पापा के लिए। और पापा? वह हुक्का पी रहे होंगे या अपने गुरु की दीक्षा के अनुसार धागा लपेट रहे हैं। भैया अपने कारखाने में नीचे व्यस्त हैं। हम जिन्दगी में मग्न हैं। मग्न। मुसलमानों के तिरस्कारों के बावजूद। गुरप्रीत! उनकी उपेक्षा के शब्दों के बावजूद। हमें जीना आता था इनके साथ। वे थकते हमारा तिरस्कार करते और अन्ततः एक दिन हमारी सहिष्णुता के आगे हार जाते। मगर बन्दूक ने उनके कौन-से सपने पूरे किये गुरप्रीत।''

गुरप्रीत जो अब तक तन्मयता के साथ सुन रही थी, बोली, ''आपको घर छोड़ कर जाना नहीं चाहिए था, सुधा।''

''हम क्या करते?''

''अरे सामना करते, मुकाबला करते।''

''गुरप्रीत! तुम जैसी समझदार महिला से मुझे इस तरह के विचार की आशा न थी...आखिर तुम तो सब कुछ जानती हो। तुम दिल्ली से आये उन संवाददाताओं की तरह यह नासमझ बात कैसे कर रही हो, मुझे हैरानी है।''

''हम कैसे रह रहे हैं।''

''तुम जैसे अपवाद तो हमारे समुदाय में भी मिलेंगे। जैसे सुजाता तिक्कू। पर सुजाता तिक्कू एक विशेष वर्ग की प्रतिनिधि है। उसी तरह से तुम हो। डिगियाना जम्मू में आकर देखो कितने असंख्य सिक्ख परिवार हैं जो विस्थापित हैं। मासिक राहत पाते हैं। भला हम कैसे मुकाबला करते?''

''जैसे हमने किया।'' गुरप्रीत अपने को पूरा सिख समुदाय मान रही है और इस समय उसको पड़ोसियों से मिलाने या घर? ले जाकर वह एक सूक्ष्म से गर्व में लिपटी जा रही है। स्थूल बोल रही है और स्थूल सोच रही है।' सुधा ने सोचा।

अभी-अभी समाप्त हुए कॉन्फ्रेन्स के सत्र में उसने कहा था, पण्डित हमको 'ज़्वव-सिक्ख' कहकर चिढ़ाते थे।

सुजाता तिक्कू और सुधा हतप्रभ हो उठी थी...कुछ क्षणों के विचार के बाद सुजाता बोली थी, ''पण्डित बोलते थे या यह मुसलमानों की दी हुई चिढ़ है? क्या कहती हो गुरप्रीत। अच्छी तरह से विचार करना चाहिए।'' मामला थोड़ा हड़बड़ी और नर्म-गर्म बातों के साथ ही रफा-दफा हुआ था। सुधा समझ गयी थी कि गुरप्रीत दरअसल बहुसंख्यक स्त्रियों में अपने प्रति एक प्रीति उत्पन्न करने का प्रयास कर रही थी, और संवेदनशील होने के अपने सरोकारों से एकदम विमुख हो रही थी।

'और इस समय वह मेरे प्रति दया-भाव रख रही है।' उसने खुद से कहा। वह ताऊ के घर के विभ्रम से बाहर आयी थी और पूरी तरह वर्तमान में थी। पर विभ्रम में ताकत थी। वह क्षणांशों में उसी लोक में चली जाती थी। उसे शतशः

लगता कि नहीं सब कुछ वही है। हर कोई वही है। वे भी वही हैं, सब बच्चे बरामदे पर ऊधम मचा रहे हैं...और किरायेदारों का आना-जाना जारी है।

नगरपालिका कार्यालय से गुरप्रीत मुड़ गयी। नया सचिवालय मार्ग सुरक्षा कारणों से बन्द है। वह गली के एक-एक नुक्कड़ को ध्यान से देख रही थी। वह इन सबको सलाम बोलने का दम रखती है। एक-एक बिजली के खम्भे को पहचान रही है। यहीं से वह और उसकी छोटी बहन खेलते-खेलते स्कूल से लौटा करती। कभी-कभी इन खम्भों की ओट में छिपकर फिर दिख जाती। ये वही रास्ते हैं, प्यार के रास्ते।

"ये रास्ते हैं प्यार के...गुरप्रीत, गाड़ी चलाओ धीरे-धीरे...सँभल-सँभल के...।"

"...हाँ...हाँ...।" वह जैसे गर्व की परत को सायास हटाकर हँस सकी। 'कैसा होगा वह क्षण जब वह घर की गली में घुसेगी... ? या उस तक पहुँचेगी। कैसा होगा उसका घर, उसके पिता का घर...कैसा होगा...कैसे देख पाऊँगी मैं उसे...कैसे मैं मिला पाऊँगी उससे आँख... ?' वह बराबर आत्मालाप में व्यस्त है।

तभी गुरप्रीत कुछ क्षण पूर्व बोली भी थी।

"तुम अपने ही साथ कुछ बोल रही थी।"

"हालात वैसे नहीं हैं क्या?" वह बोलना चाहती थी पर उसे गुरप्रीत की समझ पर से विश्वास अब उठ चुका था।

उसे लगने लगा कि रास्ते तंग हो गये हैं। सड़कें या राजमार्ग एकदम गलियाँ जैसी लग रही थीं और गलियाँ बेहद सिकुड़ गयी हैं। सड़कें वीरान हैं। गलियों में से साजिशें करती...खुस्स...फुस्स की-सी ध्वनियाँ आ रही हैं।

शिवालय का मार्ग! अरे...रे...रे...। "म्यानि शिवाल...हवाल छसस...।" माँ की यह तुकबन्द प्रार्थना एवं समर्पण...अरे भई। अपने को हवाले कर दिया शिव के। उसने उठाकर फेंक दिया...पटक दिया। अब यहाँ है अकेला।

राउटर का मुश्ताक बोल रहा था न हम सब शिव के पुजारी हैं। पैंतरे बदलू लोग। हमारी ही जूठन ये लोग। हमारे ही धर्म से गये थे भीरु। पता ये क्या-क्या ज्वालामुखी उद्गार और नेत्रजल। सब गड्ड-मड्ड।

गुरप्रीत से उसका विश्वास उठ गया है अतः गुरप्रीत को पता न लगे उसके भीतर के ज्वालामुखी के बाहर फटने का। उसे एक विचार सूझा—दरअसल ज्वालामुखी दो बार फटते होंगे। एक जब वे सिर्फ स्वयं जानते हैं कि वे फट रहे हैं और दूसरा जब वे फटते हैं और दुनिया उसकी चपेट में आती है। उसका समुदाय अभी पहला फटना ही फट रहा है। समय आएगा...जब वह गुरप्रीत को भी ले डूबेगी...पाकिस्तान को भी...और हिन्दुस्तान की सोयी हुई जनता को भी।

''अरे नीलम सिनेमा! यहाँ मैंने कितनी फिल्में देखी हैं। बहुत कम। मगर याद है किस-किस फिल्म का बोर्ड इस सिनेमाघर पर चढ़ा है और उतरा मानो वह एक-एक फिल्म मैंने कल्पना में देखी है। वह 'नया दौर' फिल्म में चिलम पीती हीरोइन। अरे राम। उस दिन जिगरी आयी थी...आते ही बोली थी ''...क्या फिल्म आयी है नीलम सिनेमा में। लड़कियो! क्या दौर आया है। कोई वक्री औरत उसमें आधी नंगी...चिलम पी रही है...तोबा...तोबा यह फिल्म अगर लड़कियाँ देख लें।''

जिगरी का मतलब था कहीं उसकी भाई की लड़कियाँ ये सब खुराफात न देखें और बिगड़ न जाएँ।

इसी सिनेमा से जब रात के बारह बजे अन्तिम शो समाप्त होता तो एक खास वर्ग के लोग...मजदूर...खुशी की सीटियों से सारा मुहल्ला जगा देते। हर कोई हीरोइन को अपनी-अपनी समझकर उसके प्रेम में पागल उसे अपने दिल में दाबे बाहर निकलता और मुहल्ले का जमीन-आसमान जिन्दगी की फुहारों से भींग उठता, ज़िन्दगी की पुकारों से खड़ा हो जाता, रोमांचित हो उठता, ज़िन्दगी की खेप पाकर मधुर नींद सो जाता।

उसी मुहल्ले में कौन आये? बन्दूकधारी। कहाँ से भला? और कहाँ गये वे सिनेमा देखने वाले प्रेमी मवाली। वे रंगीन प्यारे से मवाली...या वे शिव के पुजारी।

''क्या सोच रही हो।'' गुरप्रीत फिर अचानक बोली थी।

वह चौंक उठी। ''क्या मैं फिर अपने साथ कुछ बोल रही थी।''

गुरप्रीत ने न हाँ कहा न ना। सिर्फ एक मन्द मुस्कान मुस्कायी।

''हम घर के बहुत नजदीक पहुँच गये हैं गुरप्रीत!...गुरप्रीत यहाँ से मेरा दूल्हा आया था। और यहाँ से मैं उसके साथ निकली थी...और यहीं से मैं सदा के लिए बच्चों को लेकर चली गयी। जिन्दगी को बचाने के वास्ते। आत्मा को यहाँ फैलाकर...आसमान की तरह...जमीन की तरह फैलकर...यह एक बहुत लम्बी दर्दनाक दास्तान है। तुम इस दर्द की दास्तान के मर्म को जानने की कोशिश नहीं करती?''

मुख्य पार्क की झलक उसे दिखने लगी है। गुरप्रीत ने समझदारी से गाड़ी धीरे-धीरे चलायी है इस इलाके में। पार्क की हालत देखकर उसका दिल टूटने को हुआ। पार्क की सारी ग्रिल टूट गयी है। पार्क की हरियाली, क्यारियों की तरतीब, ग्रिल के नीचे के पत्थरों की नींव के पत्थर उखड़-उखड़कर बिखर गये हैं...ठीक पाण्डव लरयों (घरों) की तरह।

उसकी आँखों में पट्टन राजमार्ग पर खड़े पाण्डव खँडहर सजीव हो उठे।

वह सोचने लगी पाण्डवों के खँडहर इधर। पाण्डव किधर? कैसे उठाये होंगे शिलाखण्डों से वे पत्थर और बनाये होंगे घर। कैसे बसे होंगे वे वहाँ, लगे होंगे बिस्तर। लगी होगी ठण्ड पाण्डवों को। आये होंगे फिर पाण्डवों के विशेषकर अर्जुन के प्रेम में या द्रौपदी के प्रेम में आविष्ट श्रीकृष्ण इधर। सहस्राब्दियों पूर्व की बात वह...कुछ वर्षों पहले की बात यह...यह पार्क का खँडहर...जबकि कौरव, लगता है जीत उठे हैं इस बार और दिया गया है पाण्डवों को सतत वनवास।

वह पार्क के उन बिखरे हुए निस्सहाय पत्थरों को घूर रही थी मानो आँखों आँखों से ही उनसे बतियाने की कोशिश कर रही हो। उसके सामने पत्थरों की आँखों की पुतलियाँ हिलने लगी हैं, लोहे की ग्रिल के हाथ असहाय हो ऊपर उठे हैं मदद की गुहार करते। उसे क्या हो गया है। उसे क्या दिख रहा है। उसे कैसा दिख रहा है, किसी को नहीं पता। अगर गुरप्रीत जान जाये तो क्या हो।

आगे बढ़ते ही तिकोणी पार्क का भी उसने यही हाले-बद देखा। यह पार्क ज्यादा नजदीक है घर के। इस पार्क से कहीं ज्यादा गहरा रिश्ता है उसकी आँखों का। और सामने है अधजला, अधटूटा स्कूल। उसका चिरपरिचित स्कूल। जहाँ उसका भाई बिट्टू पढ़ा है।

''अब दायीं से।'' गुरप्रीत ने स्टियरिंग दायीं तरफ घुमाया। सुधा पूरी हृदय हो उठी है। आपादमस्तक। और आपादमस्तक हृदय होकर धड़क रही है।

नुक्कड़ पर गुरप्रीत ने कार रोकी। उसने कार के शीशे से ही एक चोर नजर अपने घर पर डाली।

कुछ नहीं बदला-सा लगा वहाँ। जरूर घर स्पन्दन से काँप-सा उठा होगा। अभी कार से उतरकर वह उसे जमकर गले लगाएगी।

वह कार से उतर गयी, मानो दुलहन उतरी हो। या मानो किसी दूसरे लोक से आयी कोई परी हो या दिल निकालकर ले जाने वाली कोई माया हो। हर एक की अपने-अपने ढंग से प्रतिक्रिया हुई। जलबोबा की बहुओं को मानो कोई आसमानी आवाज हुई हो, ''दिद्दा आ गयी...अरे सुनो तो दिद्दा आ गयी...अरे सुनो तो दिद्दा आ गयी...।'' शोर मच गया।

जलबोबा का घर ऐन एकदम सामने हैं, उसके पिता के घर के। उसका घर उन्हीं को सबसे ज्यादा परेशान कर रहा है...तंग कर रहा है एकदम। अपनी उदासी, एकाकीपन और अपनी निर्जनता से। अपनी उपस्थिति से।

जज-साभा दौड़ाकर अन्दर गया, ''मम्मी, अरे मम्मी...दीदी आ गयी है...।'' उसका चेहरा लाल हो उठा था।

जलबोबा की दोनों बहुएँ रफीका और जमीला बाहर आ गयी। और गले मिलने को व्यग्र हो उठीं। जब सुधा रफीका से गले मिल रही थी तो जमीला को

इन्तजार करना पड़ रहा था। जो उसे खल गया था।

''कोई दिन नहीं जाता दिद्दा जब तुम्हारा जिक्र नहीं होता...कोई दिन.ऐसा नहीं जाता...वल्लाह...खुदा की कसम। अभी-अभी हम तुम्हारी ही बातें कर रहे थे...खुदा की कसम...अभी...अभी कुछ पल पहले... तभी जज-साभा दौड़ता हुआ आया और चिल्ला उठा '...दीदी आ गयी...ब़ाबी की बेटी दिद्दा आ गयी।' हमने सोचा पता, नहीं क्या बोल रहा है। यह तो अविश्वसनीय था। यह कैसे विश्वास के योग्य था। ऐसा तो बस सिर्फ ख्वाब में होता है न। पर कभी-कभी ऐसा क्षण आता है जब एक लम्बा इन्तजार खत्म होता है, या एक मरी हुई आशा जी उठती है। एक लम्बी जिज्ञासा तृप्त हो उठती है।

''तुम्हारी यह खिड़की...ये सारी खिड़कियाँ...यह बरामदा...हमेशा हमसे मुखातिब रहता है।...हमें अक्सर विभ्रम रहता है कि अन्दर तुम हो। कुछ काम कर रही हो। कभी-कभी बाबी का पाठ ऊँची आवाज में गूँजता है। मुहल्ले का काम रुक जाता है।...वल्लाह...दिद्दा...।'' जलबोबा रो रही थी और सुधा की माँ को याद किये जा रही थी...उसकी गूँज को गुँजा रही थी।

वह एक अद्‌भुत और दुःखद दिव्य उल्लास में थी, मानो सपने में अपने पूर्वजों से मिल रही हो। सपने के क्षण युगों समान होते हैं। जब जीवन समय से भरपूर होता है तो जरा भी खयाल नहीं रहता कि हम क्षणों को युगों जैसी लम्बी तीव्र स्मृति-हवि कर रहे हैं, जिसमें उनकी मन-समिधा गिरती रहेगी...धधकती रहेगी...ज़रा भी गुमान नहीं होता।

जलबोबा की हिचकी बँध गयी थी। वह अपनी पूच से आँसू पोंछने के लिए रुक रही थी कि रफीका रसोई से आयी और बोली, ''सच, कभी-कभी आधी रात को पापा जी खाँसते सुनाई देते हैं। एक दिन इन्तयाज़ साहब सुबह-सुबह ऐसे चौंकते हुए बोले—'अरे सुनो। आज सारी रात पापा जी ने लीला गायी। बोबा मैं सच कह रहा हूँ वह गा रहे थे...होश दिम लगयो पम्पोश पादन हा साधन हुंदि साधो हो...और मैं रो रहा था पापा जी तो इतना रोये कि क्या बताऊँ...अरे मैं सुनता रहा...और सोचता रहा कि कौन कहता है कि बाबी वाले चले गये हैं...सब तो हैं भीतर। सब। वह देखो पापा जी की लीला सुनो...' और दिद्दा धम्म धम्म करके सीढ़ियाँ उतरकर आयी और अपनी डाक जो सीढ़ियों पर डाकिया छोड़ गया था समेट कर ले गयी।''

सुधा ने सोचा, ''हम एक सिक्के के दो पहलू हैं। ये यहाँ हमारे सपनों को ढो रहे हैं, हम वहाँ इनके साथ होने के सपनों का निर्वाह कर रहे हैं! इन पर यहाँ विभ्रम के आक्रमण हो रहे हैं और हम पर वहाँ।''

''हाय खुदाया...।''

"वाह्य खुदाया...।"

जलबोबा की दोनों आवाजें नाभि से उगकर आयीं और कानों के रास्ते से उसकी नाभि में उतर गयीं। कितनी बातें करनी हैं उन्हें। कितनी दास्तानें पूछनी हैं उन्हें। किन-किन मराहिल से दोनों गुज़रे। किस बात को कैसे पूछें। कहाँ से शुरू करें। समय कम है। गुरप्रीत चाबियों का छल्ला धीमे-धीमे घुमा रही है और पूरे आलम पर बड़ी ही अचूक नजर रखने की कोशिश में है। उसका सारा समय गुरप्रीत का दिया हुआ है। उनका सारा समय भी गुरप्रीत के ही पास है। वे सोचते हैं कि दिद्दा उनके पास क्यों न ठहरे। आखिर किस नजदीकी या रक्त सम्बन्ध से कम है यह सम्बन्ध। आखिर किस अकाट्य विरह के अन्त की तरह है यह मिलन...मगर। "हचकुकिल वाले ठीक हैं जलबोबा?" दो लम्बी आहें खुदा को समर्पित करने के बाद उसके आँसुओं की झड़ी लग गयी थी। उसको सबने रोने दिया था। वह पूच से बराबर अथाह बह रहे अश्रु पोंछ रही थी। बाबी के घर को देख रही थी। जितने पोंछ रही थी उतने ही वेग से अश्रु बहते जा रहे थे। उसने इन आँसुओं में एक बेहतरीन विषय छेड़ा था हचकुकिल का। प्राय: उसकी माँ और जलबोबा आपस में हचकुकिल की बुराई करतीं। आलोचना करतीं। उन दोनों का अद्‌भुत समीकरण था। दोनों धार्मिक महिलाएँ थीं।

सुधा मन के एक कोने में सोच रही थी कि अभी कान्फ्रेंस में मीनाक्षी 'धार्मिकता' पर कुछ बोलना चाहती थी। क्या होती है 'धार्मिकता'। समीकरण बनाती है 'धार्मिकता' धर्मान्ध नहीं बनाती। वह बहुत गहरी उलझी गुत्थी अपने भीतर सुलझती हुई-सी महसूस कर रही थी।

सुधा की माँ यानी भट्टिनी नियमों के पाबन्द जीवन जीती। मानो भगवान पतंजलि के नियमों को उसने विशद और विस्तृत रूप से आत्मसात किया हो। वह अद्‌भुत शुचिता, वह अद्‌भुत समय-बद्धता। मन्दिर जाने की। शिवजी पर जल चढ़ाने की। स्नान की। सन्ध्या की। भजन-श्रवण की। जलबोबा क्या। सारा मुहल्ला उसकी कद्र करता था। यहाँ तक कि हचकुकिल भी, जो मुहल्ले की आँखों में एक बेहद चालाक और मक्कार और अधर्मप्रवृत्त स्त्री थी। जो बड़े लोगों से अपने सौन्दर्य के बल पर अपने काम निकलवाने में माहिर थी। फिर भी बाबी की धार्मिकता को कुफ्र नहीं...धार्मिकता या खुदा दोस्ती ही कहती थी। बाबी को मानती थी। उसमें एक लुकी-छिपी श्रद्धा भी रखती थी।

उसकी बेटी जमीला की जिस दिन शादी थी, बारात बारामूला से आनी थी। नभ पर सघन मेघ थे। हचकुकिल रो रही थी। अपने फिरन का दामन ऊपर की ओर उठा-उठाकर माँग रही थी कि बारिश न कर खुदा। ऐ खुदा, रहम कर। जमीला विदा हो तब बरस। उसे फिर एक तरकीब सूझी थी। दुलहन जमीला बाबी के

पास आयी हचकुकिल के साथ। पैर छूने की कोशिश करके सजल नेत्रों से बोली थी, "बाबी, भगवान से कृपा माँग। बारिश न हो। बाबी, तुम्हारी माँग को भगवान कभी रद्द नहीं करेगा। बाबी, माँग। भगवान तुम्हारी बेटियों के गुलजार खिलाएगा।"

भट्टिनी एक जिम्मेदारी के बोझ से लद गयी थी और एक धागा बाँध प्रार्थना में जुट गयी थी। जमीला की बारात खूब विदा हुई। अगले दिन रत्नदीप सजाकर धागा काटा और शिवजी पर खूब दही मला।

उसे क्या-क्या याद आ रहा है। कितना कुछ याद आ रहा है। उसके पास उतनी जगह है क्या जितनी यादों की सम्पदा उसके पास है...।

"मैं उस कमीनी से बोलती नहीं...।"

जलबोबा ने अपने आँसू पोंछ अपने को सँभालते हुए कहा था।

"खुदगर्ज कहीं की। अपने मतलब की यार...यारों वाली...सब पर शक करती है।"

सुधा ने जलबोबा के घर में घुसते हुए एक सरसरी नजर हचकुकिल के घर की तरफ दौड़ायी थी और उसे सब कुछ जैसे मलिन...धूमिल...धूसरित-सा लगा था। कहीं कोई गड़बड़ है हचकुकिल के जीवन में...। उसे लगा था।

उन दिनों जिस वेग से हचकुकिल आर्थिक तरक्की के रास्ते पर थी, वह वहीं थम गयी थी, जहाँ उन्होंने उसे छोड़ा था भागने के समय। आगे वह चल नहीं पायी है—उसने मन-ही-मन कहा, 'ले-देकर एक कार उसके द्वार के सामने खड़ी है।'

"आप उस दिन कम-से-कम हमको बताकर जाते...वल्लाह...हहँ आपका विश्वास हमपर से भी उठ गया क्या? बड़ा अफसोस रहेगा इसका...।" जलबोबा का बड़ा बेटा बोला था। वह उस दिन का ज़िक्र कर रहा था जब वे रात्रि के अन्तिम प्रहर के अन्धकार में बिना आवाज किये भाग गये थे। और जब टूरिस्ट सेण्टर पहुँच गये थे तो विश्वास नहीं हुआ था। फिर जब बस की टिकटें मिली थीं, तो जान में जान आयी थी। जब बस चल पड़ी थी तो कुछ और गारण्टी मानो मिल गयी थी जिन्दगी की और जब अनन्तनाग के एक गाँव से गुजरते हुए एक पेड़ से, जिसकी शाखों पर एक भी सब्ज़ या सूखा पत्ता नहीं था, एक लाश अकड़ी लटक रही थी, तो सब स्त्रियाँ चीख उठी थीं। मर्दों ने स्त्रियों को हिदायत दी थी कि चुपचाप दुबकी रहें...कम-से-कम जब तक जवाहर सुरंग पार न हो।

"यह किसी पण्डित जी की ही लाश होगी...।" बस का कण्डक्टर बोला था। "कल अखबार में आएगा।" वह फिर बोला था। वह अपने विश्वास की अडिगता को व्यक्त करना चाहता था।

टूरिस्ट सेण्टर का भयावह नज़ारा। सिर्फ पण्डित। पण्डित स्त्रियाँ। पण्डित

लड़कियाँ। पण्डित बीमार। पण्डित बच्चे। पण्डित बूढ़े...पण्डित...पण्डित...पण्डित।

उस समय सुधा की भाभी टिकट काउण्टर पर टिकट खरीदने के लिए क्यू में खड़ी थी और उसने अपने और भाई के बच्चों को विचित्र भय के साथ पकड़े रखा था। वहाँ से गुजरे थे कई लोग जिनके चेहरे एक खास छींटदार कपड़े से बन्द थे। नकाबपोश! वे एक-दूसरे से आँखों-आँखों से ही संवाद-विनिमय करते। जरूर वह भट्ट-समुदाय को भगाने के अपने उपायों के कारगर होने की प्रतिशतता की तसदीक फरमा रहे थे। एक मोटा, गोरा और कद्दावर आदमी जो गैर-कश्मीरी भी लग रहा था, अपनी यजदी रोककर एक विशेष कोण से भागती हुई भट्टों की भीड़ को निहार रहा था...और एक भीषण खुशी उसके चेहरे पर नाच रही थी। वह भट्टिनियों पर एक भेदती हुई नजर डालता जा रहा था, जो टिकटों को खरीदने के लिए असाधारण लम्बी कतारों में खड़ी थीं। और इस लम्बाई में लम्बाई और जुड़ती जा रही थी। तब एक विचित्र आनन्द मन में भरकर, जो उसके चेहरे पर फैला हुआ था, उसने एक नाटकीय अन्दाज में यजदी मोड़ा। होठों पर एक दबी मुस्कराहट थी और नकाब को ठीक कर वह वेग से फट-फट-फट करता हुआ गया। मानो वह क्या उसका वह यजदी तक भट्टों के भागने की घोषणा कर रहा हो, वियज की घोषणा कर रहा हो, हिन्दुस्तान के एजेण्टों को भगाने की घोषणा कर रहा हो और निष्कर्षत: आजादी की घोषणा कर रहा हो।

वह दहल भी गयी थी और कहीं से उसे उसके जाने से राहत भी मिली थी। "चितरंजन! तुमने देखा उस आदमी को?" सिर्फ पाँचवीं कक्षा में पढ़ रहा उसके भाई का नन्हा-सा बेटा, जिससे उसने थोड़ी-सी बात करनी चाही।

"हाँ दीदी...क्या आतंकवादी था?"

"हाँ...तुझे नहीं लगा?"

"हाँ लगा न, तभी तो पूँछ रहा हूँ।"

"अब हमें टिकट मिल जाती...हम बच के निकल जाते। सारे भट्ट यहाँ इकट्ठे हैं। बहुत खतरा है। पीछे दिन निकलने पर हमसायों ने देखा होगा कि हम ताला लगाकर भाग चुके हैं...अब हम वापस भी नहीं जा सकते।"

वह समझ रही है कि भाग रहे समुदाय में सभी का यही हाल है। कोई किसी से बात ही नहीं कर रहा। सब पस्त हैं। स्वयं को मरे हुए जीवित मान रहे हैं। सबको पता है इस भागने वाली भीड़ के इर्द-गिर्द मुजाहिद मँडरा रहे हैं...गिद्धों की माफिक।

रामवन पहुँचकर बस के सभी सवार यात्रियों ने एक-दूसरे से वार्तालाप करने की शुरुआत की पहल की थी...और जम्मू पहुँचकर वे तैयार हो उठे थे गीता भवन में अपनी बरबादी का जश्न मनाने के लिए।

“हम आपसे क्या कहते। सब पर से विश्वास उठ गया था। हम शायद न जाते पर हचकुकिल उन दिनों रोज घर आती और कहती, “कब जा रहे हो...”

“जाना ही ठीक रहेगा।”

“तुम्हें पता है करफली मोहल्ले की मेरे मायके वालों की पड़ोसन शीला परसों गयी। कितना रो रही थी। ओले बरस रहे थे उसकी आँखों से। लेकिन जाना ही था। जाना पड़ा। चारा क्या था। नहीं तो जिन्दा नहीं बचती।”

जिस दिन जे.के.एल.एफ. ने दीवारों पर इश्तहार चिपकाये कि पन्द्रह से पचहत्तर की उम्र के भट्टों की फेहरिस्त बन चुकी है, और इसी उम्र की स्त्रियों की फेहस्ति भी बन चुकी है। पुरुष जिबह होंगे और स्त्रियों को हम भोगेंगे। उस दिन मैं हिम्मत करके दफ्तर के लिए निकली थी, पर यह सुनते ही प्राण निकल गये। सब भट्टिनियाँ वापस आयीं। जब वापस आयी और सीढ़ियाँ चढ़ रही थी तो देखा हचकुकिल ऊपर आयी है और भाभी से कह रही है, अरे तुम अभी यहीं हो। इससे पहले कि कुछ ऐसा-वैसा हो जाए, तुम चले जाओ। उस दिन हचकुकिल के पीछे उसका बेटा शब्बीर भी था। वह भैया से मुखातिब होकर बोला था, “देखो काका जी, हम पर कोई जिम्मेदारी नहीं चढ़ाना। तुम्हें जाना चाहिए। कुछ पता नहीं किस क्षण क्या हो...फिर न कहना कि खबर न दी...समझे...पचहत्तर प्रतिशत भट्ट चले गये...क्यों यहाँ नाहक मरने के लिए रुके बैठे हो...सबके पास बन्दूक तो आ गयी है...तुम्हें पता तो है।' क्या ये बातें भयानक...नहीं थी? हमें भगाने की नहीं थीं?”

“सही है...पर आप समझ जाते कि इनकी आपकी सम्पत्ति पर नजर थी।”

“वही थी। क्या हम नहीं जानते। पर नहीं जाते...तो शब्बीर बन्दूक का इस्तेमाल करता। कम-से-कम जान तो बचायी। उस दिन माँ के साथ शब्बीर जो आया था...यही भाषा तो बोल रहा था।”

“बोल क्या रहा था। वह आतंकवादी था ही। बाद में छोड़ दिया।...पर हम पर कुछ विश्वास करते।” जलबोबा का बड़ा बेटा बोला, “क्या आप हमें बचाते?...बचा सकते?”

“बस करो तुम बेटा। यह दारुण बात है। यह जख्म कुरेदो मत। सही किया जो नहीं कहा इन्होंने हमें...और चुपचाप चले गये...जान बची तो लाखों पाये...हम भी तो मुसलमान ही हैं...एक ने सुम काटी हजारों डूब गये...अब इनके लिए सब मुसलमान एक हैं, चाहे हचकुकिल हो या जलबोबा, चाहे शब्बीर हो या तुम। गलत हुआ इनका जाना। गलत हुआ। बहुत गलत हुआ...गुनाह हुआ...बड़ा...बड़ा गुनाह हुआ। खुदा किसी मुसलमान को नहीं बख्शेगा।”

जलबोबा उस पर मरहम लगा रही थी। जलबोबा प्रायश्चित्त के लिए फट

रही थी। यही थी जलबोबा की धार्मिकता।

'यही धार्मिकता है...धर्मान्धता धार्मिकता नहीं है।' सुधा खुद से मुखातिब हुई।

कल की कॉन्फ्रेन्स में मीनाक्षी ने बड़े लच्छेदार शब्दों में कहा था, 'दिल्ली में मेरे पास धार्मिकता पर ढेर सारा साहित्य है। जब वह दिल्ली जाएगी, वह उस साहित्य को किसी के लिए भी उपलब्ध कराएगी। ओह हो हो...मीनाक्षी मुझे कुछ नहीं पढ़ना तुम्हारा धार्मिकता पर साहित्य। बाल की खाल। जलबोबा मेरे सामने जीवन्त धार्मिकता की विशेषज्ञ गुरु है। देख लिया और समझ गयी। सुन लिया और समझ गयी धार्मिकता। इसीलिए जलबोबा एक पक्की मुसलमान है। इन्सान है। इन्सान होना धार्मिक होना।' उसका आत्मालाप फिर मुखर हो गया।

एक बड़ी-सी राहत का विस्तार हुआ था जलबोबा के शब्दों से। गुरप्रीत के चेहरे पर लाली दौड़ी थी जलबोबा की खोज से।

जलबोबा ने गुरप्रीत को भी प्यार से कहा था, "बेटी! मैं तुम्हारी कर्जदार हूँ। जानती हो यह मेरी बेटी है...और कब से जिगर फट रहा था इसे देखने के लिए...कैसी बेटी है यह मेरी। इस पर मुझे फख्र है...इसकी छोटी बहन दीप्ति पर फख्र करती हूँ। बी. ए. के बाद वह दिल्ली चली गयी...पढ़ाई के लिए...फिर...तो...खैर क्या हुआ...पर जब तक सब-कुछ सही-सलामत था और वह जब भी आती मेरे लिए क्रीम रंग की शिफॉन की पूच जरूर लाती। यह पूच उसी की है...दीप्ति की।" उसने सिर का कपड़ा दोनों हाथों से छूकर जोर देकर कहा।

"बोबा उसकी पूच के अलावा और कोई नहीं पहनती। एक धोयी दूसरी पहनी...पर उसी की।..." जलबोबा की बहू ये शब्द बोली थी जैसे नाभि से बोल रही हो...पूरे आवेग और हृदय की धड़कनों समेत।

बस वह सुन रही थी। सुन रही थी पूरे समुदाय की तरफ से। सुन रही थी माँ की तरफ से...सुन रही थी और मौन होती जा रही थी...शिव के सान्निध्य में चली जाती हुई-सी महसूसते हुए।

रफीका दूध का कप लायी थी। पोते-पोतियाँ शीट इत्यादि बिछाने लगे थे और दिद्दा को एक आश्चर्य की भाँति निहार रहे थे। बिना पलक झपकाये। बस निहार रहे थे। इस बीच वहाँ बिटा भी आया जो बेहद खूबसूरत मगर टेढ़े पैरों वाला था।

"अरे बिट्टा तुम ठीक-ठाक चल रहे हो अब?" वह लगभग चीखी थी।

"अरे दीदी। मेरी प्यारी दीदी। माँ ने मेरा ऑपरेशन कराया दिल्ली में। हम आपको वहाँ बहुत याद कर रहे थे। राहगीरों को ध्यान से देखते थे...सोचते थे

कि कहीं आप लोग मिलेंगे। मगर इतनी बड़ी दिल्ली में आप कहाँ मिलते। हमने सुना था कि आप दिल्ली में हैं। शामा आण्टी ने बताया था पर उसे भी आपका पता मालूम न था।''

''अरे बेटा...हमारा पता ही कहाँ है। हम तो घर-घर घूमते हैं। कभी एक मकान में...कभी दूसरे मकान में। कभी एक मुहल्ले में, कभी दूसरे मुहल्ले में। कभी पूर्व में, कभी पश्चिम में। खैर, यह बहुत बड़ी खुशखबरी है। खुदा का शुक्र कि तुम्हारे पैर ठीक हो गये हैं।''

''मगर...दीदी...।'' बिटा उदास हो गया। सुधा समझ गयी कि वह अपनी छोटी बहन के अचानक विधवा हो जाने के लिए दु:खी हो उठा है। मानो कह रहा हो कि तुम अच्छा समाचार कह रही हो, पर बुरा समाचार भी तो है। जो कि पहले ही किसी-न-किसी जरिये से सुधा तक पहुँच चुका था।

बिटा की बहन। सुन्दर बहन। एकदम बिजली गिराने वाला सौन्दर्य, अतीका? थोड़ी-सी रहस्यमयता के साथ जीनेवाली अतीका। अपने चचेरे भाई के साथ लम्बे प्रेम के चक्कर के बाद जिसकी शादी एक बैंक मैनेजर से हुई थी। शादी से पहले...उसे पता चला था कि अतीका का प्रेम...एक पूरा अध्याय है।...वे ग़ालिब के शेर...शेर का वह बन्द...जब तवक्को ही उठ गयी ग़ालिब...और कुछ उसकी की हुई शायरी...

अतीका चुपचाप दिद्दा के पास आयी थी। कमरे का दरवाजा बन्द कराके दिद्दा से सारी रहस्यमयता बयान की थी। और कहा था, ''मैनेजर को पता चला है, अब वह इस तरह की खतरनाक चिट्ठियाँ लिख रहा है...और उसमें खतरनाक शायरी भी बयान कर रहा है...मैं क्या करूँ। कैसे विश्वास दिलाऊँ उसे कि मैं उसके प्रति वफादार हूँ और उससे भरपूर इश्क फरमा रही हूँ।'' गरज कि दिद्दा उन शेरों का मकसद अतीका को समझाएँ, गहराई से। ''मुझे डर लगने लगा है कि कहीं यह शादी न टूटे।''

''अरे नहीं टूटेगी अतीका। ट्रॉय की हैलन है तू। तुमको छोड़कर भला वह मैनेजर कहाँ जाएगा...बस थोड़ा दु:खी है...यह दु:ख भी जाएगा। शादी के बाद जब तुम्हारी किरणें उस पर पड़ेंगी...हाँ तुम्हारे चचेरे भाई का क्या हुआ?''

''जहन्नुम में जाए मेरी चाची। वही नहीं मानी। दोनों भाइयों में भी झगड़ा करवा दिया। वह अपनी बहन की लड़की को बहू बनाना चाहती है दरअसल।...हाँ यों भी समझो रफीक अहमद का प्यार भी यों ही था...नहीं तो बगावत करता।''

ओह बैंक मैनेजर अन्ततः अतीका के सौन्दर्य से नहीं बल्कि आतंकी की गोली से मर गया। हे प्रभु!

"हाँ बिट्टा। मैं जानती हूँ। दिल्ली में हमने यह बुरी खबर सुनी थी। बहुत अफसोस की बात है।"

❑❑

अतीका रंगीन थी। हसीन थी। वास्तव में सब कश्मीरी मुसलमान लड़कियाँ कामदेव की रतियाँ हैं। वे हर गहना लगाना चाहती हैं, वे हर लिबास पहनना चाहती हैं, वे श्रेण्य होना चाहती हैं, प्राच्य नर्तकियाँ और पौर्वात्य शक्तियाँ होना चाहती हैं। शत प्रतिशत ज्वलन्त बिजलियाँ। मगर कुछ आड़े आता है। शायद संसार की हर स्त्री के। सुधा को तीव्र रूप से स्मरण हुआ, अतीका शादी के एक दिन पहले लालचौक से रेशम की दो खूबसूरत साड़ियाँ खरीद कर लायी थी कि वह विवाह के दिन साड़ी पहनेगी।

"विद्रोह करेगी?"

"हाँ। इसमें विद्रोह क्या! क्या लिबासों के भी धर्म होते हैं। मुझे साड़ी बेहद अच्छी लगती है।"

पर वैसा कर नहीं पायी थी वह अन्ततः। मेहँदी के बाद उसने साड़ी पहनी थी और घोषणा की थी कि निकाह भी साड़ी में ही होगा। खबर दूर-दूर तक फैली थी। मंजहब के अलमबरदारों तक। हंगामा हुआ था। अतीका की माँ जो स्वयं सुन्दरता की मालकिन थी, ने अपनी पूच उतारकर बेटी से अनुनय किया था, "बेटी मेरी बात मान, नहीं तो संगसार कर देंगे।" माँ बहुत रोयी थी। सुधा भी अतीका से यह जिद छोड़ने की प्रार्थना कर रही थी...अन्त में अतीका ने वही पोशाक पहनी जो धर्मानुसार वैध थी और ऊपर से एक काले बुर्के में अपने सारे सौन्दर्य की गठरी बना डाली।

"साड़ी में क्या मनाही है? पाकिस्तान में औरतें साड़ी नहीं पहनतीं क्या?" वह चीखी थी, पर जल्दी शान्त भी हुई थी।

जब अतीका का विवाह हो चुका था, सुधा ने देखा था कि अतीका साड़ी पहने हुए थी।

"मैनेजर क्या कहता है साड़ी पहनने पर?"

"उसे बहुत पसन्द है। कहता है बैंक में पण्डित लड़कियाँ साड़ियाँ पहनकर आती हैं तो बैंक पूरा परी महल लगता है। बहुत सुन्दर लिबास है साड़ी। जो स्त्रियाँ सुन्दर होती नहीं हैं, वे भी सुन्दर हो जाती हैं साड़ी पहनकर। मजहब को लेकर उसके खयाल ही दूसरे हैं...पूरा सूफी...कहता है कि हम मुसलमान मूलतः असल में पण्डित ही हैं।"

उसी अतीका का भाई बिट्टा अब लँगड़ेपन से मुक्त हुआ है दिल्ली जाकर।

सुधा ने नौकरी में आने पर एक दुपहिया खरीदा था। यह क्रान्तिकारी कदम था। एक दिन वह दुपहिये पर पूरे मुहल्ले का चक्कर काट रही थी ताकि वाहन चलाना ठीक से सीखे। पर एक दिन हाजी की दुकान से आते हुए बिट्टा उसकी आधी उम्र से भी कम, ने उसे रोका, ''दीदी, एक अर्ज है?''

''हाँ, फरमाओ।''

''प्लीज यहाँ से स्कूटर मत चलाया करो। मुहल्ले के मुअतबरों को अच्छा नहीं लगता। हममें लड़कियों के लिए मना है। कुफ्र है। वही बुजुर्ग कह रहे थे...पता नहीं क्या आफत आएगी...यह तो आखिरी जमाने को बुलावा है।''

''कुफ्र है तुम्हारे धर्म में। हमारे धर्म में नहीं है न...मुझे अपना धर्म देखना है...हमारे हिसाब से तरक्की है...।''

''नहीं दीदी।...मैं आपको दीदी कहता हूँ इसलिए विनम्रतापूर्वक कहता हूँ...अगर नहीं मानीं आप तो कुछ भी हो सकता है।''

''कुछ भी...मतलब...?''

''कुछ भी...कुछ भी...भट्ट हो...समझदार हो...कैसे समझाऊँ...वैसे भी अब यहाँ जल्दी ही कुछ बदलाव आनेवाला है...कुछ होनेवाला है...बाकी आपकी मर्ज़ी...'' कहते हुए बिट्टा बड़ी लापरवाही के साथ चला गया मानो चेतावनी देकर चला गया हो।

''क्या होनेवाला है...?'' सुधा ने मन में सोचा था। तरह-तरह की अग्नियाँ उसके अन्दर प्रज्वलित हो उठी थीं। एक भयावह उलझन ने उसके भीतर कदम रखे। क्या यह धमकी दे गया। इतना मामूली-सा अपाहिज लड़का। वह भी पाँव एकदम ठहराकर। कोई भय नहीं...कोई लिहाज नहीं, कोई लज्जा नहीं...धत् तेरे की।

''अगले दो-तीन सालों में यहाँ क्या हालात होने जा रहे हैं...देखते रहो।'' दफ्तर में रूबी वानी ने भी यह घोषणा की थी भोजनावकाश के दौरान, सभी पण्डित लड़कियों के बीच। और पण्डित स्त्रियाँ अपनी-अपनी बुद्धि और गहराई के अनुसार इस घोषणा का विश्लेषण करने लगी थीं।

''क्या होगा?'' विमला ने प्रश्न दागा था ताकि बात की तह तक जाया जाए।

''इसका...वह...होगा...साली सड़ती है। कुढ़ती है। इनका अरमान अरमान ही रहेगा। क्या हिन्दुस्तान के आगे पाकिस्तान टिकेगा...टिका कभी? अभी देख तो चुके इकहत्तर की बेइज्जती सरे आलम...पाकिस्तान के दो टुकड़े कर डाले...।'' सुनीता के इन वचनों ने सबकी छातियाँ गर्व से भर दीं।

''हाँ...हम ऐसे-वैसे देश के वासी नहीं...हम हिन्दुस्तान के वासी हैं...हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है...हिन्दुस्तान में हमारे साथ हाथ

लगाकर तो देखें। हमारे ही देश में, हमें ही आँख दिखा रहे हैं...स्साले।''

''ओ...ो...ो...ो...हमें क्या पता था पाकिस्तान इन भट्टों के सामने खूब टिकेगा। ...हमें क्या पता था कि हिन्दुस्तानी हम हैं, पर हिन्दुस्तान हमें अपना मानता हो ऐसा कुछ नहीं...ऐसा होश उसके लोगों में नहीं। ऐसी अक्ल उसकी सरकारों में नहीं। मुझे क्या पता था रूबी...मुझे क्या पता था बिट्टा।...हमारे घरों को खँडहर होना है और हमारे जीवन को जीवित जीवन्त प्रेतात्माएँ। मुझे क्या पता था बिट्टा कि वस्तुत: तुम और रूबी बहुत बड़े नागरिक थे इस्लाम के...क्या हुआ तुम्हारी बहन विधवा हो गयी...अभी तुमने ही कहा कि उसका खाविन्द शहादत पा गया। शहीद फारूक राजा...। जिसकी विधवा का अब एक रुतबा है। जो ठाठ से एक भट्टों के घर में रह रही है...शामा के घर में जिसे उन्होंने खोटे सिक्कों खरीदा।' सुधा ने मन ही मन कहा।

भट्ट जब मरा शहीद नहीं माना गया। कुछ भी नहीं माना गया। वह कोई नहीं था। भट्ट भी उस पर चोरी-चोरी से ही रोये।

मगर वह पढ़ रही है उनके चेहरे। हर चेहरे पर कालिख की एक महीन परत है। हर चेहरे पर ग्लानि बैठी है अनजाने ही...या उसी को दिख रहा है ऐसा। दागदार हो गयी है उनकी जिन्दगी। 'दाग हैं हमारे सूने घर उनकी दैनिक...दिन रात की जिन्दगी में...खाते हैं उनके जिगर निकालकर हमारे निर्जन घरों के प्रेत अब...चैन नहीं है उनके जीवन में मेरी समझ में आया...जलबोबा के स्वीकार से...हचकुकिल के घर के खस्ताहाल से।' उसका आत्मालाप था।

'हे प्रभु! तुम्हारा क्या करूँ बखान। कैसे करूँ? शब्बीर को लग रहा था कि हमारी सम्पत्ति हड़पकर वह पता नहीं कितना अरबपति बनेगा, कितना बड़ा बनेगा...शायद हर लूट-वृत्ति को लगा होगा कि वह पता नहीं कितने अनगिन वर्ष जिएगा।...या क्या पता कभी नहीं मरेगा...।' पुन: सुधा का आत्मालाप...।

बिट्टा बैठ गया था। दिद्दा को रह-रहकर देख रहा था। उसकी साड़ी को बार-बार देख रहा था। उसकी हँसी और मुस्कराहटों को गहरी भेदती दृष्टि से देख रहा था...चुप भी था...कोलाहल से भरा भी था...यहाँ भीतर जिसके जरा भी कोलाहल नहीं था...वह थी जलबोबा...और उसकी दोनों बहुएँ शायद...मगर जलबोबा के बारे में उसे तनिक भी सन्देह नहीं।

''दीदी, आओ न हमारे भी घर...अतीका बहुत खुश हुई है और आपका इन्तजार कर रही है।''

शाम गहराने लगी थी। गुरप्रीत के चेहरे पर ऐसा भाव था कि बस 'मेरा और इस्तेमाल मत करो।'

'हाँ मैं समझती हूँ...हम स्त्रीजात हैं...।' मन ही मन उसने भी उसे कहा।

उसने चाय का प्याला गटक लिया। कुछ दाल के दाने मुँह में भर लिये 'यह तबरुक है।' खुद को कहकर और चलने को हुई।

फिर एक नजर उसने अपने घर पर डाली। एक चोर-नजर। और देखा कि अब तक उसके घर का चेहरा बदल उठा था...वह उठी। साड़ी सँभाली। उसमें पराजय बोध है। उसमें असीम दुःख है, उसमें छटपटाहट है। वह सूरज की तरह असहाय है, निराधार है, निराहार है...वह जीवन के एक-एक क्षण के लिए बृहद मूल्य दे चुकी है। उसकी माँ को कायदे से घर के भीतर होना था...जैसे जलबोबा है...जैसे है हचकुकिल...मगर कहाँ है उसकी माँ। माँ के सपनों का घर। यह घर। शहर के चेहरे पर दाग यह घर।

कितने लाखों घर ऐसे ही हैं इस शहर की हर गली में। हर गली में कम-से-कम दो-तीन-चार। हर नुक्कड़ पर, हर गाँव में। हर कहीं पहचान में आते हैं ये धक्-धक् करते हुए, शहर की दुःखती रगों में रहते ये भट्ट-घर।

उनमें उसका भी यह घर। उसका घर देवता। जो नितान्त पीड़ा के क्षणों में साकार हो उठा। विद्रोही हो उठा। बच्चे की तरह रो भी पड़ा। इधर-उधर दौड़ा-भागा। पगलाया। कितने घर-देवता यहाँ इसी तरह पगलाये घूम रहे होंगे। जो दिख नहीं रहे होंगे यहाँ इनको...लेकिन साफ-साफ दिख गये उसको। उसे फिर याद आया कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन को...'यः पश्यति सः पश्यति।' अर्जुन देखते सब हैं...दिखता किसी-किसी को ही है...उसने अपने भीतर के अर्जुन को कहा।

सब बाहर उसके पीछे-पीछे कार तक आये। गुरप्रीत ने कार की कमान सँभाली। कार उसने उस मिथकीय खम्भे के पास खड़ी की थी जिस पर लगा हर इश्तहार उसकी स्मृतियों में फड़फड़ाया...फिल्म श्रीकृष्ण लीला से लेकर पण्डितों के पन्द्रह से पैंतीस वर्ष की आयु के भट्टों को मारने की योजना की धमकियों तक। 'अरे क्या यह सच है कि फिल्म श्रीकृष्ण लीला देखने जलबोबा की दोनों बहुएँ और हचकुकिल समेत उसकी पाँचों बहनें भी गयी थीं...गरज लगभग मुहल्ले की सारी स्त्रियाँ गयीं थी। क्या यह सच है...क्या यह सचमुच घटित हुआ है...क्या...।' सच और सपने की उसके भीतर की उलझन अज्ञेय है...किसे ज्ञान कराए इसका।

'क्या वह कुफ्र नहीं था?' उसने स्वयं से ही यह प्रश्न पूछा।

उन दिनों किसी की धार्मिकता पर उससे कोई असर नहीं पड़ा था। 'वह कौन-सा कश्मीर था? वे कौन मुसलमान थे...वे क्या दिन थे...क्या आलम था वह भला...कहीं वह किसी विभ्रम का शिकार तो नहीं हुई है।''

इसी खम्भे पर अन्तिम इश्तहार था, ''भट्टो, दफा हो जाओ...फौरन...कुछ घण्टों के अन्दर...अन्दर...नहीं तो कत्लेआम...। हिन्दुस्तानी जासूसों...हिन्दुस्तानी कुत्तो...दफा हो जाओ...जान प्यारी है तो दफा हो जाओ''...इसी खम्भे ने उनकी

जिन्दगी के खम्भे गिरा दिये थे...।

उसने खम्भे को छुआ। लगा उसे कि वह आँख है और सीध में उसके घर को देख रही है...बतिया रही है उससे। ''खम्भे, तुझे सलाम। तेरा क्या कसूर। तेरा काम ही है बिजली और इश्तहार को अपने ऊपर धारण करना।''

बिट्टा आगे-आगे जा रहा था। ''आप अतीका के पास नहीं आओगी दीदी ?''

''नहीं अब देर हो गयी। अब चलेंगे। कल आएँगे...अगर समय बचा...अभी मुझे खदीजाबोबा के यहाँ भी जाना है। इन सब बड़ों को सलाम कहना है।''

''मगर अतीका इन्तजार कर रही है...उसे दुःख होगा...वह सोचेगी आप नाराज हो।''

''अरे नहीं, नाराज क्यों ? किससे ? अतीका से ? बेचारी ने इतनी बड़ी कीमत अदा की। मैं कल जरा जल्दी ही कॉन्फ्रेन्स छोड़कर निकलने की कोशिश करूँगी दरअसल हमारी कॉन्फ्रेन्स से ज्यादा मानीदार है आप सबसे मिलना। इस वक्त अतीका से मेरी तरफ से क्षमा माँगना...नाराज भला किससे... ?''

''नाराज तो ये हैं ही...।'' जलबोबा बोली।

''और होना भी चाहिए।'' वह उस पर, उसके पूरे लोक-मानस पर मरहम लगाने की कोशिश कर रही है।

'कितनी जलबोबा हैं इस पूरे समुदाय में भला...।' उसने सोचा और कार का दरवाजा आधा खुला छोड़कर शफी गुण्डे की दुकान तक गयी। देखने कि शफी गुण्डा वहाँ हो तो उसकी बहनों का हाल पूछे। पर उसने देखा कि वह ओट में बैठा था...और दिद्दा का जाना देख रहा था। उसको देखकर वह बोला ही नहीं, न किसी किस्म का इजहार चेहरे पर लाया सिवा इसके कि...''तुम्हारी हिम्मत तुम कश्मीर आयी हो...और फिर इस मुहल्ले में भी...क्या है यहाँ तुम्हारा जिसे देखने तुम आयी हो...जिसे लेने तुम आयी हो...कौन है यहाँ तुम्हारा जिससे मिलने तुम आयी हो।''

उसके चेहरे पर बैठा धर्मान्ध शैतान इतना मुखर था कि उससे ये ढेर सारे सवाल कर गया...वह धीरे-धीरे आकर गाड़ी में बैठ गयी। सन्नाटा छा गया। किसी ने कोई संवाद नहीं बोला। उसने भी नहीं। वह सोच रही थी कि सच ही तो बोल रहा था यह धर्मान्ध शैतान। 'क्यों आयी हूँ मैं यहाँ ? क्या है मेरा यहाँ ?' किससे मिलने आयी है वह यहाँ। यहाँ आना उसकी निपट मूर्खता नहीं तो और क्या। यहाँ आना उसकी निपट कमजोरी नहीं तो क्या। क्या अर्थ रखता है उसका यहाँ आना। ये प्रश्न अम्बार कुछ तीव्र क्षणों के लिए उसके भीतर इन्सानी रिश्तों पर प्रश्न-चिह्न लगा गये। नकारात्मकता की लकीर खींच गये। अनस्तित्व साकार हो उठा।

गुरप्रीत ने कार स्टार्ट की। जलबोबा की आँखें सजल थीं। उसकी बहुओं के चेहरों पर बड़ी-सी आर्द्र मुस्कानें थीं...बच्चों के मुखों पर किसी चमत्कारपूर्ण घटना के घटित होने के साक्षी होने के साक्ष्य लिखे गये हों जैसे...। वह हाथ हिलाती रही। जलबोबा ने कुछ हरकत की और सचेत गुरप्रीत ने गाड़ी धीमी की...जलबोबा खिड़की पर आयी...''बाबी से कहना मेरा सलाम...और फूट-फूटकर रोयी। बाबी से मिलूँगी...उसके पैर चूमूँगी और मुआफियाँ माँगूँगी...बार-बार माँगूँगी...वह दे न दे...तब भी अथक माँगूँगी। बोलूँगी...मेरी बहन। मेरी धर्म-बहन। मुझे माफ कर। मैं तुम्हें सपनों में देखती हूँ...मैं कुछ न कर सकी तेरे लिए...मुझे माफ कर...मैं गुनहगार...।'' वातावरण अजीबोगरीब हो उठा...गुरप्रीत अपने अश्रु पोंछ रही थी...कुछ परतें उतर रही थीं और क्षण-भर के लिए सब नग्न आत्माएँ हो उठी थीं।...

और धीरे-धीरे गाड़ी चल पड़ी। गुरप्रीत के नेत्र लाल हो उठे थे।...और सुधा संयत थी...सोत्तर। उसे अपने निर्मम प्रश्नों का उत्तर मिला था, जो शफी गुण्डे ने अपने चेहरे पर विकराल भाषा में लिखकर उसके सामने पेश किये थे।

तिकोणी पार्क से मुड़ते हुए गुलाम नबी पण्डित आते दिखाई दिये। बहुत शालीन और बाअदब मुसलमान। मन में जो सदा ही इन भट्ट लड़कियों के प्रति आदर-भाव रखता था। कभी बात नहीं करता था। आते समय उससे अभिवादन का विनिमय हुआ था पर जाती बार वह वहाँ फिर से प्रकट हुआ। उसे लगा मानो वह कुछ खास बात कहने के लिए एक कोने में उसके जाने का इन्तजार कर रहा था।

'गाड़ी रोकिए... ?' उसने इशारा किया। गुरप्रीत रुक गयी। वह तेज गति से कार की तरफ आ रहा है, उसे कोई बहुत जरूरी बात कहनी है, 'मगर क्या ? क्या कहना होगा उसे ?'

वह करीब आया। सुधा ही बोली, ''अच्छा, इजाजत दीजिए। शायद मैं कल एक आध घण्टे के लिए फिर आऊँ।''

''लेकिन मेरा एक सन्देश है...पिताजी के लिए...उन्हें कहिए अपने पवित्र कदम इधर डालें...इस सरजमीन पर...एक पूरी रात जमकर भजन गाएँगे...तब शायद गुनाहों में कुछ अफू हो...। जरूर कहना...हम गुनहगार हैं...आपके गुनाहगार...इन्सानियत के गुनहगार...मैं यहाँ आपका इन्तजार कर रहा था...मुझे जो कहना था वहाँ सबके सामने कहना मुमकिन न था। इसलिए जिस समय आपको आते देखा, तभी से यहाँ बैठा आपका इन्तजार कर रहा था...वल्लाह...कसम नबीकरीम की...विश्वास नहीं हुआ अपनी आँखों पर...अभी भी लग रहा है कि कोई ख्वाब है...। मगर अब पिताजी को ले आना...यही मेरी आखिरी ख्वाहिश

है...मेहरबानी करके।''

''मगर अब तो उनकी वृद्धावस्था है...और सबसे बड़ी बात कि यहाँ आना उनके लिए उचित नहीं...वे तो सदमे को झेल नहीं पाएँगे...वे तो यहाँ के नाम से ही काँपते हैं...।''

यह समझते हुए कि गुलाम नबी पण्डित अपने अनुरोध के प्रति गम्भीर था उसने ये शब्द कहे, ''तो फिर मुझे दिल्ली का पता दीजिए। मैं उनकी दीदार के लिए उनके पास जाऊँगा।''

''आप टेलीफोन नम्बर लिखिए।'' उसे शंका थी कि अगर खुदा न खास्ता ऐसा हुआ। यानी नबी पण्डित उनसे मिलने दिल्ली आया तो पता नहीं माँ क्या व्यवहार कर बैठेगी। माँ को मुसलमानों पर बहुत गुस्सा है। खासकर अपने पड़ोसियों पर। वह साफ निकाल देगी। कहेगी, ''क्यों आये हो यहाँ...किसलिए आये हो...हमें देखने...हमारा मजाक उड़ाने...हमारे जख्मों पर नमक छिड़कने?''

कार चल पड़ी। गुरप्रीत और उसमें सिर्फ मौन था। कितनी बातों का जमघट उसके भीतर था। वह कुछ भी सोच नहीं पा रही थी कि क्या-क्या है। क्या उस सबका विश्लेषण एकमुश्त में करना गलत है? उनमें जलबोबा है लेकिन बहुत कम। जो सबके सामने बोल गयी कि मुसलमान भट्टों के गुनहगार हैं। इस बात की भी परवाह नहीं की कि अन्दर खूँखार शफी गुण्डा सुन रहा है। दूसरे छोर पर गुलाम नबी पण्डित...अपने उद्गार छिपकर व्यक्त करनेवाला...दोचित्ता...दोगला।

''बहुत चालू लोग हो गये हैं। चालाकी और बेईमानी से काम कर रहे हैं। भट्टों को भगाकर खुश हैं, पर भट्ट जब सामने आता है तो...लम्बी...लम्बी आहें भरते हैं...आतंकवाद को कोसते हैं, आतंकियों को कोसते हैं, बन्दूकों को कोसते हैं, पाकिस्तान को कोसते हैं, नेताओं को गालियाँ देते हैं, राजनेताओं को जिम्मेदार ठहराते हैं।''

ये बात अगले दिन रंजना कह रही थी सुजाता तिक्कू से। जो कि दोनों ही अच्छी लड़कियाँ हैं। दोनों ने अपने-अपने लेखों में गूढ़-धर्मनिरपेक्ष मूलों पर लफ्फाजी से ओत-प्रोत प्रकाश डाला। मगर जब दोनों को मौखिक जिक्र करना हो, जो कि कहीं अभिलिखित न हो रहा हो, कहीं तो वे सच बोलती हैं...सिर्फ सच और अपना दुःख व्यक्त करती हैं। 'बुद्धि की महानता देखो कहाँ क्या करना है...लटके-झटके सिखाती हैं...कहाँ आँसू बहाने हैं और कहाँ खून बहने को मौका देना है...साथ देना है...दोनों की भाषा और भावों के नाटक समझाती है बुद्धि। वाह री बुद्धि! चालाकी कहीं की।' सोचा सुधा ने।

कॉन्फ्रेन्स के जिस भी सत्र में वह बोली थी—'अच्छी बच्ची' सुजाता तिक्कू और 'सुमोना धर' लाल पड़ जाती थीं....उन्हें आशंका थी कि यह मूर्ख औरत सुधा

पता नहीं क्या सच उगल देगी। विवेकहीन। ''अरे सच है मगर उसे इण्टेलेक्चुअली कैसे कहना है...उस पद्धति को समझना है...सीखना है।'' यह उनकी साझा राय थी।

''हमें इनको बदलना है, इन्हें धर्मनिरपेक्षता सिखानी है...तुम्हें पता है फरहत कितनी बदल गयी है...ओ दियर इज़ सी चेंज इन हर...यस... ।'' सुमोना एक बार टेलीफोन पर सुधा को संकेत दे रही थी कि हमें मुसलमानों को सिखाना है कि वे धर्मान्ध न बनें। वास्तव में सिखाना नहीं, प्रार्थना करनी है, लुभाना है। ''देखो हम तुम्हें सोने का बँगला और सोने का हाथी, सोने की चिड़िया...जो तुम माँगोगे...देंगे...मगर...लाडलो... ।'' लो यह अच्छा काम रहा इन तथाकथित बुद्धिजीवियों का। 'वाह री वाह! सुमोना, सुजाता।' कहा सुधा ने स्वगत।

सुधा निष्कर्ष स्वयं से कहती है—सत्य को विशुद्ध सत्य कैसे रखना है उन्हें सीखना चाहिए। मुसलमानों की बिगड़ी आदतों को सुधारना चाहिए।

❑❑

जमीला बानो चालीस मिनट तक बोली थी कि कितने लोग मर गये सैनिकों के हाथों। जब सुधा ने उससे कहा था क्या यहाँ कोई हिसाब-किताब है कि कितने मर गये आतंकवादियों के हाथों तो...तो हुर्रत दरजवाब बोली थी आतंकवादियों के खिलाफ हम मानवाधिकारों के हनन का इल्जाम नहीं दे सकते हैं...मगर सैनिक मानवाधिकारों का हनन नहीं कर सकते। वाह भई। इनकी बातें...इनकी बातों का दर्शन...इनकी बातों का गणित...

'क्या इनकी बातें हमारी समझ में नहीं आतीं। हम दो टूक इनके मन्तव्यों का तार-तार निकाल पाते हैं क्या? हिन्दू अगर धार्मिक है तो धर्मान्ध है, मुसलमान अगर धार्मिक है तो मुसलमान है। पहली बात को हिन्दू भी उसी तरह समझता है। क्यों लिखता है गाँधी, 'मैं एक हिन्दू क्यों हूँ? क्यों एक मुसलमान अपने मुसलमान होने के कारण प्रस्तुत नहीं करता? कैसी विडम्बना है!' उसके माथे में फिर उलझनें हैं।

घर उसके पीछे-पीछे चला आ रहा है। गुरप्रीत चुपचाप गाड़ी चला रही है। 'यह घर-देवता है' उसने स्वयं से कहा। घर-देवता पीछे-पीछे बहुत दूर तक चला आ रहा था। उस पर ठीकरे और पत्थर फेंक रहा था। निरीह खिड़की से झाँक रहा था। वह स्वयं से कहती रही। ''आगे फिर नुमाइश का अहाता आएगा और उसके बाद ताऊ का घर।''

'गुरप्रीत, ताऊ के घर से अबकी बार गाड़ी नहीं निकालना...ये पगलाये घर-देवता मुझे नहीं छोड़ेंगे...गुरप्रीत...ये मुझे देखकर और पागल हो उठते हैं... । किसी

अलग रास्ते से ले जाना गाड़ी।' पर वह कहती नहीं ये शब्द।

वह चुप है...कोलाहल से भरी-भरी। चुप। गुरप्रीत शायद इस प्रतीक्षा में है कि वह धन्यवाद बोलेगी...जरूर बोलेगी...धन्यवाद। 'प्रोफेसर गुरप्रीत कौर...मैं तुम्हारी आभारी हूँ, तुमने मुझे मेरे पड़ोसियों से मिलाया...घर के दर्शन करा लिये...ज़ख्मों को हरा किया...दर्द में और दहक लायी...अतः धन्यवाद।' पर उसने पुनः कुछ न कहा। उसे नहीं लग रहा था कि गुरप्रीत को धन्यवाद कहनेवाली कोई बात है...बस...सब हो रहा है प्राकृतिक...एकदम सहज...स्वयं। और अपने भीतर वह कितनी व्यस्त है, गुरप्रीत क्या जाने। वह घर-देवता है...उसकी माँ है...सारे परिवार जन हैं।

...और वह करफली मुहल्ले के उस छोटे-से घर में है जहाँ उसका जन्म हुआ था, जो मिट्टी और देवदारु की लकड़ी का बना था। जिसकी छत बुर्ज और मिट्टी की थी पहले और बाद में उसे पण्डित पूर्ण कौल ने टाटा टीन से बनवाया था। मिट्टी हटवाकर। जहाँ उसे पता चला था कि एक वह पण्डित है, भट्ट है और आसपास जितने भी लोग हैं वे मुसलमान कहलाते हैं। वहीं उसे यह भी पता चला था कि वह जिस बृहद् देश में है, वह भारत या हिन्दुस्तान कहलाता है और उस हिन्दुस्तान को वह चाहती है, प्यार करती है क्योंकि उसकी माँ भट्टिनी कौल, पिता पूर्ण कौल, बड़ी बहन कृष्णा और भाई बिट्टू...इसलिए उनका देश हिन्दुस्तान है। मगर धीरे-धीरे...पता चला कि पड़ोसी जो विस्तृत हैं, अगाध हैं वे दूसरे देश को प्यार करते हैं। वहाँ उसे यह भी पता चला कि पाकिस्तान क्या चीज है। पाकिस्तान पड़ोसी है और शत्रु है। पाकिस्तान अक्सर हिन्दुस्तान से लड़ता है और हर लड़ाई हारता है। लोगों को मरवाता है...मुसलमानों को भी, पर मुसलमानों को फिर भी लगता है कि उनका मरना मजहब के सदके जाना है इसलिए शहीद होना है, गरज पाकिस्तान ने इस्लाम के नाम पर जीना हराम कर रखा है।

वहाँ उसने हिन्दू (पण्डित) मुसलमान प्रेम-घृणा के घनिष्ठ सम्बन्ध देखना और उनकी परतों को समझना शुरू किया था। वहीं उसे पता चला था घर का एक घर-देवता होता है, साक्षात् होता है और काफी समय बाद युवावस्था में जब उनके पिता पूर्ण कौल ने एक बड़ा और अच्छा घर निर्माण किया था, तब पता चला था कि करफली-मुहल्ले वाले घर का घर-देवता उसकी माँ भट्टिनी का प्रकाण्ड-प्रेमी था।

उसकी माँ उस घर को साफ-सुथरा रखा करती थी। पवित्र रखती थी। काफी मेहनत करती थी। उसकी मिट्टी की सीढ़ियाँ यदि कभी टूटकर गिरतीं तो भट्टिनी सारा-सारा दिन मिट्टी बनाकर नयी सीढ़ियों का स्वयं निर्माण करती। उसमें अपनी पूरी शारीरिक और बौद्धिक ऊर्जा को खर्च करती। एक-एक बच्चा जनती और हर

बच्चे की उम्मीद एक लड़के के रूप में ही रखती जब तक कि बच्चा जन्म न लेता। एक बेटा प्राप्त करने पर भी उसकी प्यास बुझी नहीं थी। तीसरी बेटी होने पर...भट्टिनी ने कई दिनों तक भोजन ग्रहण नहीं किया। सिर्फ रोती रही। और तीसरे दिन अन्न ग्रहण किया था...जब पति ने ढाढ़स दी थी कि आजकल बेटी और बेटे के बीच अन्तर नहीं किया जाता। आने वाले जमाने में यह अन्तर और मिटेगा...मान लो कि बेटा हुआ है...और बड़ी होकर दीप्ति को जब इस बात का पता चला था तो उसके आत्मसम्मान को बहुत ठेस पहुँची थी—'क्या मेरी माँ ने मेरा स्वागत नहीं किया था इस संसार में...अच्छी बात है...मैं भी इस बात के अनुसार ही चलूँगी...अब मैं इसका जवाब दूँगी...।' कालान्तर में देखा गया...भट्टिनी आजीवन इस अपराध-बोध से लदी रही। कभी मुक्त हुई ही नहीं। और उसके प्राणों का सीधा-सीधा वास ही दीप्ति में होने लगा। वह उसके प्राणों का घर, नगर, देश सब हो गयी...सब कुछ, कि भट्टिनी चाहती कि सब कुछ दीप्ति को दें, पर दीप्ति ले तब न। एक अजीबोगरीब, एक दुर्लभ व्यक्ति के रूप में निकल आयी दीप्ति।

और उस घर का घर-देवता? सुधा को स्मरण होने लगा। जब उसकी शादी का प्रथम वर्ष था तो 'मछली-भात' के उत्सव पर प्रभु को आमन्त्रण दिया गया था।

दामाद को 'मछली-भात' परोसने के बाद भट्टिनी दामाद से कुछ वार्तालाप करना चाहती थी। और बात 'घर-देवता' की चल पड़ी थी। क्योंकि 'मछली-भात' घर-देवता के ही सम्मान में सम्पन्न होता है।

''घर-देवता उस दिन जमकर मछली-भात खाता है, फिर अमावस्या को खिचड़ी खाता है, यक्ष के रूप में,'' भट्टिनी अपना रहस्यात्मक ज्ञान दामाद के समक्ष प्रभाषित कर रही थी।

उस दिन वहाँ घर के सभी सदस्य बैठे थे। और 'घर-देवता' को साक्षात् देखने और अनुभव करने के अपने-अपने तजुर्बे को पूरी योग्यता के साथ बयान कर रहे थे। सुधा के पिता ने एक बार मुख्य वक्ता के रूप में स्वयं को उभारकर कहा, ''हमारे घर में हमेशा घर-देवता 'मछली-भात' बड़े चाव से खाता है। और जब भी मछली में कुछ ज्यादा ही मिर्ची डली हो तो उस बार मिर्ची लगने के कारण हम देखते हैं कि घर-देवता ने वहाँ रखा पानी का पूरा घड़ा ही पी लिया होता है। चावलों के दाने तो वहाँ इस तरह गिरे होते हैं, कि मालूम होता है एक बातहजीब व्यक्ति आकर बाजाप्ता बैठा है और भोजन किया है। और तमीज से मछली के काँटे अलग कर मांस खाया होता है, जैसे हम खाते हैं। वास्तव में घर-देवता होता है, दिखता थोड़े न है। हाँ, कभी-कभी किसी-किसी को उसकी

खाँसी सुनाई देती है या चलने की पदचाप...या कभी हँसी...या कभी कोई सम्बोधन। कुछ भी।''

'ये बातें उस समय उल्लासजनक थीं, अब उदासीजनक हैं।' सुधा ने स्वयं से कहा और स्मृति की तार खिंचती गयी कि—भट्टिनी की उद्दाम इच्छा थी कि प्रभु यानी अपने दामाद से या सुधा के पति से कहें अपना अद्वितीय अनुभव घर-देवता को लेकर अतः वह बोलने लगीं, ''मेरे लिए घर-देवता प्रत्यक्ष-देव है...सूर्य की भाँति। करफली-मुहल्ले के घर में तो वह साक्षात् मेरे समक्ष आया। आप कहते हैं उसकी आवाज सुनना...अरे मुझे तो उसने आकर छुआ है...और शब्द कहे हैं। जैसे एक प्रेमी कहता है।

''उस रात को इस घर की 'शंकु प्रतिष्ठा' का मुहूर्त था। ये सुधा के पिता, बाइलाल (दादा), बाबूजी (ताऊ) सब उस समय पूजा के लिए इस प्लॉट पर गये थे। मैं, बच्चे, जिगरी और गौरी सब वहाँ थे। मैं मन में प्रफुल्लित हो-होकर फूले न समा रही थी कि अब हम अपनी इच्छा का पक्का मकान बनाएँगे...जहाँ यह होगा...वह होगा...आदि आदि। मैंने पूजा के लिए भोग पकाये थे...और प्लॉट पर भिजवाये थे। हम सभी जो वहाँ थे आधी रात को सोये थे। मैं सपनों में विचर रही थी...बड़े घर के...अब हमारा बड़ा-सा घर होगा। कॉलोनी में। जिसकी कंक्रीट की सीढ़ियाँ होंगी...गन्दी गली नहीं होगी...अच्छा-बड़ा आँगन होगा...जिसमें फूल उगाएँगे...और हरियाली रहेगी। बड़े-बड़े कमरे होंगे...रंगदार...हर बच्चे को अपना एक स्वतन्त्र कमरा मिलेगा।

''परन्तु सारा श्रेय करफली मुहल्ले वाले घर को ही जाता था न। वह घर इतना फला हमें कि ये हर रात को आकर मुझे इतने रुपये थमाते कि मैं गिन भी न पाती। तभी तो आनन-फानन हमने प्लॉट खरीदा और घर बनाने की योजना बनायी।

''जब हम उस रात काम और भोजन खत्म कर सोने लगे तो मुझे नींद ही नहीं आयी। बच्चे सो चुके थे। गौरी और जिगरी सो गयी। मुझे खुशी के मारे नींद कहाँ आती। मैं सोच रही थी कि भावी बँगले की बुनियाद डल रही होगी। लसकाक मन्त्र पढ़ रहे होंगे और बाइलाल यजमान के रूप में निर्दिष्ट रूप से प्रतिष्ठा कर रहे होंगे। मैं सपनों में डूबी आधी जागी-आधी सोयी थी। ज्योंही आधी नींद की हालत मुझ पर छा गयी त्योंही मुझे किसी हाथ ने हौले से छुआ और बड़े ही प्रेमिल स्पर्श से मेरे सारे शरीर को हिलाया। मैं इस आकृति को साफ देख न पायी...थोड़ी देर में मैंने देखा मानो वह अपने पूरे शरीर का भार लेकर मेरे ऊपर बैठ गया हो...और ढेरों प्यार करने लगा हो...और मिन्नतें करने लगा हो...तुम मुझे छोड़ जाओगी ?...तुम जाओगी ? तुम मुझे छोड़कर जाओगी ? मैं तुमसे

बहुत प्यार करता हूँ...बहुत प्यार करता हूँ मैं तुम्हें...मैं तुमसे. .मैं तुम्हें लव करता हूँ। भट्टिनी 'लव' शब्द बोली थी और ठोककर बोली थी। हाँ-हाँ उसने मुझसे यह शब्द कहा मुझे अच्छी तरह याद है...'लव' शब्द उसने प्रयोग किया। मैंने आँखें खोली। उठी। उसे ढूँढ़ने लगी। दुविधा में पड़ गयी कि यह कौन था...सोचते-सोचते...मैंने सुबह जिगरी के जागने का इन्तजार किया। और उसे सब कुछ बताया—वह बोली...पागल, वह तो तुम्हारा 'घर-देवता' है...और कौन है जिसे तुम छोड़कर जा रही हो। जिगरी ने मेरा सन्देह दूर किया।

''और इस मकान में आने के बाद कितनी ही देर तक परेशान और उदास रही मैं। जम ही नहीं पायी। 'वह' रात को मेरे सपनों में आता और बहुत रोता। कभी उग्र होकर मानो मेरे बच्चों को उठाकर ले जाता। एक बार तो सारी खिड़कियाँ और दरवाजे ही तोड़कर चूर-चूर कर दिये...और कहता चलो वहीं...उसी घर में वापस फिर। मैं कहती कैसे जाऊँगी...आखिर अब वह घर भी तो बेच दिया...। चार वर्षों तक यही द्वन्द्व रहा। इस घर में प्रवेश के बाद दूसरे ही माह में विचित्र और खतरनाक घटना घटी। जिस वर्कशॉप में ये काम करते हैं, अचानक एक रात उसमें आग लग गयी। समूचा शेड और बड़ी-बड़ी मशीनें जल गयीं! सुबह जब ये गये तो हथकड़ियाँ इनका इन्तजार कर रही थीं। और देर रात तक जब ये नहीं लौटे तो इनका एक दोस्त खबर लेकर आया कि ऐसे-ऐसे हुआ है और ये जेल भेज दिये गये हैं। क्योंकि सब शेष मुसलमानों ने यही कहा है कि 'पूर्ण कौल' चूँकि भट्ट है अत: इन्होंने ही वर्कशॉप में कुछ गलती की है जिसकी वजह से बिजली का शार्ट हुआ है और आग लग गयी है।

''और पूरे इक्कीस दिनों की तफ़तीश के बाद बाबूजी ने पैसे देकर इन्हें छुड़ाया था। इनके आत्मसम्मान को इतनी गहरी चोट लगी थी कि वहाँ से आकर लम्बी बीमारी के कारण इतने दुर्बल हो गये कि सोचा कि पता नहीं अब इस परिवार का क्या होगा। पहली बार यह मानने लगे—'भट्ट होना पाप है। सचमुच यह एक बहुत बड़ा पाप है। मैं निष्पाप पकड़ा गया क्योंकि मैं भट्ट था।' तभी से यह धागा लपेटते हैं और वर्कशॉप का काम नहीं करते हैं।

''लगभग चार वर्ष उपरान्त हमारा जीवन इस घर में थोड़ा-थोड़ा सामान्य हो गया। अब यहाँ घर-देवता है। काफी प्रौढ़। काफी बुजुर्ग-सा। दाढ़ी है उसके चेहरे पर। गुरु सदृश। सदैव ध्यानस्थ।''

भट्टिनी का यह विश्लेषण अद्वितीय था। उसका यह दर्शन भी अटूट था। अकाट्य था और इसका किसी लिखित शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था।

'अब माँ किसी भी घर-देवता के बगैर ही रहती है। सारे 'घर-देवता' यहाँ पगलाये बैठे हैं...तभी तो हमारे घर यहाँ की गुंजान बस्तियों में बोलते-से लगते

हैं...गन्धाते-से हैं...दूर से दिखाई देते हैं...कि यह रहा 'पण्डित (भट्ट) घर' बोलते हैं ये गूँगे घर। शहर को मरे हुए शरीर की तरह प्रस्तुत करते हैं ये घर।' सुधा का फिर एक आत्मालाप उभरा।

मगर अब वैसी बात नहीं। अब घुसने नहीं देते हैं ये विक्षिप्त घर-देवता घरों में। ऐसे कई किस्से नूर मुहम्मद से भी तो सुने। जलबोबा भी कुछ वैसी ही बात बता रही थी। अभी-अभी उसने उसकी माँ के घर की तरफ ही कुछ संकेत दिया था...कि हचकुकिल वाले इस मुहल्ले से अब जाना चाहते हैं। घर बेचना चाहते हैं। रात को उनके यहाँ कोई 'भलाय' आती हैं और उनकी नींद और उनका चैन उड़ाकर ले जाती है।

गुरप्रीत ने उसे होटल के प्रांगण में छोड़कर कार को तेजी से वापस मोड़ा था। उसने सामान्य धन्यवाद कहा। कार की गति पकड़ने तक खड़ी हाथ हिलाती रही और होटल की तरफ मुड़ी।

आज वह फिर भाराक्रान्त है। भारग्रस्त है। इसे कुछ ध्यान करना चाहिए। बड़े दिनों से वह इस जिज्ञासा में है कि ध्यान क्या होता है। वह किसी के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं होती। होटल का दरवाजा खोलते-खोलते मानो उसके सामने यह जिज्ञासा खुद ही उत्तर के रूप में आ गयी।

वस्तुत: प्रथम प्रश्न है 'ध्यान क्यों?' जब 'ध्यान क्यों' की गुत्थी सुलझ गयी तो 'ध्यान क्या' की स्वयमेव सुलझ गयी।' उसे इस अत्यन्त दारुण प्रश्न का उत्तर मिल गया। 'और् ध्यान? ध्यान क्या? कविता ध्यान। काव्य ध्यान। कला ध्यान। कला-इतरता परा ध्यान। मौन परम ध्यान।' वह अपने ही साथ फिर से विक्षिप्तों की तरह हँस दी। लगा उसका घर-देवता जरूर उसके साथ आया है।

दिन की कार्यशाला अद्भुत थी। डॉ. सोनम दिल्ली आई.आई.टी. से सिर्फ यह सिखाने के लिए आयी थी कि दूसरे को सुना कैसे जाए? सुनने की कला। ताकि अगले का, या सुनाने वाले का विरेचन हो जाए और वह भार-मुक्त हो जाए। पर साथ ही सोनम ने कहा था, "...कभी-कभी देखा गया है, कि सुननेवाला इतना भर जाता है उस पूरे ट्रॉमा से कि दूसरे को बोझ-मुक्त तो करता है परन्तु स्वयं विक्षिप्त हो उठता है। 'स्पंज' का काम करता है। मन का सन्तुलन खो देता है। ऐसा नहीं होना चाहिए।" यह भय की बात थी पर सोनम ने अन्त में एक प्रश्न सबको हल करने के लिए दिया था, "बताइए कि एक ऐसी स्त्री जिसका पति आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त था, उसने अब आत्म-समर्पण किया और ऐसी हत्यारी गतिविधियों को सदा के लिए छोड़ने का संकल्प किया, वापस आया है। घर में है। खेतों पर जाने वाला कोई नहीं है। घर में बुजुर्ग और बीमार सास-ससुर हैं। बच्चों के खाने-पीने, पहनने और पढ़ाई की चिन्ता उसी को करनी है। पति

की अन्य आतंकवादियों से रक्षा का जिम्मा भी उसी का है, क्योंकि उनकी नजरों में वह गद्दार है। और मारे जाने का हकदार है...ऐसी घटाटोप स्थिति में ऐसी स्त्री क्या करेगी?''

सब मौन हो गये थे। शायद सबका दिल दहल गया था। इसी शहर में कितने ही मुहल्लों, गाँवों में ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ होंगी...'हे प्रभु...अर्जुन ने सच कहा था—स्त्रीषु द्रष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकर: —स्त्री दूषित होगी...और युद्ध की सम्पूर्ण मार स्त्री पर ही पड़ेगी। पर अन्त तक कृष्ण स्त्री का प्रसंग दबा गये। सांख्ययोग और ज्ञानयोग और ध्यानयोग और कर्मयोग आदि की ही बातें करके अर्जुन को अन्त तक उलझाये रखा, भ्रमित किया...जब तक कि अर्जुन अपना मूल प्रश्न तक भूल न गये। स्त्री को जाने दिया भाड़ में। वाह रे कृष्ण...।' सोचा सुधा ने।

''ऐसी स्थिति में वह कविता करेगी...।'' सब के सब बोझिल माहौल में बेलौस हँस दिये थे जब सुधा ने यह कहा था। पर डॉ. सोनम थोड़ा-सा हँसने के बाद गम्भीर हो आयी थी। और उससे इसकी व्याख्या करने को कहा था।

वही 'कविता' करने की स्थिति अब उसकी है। शायद जिस ध्यान की बात वह स्वयं से कह रही है, यह वही है। ध्यान—जब अपने चित्त को वह साफ करेगी। चित्त-भूमि पर झाड़ू लगाएगी। और झाड़ू-लगे हुए चित्त की चटाई पर क्षण-भर लेट जाएगी और सोचेगी...वह कोई नहीं है...कहीं नहीं है...किसी की नहीं है—कोई उसका नहीं है...कोई देश उसका नहीं है...कोई धर्म उसका नहीं है...वह कोई भाषा नहीं जानती...उसका कोई धर्मदेव या इष्टदेव नहीं, कोई ईश्वर उसका नहीं। उसका कुछ नहीं। वह किसी की नहीं। वह क्या...पता नहीं। वह कौन पता नहीं। वह निश्चेष्ट ठीक किसी कीट-सदृश, ठीक किसी वृक्ष-सदृश, किसी मेघ-सदृश...किसी भी नियन्त्रण से रिक्त। किसी भी सामर्थ्य से च्युत। यह उसके रोग का निदान है...औषध है।

उसने अपने कमरे में पहुँच चिटकनी लगा दी। शुक्र है आते हुए सीढ़ियों पर उसे कोई नहीं मिला। वह कुछ भी बताने की स्थिति में नहीं है।

जैसे स्वयं को मुक्त करना है। इस तैयारी में उसे सहज ही याद आया कुछ मास पूर्व देखा स्वप्न। वह एक मन्दिर के भीतरी परिसर की सफाई करती है और फिर बाहर के परिसर की सफाई करने की उत्कट इच्छा उसमें उत्पन्न होती है। ऐसे परिसर की जो उपेक्षित है। भीतरी परिसर को तो कितने ही श्रद्धालु आकर साफ करते हैं माने साफ किया हुआ ही साफ करते हैं। मगर बाहर का उपेक्षित परिसर साफ करना कोई आवश्यक ही नहीं समझता। वह एक बड़ा-सा झाड़ू उठाकर बुहारने लगती है, जितना हिस्सा साफ करती है उतना साफ किया हिस्सा

उसकी आँखों को बार-बार देखना भाता है। परिसर में जमाने से जमा पॉलिथिन, कागज, कूड़े के हिस्से, प्लॉस्टिक की टूटी हुई चीजें, शीशे आदि हटाकर उसे लग रहा है कि देवघर के निकट ही उपेक्षित पृथ्वी का यह हिस्सा मुक्ति की साँसें ले रहा है और उसे आशीष दे रहा है। आसपास मँडरा रहा कोई मनुष्य कह उठता है—'आप यहाँ मेहनत क्यों करती हैं, यहाँ कोई सफाई नहीं करता।' वह सोच में पड़ती है। क्यों गन्द की परम्पराएँ भी निभानी पड़ती हैं, गन्द की परम्पराएँ सफाई में नहीं बदली जा सकतीं। और सपने में वह गा रही है—'मैं भंगन सरकार की, —मैं भंगन सरकार की...।' और नींद खुलने पर उसे लगा था कि उसका गला बहुत थक-सा गया है। वह अहाते की सफाई करते-करते किस कदर पागलों की तरह गाये जा रही थी—'मैं भंगन सरकार की।'

अहाता साफ किया। हाथ नहीं थके। गले की नसों की दीवारों पर लिख गया—'मैं भंगन सरकार की।'

अब वह साफ अहाते में खुलकर विश्रान्ति लेगी। न कोई स्मृति है, न भूत है, न भविष्य है, न दक्षिण-पश्चिम, न पूर्व-उत्तर। कुछ भी नहीं। वह इतना सब-कुछ न होने के बारे में सोचती है, पर सब कुछ है। क्योंकि वह सब कुछ के बारे में सोचती है। सब कुछ को कैसे कुछ नहीं किया जाए। न कोई पीड़ा, न कोई दर्द।

उसने बिस्तर से कम्बल उठाकर नीचे बिछाया और लेट गयी। कुछ भी नहीं होने के लिए।

दरवाजा खटखटाया किसी ने। मंजरी थी। क्योंकि खटखटाहट पर उसने दरवाजा खोलना नहीं चाहा और उपेक्षा की। मंजरी समझ गयी दरवाजा नहीं खुलेगा। न घर है, न छूटा हुआ घर है, न दिल्ली है, न श्रीनगर, न भारत, न पाकिस्तान। कुछ भी नहीं। धरती नहीं, आकाश नहीं।

"ध्यान कर रही हो?"

वह कुछ नहीं बोली।

"अच्छाऽऽ...।" मंजरी बोली। "साढ़े आठ बजे रेस्तराँ में डिनर हो रहा है—आना। ठीक साढ़े आठ बजे।" मंजरी ऊँची आवाज में बोलकर चली गयी।

'ये लोग पूछेंगे—कैसा अनुभव रहा पड़ोसियों से मिलने का। घर कैसा था? और सर्वाधिक तो वे यही चाहते हैं कि 'अच्छी लड़की' होना। मैं अब तक सीख गयी हूँगी और बोलूँगी—ओह क्या बात है, क्या कहने उन लोगों के। मेरा घर! सही-सलामत पड़ोसी मेरे लिए तरसते। मेरे विस्थापन के प्रति लज्जित। बड़ी-सी आत्मा के धनी हैं मेरे पड़ोसी। उफ मैं यह सब बकवास नहीं बोल सकती। ये मँजे हुए झूठ। ये गढ़े हुए झूठ। क्यों? क्या प्रयोजन है इस झूठ का? प्रयोजन है

कि...देखो अब हमें मरहम लगाना है। हालात ठीक करने हैं। पिछला सब कुछ भूलना है। खूनी इतिहास मिटाना है। मीठा बोलना है। ताकि आगे मिठास का निर्माण हो। भविष्य का निर्माण हो।'

'मैं सच बोल सकती हूँ जिसके एवज में वे बोल उठेंगे, 'ऐसा नहीं बोलना चाहिए।' आखिर भविष्य बनाना है...पुल बनाना है...मगर कमबख्तो! मुझे समझाओ पानी में गहरे डूबे बिना, पानी की गहराई नापे बिना...नदी का तल नापे बिना किस तरह स्तम्भ डालोगे, यदि डालोगे वह बहेगा...जैसे कि ढहता और बहता है...इसलिए सच जाने बिना कैसे रणनीति तय करोगे...पुल बनाने की।' वह स्वगत में कहती है।

वह सब कुछ साफ कर कुछ नहीं के अहसास में जीना चाहती है कुछ क्षण। किसी स्थावर की तरह। पर ऐसा सम्भव नहीं...उसकी इच्छा मात्र है।

वह डिनर के लिए मसौदा तैयार कर रही है अब। सम्भावित प्रश्न और उनके अति-संक्षिप्त उत्तर। 'मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्।' मेरे पास कोई उत्तर नहीं...विशेषकर तुम्हें भाने वाला उत्तर। इसलिए मेरे पास कोई गुर नहीं रहस्य नहीं, अत: मौन महान चीज है; ताकि तुम सोचते रह जाओ कि मैं मौन हूँ क्योंकि अत्यन्त गोपनीय रहस्यों को उद्घाटित नहीं करना चाहती...तभी तो मैं अत्यधिक मौन हूँ। वाह रे मैं। वह स्वयं पर ही खूब हँसी—'मैं डॉन क्विखोते। ह ह ह ह ह।'

उसने उठाकर कम्बल को चौगुना तहाया। और उस पर बैठ गयी। क्यों न कुछ मन्त्र आजमाए जाएँ। मन्त्र जैसे—'मैं भंगन सरकार की।'

लेकिन मन्त्र के समय वह स्वयं से बात भी कर रही है, मन्त्र भी जप रही है...क्या...क्या किये जा रही है...वह प्रेक्षक की तरह देखे जा रही है...'कितना कठिन है कुछ नहीं होना। यह धरती कितनी निर्जन है। बस कुछ लोग ही हैं इस पर, सिर्फ चन्द लोग और चन्द रोज। जैसे मैनेजर अली मुहम्मद। उसका बूढ़ा भाई, बड़ा भाई। जैसे हाजी जो उसे दिखा ही नहीं था...शायद...वह...। जैसे जलबोबा...एक बूढ़ा और बेटों पर निर्भर जिस्म में बन्द एक नितान्त हंसिनी। उड़ जाएगी एक दिन अकेली...कौन है इस संसार में...कितनी खाली है धरती...शून्य...सुनसान...जैसे यहाँ का श्मशान। कैसी विडम्बना कि किसी शहर का मरघट तक सुनसान पड़े। महीनों सालों वहाँ कोई शव दाह-संस्कार के लिए न आए। कैसी पीड़ा है...? पीड़ाओं के ये कैसे और कितने आयाम...।' वह स्वयं से कह रही है।

मन्त्र पता नहीं कहाँ से कहाँ सरक गया था...मानो किसी रुआँसे बच्चे के हाथ में पेंसिल दो और वह खींचता जाए लकीरें...उसके कपोलों से खिंच रही थी...गर्दन के नीचे तक...यहाँ तक कि उसके कुचाग्रों तक...भीग गयी थी उसकी कमीज; बिना जाने कि वह शतियों...के अश्रु बहा रही है। अश्रु बह रहे हैं और

वह जान नहीं रही कुछ। 'कितना कठिन है कुछ नहीं होना...कितना हो जाता है मनुष्य न होने की कोशिश में...।' उसने निष्कर्ष निकाला।

वह उठ खड़ी हुई। समय बीत गया है। साढ़े आठ हो चुके हैं। उसने अपने गीलेपन के ऊपर एक चुन्नी डाल दी...चेहरे पर एक मुस्कान लगा दी...बालों को जरा ठीक-सा किया और रेस्तराँ की तरफ जाने लगी सोचते हुए कि 'बेहतर है कुछ लोगों में होना...और अपनी सदा बाहर रहने वाली तितलियों से प्रार्थना करना...कि देखना जरा ठीक से...साफगोई से...कि क्या हो रहा है।'

❑❑

सब बातों में व्यस्त हैं। बुद्धि-प्रधान बातें हो रही हैं। भविष्य-निर्माण केन्द्रित बातें हो रही हैं। शास्त्रीय बातें हो रही हैं। सलीकेदार बातें हो रही हैं। नफीस बातें हो रही हैं माने निरापद और निर्विवाद बातें हो रही हैं।

बैरे भी नफासत से प्लेटें, दोने, चम्मच...सलाद...इत्यादि रखते जा रहे हैं।

सबसे सुधा ने अभिवादन किया। सुमोना नहीं दिखी। वह अभी अपने पत्रकार मित्र के साथ बाहर ही है।

यहाँ जेल में बन्द एक अलगाववादी नेता से उसे मिलना है, उसका इण्टरव्यू लेना है। उसने कल भी एक आतंकवादी नेता से बात की है। जिसने 1971 में हवाई अड्डे से जहाज लाहौर अगवा किया और वहाँ पाकिस्तान ने अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को ताक पर रख जहाज को स्वाहा कर डाला। वर्तमान क्लीव—भारत सरकार ने ऐसे व्यक्ति को महानायक का खिताब दिया और उसी हैसियत से कश्मीर में वापस लाकर अपना पुराना स्वप्न पुनः देखने और उसे पूरा करने की कोशिश करने का मौका दिया। दिखावे के लिए नजरबन्द रखा एक पाँच सितारा बँगले में और जीवन का हर उत्तम सामान मुहैया रखा।

'वाह रे मेरा भारत देश! मैं करूँ तू तू, तू करे वे वे। जिसने तेरा अरबों का जहाज स्वाहा किया। जो विश्व की नजरों में घृणित पापी है, वह मजे से अपनी मातृभूमि पर आनन्द ले रहा है...जो तुमसे विशुद्ध और उत्कट प्रेम करता है। जिसने तेरे प्रेम के कारण सब-कुछ छोड़ा घर-बार, मूल, सम्पत्ति, सुख, आनन्द, ठण्डक, 'अस्मिता...वह' यह सब...वह सड़ रहा है...गल रहा है...मर रहा है...उसे साँप खा रहे हैं...उसके ऊपर न छत है न नीचे जमीन...वाह रे वाह।'

कल सुमोना वहाँ से आकर बता रही थी कि उस नेता ने बताया, "मैंने जेल में रामायण, महाभारत और गीता पढ़ ली। मैं अब पक्का हिन्दुस्तानी और सेक्युलर मुसलमान हूँ।" 'वाह रे! वाह! वाह! वाह! सुमोना। उसने कहा तुमने माना।' यह सुधा का आत्मालाप था।

सब हँस दिये थे। खासकर रामायण, महाभारत और गीता एक ही साँस में पढ़े जाने की बात सुनकर।

अभी तक सोनम से मीनाक्षी कुछ मनोवैज्ञानिक बातें कर रही थी। पर सुधा के वहाँ आने के बाद मीनाक्षी ने सुधा की तरफ रुख किया। चेहरे पर एक खुली मुस्कान मीनाक्षी को दिव्य बना रही है। देखनेवाला उसे और, और अधिक देखने की लालसा से भर उठता है। फिर वह बात भी बहुत भद्र लहजे में करती है कि एक भुक्तभोगी डरता है कि इसी किताबी ढंग से उसे उत्तर कैसे दिया जाए। पर वह परवाह नहीं करती। वह 'सरकार की भंगन' है। वह अपने ही घर में उपेक्षित शरणार्थी है। वह कुछ नहीं है। इसलिए वह अपने ठेठ भदेस ढंग से उसकी जिज्ञासाएँ शान्त करेगी। मौन नहीं रहेगी। उसने इरादा बदल लिया है।

पता नहीं अपनी जिज्ञासाओं की नाव का चप्पू उसने लगाना कहाँ से शुरू किया...किस घाट से...और पूछा—'सुधा, हम जानना चाहते हैं कि जब इस्लाम का आगमन कश्मीर में नहीं हुआ था...तो क्या तब यहाँ शान्ति थी? क्या यहाँ दंगे नहीं होते थे।' प्रश्न बड़ा जबरदस्त था, बेहद नुकीला।

सुधा के मन में पहले आया कि पूछे, 'मीनाक्षी, क्या यह सवाल तुम वर्तमान के सन्दर्भ में पूछ रही हो?' लेकिन उससे उसकी बौखलाहट उजागर होगी। इसलिए उसे उत्तर सीधे-सच्चे देने चाहिए। ठीक एक उत्तर की तरह उत्तर। पूरी भिज्ञता के साथ—"देखिए डॉ. मीनाक्षी," उसने बाकायदा सम्बोधित किया और बोली, 'द्वन्द्वः समासिकस्य च।' कि मैं समासों में द्वन्द्व हूँ। यानी द्वन्द्व भी ईश्वर की तरह सर्वव्यापक है। आप कैसे मानती हैं कि जब एक ही धर्म के लोग होते हैं तो वे आपस में द्वन्द्व नहीं रखते। एक परिवार में भी द्वन्द्व रहता है। पति-पत्नी में द्वन्द्व रहता है...और वहीं से सृष्टि की संरचना भी सम्भव होती है। द्वन्द्व एक स्वस्थ चीज है। यदि दो धर्म नहीं है तो एक ही धर्म में से द्वित्व उगेगा। यह प्रकृति का नियम है। ये लोग एक ही आवाज में आजादी माँग रहे हैं...आजादी चाहते हैं...किससे भारतीय मन से। भारत के प्रति उन्मुखता से। भारत के प्रति वफादारी से क्योंकि, मुसलमान होने के नाते...इस्लाम के नाते...कुरान की शिक्षा या निर्देश के नाते।

"मगर मान लीजिए निज़ामे मुस्तफा आया तो क्या ये लोग एक-दूसरे को काट नहीं खाएँगे? ये एक-दूसरे की टाँगें नहीं खींचेंगे?...क्या इनमें दंगे नहीं होंगे? भयंकर होंगे। अरे हमने इनकी खूँरेजी शेर-बकरा द्वन्द्व के दिनों देखी है...मैं छोटी थी उन दिनों...तो आप कैसे कह सकते हैं कि जब यहाँ सिर्फ पण्डित थे तब द्वन्द्व नहीं रहा होगा। कुछ ज्यादा ही रहा होगा। क्योंकि हमें बुनियादी तौर पर कोई पुस्तक एक होने के निर्देश नहीं देती...न ही हम उसके उसूलों में बँधने के अनुरूप

प्रकृति द्वारा निर्मित हैं...हम मानव-मुक्ति के मूल-मतों पर ही वस्तुत: विश्वास करते हैं। ईश्वर को अपने-अपने अनुसार गढ़ने के लिए पूर्ण-स्वतन्त्र हैं। अब मैं आपको एक सूत्र बताती हूँ जो 'कौल' की व्याख्या है...'अन्तर्शाक्ता बहिर्शैवा सभा मध्ये च वैष्णव:...' अब इस पंक्ति में त्रिकोणीय द्वन्द्व की लम्बी कथा निहित है, जबकि वैष्णव मत को दरकिनार करें क्योंकि वह बहुत बाद का सृजन है...आदि मत तो शाक्त मत है, शिवमत है। दोनों अभिन्न हैं...लेकिन द्वन्द्व है, अत: व्यक्ति यदि शाक्त है तो भीतर से...गुप्त रूप से...शैव है तो बाहर से...आम जनता में। वैष्णव है तो बौद्धिक लोगों की सभा में, नाटक करते हुए...मुद्दा किसी भी तरह नाटकीयता का सहारा लेकर...स्वयं को बचाते हुए और उनके साथ...उनका हिमायती...लगते हुए...यह सुमोना धर के लिए विशेष कर ध्यान देने की बात है। जैसे सुमोना धर कार्यशाला में 'अच्छी बच्ची' बनती है। यह आज भी कश्मीरी रक्त में मौजूद है। शायद कश्मीरी जानता है कि किस महफिल में क्या बनना है।''

यह बात सुनकर सब चमत्कृत हो उठे। महफिल में कश्मीरी रंग आया था। धर्म-विशेष पर बात टिक जाने का भय कमोबेश उड़ गया था।

''लेकिन इस्लाम के हमले के बाद...वैष्णव, शैव, शाक्त सब हिन्दू हो गये और द्वन्द्व इस्लाम के साथ रह गया। इस्लाम अपने खूँखारतम रूप में आया। धर्म-परिवर्तन का अभियान सफलता और बड़ी ही आसानी के साथ दण्ड भेद के माध्यम से चलाया गया। और जितने भी कश्मीरी मुसलमान इस समय निजामे-मुस्तफा की वकालत, धर्म के नाम पर स्वतन्त्र या अलग होने की वकालत में आवाज मिला रहे हैं, वे सब किसी समय के कश्मीरी पण्डित हैं, जिन्होंने इस्लाम कुबूल किया। तान्त्रे (तन्त्रकर्मी-शाक्त), वाणी (वणिक), भट्ट, पण्डित, डार (धर) कौल, आदि इत्यादि अभी हाल के हैं। आश्चर्य की बात है कि युद्ध के बाद ज़िया-उल-हक़ ने इन्हें 'ब्राह्मण-मुसलमान' का खिताब भी दिया था। वैसे ही धर्म-परिवर्तित धर्मान्ध होते ही हैं...ताकि जिस धर्म में आये हैं उसके पूर्वावलम्बी उस पर रंच मात्र भी सन्देह न करें। ज़िया-उल-हक़ का यह वक्तव्य धर्म के माध्यम से एक खूँखार राजनीति करने की जबर्दस्त पहल थी जिसमें वह कामयाब हुआ और यहाँ के इन ब्राह्मण मुसलमानों का अपने मूलों के साथ द्वन्द्व—खूनी द्वन्द्व करने का संकल्प मजबूत हुआ।''

भोजन स्वादिष्ट था। वह कुछ सच्चाइयाँ बोल रही थी बेरोक और बेखौफ...जबकि यों तो सच्चाइयों की कई तहें थीं। कोई उसे रोक भी नहीं रहा था। वस्तुत: श्रीनगर की वे सब हस्तियाँ इस समय अपने-अपने घरों में थीं...इसीलिए। इसीलिए वह बेरोक बोल भी रही थी। पर अपने बोले हुए को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए वह फिर बोली, ''डॉ. मीनाक्षी! क्या आपको याद है कि दिल्ली

की कॉन्फ्रेन्स में जब मैं अपना आलेख प्रस्तुत कर चुकी थी, तो जमीला बोली थी। बोली थी कि अरे जो उसे कहना था वह काम पहले ही गौतम श्रीवास्तव, प्रोफेसर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय ने कर दिया। गौतम ने सुरक्षा-बलों और भारत सरकार की जमकर भर्त्सना की थी। है न आपको याद मीनाक्षी? पर मेरे आलेख को सुनने के बाद वह दम-साधकर बोली थी—हम वास्तव में सभी लोग शिव के उत्तराधिकारी हैं...क्या आपको स्मरण है?''

''अरे हाँ...हाँ...यस...यस सुधा।''

''तो डॉ. मीनाक्षी, यहाँ पर पहले ध्यान रहे कि मैं जमीला के इस स्वीकार से गद्गद नहीं हूँ। वह ऐसा न भी कहती तो भी वह सच है जो उसने कहा...पर मैं आपको ध्यान दिलाना चाहती हूँ कि विडम्बना है कि हम इन लोगों के मूल हैं और ये हमें ही काट रहे हैं...भला ये क्या फलेंगे हमें काटकर। नहीं फलेंगे।''

तुरन्त सुधा को अहसास हुआ कि उसके भीतर की असहायता सतह पर आ रही है और उसकी भावुकता शब्द पकड़ रही है...जबकि द्वन्द्व पर बात छिड़ी थी...और तुरन्त सुधा फिर बोली, ''मैंने इनको एक सूक्ष्म स्तर पर द्वन्द्वरत देखा है। ये आपस में मूल-मुसलमान और अन्य-धर्मों से आये मुसलमानों में बँटे हैं सूक्ष्म रूप से। वस्तुतः यह मजहब लोगों को, वह भी अपने ही लोगों को मार-मार कर ही फैलाया गया है। मूर्तियों को बेरहमी से तोड़-तोड़कर। खैर।''

सुधा ने चाहा वह चुप हो जाए अब। मीनाक्षी का चेहरा विचित्र हो उठा था। शायद मीनाक्षी ने उसे इतना और इस तरह बोलने के लिए नहीं कहा था, यही बात न समझने के लिए।

बात फिर दर्द पर...दुःखते हुए वर्तमान पर आ पहुँची थी। 'मीनाक्षी शायद रस ले रही हो...क्या पता।' यह सुधा की चाहना थी। 'या ज्ञान' भी उसने एक आत्मव्यंग्य के साथ सोचा। मीनाक्षी कुछ अलग सुन रही है...'क्या वह कुछ अलग सुन रही है सचमुच?' 'आन्ध्रा की बेहद सुन्दर मीनाक्षी...मानो कश्मीरी ही हो...या पूर्वजन्म की कोई कश्मीरी सुन्दरी अपने पूर्वजन्म के रहस्यों में डूबने का आनन्द ले रही हो।' सुधा ने सोचा।

अन्तिम बात कहने के बाद उसने या उसकी बाहर मँडराती तितलियों ने देखा था कि डॉ. सोनम, मंजरी, मीनाक्षी आदि सभी मन्द-मन्द मुस्करायी थीं, मानो कह रही हों, ''आ गयी अपनी कुण्ठा पर, अपनी पराजय पर...अपनी हीन-भावना पर।''

सुमोना इस महफिल में नहीं है। वह जरूर उसे रोकती शायद। उसे अपनी बातें कुछ पंगु लगीं। थोड़ा विराम दिया अपने प्रवचन पर। और जानना चाहा कि

वह जो इतिहास बक रही है, या नृतत्त्व शास्त्र बखान कर रही है, उसका अंकन कहाँ-कहाँ हो रहा है।

"ललद्यद बहुत प्रसिद्ध है...कौन है यह ललद्यद ?" मीनाक्षी का प्रश्न नम्बर दो। जबकि प्रश्न नम्बर एक के प्रवचन में अभी और बहुत कुछ जोड़ना चाहती थी वह पर 'अब स्वयं ललद्यद आ गयी है...अब स्वयं पार्वती आयी है...' उसने स्वयं से कहा।

'मैं भी बकवास हूँ...कहती हूँ...जगदम्बा आयी है...।' सोचा उसने अपने भीतर। 'भट्ट उसको अब योगिनी कहते हैं...जब जीवित थी तब पत्थर बरसाये...पत्थर खाने को दिये...मैं भी उनमें एक रही हूँगी तब—'असी ऑस्य तॅ असी आसव।' भट्ट जीवन-काल में जरूर ललद्यद से ईर्ष्या करते रहे होंगे। उसकी महापापिन सास और मूर्ख पति जो ललद्यद के खिलाफ एकजुट थे, एकमत थे, एकराय थे, के साथ तत्कालीन समाज था। जब वह उन पत्थरों को खाकर शरीर-रहित हो गयी...समाज उसे योगिनी के रूप में पूजने लगा, जगदम्बा...स्वयं शिव की सती मानने लगा। वाह रे भट्टों के समाज। अन्धे और बहरे समाज। कापुरुषों के समाज। स्त्रियों से ईर्ष्या करनेवाले समाज। वाह। वाह। वाह।' अपने एकालाप में उसे जूझने में कुछ समय लगा और रोटी का ग्रास नीचे करके वह बोलने लगी। मीनाक्षी तीव्र-जिज्ञासु की तरह उसके मुख को देखने लगी और उसके शब्दों को तोलने के लिए तैयार हुई—"डॉ. मीनाक्षी, एक विशेष विडम्बना की बात कहूँगी। पहले वह सुनिए। कश्मीरी पण्डित समाज लड़कियों को शिक्षा देता है, किताबी ज्ञान देता है, पर सोचने की स्वतन्त्रता नहीं देता। जाहिर है कि इससे उपजा विद्रोह वह अपनी तमाम कोशिशों से उसकी रगों के भीतर नाकारा कर देता है। ललद्यद का जिक्र। मैं क्या करूँ। क्या जिक्र करूँ उस प्रकाश-पुंज का। सैकड़ों वर्षों उपरान्त भी उस जैसा कवि अभी तक कश्मीरी समाज में उत्पन्न नहीं हुआ है। वह कश्मीरी ही नहीं मैं तो विश्व के शीर्ष पर उसे मानती हूँ।

"ललद्यद ने योग-पद्धति से, ईश्वरीय-मार्ग से या आध्यात्मिक क्रान्ति की और शीर्षस्थ हुई। ज्ञान और अनुभव की अद्वितीय सामंजस्यकर्ता। शिव को अपने से अभिन्न करती हुई—'शंकर लोभुम तने सॉती।' यानी शिव स्वयं मेरी देह के साथ सटे हुए मिले मुझे...कितना कहूँ...एक-एक शब्द अमृत है...एक-एक शब्द शक्ति सम्पन्न है...सूत्र है...शक्तिवर्द्धक है उनके वाखों का।

"मगर उन्होंने अपनी पीड़ाओं से दुःख नहीं पाया हो...ऐसा कतई नहीं। वे दुःखी जरूर थीं...कभी उनके मन में भी आया होगा कि वह भरपेट भोजन करें। स्वादिष्ट भोजन करें...मगर चूँकि वह जानती थीं और यह जानना मानना बन गया...मानने ने उन्हें वैराग्य दिया...भूरि-भूरि वैराग्य...और वैराग्य से

शिवोन्मुखता...और फिर शिव लोक। वर्ना वह नहीं कहतीं, ''होंड़ मारितन या कठ ललिनीलवठ च़लि नु ज़ांह। ' यह एक बड़ी-सी कथा का रहस्योद्घाटन करता है...ललद्यद के ससुराल में महाभोज होनेवाला है, शिकारी पक्षी और भेड़ कट रहे हैं, ललद्यद अपना गार्हस्थिक श्रम करने में यथावत् लीन हैं। पानी के घड़े नदी से भर-भरकर ला रही हैं...तो सखी...या पड़ोसन स्त्री/स्त्रियाँ पूछ रही हैं। पूछ क्या रही हैं...बस व्यंग्य-बाण चला रही हैं—'कि ऐ लला! क्यों आज तो तुम्हारे घर में मांस के पकवान पक रहे हैं...भेड़ कट रहा है...पक्षी कट रहे हैं...।' तो लला कहती है—'बहन यह तुम्हारा व्यंग्य हो या यों ही तुम्हारा सच्चे मन से पूछा गया प्रश्न। जो भी हो। बहन। ये लोग भेड़ मारें या शिकार...क्या फर्क पड़ता है...मेरे भोजन के नीचे तो सिलवट्टा रखा ही जाएगा।' उसकी पापिन सास उसके भोजन पात्र में सिलबट्टा रखती थी, ऊपर से कुछ चावल के दाने फैलाकर रखती थी ताकि लगे कि चावलों से पात्र भरा है। खैर ललद्यद के बारे में बताने की मेरी औकात ही क्या...मगर दु:ख की बात है कि जब ललद्यद प्रयाण कर गयी थीं तो मुसलमानों ने दावा किया था कि वह मुसलमान है और लल आरिफा है...और इस पर भी द्वन्द्व हुआ था।

''अरे भई...अब इससे क्या होना था। वह तो धर्मातीत हो ही गयी थी। धर्म तो मोक्ष तक मार्ग तय करता है मगर हम मार्ग पर ही लड़-मर जाते हैं मोक्ष क्या पाएँगे...खैर...आज की शाम ललद्यद...के नाम...सहित प्रणाम...क्यों?'' कहते हुए वह कमरे में वापस जाने को उद्यत हुई।

''नहीं, नहीं...सुधा...कृपा करके अब हब्बाखातून के बारे में भी कुछ बताओ। कृपा करके।'' मीनाक्षी ने सविनय अनुरोध किया।

सुधा पसोपेश में पड़ गयी और चलने के लिए जो वह अपनी कुर्सी से उठी थी—सो वापस बैठ गयी। ''डॉ. मीनाक्षी! मैं क्या कह सकती हूँ। इसके लिए आपको इन पर पुस्तकें पढ़नी पड़ेंगी...किन्तु पुस्तकों में भी विरोधाभास है। मेरी क्या औकात जो इन दोनों महान हस्तियों के बारे में कुछ बताऊँ। तब इतना बताना चाहूँगी मीनाक्षी कि इन दोनों में एक अद्भुत किस्म का साम्य है विडम्बनात्मक ढंग से। जिस प्रकार ललद्यद के पत्ति और सास आपस में ललद्यद के खिलाफ मिले हुए थे, उसी तरह हब्बा खातून के खिलाफ भी उसके पति और सास आपस में एकमत थे।

''हमारे समाज को कभी औरतें वह भी, विभूति-सदृश औरतें रास ही नहीं आयीं। अत: औरतों ने शीर्ष पर जाने, विभूति बनने से कतराना शुरू किया। घबराना शुरू किया। गुलामी में आनन्द लिया। पुरुषानुकूल और पुरुष द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने से उसे सुरक्षा और तद्जन्य आनन्द की अनुभूति हुई।

''हब्बा और लला दोनों ने क्रान्ति की। भीषणतम दु:ख पाये, पर क्रान्ति की राह पर चलीं। हब्बा ने भौतिक पद्धति से क्रान्ति की और ललद्यद ने यौगिक पद्धति अपनायी। क्योंकि उसमें दर्शन का गम्भीर प्रकाश था। हब्बा ने स्त्री के उत्पीड़न को सुन्दर काव्य में साफ-साफ बयान किया। बेबाकी के साथ और निर्भीक होकर।...बस...।'' अब वह थक गयी थी। उसका मौन धरा रह गया था। उसे स्मरण हो आया कि उसने अहद किया था चुप रहने का...कुछ न कहने का...पर चूँकि ललद्यद का प्रसंग था...इस्लामपूर्व कश्मीर में द्वन्द्व का प्रसंग था...हब्बा खातून का प्रसंग था...तो उसे बोलना अवश्य था। —वर्ना मीनाक्षी सोचती—सुधा को कोई ज्ञान ही नहीं।

'तो ज्ञान भरपूर बघारा गया।'

'हे ललमाँ। छूवपि मन्त्र आत्मदीपवुज़े...। मौन के मन्त्र से आत्मदीप प्रज्वलित होता है।' उसने यह द्वन्द्वात्मक बातचीत स्वयं से की।

मगर वह बोलना चाहती है हब्बा की विडम्बनाएँ। और बोलने लगी, ''डॉ. मीनाक्षी, हब्बा खातून अपने पति अज़ीज़ लोन से उत्कट, आकण्ठ प्रेम करती थी।—'हा जाने अज़ीज़ो वला गूर करअयो।

''जरूर अज़ीज़ लोन एक खर-दिमाग और भावहीन व्यक्ति रहा होगा, जो अपनी माता की ईर्ष्या-सम्पन्न बुद्धि के माध्यम से ही सोचता रहा होगा। क्योंकि उसकी माता को अपनी विश्वसुन्दरी बहू की अद्वितीय प्रतिभा और अद्वितीय सौन्दर्य काट खाता होगा। हब्बा का प्रेम और सौन्दर्य कुछ भी अज़ीज़ लोन की समझ में नहीं आया और वह मूल्य नहीं कर पाया उसका। पीड़ा ने हब्बा खातून के विरह और ससुराल के उत्पीड़न काव्य की तीव्रता में चार चाँद लगाये। 'वारि व्यन सअत्य वारअ् छस नो चारअ कर मयोन मालिन्यो हो' मैं ससुराल में ठीक नहीं हूँ मेरे मैकेवालो कुछ तो मेरा उद्धार करो...और हब्बा की सास ने अपने बेटे की मदद से हब्बा को घर से बाहर कर दिया।

''हब्बा हृदय से अपने पति अज़ीज़ लोन को चाहती है। उससे प्रेम करना चाहती है। उसके साथ सुखमय गृहस्थ जीवन व्यतीत करना चाहती है। पर अज़ीज़ लोन का चाहना जो उसकी माँ का चाहना है।

''और अज़ीज़ लोन जब यूसुफ शाह चक से हब्बा की कीमत पाँच हज़ार अशर्फ़ियाँ प्राप्त करता है तो बेहद खुश होता है सोचकर कि अशर्फ़ियाँ पाकर उसकी माँ खुश होगी। और माँ को अशर्फ़ियों की थैली थमा देता है। अपने कमरे में आता है, जो हब्बाखातून से शून्य है। समूचा घर हब्बा से शून्य है। इस घर में वह कभी आएगी भी नहीं। यह विचार अज़ीज़ लोन पर धीरे-धीरे जहर की तरह नस-नस में फैल जाता है। उसे अब समझ में आने लगता है धीरे-धीरे कि

उसने अपने जीवन का क्या किया। उसके जीवन का क्या हुआ...वह भयावह बुखार की चपेट में आता है और सिर्फ एक सप्ताह के भीतर मर जाता है।..."

"...और सुधा अरणिमाल...? प्लीज़?"

"बस यही कथा। उपेक्षा...उपेक्षा...और घनघोर उपेक्षा मीनाक्षी। अरणिमाल के पति महाशय फारसी के रूमानी कवि...तबीयत से रंगीन...मुंशी भवानी दास काचरू। खान अब्दुल गफार खान के दरबार का दीवान और दरबारी कवि। दरबार की स्त्रियों और सुन्दरियों के साथ विलास में डूबा...ऐसे कि मानो जीवन अनन्त हो, अमिट हो।...अरणिमाल को पिता को वापस सौंप आया पलहालन गाँव जाकर। अरणिमाल पिता के पास विरह, उपेक्षा और तिरस्कार की पीड़ाओं से जलती काव्य लिखती...काव्य में पूरा दुःख न ढलता तो आधे से तपेदिक शुरू हुई और बढ़ती गयी। बढ़ती गयी। पर अरणी भी आत्म-प्रकाश सम्पन्न थी। उसे पता था तमाम उपेक्षाओं और तिरस्कारों के बाद भी अरणिमाल अरणिमाल ही है। अपने होने के बारे में वह आश्वस्त थी। जानती थी कहीं सूक्ष्म रूप से कि उसका लम्पट पति विषय-वासनाओं के तमस से घिरा है और अरणिमाल को नहीं पहचानता। वह आँख उसने पायी ही नहीं। उसके गीतों में उसका आत्म-सम्मान छलकता है। आत्म-सम्मान युक्त विरह...अद्वितीय हैं उसके गीत इस लिहाज़ से।

"एक दिन मुंशी भवानी प्रसाद की लम्पटता का शीराज़ा गिर-गिराकर खण्ड-खण्ड हुआ। ध्वस्त हुआ। रंगरलियों का बाजार अचानक बन्द हुआ और शरीर मन्द हुआ...यौवन, उसको पता चल गया अचानक, कि कहीं से बूँद-बूँद रिसता जा रहा था।...और तत्क्षण याद आयी अरणी।

"एक दिन काचरू महोदय ने घोड़ा सँवारा। भई अरणी से मिलने पलहालन जाना है। उसकी खबर लेने, उसे उसके पिता के घर से वापस लाने के लिए...पलहालन जाना है।

"गाँव के अन्दर की छोटी सड़क शुरू हुई। वहाँ से एक महायात्रा आ रही थी। काचरू महाशय घोड़े से नीचे उतरे। अपने नौकर गुल मुहम्मद से कहा, 'जाकर जरा पता कर किसकी अर्थी है।' गुल मुहम्मद लौटा और बोला—'महाराज यह तो अरणी ही इस अर्थी में सोयी हैं।'

मीनाक्षी के कपोल बेरोक आँसुओं से भीग उठे थे। टेबल पर फ्रूट सलाद ज्यों-की-त्यों थी। सब लला, हब्बा और अरणी के साथ एक हो उठी थी। अब सुधा मौन हुई। मीनाक्षी को आँसू पोंछते हुए देख रही थी। 'मीनाक्षी सहृदय है। भावभरी। वह हर भिगोने वाले प्रसंग में निमज्जित होती है। ईश्वर ने उसे सोने का हृदय दिया है।' सुधा ने स्वयं से कहा।

सबने गहरी साँस ली।

“सैलेड लीजिए”—सुमोना बोल रही थी। वह कब आयी थी। उसे पता नहीं चला। शायद वह चुपचाप किसी क्षण आकर कुर्सी पर विराजमान हुई थी।

सभा विसर्जित होने वाली थी। मीनाक्षी ने कोई अन्य प्रश्न नहीं दागा। सब के हृदय बोझिल और मस्तिष्क चिन्तनमय थे। स्त्रियाँ स्त्रियों के बारे में सोचना चाहती थीं। अपनी आँख से स्वयं को देखती हुई सदियों से देखती आयी पुरुष की आँख का विरोध कर।

“लेकिन चीजें बदल गयी हैं।” मंजरी अँग्रेजी में बोली।

“बदल नहीं गयी हैं...बदल रही हैं...स्त्री का विस्फोट हो रहा है...।” सुधा ने कहा।

“बहुत...बहुत...बदलाव है।” सुमोना बोली।

“हाँ मगर जहाँ शिक्षा है।” सोनम थी।

“सो तो सच है।” यह हामी मीनाक्षी की थी सोनम के लिए।

“अरे पुरुष में वर्चस्ववादी जीन बहुत प्राचीन है, प्रागैतिहासिक है, पौराणिक है। कुछ दिन पहले टाइम्स ऑफ इण्डिया में एक दिलचस्प बात छपी थी कि याज्ञवल्क्य जब गार्गी से शास्त्रार्थ में हार गये तो पराजय की बौखलाहट में हाथापाई पर उतर आये...तभी से पुरुष में स्त्री पर हाथ उठाने का कीटाणु पड़ गया।

“और एक मज़ेदार बात। एक बार शिव और पार्वती आपस में चौसर खेल रहे थे। चौसर की पहली बाजी पार्वती जीत गयी तो भगवान शिव ने सोचा, कोई बात नहीं, यदि एक बाजी बेचारी ने जीत ली तो क्या हुआ। दूसरी बाजी भी पार्वती ने जीती तो भगवान शिव ने सोचा चलो कोई बात नहीं...जीतने दो दूसरी बाजी भी। तीसरी बाजी जीत गयी तो शिव जी डोलने लगे...और क्रोध की तरफ अग्रसर होने लगे। जब चौथी बाजी पार्वती ने जीती तो पार्वती खुशी से हँस पड़ीं। वह खेल-भावना से खेल रही थीं और शिव जी पुरुष भावना से खेल रहे थे। और शिवजी पार्वती की हँसी को सह न पाये। पाँचवीं बाजी भी जब भगवान शिव को लगा कि हाथ से निकलती जा रही है तो उन्होंने चौसर की बिसात उलटाकर छितरा दी। खड़े हो गये और बोले—‘पार्वती तुम्हें घमण्ड हो गया है...अहंकारी है तू...तू इसी क्षण मेरे घर से निकल और अपने पिता के घर जा।’ पार्वती चली गयीं। और बहुत समय बाद नन्दी और कुछ गण जाकर वापस भगवान के पास लौटा लाये। मैं सोचती हूँ स्त्री को घर से निकालने का बीज पुरुष में आदि देव भगवान शिव के जमाने का है?’

“और इस प्रकार स्त्री के लिए विजेता होना भी प्रतिबन्धित हो गया और स्त्री को विजेता के रूप में स्वयं को देखने से वैराग्य हो गया हो।...है न...।” ये बातें उन्हें विशेष रोचक लगी थीं।

❑❑

दूसरे दिन की कार्यशाला का शुभारम्भ श्वास लेने के व्यायाम से मीनाक्षी ने कराया और सत्र सोनम के हवाले किया।

''मान लो आप किसी का दुखड़ा सुन रहे हैं, आपको उसकी समस्याओं को सुनकर उनका हल निकालना है, उन्हें कुछ मशविरा देना है...तो सुनना कैसे है? किस तरह उनसे प्रश्न करने हैं, किस किस्म के प्रश्न करने हैं? गरज सुनने सम्बन्धी संवेदनशीलता का विकास किस तरह करना है। आप दो-दो का ग्रुप बनाइए। एक जना सुनेगा, एक जना बोलेगा। सुननेवाला किस तरह समस्याओं के निदान ढूँढ़ेगा, यह उसकी बुद्धि और सहृदयता पर निर्भर करता है। चाहे सामाजिक समस्या हो या व्यक्तिगत। ऐसा नहीं लगना चाहिए कि आप सिर्फ उसको कुरेदकर उसके रहस्यों को जानना चाहते हैं, लगना यह चाहिए कि आप मानवीय विराटता अपने हृदय में रखकर, उसकी पीड़ा को स्वयं पर आरोपित करते हुए पूरी सहृदयता एवं सदाशयता और ईमानदारी से उसके दु:ख को अपना दु:ख मानते हुए उसकी परेशानी सुन रहे हैं।'' कहते हुए सोनम ने कार्यशाला शुरू की।

सुधा का और आमीना का ग्रुप बन गया। आमीना दु:ख बताएगी, सुधा सुनेगी। और उसके दु:ख की निवृत्ति के उपाय सोचेगी। और आमीना को बताएगी।

बाहर रेस्तराँ की दो सीटों पर वह और आमीना बैठ गयीं। आमीना ने नकाब जरा ज्यादा हटाया। आमीना शोख हसीना है। ओह! उसके चेहरे से चिनगारियाँ उठ रही थीं। तो आमीना बोलने लगी, ''अजीब परेशानी है मेरे जीवन की सुधा जी। मेरे पति मुझसे इतना प्रेम करते हैं कि बस क्या बताऊँ कि मैं दु:खी हूँ। उसने मेरे लिए सबको छोड़ दिया। अपनी बहनों को खास कर।''

'अरे ठीक किया है उसने...। वस्तुत: पुरुष है वह। वह समूचा तुम्हारा है...होना भी चाहिए उसे। हालात ही उसके वैसे हैं। तुम इतनी भीषण चमक से परिपूरित। उसके पास किसी और के लिए फुर्सत है?' सोचते हुए सुधा को लगा कि ठीक ही करती है आमीना जो वह बुर्का लगाती है। सुभान अल्लाह इतनी सुन्दर। इतनी सुन्दरता पूरी वादी में नहीं समा सकती।

''नहीं, आमीना! बहनों ने भी वैसा कुछ अवश्य किया होगा न! उसकी इच्छा का विरोध...कुछ तो। अकारण थोड़े न छोड़ेगा वह उनको...!'' सुधा बोली।

'अरे यहाँ तो उल्टी गंगा है। आमीना परेशान है कि उसका पति उसकी ननदों का भाई होकर भाईवत् व्यवहार उनसे नहीं करता। आमीना को पति के बहनों की ओर की पीड़ा का अनुभव है, जरूर आमीना एक बड़ी मनुष्य है...अगर वह यह परेशानी सच कह रही है।' सुधा फिर सोचने लगी।

''हाँ, वे उससे पहले-पहल कहती थीं वह मुझे छोड़ दें...मैं सच्चरित्र नहीं...यह...वह...।'' आमीना ने कारण बताया।

''यही तो विडम्बना है आमीना, हर अच्छी चीज बुरी करार दी जाती है, हर सुन्दर स्त्री चरित्रहीन बतायी जाती है और यह काम स्त्रियाँ ही सम्पन्न करती हैं... यू आर ग्रेट आमीना...फिर भी चाहती हो कि बहनें अपना भाई न खो दें, उनके सम्बन्ध सामान्य हो जाएँ, यह तो फरिश्ते ही सोच सकते हैं, मनुष्य नहीं आमीना—तुम महान भी हो और सौभाग्यशाली भी। मुझे लग रहा है कि तुम्हारे दर्शन पाकर मुझे स्वयं को धन्य मानना चाहिए।''

आमीना की चमक बढ़ गयी। उसके बेहद सुन्दर आँखों के पोरों पर जलकण इकट्ठा होने लगे। सौन्दर्य में चार चाँद लगने लगे।

''मैं ननदों के घर जाती हूँ। उनसे अपना रिश्ता बाकायदा निभाती हूँ...पर मेरा पति नहीं जाता। वह कहता है कि तुम्हें निभाना है रिश्ता तो निभा। मैं ऐसी दुश्मन बहनों से रिश्तेदारी नहीं रख सकता, जो दूसरी औरत की दुश्मन हों, उसकी जिन्दगी बर्बाद करने पर तुली हों। आखिर मैंने तुमसे निकाह किया है, तुम्हारी जिन्दगी की जिम्मेदारी ली है...तुम मेरे बच्चों की माँ हो।''

सुधा का हृदय आशंकाओं, अविश्वासों से जलने-सा लगा। 'अरे आमीना। तुम मुझे परेशानी बता रही हो या कोई कल्पनाजन्य हकीकत तो नहीं पेश कर रही हो, ताकि मैं आश्चर्यचकित रहूँ, तुमसे ईर्ष्या करूँ...और दम साधने की कोशिश करूँ।'...यह मौन की अवधि थी। आमीना सुधा को एकटक देख रही थी।

''तो आमीना, तुम्हें कुछ नहीं करना। पहले तो तुम्हें बधाई कि तुम्हें ऐसा दुर्लभ पति मिला है, फिर तुम्हें एक और बधाई कि तुम अपने पति द्वारा बहनों को दण्डित किये जाने से प्रसन्न नहीं, क्षुब्ध हो...तुम्हारी आत्मा भी इतनी ही सुन्दर है, जितनी तुम स्वयं...यह तो मुझे मालूम नहीं था...अरे भई यह तो कोई समस्या ही नहीं...तुमको अतिरिक्त कुछ करना ही नहीं...जिस मार्ग पर जैसे चल रही हो...चलती रहो आमीना...अपने पति के लिए ईश्वर से लम्बी उम्र माँगो...।'' नाटक और नाटक की रिहर्सल खत्म हुई।

आमीना के चेहरे की चमक चौगुनी हो उठी थी, जब उसने बुर्का फिर गिराया और बड़े से रेस्तराँ को पार करके कॉन्फ्रेन्स रूम में पहुँची और अपनी पंक्ति की कुर्सी पर बैठ गयी।

सुधा उसे एकटक निहारती थी। उसके हृदय में जितनी शीतलता थी...उतनी ही धधक थी। समझ में नहीं आता कुछ। यह भी कोई समस्या हुआ करती है?

कार्यशाला में दो-दो का ग्रुप बनाकर ऐसा ही नाटकीय रिहर्सल खाली रेस्तराँ के हर टेबल पर सम्पन्न हो चुका था। वह हैरान थी, विश्वास नहीं हो रहा था कि आमीना ने कोई समस्या सच में बतायी भी। लगा कि आमीना ने कुछ काल्पनिक कहा। कुछ झूठ। क्या हर किसी ने यहाँ झूठ ही कहा? मगर उसका मारक-

सौन्दर्य झूठ तो नहीं।

सुधा को कुतूहल हुआ। उसने सुजाता तिक्कू से पूछा जिसके दल में नीरा ज़ुत्शी थी। नीरा ज़ुत्शी जो सथूबरबरशाह से कार्यशाला में भाग लेने के लिए आयी थी—जानकर वह आश्चर्य से भर गयी थी। 'अरे नीरा ज़ुत्शी। एक भट्ट लड़की। यह तो ख्वाब है।' उसने अलग से भोजनावकाश के समय नीरा ज़ुत्शी को अपने कमरे में ले जाकर यह जानना चाहा कि ऐसा कैसे कि वह वहाँ है। कश्मीर से निकली नहीं। कार्यशाला में विचार-विमर्श से पता लगा था कि नीरा कुशाग्र बुद्धि लड़की है। बी.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर फिर बी.एड. किया है। नवगाम ग्राम से है। सथूबरबरशाह में कमरा किराये पर लिया है और वहीं रहती है। पिता सरकारी नौकरी करते हैं, लेकिन नवगाम के बड़े जमीनदारों में उनकी गिनती होती है।

पर अब नीरा कहती है कि कश्मीर से न निकलने का उनको कोई लाभ नहीं हुआ। उल्टे वे कहीं के नहीं रहे। न घर के न घाट के। न अपने समाज के, न उस समाज के जिनके साथ रहने का उसके पिता ने, बेटियाँ होने के बावजूद, वीरतापूर्ण निर्णय लिया।

"और डैडी अब पछता रहे हैं।" नीरा का दु:ख था। सुधा नीरा के चेहरे में अनुसन्धान-सा कर रही थी। नीरा के चेहरे पर श्री गायब थी।

"मैं जाना चाहती हूँ यहाँ से। यहाँ कुछ भी नहीं रखा। पर कैसे जाऊँ? करूँ क्या... ? मेरी समझ में नहीं आता कुछ...मुझे आप रास्ता दिखाइए दीदी... । मेरी मदद कीजिए...ओह बहुत बड़ी समस्या है...विराट् समस्या... ।"

वह जानती थी कि नीरा ने अपनी यही समस्या सुजाता तिक्कू से कही होगी। बड़ी ज्वलन्त समस्या है...और सचमुच समस्या है... । उसने सोचा।

"अभी कार्यशाला में तुमने सुजाता से यह बात बतायी... ?"

"हाँ...पर मुझे उनसे कोई खास समाधान नहीं मिला...उन्होंने कहा कि हाँ यह समस्या तो है पर खास नहीं। इस पर कुछ सोचकर ही बताएगी वह मुझे...हुँह क्या बताएगी...खाक... ।...मैं पूछूँगी...तो बोलेगी...अभी सोच रही हूँ...कुछ समय बाद बताएगी... ।

"दीदी, मैं एक अँधेरे कमरे में बन्द हूँ। नजरबन्द हूँ। मुझे नवगाम का गाँव अब नरक लगता है। गाँव का वह महलनुमा घर मुझे घर नहीं लगता। मुझे जम्मू के कैम्पों में रह रहे अपने पड़ोसियों और रिश्तेदारों से ईर्ष्या होती है...वहाँ मुझे जिन्दगी...जिन्दगी लगती है...चाहे कष्टमय। हमारे रिश्तेदारों और पड़ोसियों ने तम्बुओं में रहकर भी काफी तरक्की कर ली है। मुझसे पढ़ाई में कमजोर सहपाठिनें तो कई इंजीनियर तक बन गयी हैं। दूसरी एक मित्र तो बैंगलोर में साफ्टवेयर

इंजीनियर हो गयी है। एक इंजीनियर लड़के से शादी भी की है।

''मगर देखिए न...कुछ एकाध भट्ट जो यहाँ हैं... उदास हैं निपट उदास। कुछ नहीं है...यहाँ दीदी...खास कर हमारे लिए तो कुछ भी नहीं है...सिवा उदासी के। पर मेरी बैंगलोर की मित्र खुश है...आनन्द में है...।''

''तुम्हें कैसे पता?''

''वह मुझे प्राय: ई-मेल करती है। मैं भी करती हूँ।''

''उससे कुछ मदद नहीं माँगी।''

''हाँ, वह करने को तैयार है। पर मैं इस कैद से आजाद तो हो जाऊँ। जब मैं यहाँ से निकलूँगी ही नहीं तो वह भला क्या करेगी? यहाँ अब हम भट्टों के लिए कुछ नहीं रखा।

''तब कुछ नहीं था, जब भट्ट यहाँ थे। अब तो कुछ भी नहीं है...अब तो सरेआम कहते हैं...यहाँ तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। जाओ हिन्दुस्तान चले जाओ...वहीं मिलेगा।

''हमारे गाँव के कई लड़के केलिफोर्निया में सेटिल हो गये हैं। यहाँ कश्मीर में जिन्दगी वहीं-की-वहीं रुक गयी है...बल्कि हमारे लिए तो...मुद्दतों पीछे ही सरक गयी है...पत्थर के जमाने में। बेहद पीछे...बहुत पीछे। पहले गाँव के रईसों में मेरे पिता की गिनती थी। अब मुझे लगता है कि गाँव के रईस जम्मू के मुट्ठी कैम्प के तम्बुओं में रह रहे हैं। दिल्ली के कम्युनिटी हॉलों में रह रहे हैं...और अमेरिका में हैं। वे जो मेरे पिता से उधार लेते थे।

''और अब हमारी गिनती किसी में नहीं। उल्टा हमें देखकर हमारे पड़ोसी और रिश्तेदार मुँह चिढ़ाते हैं...बातें बनाते हैं। मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि क्या करें। कभी-कभी सोचती हूँ कि भाग जाऊँ और जम्मू में किसी नेता से मदद माँगूँ। आत्मविश्वास है मेरे पास। पर हिम्मत नहीं कर पाती हूँ...माँ का सोचती हूँ...डैडी से मुझे कोई सहानुभूति नहीं। डैडी कोई भी निर्णय ले सकने के मामले में एकदम ठूँठ हैं...जड़ एकदम। एकदम...क्या कहूँ...बस कापुरुष।''

सुधा के मन में आया कि कह दे कि कापुरुषों से हमारा समाज भरा है नीरा... पर वह नीरा को सुनती रही और नीरा के मौन हो जाने पर बोली, ''तो तुम पिता पर दबाव क्यों नहीं डालती...सब भाई-बहन मिलकर।''

''क्या करें...कैसे। एक भाई दिल्ली में ताऊजी के पास रहता है और वहाँ एक कोर्स कर रहा है। भाई यहाँ बिगड़ गया था। एक दिन हमने उसके पास एके फोर्टी सेवन राइफल देखी। हमारे होश उड़ गये। हमने पूछा, 'यह क्या है, तो बोला कि अशफाक़ ने उसे नजीर-अहमद को देने के लिए दी है।

'तुमने क्यों ली? तुम्हें नहीं पता कि यह बहुत खतरनाक़ काम है?' माँ ने

रोते-रोते पूछा।

'मैं क्या करूँ। अशफ़ाक ने कहा तुम पण्डित लड़के हो। तुम पर सुरक्षा बलों को शक नहीं होगा...नहीं करोगे मेरा काम तो तुम्हें मार डालूँगा। तो मैं क्या करूँ।'

''तब डैडी घबरा उठे। माँ रो-रोकर सूख ही गयी। डैडी उसे किसी तरह दिल्ली ताऊ के पास ले गये। वहाँ ताऊ कश्मीर समिति में रहते हैं...ऐसे ही कई घरों ने एक बड़े से हॉल में डेरा जमाया है। पर शुक्र है कि वहाँ ताऊ हैं नहीं तो भाई आतंकवादियों के खतरनाक चंगुल में फँस गया होता। वे उसे मार डालते।...तो दीदी ये हैं हमारे हाल। डैडी चाहेंगे...तो हमारा भी उद्धार होगा।''

''लेकिन तुम लोग मिलकर विरोध क्यों नहीं करते डैडी का। समझाते क्यों नहीं? तुम्हारी माँ को उन्हें समझाना चाहिए...।''

''मम्मी की चलती है क्या? डैडी के सामने? पापा का रौब है। डैडी मम्मी को पीटते हैं।'' नीरा का दुःख। दारुण हुआ।

''तुमने यहाँ इतने साल पढ़ाई की...तुम्हें परेशानी नहीं हुई...?''

''हाँ, परेशानियाँ हुईं...कई-कई किस्म की परेशानियाँ...यहाँ तक कि कई बार मैंने मुसलमान बुजुर्गों से शिकायत भी की। क्या करती। बहुत कुछ सहना पड़ा। कुछ उगला। कुछ निगला। मेरा एक दोस्त था। ग्राम-बन्धु। भारत-भूषण। वह भी बस...। सुना है आजकल बम्बई में इंजीनियरिंग की पढ़ाई के बाद निजी क्षेत्र की किसी कम्पनी में मार्केटिंग इंजीनियर है।...मैं अँधेरे कमरे में बन्द हूँ।

''तंग यहाँ ऐसा-वैसा नहीं। बहुत ही ज्यादा किया गया। कभी-कभी तो कहते—'भट्टों की जूठन, तू यहाँ क्यों छूट गयी। सब भट्ट तो बनिहाल पार दफा हो गये।'

''मैं फर्स्ट आती थी न। लेकिन फिर मैं फर्स्ट आना बन्द हुई...पढ़ाई में कमी के कारण नहीं—भट्टिनी होने के कारण। फिर भी द्वितीय आने से रोक नहीं सकते मुझे। फर्स्ट पोज़ीशन किसी-न-किसी मुसलमान लड़के या लड़की की ही आती है। ये उन गुप्त कानूनों में लिखा गया है जो लागू हैं, पर जन-सामान्य में प्रचारित नहीं लिखित रूप से। जन-सामान्य भी अलिखित रूप से इन कुछ लागू नियमों से वाकिफ है जो निजामे मुस्तफा ने इस्लामीकरण की पहल-स्वरूप लगाये हैं। इसमें सरकार गद्‌गद होकर शामिल है। यहाँ की सरकार दिल्ली की सरकार को उल्लू का पट्‌ठा बना रही है...अँगूठा दिखाती है...पैसा ऐंठती है और हँसी उड़ाती है। अब मुझमें यह समझने की अक्ल आ गयी है। मुझे लगता है, डैडी भी इस बात को अब महसूस कर रहे हैं...और दुःखी और अपमानित हैं भीतर...भीतर। हमसे कहते कुछ नहीं क्योंकि हम तो उन्हें अपने अपराधी मानते ही हैं।

"डैडी परेशान हैं। सोचते हैं कि कुछ करना है उन्हें मगर तमाम रास्ते बन्द दिखते हैं। अब हमारा जम्मू में भी कोई स्वागत नहीं करेगा। मैंने कहा न कि न हम घर के रहे न घाट के। ऐसे हिन्दुस्तानी कुत्ते हो गये हम। डैडी का ट्रांसफर भी कोई नहीं करेगा। हमें जम्मू में राहत भी नहीं मिलेगी...ओ दीदी, सचमुच हम कहीं के...कहीं के भी न रहे। जम्मू में हमें शरणार्थी दर्जा भी नहीं मिलेगा।"

"नीरा...तो जो जम्मू भाग गया उसने भी खोया। जो यहाँ रह गया...उसने भी खोया। खोया ही खोया सब भट्टों ने। पाया किसी ने नहीं। अब कुछ साहस करने की जरूरत है। वह करो। न मिले राहत पर निकल जाओ यहाँ से। ट्रांसफर के लिए पूरी ताकत से प्रयत्न करो। डैडी से कहो नीरा...बस...साहस करके मार्ग बनाने की आवश्यकता है...।"

"हाँ...कहा न, डैडी अब समझ तो रहे हैं। कहते हैं कि जब हमारा समुदाय यहाँ से पागल होकर सब-कुछ छोड़कर भाग रहा था तो हम उन पर हँसे थे। हमने उन्हें बेवकूफ करार दिया था। किन्तु अब समझ में आया कि दरअसल हम खुद पर हँस रहे थे। वे बुद्धिमान थे। आखिर समाज बहुत बड़ी चीज होती है। जहाँ समाज जाए वहाँ जाना चाहिए। एकाकी रहना हो तो भी समाज के भीतर ही रहना चाहिए...समाज का विरोध करना हो तो भी समाज के अन्दर रहकर ही करना चाहिए। समाज डूब मर रहा हो...डूब कर मरना ही श्रेयस्कर है। कश्मीरी मुसलमान हमारा समाज नहीं...रहा हो शायद सौहार्द के दिनों में...वह भी क्या सौहार्द...बस भट्टों के विवेक का जादू था...अब वह जादू भी उन्होंने हमारा चिन्दी-चिन्दी कर दिया। जब हमारा समाज यहाँ था तब वे भी हमारे समाज का अंग रहे हों...पर अब वह हमारा शत्रु समाज है...इस सत्य पर आवरण डालने की कतई जरूरत नहीं।

"अब डैडी ने सम्पत्ति बेचनी चाही थी। कई खरीददार आये। पर वे फूटी कौड़ियों के दाम लेना चाहते हैं। यह डैडी पर एक और सदमा है।"

"पर फूटी कौड़ियों के दाम तो उन्होंने उनके घर-जायदाद खरीदे—जो भागे। तुम तो भागे नहीं। तुम तो रहे...तुमने आँतें दिखायीं। उनके भगाने पर न भागने की। उसका मूल्य नहीं मिलेगा?" सुधा को लग रहा था कि उसे इतनी गाथा नीरा ज़ुत्शी से सुनने के बाद अब उस पर व्यंग्य नहीं करना चाहिए...पर उसे यह भी लगा कि उसके ये शब्द अनिवार्य हैं...और उनमें व्यंग्य भी रहता है तो वह उसका कुछ नहीं कर सकती। चाहे आहत नीरा और भी आहत क्यों न हो।

"उसका कोई मूल्य नहीं। वे कहते हैं—तंज़ीमों ने पण्डितों की जायदाद और मुसलमानों की जायदाद की दो अलग-अलग कीमतें तय की हैं। उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। यह मूल्य भिन्नता 20-80 है। पण्डित की सम्पत्ति जो सौ

की है...बीस में खरीदनी है। भले ही आप यहाँ ही हो या भाग गये हो—उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसे वे माले-गनीमत कहते हैं। हमारे मुहल्ले में कई मुसलमान लड़कियों की शादी हुई तो दहेज में उनको 'पण्डित घर' दिये गये। पहले-पहले तो इन्होंने यों ही हमला बोलकर मकानों में रहना शुरू कर दिया था। दलालों ने मालिकों को ढूँढ़-ढूँढ़कर तम्बुओं में खोटे सिक्के देने शुरू किये। उनकी बेबसी, बेघरी और लाचारी का भरपूर फायदा उठाया। ये लोग समझ गये भारत-प्रेम के लिए भारतीय सरकार और भारतीय लोगों पर भट्टों के बलिदान से जूँ तक नहीं रेंगी। फर्क ही नहीं पड़ा कुछ कहीं। दर्ज ही नहीं हुआ कहीं यह बलिदान। एक शर्मनाक रकम राहत में देनी शुरू की...उनके मामूली मुँह बन्द करने के लिए...उनको चुल्लू-भर पानी में मार डालने के लिए...क्या करें... ?''

''तो अब... ?'' सुधा बोली। भीतर-ही-भीतर सुधा नीरा से काफी प्रभावित हुई। लड़की के भीतर प्रकाश ही प्रकाश है...मगर अफसोस यह प्रकाश एक अन्ध कोठरी में बन्द है। दुर्भाग्य। सुधा ने मन में सोचा।

नीरा चुप थी। शायद उसे प्रतीक्षा थी, या लग रहा था कि सुधा अभी कोई उपाय बताएगी।

'उपायजालेन न शिवम् प्रकाशयेत्।' फिर सुधा ने स्वयं से कहा। क्या उपाय है? है कुछ? हर युद्ध। हर गृहयुद्ध। हर जेहाद स्त्री की देह पर लड़ा जाता है। वास्तविक शिकार स्त्री होती है। जैसे नीरा ज़ुत्शी। नीरा को विवेक भी रखना है। सन्तुलन भी। शान्ति भी। भीतरी शान्ति-बाहरी शान्ति। उसे यातना की हर खेप चुपचाप ग्रहण भी करनी है।...भाई ने बन्दूकों का स्थानान्तरण शुरू किया था...सो उसका उद्धार हुआ। उसका कर्म एक हिसाब से उसके पिता के खिलाफ विद्रोह साबित हुआ, पर नीरा पिता को भी दुःख नहीं देना चाहेगी...उसके पास स्त्री-मन है, स्त्री-हृदय है।

सुधा सुजाता तिक्कू से पूछना चाहती है कि उनके ग्रुप की बातचीत कैसी रही। क्योंकि नीरा ज़ुत्शी के बकौल उसकी क्या परेशानियाँ हैं, जानने योग्य बातें होंगी। नहीं तो आमीना को देखो। पता नहीं क्या कलाकारी बघार गयी। काश उसे नीरा के साथ रखा गया होता। पर अन्त में उसने सुजाता से ज्यादा नीरा से ही पूछना बेहतर समझा था।

''सुजाता ने क्या उपाय बताया?''

''कुछ खास नहीं। कहा कि किसी तरह भी डैडी को समझाओ, हिम्मत बँधाओ और निकलने की कोशिश करो। उसने सिर्फ सुना...उपाय बस यही बताया। मतलब कुछ खास नहीं...ठोस नहीं। इसका कारण है कि शायद समाज के सर्वोच्च वर्ग से उसका ताल्लुक है पर समाज के लिए उसका कोई लाभ नहीं।'' कुछ क्षण

दोनों में प्रश्नपूरित चुप्पी, दोनों को परेशान कर देनेवाली चुप्पी व्याप्त रही...मानो दोनों किसी ऐसे स्थल पर पहुँच चुकी हों, जहाँ से आगे कोई मार्ग नहीं...कुछ नहीं।

"अब मैं यहाँ छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाती हूँ। यानी ट्यूशन पढ़ाती हूँ। बी.ए. में प्रथम श्रेणी प्राप्त हूँ और बी.एड. में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त हूँ, पर हाल ही में जितनी भी अध्यापिकाएँ नियुक्त हुईं, सब दूसरे समुदाय की हैं। और सब द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण। मेरा नाम लिस्ट से सरका दिया जाता है। हर बार। कितना बड़ा पाप है भट्ट होना दीदी...कितना महापाप। यह मैंने अच्छी तरह जाना है। डैडी एक मन्त्री से भी मिले थे। यहाँ तक कि मुख्यमन्त्री से भी। और कहा था कि मेरी बेटी एकमात्र भट्ट अभ्यर्थी है और बहुत ही लायक है। पता है मुख्यमन्त्री ने क्या उत्तर दिया? कहा—'भट्टों के लिए नौकरियों की कौन-सी कमी है। भारत सरकार धड़ल्ले से लगाती है नौकरियों में भट्टों को। भट्टों का लायक होना कौन-सी ऐसी बड़ी बात है। वे तो होते ही हैं। मुसलमानों को लगने दो नौकरी में...आगे देखेंगे...वैसे तुम यहाँ क्या कर रहे हो यहाँ से निकले क्यों नहीं। यहाँ क्यों अटक गये?' "

"ऐसा...ऐसा कहा... ?" सुधा ने हैरानी से पूछा।

"हाँ...हाँ...बिल्कुल...ऐसा ही...डैडी के कानों से पानी चू रहा था मानो...ऐसे निराश कि पूछो मत।"

"बताओ...भारत में किसी हिन्दू मन्त्री के पास कोई मुसलमान अभ्यर्थी जाएगा तो वह उसका स्वागत करेगा, नौकरी देगा और दामाद भी बनाएगा। कितनी बड़ी ट्रेजेडी है। कैसे हैं हमारे लोग, नेता, संगठन सब। हम क्या करें नीरा... । मैं स्वयं जब सोचती हूँ...तो मैं स्वयं को अकेली पाती हूँ। इसी तरह हर सही सोच वाला व्यक्ति एकाकी है...नितान्त एकाकी। आत्मतुष्ट हैं हमारे लोग, नेता और संगठन इसलिए आत्ममुग्ध हैं। लोग सोचते हैं इस आत्मतुष्टि में कि वे हैं...मगर वे कब के दम तोड़ चुके हैं, चुपचाप।" सुधा ने अपनी विवशता बयान की।

"इधर बैंकों में, भारत सरकार के संस्थानों में, सार्वजनिक संस्थानों में हर जगह भारत सरकार ने भर्ती बन्द की है। किसी-किसी आवश्यक जगह पर नियुक्ति हुई भी तो सिर्फ मुसलमानों की। या उन नियुक्तियों की आवश्यकता का सृजन किया भी गया तो सिर्फ इसलिए कि मुसलमानों को रोजगार देकर उन्हें प्रसन्न करें। तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण लोग प्राध्यापक और डॉक्टर बन गये। यहाँ तक कि पद की आवश्यकताओं के हिसाब स लगभग अनपढ़ लोग तक कॉलेजों के प्रिन्सिपल और हाई और हायर-सेकेण्डरी स्कूलों के हैडमास्टर बन बैठे। जहाँ देखो मुसलमानों की नियुक्तियाँ हो रही हैं...जहाँ भी देखो।"

नीरा को रोजगार की जबर्दस्त चिन्ता थी।

''शायद कश्मीर से बाहर मुझे कुछ मिले। मैं अपने पैरों पर खड़ी हो जाऊँ। मैं मम्मी को भी यहाँ से ले जाऊँगी और भाई-बहनों को भी। मेरी बड़ी बहन का जम्मू में विवाह तय हुआ था। मिश्रीवाला कैम्प के एक लड़के के साथ। परन्तु पिछले महीने रिश्ता टूट गया...शादी से पहले ही। मम्मी इस सदमे से बीमार हुई और बहुत बीमार चल रही है। हालत ऐसी हुई कि लगा नहीं बचेगी मम्मी।''

चौंकते हुए सुधा ने पूछा, ''क्यों?''

''लड़के वालों ने कहा कि हम कश्मीर में रहती हैं—सो कश्मीर में कौन लड़की पाक-दामन बची है। मुसलमानों की लड़कियाँ पाक-दामन नहीं रहीं तो भट्टों की बात ही नहीं। भट्टों पर तो उन्हें वैसे ही नजर थी कि यहाँ रह रही लड़कियाँ मुसलमानों और आतंकवादियों की जूठन हैं...इसलिए रिश्ता टूट गया।''

डैडी को भी इसका बड़ा गहरा सदमा लगा। मेरी दीदी का हाल तो पूछो मत। क्योंकि वह बेचारी सोच रही थी कि उसे अब इस नरक-कुण्ड से मुक्ति मिलेगी। वह उसे कैम्प नहीं लगता था उसे लग रहा था कि वह स्वर्ग में जा रही है। कि मुक्ति मिलेगी उसे इस समाजहीनता से...इस निर्वासन से। पर ईश्वर ने टाँग तोड़ दी—कहाँ जाओगे बदकिस्मत भट्टो? कहाँ जाओगे? तुम्हारे भाग्य में मुक्ति नहीं...निर्वासन है। विश्वास करेंगी आप—हम अपने घर में...अपने दादाओं, परदादाओं...गरज पूर्वजों के घर में भी निर्वासन का दुःख झेल रहे हैं। कृपा करके हमारे यहाँ से निकलने में हमारी मदद करो दीदी...कृपया...।''

वह रो रही थी। उसकी आँखों से सुधा ने मोटे-मोटे आँसुओं को गिरते हुए देखा। वह ग्लानिपूर्णता से विह्वल हो उठी। ओह। नीरा बहुआयामी दुःखों से दो चार है। 'कैसा कमीना समाज हो गया है भट्टों का समाज। खाक में भी मिल गये मगर नीचता नहीं त्यागी।' सुधा अपने को कह रही थी। वह अपने भीतर उस छटपटाहट को महसूस कर रही थी जो नीरा की थी, नीरा की माता की थी, नीरा की बहन की थी। उसके भाई का किस्सा तो कलेजा ही निकाल कर रख देनेवाला था। उसे लगा कि नीरा के घर के सब जनों को वह पंख देगी और कहेगी—'उड़ो... और उड़कर वे इस नरक से मुक्त हों...विशेषकर नीरा और उसकी बड़ी बहन...जिनके सामने सारा जीवन मुँह बाये खड़ा है।...वह उन्हें ले जाएगी...जम्मू...जम्मू। जम्मू। एक प्रणम्य शरणस्थली। जम्मू तो जीवन्त है...जम्मू तो गोद है।' सोचा उसने।

उसे लगा जम्मू की ऊबड़-खाबड़, ताप से तवे सदृश तप रही गलियों, पठारों पर जीवन हिलोरें ले रहा है...नाच रहा है। साँसें उपलब्ध हैं वहाँ—हर घुटी हुई आत्मा के लिए। प्राणों के लिए स्वास्थ्यवर्धक वायु मुहैया होती है वहाँ...देशप्रेम का पाप कर रहे भट्टों के लिए। अस्पृश्य भट्टों के लिए भी। त्याग दिये गए भट्टों

के लिए। और कश्मीर? क्या है कश्मीर? एक मृत शरीर...एक शव। जिसकी आत्मा-प्राण... जम्मू में शरणागत है। और जब तक ये प्राण कश्मीर में वापस नहीं लौटते तब तक यह शरीर मृत रहेगा। गन्धाता रहेगा। इस पर कीड़े रेंगते रहेंगे। जिन्हें पता ही नहीं होता है कि जिस पर वे रेंग रहे हैं वे दरअसल एक निष्प्राण शरीर हैं...एक प्राणहीन शरीर।' पुनः सोचा उसने।

''सारे प्राण-सारी प्राण-वायु बह रही है जम्मू में। आओ नीरा, तुम यहाँ क्यों हो। तुम किसी भी तरह अपने को पंख लगाओ और आओ...जम्मू की किसी गली, किसी पटरी, किसी सड़क पर भी तुम जीवन्त, प्राणवान और सक्षम, सुरक्षित महसूस कर सकती हो।'' सुधा का आवेग था।

नीरा को उसने गहरा आश्वासन दिया था। कश्मीर से निकलने में मदद देने के लिए।

नीरा सामान्य-सी हो उठी थी कुछ-कुछ। फिर सुधा से कुछ अन्य बातें भी कर रही थी। उसने सुधा को बताया कि एक और भट्ट परिवार है सथूबरबरशाह में। उस परिवार की बेटियाँ आवारा हैं। चोरी करती हैं। कि नीरा का कैमरा और कुछ कीमती कपड़े उन्होंने चुराये हैं। कि उनके घर में कोई मर्यादा नहीं है। यहाँ तक कि कई भागे हुए भट्ट घरों में वे सामान चुराने भी गये थे मगर मुसलमानों ने धमकाया कि। 'ऐ...ऐसा नहीं...ये माले-गनीमत पहले हमारा है। अगर कुछ बचेगा तो हम अपनी रजामन्दी से तुमको देंगे।'

नीरा ने उसे यह भी बताया कि बाद में मुसलमानों ने उनके यहाँ कुछ गन्दे कपड़ों की पोटली भेजी थी। माले-गनीमत के हिस्से के तौर पर। उस घर की स्त्री ने उन गन्दे कपड़ों को गर्म पानी में धोया था...पर उसमें से काम का एक कपड़ा भी नहीं निकला था।...और फिर वह गरियाते हुए बोली थी '...कुत्तों ने हमारा अच्छा मजाक बनाया...माँ भवानी इनको खा जाए...इनका क्षय करे...रामचन्द्र भगवान इनका ऐसे ही अन्त करें जैसे रावण और उसकी सेना का किया था।'

पर उनको मारा नहीं जाएगा। उन्हें भी पता है कि वे अवध्य हैं। क्या मिलेगा उन्हें उनको मारकर। वे जानते हैं एक दिन वे चुपचाप खुद ही मुसलमान बनेंगे...कलमा पढ़ेंगे। बेटियाँ मुसलमानों के साथ खुद ही ब्याह करेंगी...क्या है उनके यहाँ। दो लड़के दोनों मेटाडॉर के क्लीनर। जो शाम को शराब से धुत पड़े रहते हैं। कभी घर की सीढ़ियों पर। कभी गली में। कभी किसी सड़क पर। कभी अड्डे में। कभी-कभी वे दो-दो दिन बाद घर आते हैं।''

यह हृदय-विदारक दास्तान नीरा ने जो सुधा को सुनायी, नीरा को मालूम नहीं कि सुधा का हृदय किस-किस जगह छलनी हुआ। और आँखों में बरबस पानी भर आया। 'यह असह्य बातें मत कहो नीरा।...मत कहो...भगवान के लिए

मुझे ये भयावह बातें...कृपा करके...तुम्हें पता नहीं तुम किस कदर हृदय-विदारक बातें कह रही हो। मेरा हृदय रो रहा है। त्रास उपज रहा है। क्या करें। क्या करें...' चीख रही थी। आत्मालाप में सुधा जैसे। ''जीवन जीने की कोई बात ही नहीं प्रभु तेरे इस संसार में। हे राज्ञी-शक्ति...हे सारिका। हे सती...पार्वती...त्र्यम्बक पत्नी...इन गहन दु:खों का निवारण करो न...उठो न हे खड्गधारिणी...'' और नीरा ने देखा कि सुधा की रो-रोकर हिचकियाँ बँध गयीं...और रोते-रोते वह विलाप कर रही है...नीरा सुधा को न रोने का विनय कर रही है...अश्रु पोंछ रही है, स्वयं मौन रो रही है...सुधा कहती है...''रोने दो मुझे, रोने दो नीरा...रोने दो न...रोएँगे हम हजार बार कोई हमें सताये क्यों...क्यों...भला क्यों...।''

''आमीना सुख को दु:ख बता रही है हे राज्ञी। सुना तुमने।...'' सुधा अन्त में बावरी हो उठी थी...नीरा को विदा करके कहा था...''तुम पहुँच जाओगी तो मुझे तुरन्त फोन करना कि तुम सकुशल पहुँच गयी...।''

...और नीरा ने फोन किया था।

❑❑

सोनम हर दल से पूछ रही थी कि दूसरों की समस्याएँ सुनते हुए उनके क्या-क्या अनुभव रहे। सबने बताये।

दिलअफरोज़ जब आयी थी तो उसे देखते ही सुधा बोली थी, ''हैलो सोनाली बेन्द्रे!''

दिलअफरोज़ इस पर मुग्ध हो उठी थी। आत्ममुग्ध तक। उसने फिर अपने दाँतों से अपनी उँगली काटी थी कि कहीं उसे किसी कोने में बुरा तो नहीं लगा होगा कि उसने उसे सोनाली—यानी हिन्दू नाम, खिताब दिया। पर वह थी परम अभिभूत कि उसके रूप-लावण्य को किसी पहचान में बाँधा तो किसी कयामत की नजर रखनेवाले ने।

सोनाली बेन्द्रे उर्फ दिल अफरोज़ की समस्या थी कि उसकी मौसी को पति बहुत सताता है, रोज कुछ-न-कुछ बहाना बनाकर गालियाँ देता है, इल्जाम देता है। वह हर तरह उसी की ख्वाहिशों के मुताबिक चलती है तब भी वह उसे नहीं बख्शता। हर बात में, हर काम में मीन-मेख निकाल ही लेता है। सोनाली उर्फ दिल अफरोज़ मौसी की इस पीड़ा से बेहद आक्रान्त है, पीड़ित है। और वह मौसी का जीवन बदलना चाहती है। सोनाली उर्फ दिल अफरोज़ का ग्रुप सुमोना धर के साथ था। सुमोना ने उसे सुझाव दिया था कि वह मौसी से ज्यादा मौसा पर काम करके उसे बदलने की कोशिश करें। कुछ शाइस्ता इन्सानों से कहें कि उसे समझाए और वह अपनी बीवी को परेशान करने से बाज आये। गरज उसका दिमाग बदलने

की कोशिश करे।

उसके बाद नीरा ज़ुत्शी से पूछा गया। जो शायद सुजाता तिक्कू की दी गयी सलाह के मुताबिक चुप रही और सुजाता तिक्कू बोली, ''इसकी समस्या गम्भीर है। जिसका बखान यहाँ नहीं किया जा सकता। बाकी इसकी समस्या का समाधान मैंने नीरा को बताया है।''

सबकी नजरें कुछ क्षणों के लिए नीरा ज़ुत्शी के चेहरे पर टिक गयीं। मानो उसके चेहरे के ऊपर से उसकी उस गोपनीय समस्या की कुछ थाह पायी जा सकती हो। या यह कि न भागी हुई भट्टिनी होने के कारण वे जता रहे हों कि 'हम जानते हैं तुम्हारी समस्या...तुम्हारा दिल हिन्दुस्तान के लिए और भागे हुए हिन्दुस्तानियों के लिए फड़क रहा है...धड़क रहा है...अहसानफरामोश कहीं की...गद्दार कहीं की...तुमको यहाँ रहने दिया...तुम्हारी जान बख्शी...यह उसी का फल दे रही हो...ओ दाल भट्टिनी कहीं की।'

सोनम आमीना की तरफ मुड़ गयी और सुधा को भी देखती रही। आमीना बोली, ''मैंने अपनी समस्या, जो सुधाजी को बतायी, उसका हल इन्होंने इतनी खूबसूरती से दिया कि मेरा मन किया कि मैं इनसे वाकई और सारी बातें बताऊँ।...सुधा जी कुरेदने से बेहद परहेज करती हैं...हमारे किये गये समाधान की समीक्षा करती हैं...यही इन्होंने मेरे साथ किया...मेरा आत्मविश्वास बढ़ गया...।''

सोनम ने अपनी आँखें चौड़ाते हुए एक तीक्ष्ण दृष्टि से सुधा की तरफ देखा और कहा, ''वाकई?''

वास्तव में सुधा आमीना की कलाकारी पर हैरान थी। ''आमीना एक चतुर मस्तिष्क, शोख अदाएँ और वक्री मन रखनेवाली औरत होनी चाहिए... अब स्पष्ट हो गया कि वास्तव में वह सत्य खा गयी और असत्य का सृजन कर गयी।''

यह सोनम के सत्र का उपसंहार था। बातें इधर-उधर की हो रही थीं कि होटल का एक बैरा आकर बोला, ''सुधाजी हैं...कोई...सुधाजी।'' सब सावधान हो गये।

''आपसे मिलने के लिए कोई आये हैं। बाहर हैं।''

अरे! उसका दिल धक से रह गया। ''मुझसे मिलने? कौन? कौन हो सकता है?'' सब सावधान हो गये।

हचकुकिल, शब्बीर, उसकी पत्नी और उनका छोटा-सा बच्चा बाहर सोफे पर बैठ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

विचित्र क्षण था। मिलन का क्षण था। बनने का क्षण था। बोलने का क्षण था।

हचकुकिल ने सोफे पर से उठकर बाँहें खूब पसार लीं और सुधा उन बाँहों

में हचकुकिल के पैरों को छूते हुए ऊपर तक गयी और दोनों के दिल एक साथ धक्-धक् करने लगे। दोनों के दिलों में कोलाहल था। भयावह कोलाहल। प्रेम का। कुतूहल का। प्रश्नों का। संशय का। भय का कोलाहल।

जब सुधा ने चरण-स्पर्श करना चाहा था तो हचकुकिल चीख उठी थी। आह्लाद से। सुखद आश्चर्य से, ''हाय खुदाया। म्यानि खुदाया।'' और आँखों में जल भर आया था।

सुधा के लिए उसका चीखना प्रत्याशित था। सुधा उसे बताना चाहती थी—'तुमने मुझे बन्दूक के भय से मारा, मैं तुम्हें उससे भी बड़ी चीज से मारना चाहती हूँ। तुम मेरी माता-सरीखी हो। मैं तुम्हारे लिए उतना ही आदर-मान रखती हूँ। मैं उस संस्कृति से ताल्लुक रखती हूँ जहाँ घृणा का उत्तर भी प्रेम से ही दिया जाता है...या मैं यह बताना चाहती हूँ तुम्हें कि प्रेम से किसी को समाप्त भी किया जा सकता है...सुधा की संस्कृति में चीजों, समुदायों और संस्कृतियों का घातक सामान्यीकरण नहीं किया जाता। वैयक्तिक विवेक बरता जाता है। व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाना वहाँ की रिवायत है। वहाँ घृणा और आपदाओं के बवण्डर में से भी प्रेम की स्वर्णिम खान बचाये रखने की कोशिश की जाती है। जहाँ दृष्टिकोणों की विराटता, विविधता एक सहज बात है, सहज गुण है...यह इस संस्कृति के बीज में ही है, इसलिए बीज डालकर इसे विकसित करने की जरूरत ही नहीं।'

उसकी बाँहों से एक मुद्दत बाद छूटने पर वह उसकी बहू की बाँहों में आयी। सुधा ने उसके गाल पर चुम्बन दागा जो उसके पति और हचकुकिल के लिए इत्मीनानदायक था।

हचकुकिल के अन्दर संशय भी उतना ही था जितना असमंजस। दोनों उसके चेहरे की ऊपरी तह पर साफ-साफ तैर रहे थे। अब शब्बीर ने बड़े अदब और बड़ी सावधानी के साथ उसको आदाब किया। बच्चा उसकी साड़ी को हैरानी से देख रहा था। बच्चे को प्यार करते हुए भी बच्वे की आँखें और कुतूहल उसके लिबास पर ही केन्द्रित थी। वह उसकी गोद में आया और रह-रहकर उसकी साड़ी देखता और छूता हुआ माँ को देख रहा था। वह उसकी हैरानी समझ गयी थी।

''आपकी साड़ी को देख रहा है। इसने यह लिबास कभी नहीं देखा है...यहाँ इस लिबास में औरतें दिखतीं ही नहीं अब...यह मुझसे पूछना चाहता है कि आपने यह क्या पहन रखा है।''

''अच्छा...ओह हो...ओह...हो...हाँ...यह तो बेहद दुखद बात है...देखिए कुछ ही देर में क्या काया पलट हो गयी।...बताइए...आपको भी लगता होगा कि यह सब ठीक नहीं हुआ...आपकी आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी...।''

''और क्या।...आफतकाल आया अचानक। अब समझ में आ रही है बात? मगर इतनी तबाही के बाद। हमारा और आपका जीवन बर्बाद होने के बाद।''

सुधा को अच्छा भी लगा और विचित्र भी कि पलक झपकते ही उनके मस्तिष्क को आगामी मनुष्य हसरत-भरी निगाहों से देखता है...हैरान है और शायद परेशान भी...जैसे शब्बीर का यह नन्हा बेटा।

''टाठा ठीक है?'' सुधा ने पूछा।

''हाँ, बिल्कुल ठीक है।...अब तुम चलो हमारे साथ। हम तुम्हें लेने आये हैं। हमें कल जलबोबा से पता चला कि तुम आयी हो। पूरे मुहल्ले में कल हलचल थी। हर घर में तुम थी। तुम सब थे। कोई घर ऐसा नहीं था मेरे खयाल से जिन्होंने नींद आने के लम्हे तक तुम्हारा जिक्र न किया हो...तुम्हारी दाद दे रहे थे...वल्लाह...सो हमने तय किया कि हम तुम्हें आज घर ले जाएँगे।''

''अच्छा?'' वह उल्लास और उदासी दोनों से भर गयी। सोचने लगी कि अगर वह सब न हुआ होता, जो हुआ तो क्या होता। ये सब घटनाएँ नहीं होतीं। उल्लास के ऐसे त्रास भरे, विचित्र और विरूप क्षण न होते...ऐसे भोंडे मिलन न होते...ऐसी बातें न होतीं...ऐसी जगहें हम कभी नहीं देखते...ऐसे ख्वाब हम कभी नहीं देखते...क्या होता...कैसा होता...तब सब कुछ।

''मैं साड़ी बदल लूँ...कमीज-सलवार पहन लेती हूँ।''

''अरे नहीं नहीं...तुम इस साड़ी में भगवती जैसी लगती हो।...साड़ी में कितनी खूबसूरत लगती हो...देखकर चैन आता है मन को। कल भी तुम साड़ी में आयी थी न...मुझे पता है। हमें जलबोबा ने बताया...मैं उसी वक्त शालकदल चली गयी थी...बाद में बहुत पछतायी...और तभी शब्बीर साभा ने और मैंने तय किया कि आज तुमको लेकर ही आएँगे घर।...'' हचकुकिल का उद्‌गार था।

''...अच्छा...ओ...।'' सुधा ने कहा।

''हाँ...बिट्टा भी बता रहा था। कह रहा था कि दीदी कितनी सुन्दर लग रही थी। जलबोबा तुम्हारी बहुत तारीफ कर रही थी...कह रही थी कि कैसी बनी है दिद्दा सचमुच मुझे तो जन्नत की हूर-सी लगी।''

सुधा दुःखमिश्रित आनन्द के घूँट पीने लगी। 'जन्नत की हूर जन्नत से बाहर बन गयी मैं...आह...हा...वाह। क्या कहने भई...क्या कहने...।' उसका आत्मालाप था।

और वे कार में बैठ गये। कार उन्होंने लाल चौक में रोकी और किस्म-किस्म के बिस्कुट खरीदे।

❑❑

घर में घुसते ही टाठा उसके स्वागत के लिए बाहर आया। उसे लगा कि वह शायद उसके आने का इन्तजार बेसब्री से कर रहा था। उसकी काया वैसी की वैसी थी। बिना किसी परिवर्तन के। सिर्फ उसकी सफेद-शीन दाढ़ी चेहरे पर थी, जिससे उसकी बुज़ुर्गियत कुछ निखर ही आयी थी। शायद उसने इस बीच हज किया हो और यह हाजी वाली दाढ़ी हो।

सुधा ने एक बात गौर से देखी थी कि मुहल्ले के बुजुर्गों और अधेड़ों ने धार्मिक दिखने के लिए दाढ़ी रखी थी।

टाठा, जो हमेशा दाढ़ी बनाता, कोट-पैण्ट में टिच बना रहता। आज टाठा ने लम्बा अफगान कुर्ता और शराई पजामा...लम्बी दाढ़ी और सिर पर अफगान टोपी पहन रखी थी। यह व्यक्ति हालात के हिसाब से अब टिच बन गया था...एकदम धार्मिक। मगर धार्मिकता? पता नहीं। खुदा जाने। अल्लाह जाने...मौला जाने...या भगवान जाने। सुधा के मन में उसके लिबास के परिवर्तन से एक महीन खिंचाव-सा आ गया...प्रेम बरसाने में टाठा कहीं भी कोताही नहीं कर रहा था।

सुधा ने टाठा का भी अभिवादन झुककर उसी तरह किया जैसे होटल में हचकुकिल का किया था। हचकुकिल सारी गतिविधियाँ बड़ी लगन से देख रही थी। शायद वह यह देखना चाहती थी कि क्या वह टाठा का अभिवादन भी उसी तरह करेगी जैसे उसका किया था...इसलिए फिर एक बार वह चीख उठी थी, "हाय खुदाया...वाह्य खुदाया...।"

सुधा को हचकुकिल का इस तरह खुदा को पुकारना अच्छा लगा...और लगा मानो वह कह रही हो कि हमारी इतनी बुराइयों के बाद भी इन्होंने अपनी विनम्रता और भलाई नहीं छोड़ी है...मेरे खुदा...हम तो गुनहगार हैं इनके।

'मगर क्या पता वह खुदा को क्यों पुकार उठी...कहीं...खुदा कोई आतंकवादी तो नहीं जिसे वह पुकार उठी हो...आ जा फौरन...शिकार आया है?'

पीछे वाले बाग में उसे बिठाया गया। बाग उसे उजड़ा-उजड़ा लगा। यहाँ से उसके घर का पिछवाड़ा दिख रहा था। सामने हचकुकिल थी। बेहद चतुर, कुशाग्रबुद्धि और तेज महिला। ऐसे व्यवहार कर रही थी मानो उसके दिल के आलम का सही-सही अन्दाज लगाने में सफल हो या...उस आलम को जानती हो।

'यह ले देख अपने घर को। देख ठीक से...अपने प्यारे घर को। हमने हाथ भी नहीं लगाया इसको...हम छूते भी नहीं इसे। मुझे पता है न कि बाबी इस घर को कितना साफ-पाक रखती थी।...उतनी तो मैं पाको-साफ नहीं। हम जाते ही नहीं वहाँ।'

वह उसकी बातें सुनकर हैरान रह गयी। सोचने लगी कि उसके वहाँ न जाने

और उसके साथ न छेड़ने में क्या कारण हो सकता है भला। आखिर वह घर तो फूटी कौड़ियाँ देकर हचकुकिल ले चुकी है। कम-से-कम दस लाख का यह घर कुछ हज़ार में वे खा गये हैं। यह घर तो हचकुकिल लूटकर ले गयी है तो भला अब वहाँ न जाकर और उसका इस्तेमाल न कर वह उन पर क्या कृपा कर रही है। उसके भीतर से उसकी इन गुत्थियों का कोई उत्तर नहीं मिला।

छः वर्ष पूर्व उन्होंने वह घर हचकुकिल के हाथों खोटे पैसों में बेचा था। जम्मू में उसका भाई सपरिवार एक घर से दूसरे घर में किराये के कमरों में मारा-मारा फिरता...तब यह मकान बेचकर एक झोंपड़ी जम्मू में बनाने का विचार किया। माँ उस दिन जार-जार रोयी थी...बेचैन हो गयी थी...सरदारों के उस बरामदे पर...जहाँ उसका भाई किराये पर रहता था...वह तड़प-तड़पकर लोट-लोट गयी थी जमीन पर, घर के चले जाने पर। माँ को सब समझाने लगे थे...यह सब सहने की हिम्मत देने लगे थे।

"मैंने इस प्यारे घर को बनाने के बाद सोचा था कि उसकी ड्योढ़ी से मेरी अर्थी जाएगी...और तभी चिता पर लेटूँगी...घर मुझे एक भव्य विदा कहेगा। मगर हुआ उल्टा...मेरे मन के इस घर से वह घर निकला...अर्थी में सोया...और असमय भस्म हुआ...वह मात्र घर ही नहीं...मेरी आत्मा का निवास था...मेरे देवता का निवास था...उसमें मेरा नन्दबब रहता था...।" भट्टिनी उस घर के लिए विलाप ठीक उसी तरह करती थी...लगभग एक वर्ष तक...जैसे किसी निकट...मृतबन्धु के लिए...और अब भट्टिनी वह प्रसंग नहीं छेड़ती। समझाया है उसने स्वयं को...मौन रहती है अब भट्टिनी इस विषय पर...बेहद नाराज है पता नहीं...किस...किस अज्ञात से।

वह उसे कह रही है कि इस कोण पर बैठ यहाँ से अपने घर को देख। 'क्या देखूँ...किसे देखूँ?...कह ही कैसे रही हो कि यहाँ से देखो...।' इस आत्मालाप के साथ वह अपने घर को कनखियों से देख रही है। फिर हचकुकिल का घर देख रही है। उसे लगा कि उनका घर खरीदने पर उनके ऊपर चार चाँद नहीं लगे हैं। उसे उनका बाग उजड़ा और भीतर घर की मनःस्थिति टूटी और उदास-गमगीन-सी लगी। मुँह लटकाये दरो-दीवार... रुआँसा आलम मानो उन पर मौत जैसा सन्नाटा लिखा गया हो।

'प्रकृति...ओ प्रकृति...तुम कहाँ कार्यरत हो?...तुम कहाँ न्याय-अन्याय तौलती हो?...कौन जगह है तुम्हारी? कहाँ है तुम्हारा कार्यालय...? आज से सात वर्ष पूर्व हचकुकिल ने हमारा घर हमसे छीना, लूटा...पर अभी तक वह उसकी दहलीज पार करने की हिम्मत नहीं जुटा पायी है। क्या यह तुम्हारा दखल है ओ प्रकृति?...और हचकुकिल उसे बारम्बार 'मेरा घर' कहे जा रही है...मानो हमने

उससे बेचा ही न हो...। क्या यह घर मुझे वापस मिलेगा प्रकृति? मैं इस गलतफहमी या इस खुशफहमी की जानबूझकर शिकार हो जाना चाहती हूँ...मैं अपने को विश्वास दिलाना चाहती हूँ...कि यह घर...मेरा घर...मेरी माँ का घर...मेरी प्यारी, अच्छी...और नन्ही-सी माँ का घर वापस मिलेगा...जरूर मिलेगा।' उस पर उसके भीतर एकालापों का हमला हर अवान्तर क्षण में या समान्तर क्षण में होता ही है।

टाठा जो पाँच मिनट पूर्व भीतर गया था, अब एक लिफाफे के साथ आ रहा था धीरे-धीरे।

सुधा के समीप पहुँचते ही उसने वह लिफाफा खोला। दो चित्र निकालकर टाठा ने सुधा को पकड़ाये।

एक चित्र में उसकी माँ हरे रंग का पश्मीने का फिरन पहने, तरंग बाँधे...ज़री के बाजूबन्द पहने, लूंग्य बाँधे...नागिन की तरह पूच तल्वों तक लटकाये किसी नाग-स्त्री या...कश्मीर देवी-सी बैठी है। दूसरे चित्र में सुधा के पापा फिरन पहने सुधा के नन्हे-से बेटे को कन्धे पर बैठाये हैं। उसने भी नन्हा-सा फिरन पहना है और ऊनी टोपी लगायी है...। वह उन चित्रों को देखकर मन ही मन टाठा के प्रति आभारी हो उठी...''शुक्रिया...बहुत...बहुत शुक्रिया टाठा...। कहाँ-कहाँ हमारे चिथड़े उड़े हुए हैं...आपने कुछ सँभाले हैं, पता नहीं किस खौफे-खुदा के मारे...हार्दिक शुक्रिया...बार-बार शुक्रिया।''

''अरे नहीं बेटी। शुक्रिया मत कहो। यह तो मेरा...मेरा क्या...हमारा कर्तव्य था कि ये तस्वीरें हम सँभालकर रखें। हमने अपने जिगर में रखी थीं ये तस्वीरें...और हमारे दिलों में यों भी रहते हो तुम हर लम्हा...मैं अल्लाह से माँगता था कि कुछ ऐसा हो तुमसे मुलाकात हो और मैं यह नायाब तोहफा तुम्हें दे दूँ। अब मैं फारिग हो गया। मैं बड़े आराम से और इत्मीनान से मर सकता हूँ अब...मेरी बची-खुची जिन्दगी का सबसे बड़ा फर्ज अदा हुआ। शुक्रिया मुझे तुम्हारा करना चाहिए कि तुमने मुझे यह मौका मयस्सर किया और जिन्दगी-भर के लिए बेफिक्र भी। मैं दिल्ली कई बार गया। ये दोनों चित्र साथ ले जाकर। तुम्हारा पता मैं चाहता तो मालूम कर सकता था। मिल जाता मुझे तुम्हारा पता...पर आखिरी लम्हात में मेरी हिम्मत टूट जाती, मेरा जिगरा जवाब दे जाता...मैं यह काम अंजाम दिये बिना चित्र वैसे-के-वैसे जेबों में सँभाले वापस लौट आता।''

''लेकिन आप दिल्ली में आते क्यों नहीं हमारे पास...आखिर...?''

''सोचता बाबी बेहद नाराज हैं...वह घर में घुसने नहीं देगी...हम आखिरकार गुनहगार तो हैं...।'' टाठा ने उत्तर दिया।

शब्बीर की बीवी ट्रे में चाय ले आयी और बातों का सिलसिला टूट गया।

हचकुकिल उसकी बायीं तरफ वाली कुर्सी से उठकर उसकी दायीं तरफ वाली कुर्सी पर बैठ गयी।...जहाँ उसके समीप ही टाठा बैठा था।...शायद उसे इशारा देने के लिए कि बस अब चुप रहो। अपने को गुनहगार मानने की इतनी ज्यादा जरूरत नहीं।

"मैं बेहद खुश हूँ...यह तोहफा पाकर...सच...मैं तहेदिल से आपकी शुक्रगुजार हूँ...आप चाहते तो कूड़े में फेंक देते इसे...आखिर क्या मतलब बचा था इसका आपके लिए...मगर मैं आपके हस्सासपने की कायल हूँ...मेरा तहेदिल से सच्चा शुक्रिया कुबूल कीजिए...।" सुधा ने कहा एक खास अन्दाज में।

टाठा निश्चल सुनता और देखता रहा...फिर एक भेदती दृष्टि अपनी पत्नी हचकुकिल पर डाली...और सुधा ने उसकी इस दृष्टि के कई अर्थ लगाये...मानो कह रहे हों...'सुनती हो...इसकी बोली...इस शुक्रिया से ही मुझ गुनहगार को जिबह कर रही है...समझ में आता है कुछ...ऐ लालची औरत...ऐ लालची बेटों की माँ...सुन और समझ...सुन और गुन...कह रही है कि...मार डालने के बहुत महान हथियार भी होते हैं...और जिन्दा रहने देकर भी मारा जा सकता है...।'

हचकुकिल सुधा के इस शुक्रिए के सत्र के खत्म होते ही फिर चीख-सी पड़ी थी—"हाय खुदाया...वाह्य खुदाया..." मानो किसी मरे हुए के लिए विलाप कर रही हो। और सुधा ने देखा उसके नेत्रों में अश्रु थे।

"मेरा बेटा यह चित्र देखकर बेहद प्रसन्न हो जाएगा सच...प्रभु भी...यह चित्र प्रभु ने ही लिया है...यह उसी की फोटोग्राफी है..." उसने शब्बीर से मुखातिब होकर कहा!

"अरे अच्छा...कैसे हैं प्रभु जी...हमारे बहुत अजीज दामाद हैं...बहुत अजीज...दिद्दा और दिद्दा का पति प्रभु...हम सबसे कहते हैं...प्रभु-भट्ट हमारा दामाद है...।" शब्बीर की बातें सुनकर अब सुधा के नेत्र सजल हो उठे।

'प्रेम और घृणा...का यह विराट सम्बन्ध... 'न उगलते न निगलते' बनने का यह महाद्वन्द्व...द्वन्द्वः समासिकस्य च...ईश्वर क्या तुम भी हो द्वन्द्व? या सिर्फ समासों में द्वन्द्व... ?' सुधा पर आत्मालाप का एक और हमला हो उठा। लेकिन क्या वह माँ को दिखा पाएगी यह चित्र? क्या माँ से वह कह भी सकेगी कि वह 'घर' गयी थी। नहीं माँ की हालत खराब हो जाएगी उससे। माँ का स्वास्थ्य वैसे ही अब गिर गया है। नहीं...वह न माँ से कह ही सकती है कि वह 'घर' गयी थी न ही वह उसे चित्र ही दिखा सकती है।...उसने निर्णय लिया कि वह ये चित्र बच्चों को, प्रभु को और मित्रों को दिखाएगी और इनकी प्राप्ति की पीछे कथा भी बताएगी। दीप्ति से किसी एकान्त में सारी बातें कहेगी। माँ से घर की बात करना ही प्रतिबन्धित रखा गया है उसकी हालत के चलते।

चाय की चुस्कियों में जहरीला स्वाद था। या स्वाद ही नहीं था। या उसकी जीभ को ही वैराग्य हो आया है। वह बाग की क्यारियों में अपनी दृष्टि गोल-गोल घुमा रही थी।...कोई खुशी उसे थी...वह उस खुशी का इजहार उनसे करना चाहती थी। अपने प्रति उनके मनों में ईर्ष्या जगाने की उसकी अदम्य इच्छा हो रही थी।

''अब हमारे पास घर-ही-घर हैं। जम्मू में भी घर। दिल्ली में भी घर। घरों की कमी नहीं और एक-से-एक बढ़कर। जम्मू के घर का लॉन इतना सुन्दर, हरा-भरा, विशाल और फूलों से लदा है कि क्या बताएँ...।'' (जबकि यह सब झूठ था)

हचकुकिल की ईर्ष्या को उसने दियासलाई दिखायी थी, ''पर सुकून नहीं...मन का चैन नहीं है।'' वह बोली।

हचकुकिल ने सिर्फ दो वाक्यों से उसकी फूँक निकाल दी थी। सच कह रही थी वह।

'...हमारा सुकून इन्होंने माले-गनीमत के तौर पर अपने पास लूट के रखा है। हमारे पास जख्म है। इनके पास समूचा नमक। हिन्दुस्तान का भी। पाकिस्तान का भी। बड़ी आसानी से ये जख्मों पर भी हमारे नमक छिड़क सकते हैं...छिड़कते हैं...बड़े प्यार से...बारीकी से। आराम से...कि हम अवाक् रह जाते हैं।' कहा उसने खुद से।

''ओह...हो...दिद्दा...दिद्दा...दिद्दा क्या आप ठीक हो।'' उत्तर दिशा से गुलाम नबी वाणी की सबसे बड़ी बहू...बेहद सुन्दर...अप्सरा-सी बहू का पूर्णिमा के चाँद की तरह उदय हुआ।

'इसे देखकर किसका मन न खिल उठेगा।' उसने क्षणांश में सोचा।

''मैं ठीक हूँ।'' वह संक्षेप में बोली। वाणी की बहू बरामदे से ही मुखातिब थी।

''मैं नमाज पढ़ने ही लगी थी कि लगा कहीं से तुम्हारी आवाज आ रही है...मैंने खुद से कहा...कि कैसे सम्भव है...कि यह सचमुच तुम हो...तब फिर से सुनी...यह नायाब आवाज मेरे कानों से टकरायी...मैंने जाय-नमाज रख दी और दौड़कर बरामदे पर आयी...देखा तुम्हारे लिए मैंने अपनी नमाज मुल्तवी की।''

वह हँस रही थी।...पता नहीं इस समय दन्दानी की तरह या दिद्दा की तरह पर उसका मन हँस रहा है और साथ ही रो रहा है...फुदक रहा है...उचक रहा है...मचल रहा है...उछल रहा है...कूद रहा...मर रहा है...मरना नहीं चाह रहा है...जी रहा है...पर इसे जीना भी नहीं मान रहा है...उसके यहाँ बीस-बीस मन हैं...। 'ऊधो मन हैं बीसों बीस...ऊधो मन हैं बीस...बीस मन भए हैं...बीस...लो इसने मुझ पर, मेरे दादाओं पर मेरे परदादाओं पर एहसान रखा।' सोचा उसने।

''नमाज मुतलवी नहीं करनी चाहिए थी...न...।'' उसने कहा।

अप्सरा अब हँस दी और चुप रही। फिर थोड़ी देर बाद बोली, ''आओ न यहाँ भी।''

''हाँ कोशिश करूँगी...वक्त बचा तो। आप नमाज अदा करिए...प्लीज...।''

''नहीं...नहीं...कोई बात नहीं...पढ़ूँगी...अभी आप आयी हैं...आपके दीदार ही नमाज है...।'' अप्सरा बोली।

वह टाठा को देखने लगी। टाठा अपने ही खयालों में गुम था। हो सकता है...वह भी उसी अतीत से दो-चार रहा हो उस वक्त, जिससे सुधा के समुदाय के बर्बादी का वास्ता था। टाठा गम्भीर, चुप और गुम था।

'अप्सरा ने कुफ्र किया न। वह...उसका दीदार...यह तो मूर्ति-पूजा हुई...और वे मूर्तिभंजक...बुतशिकन...।' वह मन्थन कर रही थी और उसने सोचा कि उसे उन सब बातों पर इतना अधिक क्षुब्ध नहीं होना चाहिए।...उन सबमें सभी को माले-गनीमत नहीं मिला है। या सभी माले-गनीमत नहीं लेने चले थे। उसने हचकुकिल की तरह उसके घर पर चील की तरह झपट्टा नहीं मारा। काश! वह घर हचकुकिल ने न खरीदा होता तो वह अगली बार माँ को लेकर आती। यह सब दु:खद है। उसे अपने भीतर मौन हो जाना चाहिए।

अब सुधा निकलने को हुई। उसके पीछे-पीछे परिवार के सभी जन आये। हचकुकिल ने शब्बीर को निर्देश दिया कि वह चाबियाँ लाये ताकि 'घर' खोलकर दिद्दा को दिखाया जाए।

सुधा आश्चर्यचकित थी कि 'जिस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं, उसे देखकर वह फिर से जख्मी हो जाएगी। वह उस घर को ज्यादातर माँ की आँखों से देखेगी। परिवार के सब जनों की आँखों से देखेगी। इतना सदमा वह झेल कैसे सकेगी। वह तो मर जाएगी। उसे तो घर देखना ही नहीं। उसे इच्छा ही नहीं वहाँ जाने की। जाने के बाद उसे फिर वहाँ से वापस निकलना पड़ेगा। वह उसे घर आखिर दिखाना ही क्यों चाहती है...जबकि उसने ऐसी इच्छा ही जाहिर नहीं की—क्या मेरे यहाँ आने का यही अर्थ लगाया गया? यह घर तो मेरा नहीं अब। अब इस शहर की हर गली मेरी है। हर शख्स मेरा हमवतन है, हर घर मेरा घर...हर भट्ट घर सुनसान घर मेरा दागे जिगर...हर झोंका हवा का मेरी साँस...सब...सब-कुछ मेरा...पत्थर, ईंट, मिट्टी...पहाड़...पठार।'

हचकुकिल उसका हाथ थामकर उसे खींचकर ले गयी। शब्बीर ने ताला खोला और सुधा के पीछे-पीछे हो लिया। अन्दर नहीं घुसा। हचकुकिल ने सुधा को बड़े भावनात्मक ढंग से अन्दर आने के लिए निवेदन किया। उनकी हरकतों और अंग-विन्यास से लग रहा था मानो वे लोग मर रहे थे वहाँ उस घर के किसी

सदस्य के आने के लिए और उसकी अगुवाई में उस घर के अन्दर घुसने के लिए।...मानो वे मर रहे हों कि सुधा अपने घर को आपादमस्तक देखे। वह मानो स्वप्न में चल रही थी। और आँखें स्वयमेव अर्धनिमीलित हों...। कहाँ से खुलतीं लम्बी-चौड़ी आँखें...कि वह जी भरकर...आँख भरकर घर को देखे। किस घर को देखना है?

घर-देवता कहाँ है।...पगलाया...पता नहीं मृतप्राय...किस कोने में...। उसके भीतर एक विचार कौंधा...हो सकता है कि वह मरणासन्न है और उसने उसे तलब किया हो। मृत्यु से पूर्व उससे मिलने, उसे देखने की इच्छा प्रकट की है...और...प्रकृति को उसका यहाँ आना सम्भव करना पड़ा...पता नहीं क्या रहस्य है।

दरवाजा खोलते ही उसने देखा बायें छोटे-से प्रांगण में एक बड़ी-सी पानी की टंकी थी। जो खाली थी। यह दृश्य एकदम पराया दृश्य था।

'क्या हो गया इस कश्मीर को उनके भागने के बाद। काली बर्फ गिरी। वितस्ता सूख गयी। जल के नल जो अमृत-सदृश निर्झरों के जल से चौबीसों घण्टे बहा करते थे...सूख गये। कश्मीर से बाहर जल संचय करना पड़ता था, पर अब यहाँ जल का अकाल पड़ गया? यहाँ इन टंकियों का क्या काम था। जम्मू की तरह यहाँ भी पानी का समय बँध गया...जल सुरक्षित और आरक्षित करना पड़ता है अब इस सतीसर में भी।...कहीं जल भी हमारे साथ ही तो नहीं बह चला यहाँ से...और यह धरती सूख चली?' उसको आश्चर्य था।

भाई ने पिछले से पिछले वर्ष कहा था कि '...तुम विश्वास करोगी...वितस्ता का तल दिख रहा है...लोग चलकर उसे पार करते हैं...बच्चे उसके बीच में उतरकर क्रिकेट या गुल्ली-डण्डा खेलते हैं...।' सुनकर उसके मन का सदमे का-सा एहसास हुआ था...और दूसरे मन को प्रकृति का दर्शन हुआ था। 'प्रकृति! ऐसा हुआ है क्या...? ऐसा...अरे...अच्छा।...समझ गयी मैं...।'

वह बरामदे से ऊपर जाने लगी। दूसरी मंजिल का छोटा-सा बरामदा बीच में-से टूट गया था और वह जिन पर टिका था, वे स्तम्भ वैसे ही गोलाकार सुन्दर और सुदृढ़ खड़े थे। इन खम्भों के इर्द-गिर्द वह बारहा अपने भाई के साथ, ताऊ के लड़कों के साथ, दीप्ति के साथ छुपा-छुपी खेली है। उनको बारहा उसने तनाव के क्षणों में अपने नाखूनों से कुरेदा है। वह एक-एक कदम चलने के बाद रुकने की प्रवृत्ति दिखाती थी...पर हचकुकिल उसे बड़े ही वात्सल्यपूर्ण नाटकीयता से हाथ से धकियाते हुए आगे बढ़ने को कहती...चलो...चलो...देखो...देखो...।

शब्बीर ने अब दहलीज के दरवाज़े का ताला खोला और दरवाजा खुलने पर उसका हृदय धक् से रह गया। सब-कुछ असह्य है। उसे लगा कि आलम में पर्याप्त प्रकाश नहीं है। कोई धुन्ध है जो वातावरण में छा गयी है...या उसकी आँखों

पर कोई जाला बैठ गया है, और दरवाजा खुलते ही इस अकल्पनीय धुन्ध का झोंका उस कमरे के भीतर चला गया हो...उसके जाने से पूर्व। उसके पैरों पर मानो टनों वज़न पड़ रहा है और वह कदम उठा नहीं पा रही है।

''चलो...चलो दिद्दा...चलो...देखो हमने कुछ नहीं किया यहाँ। छुआ तक नहीं कुछ। बस ताला लगाया है यही। जस का तस है...सब-कुछ...सभी कुछ।...हाँ।'' हचकुकिल की आवाज में उसकी घबराहट और अधैर्य पारदर्शी था। हचकुकिल बोलती जा रही थी...अजब से व्याकरण और कम्पन के साथ। मानो कह रही हो—'लो तुम्हारी अमानत। हमने इसकी जरा भी खयानत नहीं की है। यह अक्षुण्ण है। जस का तस है तुम्हारा घर। बाबी का घर।' दोनों माँ-बेटा सुधा के पीछे-पीछे चले आ रहे हैं। वह रंचमात्र भी सुधा के आगे आने का दुस्साहस नहीं कर रही...और शब्बीर को भी रहस्यमय ढंग से पीछे धकेलती जा रही है।

'कुछ है। कोई बात है जरूर। उसकी बातों में प्रयुक्त व्याकरण बताता है, उसकी आवाज की थरथराहट बता रही है...उसके हाथों और पाँवों में व्याप्त थरथराहट बता रही...उसके चलने और हाथ हिलाने...मुस्कराने और होठों को बनाने का ढंग बयाँ कर रहा है।' उसने सोचा और स्वयं से कहा।

अन्दर कितना अन्धकार है, बताया नहीं जा सकता। यह तो वह ब्रह्माण्ड है जहाँ समय की खानें बन्द हैं। समय का सोना, समय का हीरा, समय के मोती...जवाहर..पत्थर...समय की चाँदी...पीतल...ताँबा सब यहाँ दबा है...बन्द है। समय की नदियाँ...समय के पर्वत...उसमें से उत्पन्न हुई और उसी में विलीन हुई है...अदृश्य...है किन्तु ठोस और सुरक्षित...यह भी प्रकृति की कलाकारी है...कारिस्तानी है...समूची धरती है वहाँ...कहीं वहीं...उसका वह घर इस ब्रह्माण्ड का श्याम-विवर तो नहीं? भला इस रहस्य को कैसे खोजा जाए। कौन करेगा आकाश से ही उतरकर यह शोध। श्याम विवर की कृष्णाकुलता बढ़ रही थी या उसके आँखों की धुँधलाहट...कुछ नहीं जान सकी वह। यह सोचते हुए उसकी आगे बढ़ते रहने की रुचि कम होती जा रही है। आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने के लिए शब्दों को दोहराते हुए हचकुकिल वही राग अलाप रही है—'हमने सच में कहीं पर भी हाथ भी नहीं लगाया। छुआ तक नहीं कहीं...।' ये शब्द उसके लिए पहले जितने पहेली थे, अब उतने ही अर्थवान होने लगे थे। कल जलबोबा और उसकी बहुओं ने कुछ संकेत दिये थे।

'अजीब बात है, दृष्टिमान शत्रु को आप जीत लो तो भी शत्रु पुनः उगता ही है। कहीं नहीं तो अपने-स्वयं के भीतर से ही उगता है। मन में ही एक मन-शत्रु और एक मन-मित्र का अनुष्ठान पूर्ण घोषणा करता है...।' उसने स्वयं से कहा।

इन्होंने भट्टों को भगाकर स्वयं को शत्रु-मुक्त किया था, मगर अब वे आपस

में ही एक-दूसरे के शत्रु हो गये हैं। कल से आज तक उसने उनमें व्याप्त कितना संशय और अविश्वास—एक-दूसरे के प्रति देखा था। कितनी आत्मकेन्द्रितता देखी थी...कितनी होठों की फुसफुसाहटें देखी थीं...बाप रे...वे एक-दूसरे से ही भय खा रहे थे...और एक-दूसरे से अपनी रक्षा कर रहे थे...उसने साफ-साफ जाना।

जो मुक्ति...जो सुख...जो संशयहीनता उन्हें भट्टों की मौजूदगी में इतनी मुद्दत तक स्वप्निल बना गयी थी, वह कहीं चूर-चूर हो उठी थी। वहाँ संशय और भय जितना आज व्याप्त था उतना उनके तथाकथित गैर-आजाद दिनों में भी नहीं था। सुधा ने उनके आपसी सम्बन्धों की इस सड़न की कभी कल्पना भी नहीं की थी। उसने उनके आपसी सम्बन्धों में घाव और बदबू देखी थी और चुप थी...मानो उसके पास रहस्यों का एक बड़ा-सा मालगोदाम हो। उनकी अवैध चीजों का मालगोदाम मानो उसकी चाबी से खुलता हो। और अपने-अपने अवैध भण्डार को वे एक-दूसरे की नजरों से बचाना चाहते हों। यह तो दम घोंट देनेवाला आलम था।

''यह देखो...यह पापा जी का कमरा...।'' हचकुकिल बोली।

उसके मन में आया कि कहे 'ऐसे बोलने की क्या जरूरत है। क्या मुझे मालूम नहीं।' लेकिन वह चुप थी। वह गहन अन्ध-विस्मय और दुःखालोक में थी।

''पापा जी की खाँसी अक्सर रातों में सुनाई देती है...।'' वह फिर बोली। जलबोबा भी कल बोली थी। उसकी बहुओं ने तो सबसे पहले कहा था, ''बाबी का पाठ यहाँ अक्सर गूँजता है। दोनों बहुओं में होड़ लगी थी बयान करने में कि कितनी साफ स्पष्ट आवाज थी बाबी की...कि उन्हें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं।''

उसके भीतर अपने घर के ऊपर का आकाश साकार हो उठा। 'कहाँ है यह अभिलेखागार...वहाँ...हे महादिगन्त मेरे। जहाँ से तू वे टेप बजाता है और इनको परेशान भी करता है और कायल भी...और आह्लादित भी। आश्चर्यचकित भी।'

''अब चलो बाबी का ठाकुर-प्रकोष्ठ देखें। यहाँ तो बाबी ऐसे पाठ करती रहती है कि पूछो मत। पागल हो उठा है पूरा मुहल्ला...यह थी न गुलाम नबी वासी की बड़ी बहू, जिसने कहा कि तुम्हारे लिए नमाज मुल्तवी की...वह भी तुम्हें बताएगी। वह तो बहुत ही सुनती है...और जलबोबा भी पूछो मत...खुदा की कसम। वाणी साहब का छोटा बेटा डाली। शब्बीर-साभा ने तो कई बार सुना है उसका पाठ। टाठा सुनता है। क्या बताऊँ! क्या हाल हो जाता है उस दिन यहाँ का।''

''वह रहे जालिब साहब वाले यह बात उनकी बहू भी बोल रही थी। गरज

सारा मुहल्ला गूँज जाता है पाठ से। अरे क्या बताएँ...कभी-कभी तुम्हारी और दीप्ति की आवाजें आती हैं...मानो तुम अन्दर आपस में लड़ रही हो।''

'हाँ महादिगन्त। हे महाकाश! हमारी ध्वनियाँ। हमारी एक-एक बात, एक-एक प्रार्थना। तुम्हारे महाभिलेखागार में, ठीक मेरे सिर के ऊपर सुरक्षित है। अक्षुण्ण है।' उसने धन्यवाद ज्ञापित किया।

वह आह्लाद-विह्वल भी हुई और वेदना-विह्वल भी। मन किया कि उसी क्षण जाए और अपने समुदाय से चीख-चीख कर कहे '...अरे ओ भट्टो। काश ओ प्यारे, बेचारे, गरीब, निरीह, देशप्रेमी भट्टो! महादेव हैं हमारे साथ। वह महाकैलाशवासी हैं हमारे ऊपर। हमारा कुछ भी बर्बाद नहीं हुआ। यहाँ तक कि समय भी तब से एक निमिष, एक पलक नहीं झपका। तुम्हें विश्वास कैसे दिलाऊँ? भट्टो ओ।' वह एक आत्मालाप के दौरे से उबरकर सोचने लगी कि वह किसे बताएगी? कैसे बताएगी? कौन विश्वास करेगा। लोग हँसेंगे...बोलेंगे कि घर छूटने के सदमे से जैसे अनगिनत भट्ट पागल हो गये, यह बेचारी भी उन्हीं में से एक है।

'मगर यह सच है भट्टो। ओ नन्हे-मुन्ने मेरे प्यारे-प्यारे भट्टो। अच्छे बनो। अच्छे तुम हो...और अच्छे ही बने रहो...देखो मेरे माता-पिता ने कुल मुहल्ला दीवाना कर दिया है यहाँ...और मेरी माँ को पता भी नहीं।'

'माँ को बताएगी' सोचकर एकबारगी उसके मन में एक उमंग की हिलोर उठी थी, पर फिर दब गयी वह। घर में बनाये गये नियमों के अनुसार माँ को इस प्रकार की कोई भी बात बताना प्रतिबन्धित है। वह यह बातें सिर्फ दीप्ति को बताएगी। काश! उसके पंख लग ज़ाएँ और वह दिल्ली पहुँच जाए। दीप्ति से कहेगी—'चल डियर पार्क का चक्कर काटकर आएँ', और वहीं पर वह उसे सब कुछ बताएगी...। पूरी प्रामाणिकता के साथ, चित्र दिखाएगी...पूरी शक्ति से बयान करेगी सारा वृत्तान्त...पर...पर...दीप्ति भी कुछ-कुछ माँ जैसी है। कठोर और भावुकता से दूर। सारी बातों पर वह 'मेरी कोरी भावुकता' करार देकर पानी फेर सकती है। कहेगी—'तुझे किस डॉक्टर ने नुस्खे में लिखा था वहाँ जाना...क्यों गयी तुम वहाँ...तुम भी अरे...निरी बकवास हो तुम...' और उसको लताड़ देगी। तब वह कोई उत्तर नहीं दे पाएगी उसके प्रश्नों का और उसकी पूरी हवा निकल जाएगी। और एक उल्टा भाव उसके मन में आया, 'वैसे भी क्या अर्थ है इस सबका। मान लो महाकाश में रहने वाले महादेव के महाभिलेखागार में हमारी प्रार्थनाओं के टेप हैं। वह उन्हें बजाता है। इन्हें हमारी स्मृतियों से सताता है...तो हमें क्या फर्क पड़ता है...भला हमें क्या मिलता है...पता तक नहीं लगता हमें...अब इन्हें सताये जाने से भला हमें क्या लाभ होता है...यह तो शायद हमारे असमर्थ ईश्वर की कोरी भावुकता है।...नितान्त भावुकता।'

उसे लगा था कि एक-एक कमरे में एक-एक जोड़ी आँखें हैं। अर्ध निमीलित। मरणासन्न। शवासन में। अन्दर से दु:ख और अवसाद के झोंके आ रहे थे, जो उनको निगलते जा रहे थे।

बेरहम हचकुकिल उसे एक-एक कदम पर ले गयी। 'क्या वह यहाँ मुझे हर कदम पर ले जाकर कोई तान्त्रिक कार्य सम्पन्न कर रही है। क्या उसका विचार है कि मेरे कदम यहाँ हर कहीं पड़ने के बाद यहाँ का घर-देवता उसे यहाँ घुसने देगा और उस घर को बरतने भी देगा? क्या वही बात नहीं...? हाँ...'

ओह! चलो शुक्र है। वह सबसे ऊपर की मंजिल पर पहुँच गयी है। जहाँ कुछ नहीं। सिर्फ एक टूटी रस्सी पर उसके बेटे की बेहद छोटी कार्डराय की राख-रंग की पतलून और भाई की बिटिया अमृता का एक छोटा-सा लालरंग का स्वेटर।

❑❑

भागने से पहले वाले दिन उसने कितने कपड़े धोये थे। उनमें बच्चों के ज्यादातर थे। ऊपर की मंजिल की सारी रस्सियाँ ऐसे भर गयी थीं उन कपड़ों से कि बस उसे याद आकर सिहरन दौड़ती है पूरे जिस्म में।

उसके रस्सियों पर कपड़े डालने के बाद से इस क्षण के बीच सालों का एक गुच्छा व्यतीत हुआ है। क्या वह तब के डाले हुए कपड़े उतार लाने के लिए अब यहाँ ऊपर आ गयी है।...पर यहाँ तो मात्र दो कपड़े हैं। बाकी कौन ले गया? हचकुकिल?

उसने उस दिन कपड़े धोने के बाद ऊपर से नीचे तक पूरे घर की सफाई की थी। धूल साफ की थी। सीढ़ियाँ साफ की थी। साफ-सुथरा किया था घर को। कल-सुबह उनको मुँह-अँधेरे भागना था, "सिर्फ एक महीने के लिए...जब तक कि हालात सुधर न जाए...उसके बाद वापस आना था..." ये वाक्य सभी के होठों पर थे। दरअसल यह उनकी कामना थी...इच्छा थी...पड़ोसी श्री वातल तो यह बात जोर दे-देकर कह रहा था। और वह वातल साहब स्वयं कुछ ही दिनों बाद आतंकवादियों द्वारा मारा गया था।

पर अब? अब तो तब से सदियाँ बीत गयीं। कल्प बदल गये। जीवन का कायाकल्प हुआ।

सुधा का भाई एक दिन निर्वासन के सात माह बाद ट्रक लाया था। अपने जीवन को दाँव पर लगाकर। और कुछ अत्यन्त विश्वसनीय मित्रों से सहायता माँगकर। वे मित्र भी डरे-डरे रहे थे पूरे काम के दौरान। जल्दी-जल्दी, आनन-फानन कुछ जरूरी सामान उठाकर ट्रक में डाला था।

'मैं नाभि के मुख से पूरे समय तक इंद्राक्षी जपता रहा था। हनुमान जी की

मूर्ति जबरदस्ती आँखों में लाकर ध्यान कर रहा था। पागलों की तरह अपने ही सामान पर झपट रहा था मानो किसी का सामान जो हाथ लगे लूटने की कोशिश करनी हो। अपने उन दोस्तों को अधबँधी गठरियाँ पकड़ा-पकड़ाकर कह रहा था...ट्रक में डाल आओ...फटाफट मजीदा। मजीद मेरी हालत समझ सका था और बोला था—'काका जी। डरिए मत...हौसला रखिए...नबी करीम तुम्हारी रक्षा करेगा और सहायता भी...' अरे दिद्दा। इस कयामत की घड़ी में भी इनमें नेक लोग बचे ही रह गये और वे बदकार भी न हुए...हाँ एक बात है कि उनकी कुछ न चली...वे बेहद कम थे..बहुत ही कम...।'

'फिर हचकुकिल आयी और बोली, 'काका. ये गैस मुझे दे मेरे प्यारे बेटे।' मेरे पैरों तले से मिट्टी खिसक गयी। इतनी पैसेवाली होकर भी मुझे लूटने की लालच से आजाद नहीं। एक कुत्तापन। एक कमीनापन। तोबा! तोबा! भगवान ऐसे लालचियों, लुटेरों का नाश करे।

'मकान नम्बर अस्सी में रहने वाला उसका देवर तुझे याद है न। वह आया और बोला...अरे यह दीवार घड़ी तो आपकी शानदार है। क्या मुझे देंगे? मैं चुप रहा। न क्रोध आया न क्षोभ हुआ। सोचने लगा कि ये सारे अधिकार तो मेरे छिन ही गये हैं...या क्या पता आया क्रोध भी...हुआ क्षुब्ध भी पर ताकत से, पूरी ताकत से स्थगित रखा। मेरी चुप्पी भाँपकर वह तुरन्त बोला—'अरे पैसे लेना...ले कितने की देगा...।' मेरा मन हुआ उसकी खोपड़ी उसके सिर से अलग करके रख दूँ...हैवान...वहशी स्साला...क्या मैं घर की चीजों की नीलामी की घोषणा कर चुका था...बेईमान हरामी स्साला...हराम को माले-गनीमत मान लूटने आया था मुझे...पहले आयी थी वह गणिका हचकुकिल ...कायदे से जो उसके लिए कुफ्र होना चाहिए...वही उसके लिए धर्म-सम्मत है...त्राहि...त्राहि...मेरे राम। हनुमान। भगवान ही बचाए इनसे! मैं सोचता हूँ प्राय: क्या यह सच है कि हम इनके साथ जीते थे? कैसे जीते थे? अविश्वसनीय है...जरूर हम महान लोग हैं...महान कलाकार हैं हम...मैं अपनी दाद देता हूँ दिद्दा...बाकी रहीं छोटी-छोटी कमियाँ वह किसमें नहीं होतीं...पर मैं दावे से कह सकता हूँ कि हम इंसान हैं। उच्चकोटि के इंसान। तोबा-तोबा यह कैसे लोग हैं।'

सुधा का भाई उस दिन अपनी यह आप-बीती बताने लखनऊ आया था। भट्टिनी को भी सुनायी थीं सारी बातें। वह सहम गयी थी। किन्तु यह सोचकर कि घर उसी का है अभी और उसका बेटा ठीक-ठाक सुरक्षित उसके सामने सांगोपांग उपस्थित है...वह अपनी परिभाषानुरूप आनन्दलोक में निश्चिन्त थी। यह सारी कथा सुनने की भरपूर हिम्मत भी थी उसमें। सिर्फ भट्टिनी ने बार-बार पूछा था बेटे से—''ताला लगा लिया न अच्छे से घर को। लगाने के बाद ताला खींचकर

देखा क्या कि लग गया। खुला ही तो नहीं रह गया। ताला सब दरवाजों में लगा लिया, क्या... ?''

वह यहाँ तनिक खीझकर भी बोला था, ''अरे माँ हाँ हाँ... ।'' मानो मन में सोच रहा हो कि माँ नहीं समझ पा रही कि भला ताले की क्या औकात...ताला क्या चीज है। इतना दिलदोज आलम है वहाँ कि इन्सान की कदरें मटियामेट हो गयी हैं। यह लूटमार 'मेहमान मुजाहिद' नहीं बल्कि वे सदियों के पड़ोसी अंजाम दे रहे हैं, जिनसे उम्र-भर प्यार बाँटा...आशीर्वाद बाँटे। मगर वह माँ से यह सब नहीं बोला। लेकिन सुधा को सारा किस्सा बयान किया। और दास्तान आगे यों थी कि मैंने हचकुकिल के उस हैवान देवर से कहा, ''भला मैं क्या दाम तय करूँ इसका। यह कोई समय है...वैसा करने का...मैं क्या चीजें बेचना चाहता हूँ कि दाम बताऊँ तुम्हें...क्या आप नहीं समझ रहे कि इस वक्त मेरे दिल पर क्या बीत रही है? आपको दीवार घड़ी पसन्द आयी तो आप रखिए। वैसे भी मेरे पास अब यह घड़ी रखने के लिए दीवार कहाँ है...तम्बू है...वह भी इस बरसात में तार-तार हुआ...लीजिए शौक से घड़ी रखिए...इसे अपना ही माल मानिए...जनाब।' पता नहीं मैं अपने पर हँस रहा था या उस पर महीन व्यंग्य कस रहा था। पता नहीं इस तरह मैं क्षण-भर में कैसा हुआ। पूरा वैरागी।''

''तब?'' सुधा ने पूछा था। सजल आँखों को मलकर, हृदय थामकर।

''अरे ले गया वह ठाठ से...बेरहमी से। मेरे व्यंग्य की ऐसी की तैसी कर गया।''

''और गैस... ? हे प्रभु!''

''मैं कह रहा हूँ न, ईश्वर मेरा सहाय था। उसने मुझे वे शब्द दिये जिनसे मेरा काम बन गया। मैंने हचकुकिल से कहा, 'गैस देने में मुझे कुछ हर्ज नहीं। तू क्या...हम क्या। भला तुममें और मेरी माँ में कोई फर्क है? पर एक बार चल और देख अपनी आँखों से तेरे ही बच्चे वहाँ कैसी मुसीबत झेल रहे हैं। कैसे खाना पकता है। यों समझो रोज मेरी बीवी दोनों हाथ जलाती है और खाना पकाती है। हमारी हालत देखकर मुझे यकीन है बोबा कि तू कहेगी...यह ले बेटा...मेरी गैस ले जा...मेरी फलाँ चीज ले जा...वह चीज ले जा। यह चीज ले जा। हमारे पास कुछ नहीं है...यकीन करो...कुछ अन्दाज करो।'

'अच्छा। अच्छा। फिर रहने दे। ले जा।' उसने कहा। 'पर यह नहीं समझना कि उसको मेरी बातों से कोई दया आयी। नहीं। बल्कि वह तो सोच रही थी कि 'तुम जैसी भी हालत में हो, मेरी बला से। पर माले-गनीमत के हिसाब से यह गैस मेरी ही बनती है।'

''उसके बाद मैं चुप रहा था और कुछ अधिक ही तेज़ी से जो सामान आगे

आता वही समेटता जा रहा था। गीचड़-मीचड़ करके। किसे यकीन था कि मैं सचमुच लखनऊ पहुँचूँगा...तुमसे मिलूँगा...ले ये तेरी दो साड़ियाँ लाया...जिनके लिए उस दिन टसुए बहा रही थी, तेरे प्रभु जी की लायी हुई।''

भाई हल्के से अन्तराल के बाद बोला, ''फिर हचकुकिल की नजर उस बेहद सुन्दर जापानी कुत्ते पर पड़ी। उसके गले में जो रोल्ड-गोल्ड की चेन थी, उसे लगा कि शायद वह सचमुच सोना है।'' सुनकर सुधा को पाकिस्तानी कबाइलियों की भरसक याद आयी जिनके बारे में कहा जाता था कि वे पीतल को ही सोना मानते थे। उन्हें सोने की वास्तविक पहचान न थी।

—और दास्तान जारी थी, ''उसने सुन रखा था न कि वह यहाँ का खरीदा नहीं बल्कि जापान से ही लाया गया है, इसलिए उसे शुबहा था कि क्या पता चेन सोने की ही हो। फिर वह उस कुत्ते को दिले जिगर से चिपकाये रखकर अनुनय से मुझे बोली, 'काका, इसे मुझे दे दे।' उस समय शब्द मैं नहीं स्वयं माँ सारिका बोल रही थी...मैं उसका अविराम ध्यान कर रहा था न...मैंने कहा, 'अरे...हाँ...हाँ इसे तू ले जा। वैसे भी मैं इसके लायक भी कहाँ रहा। साले के गले में सोने की चेन है। यह तुम्हारे पास ही ठीक लगेगा...तुम इसे ले जाओ।'

'वल्लाह...खा खुदा की कसम...यह सोने की ही चेन है क्या?'

''तो और क्या...पर चेन भी ले जा तू...कोई बात नहीं। और उसके बाद धड़ल्ले से उसने मेरी मदद करना शुरू की। बच्चों के सारे कपड़े जो तूने उस दिन रस्सी पर, धोने के बाद फैलाये थे न...समेट, समेटकर गठरी बाँधने लगी वह। वह चाहने लगी कि अब मैं वहाँ से जल्द-से-जल्द निकल जाऊँ। कुत्ते की चेन से उसे भरपूर चैन आ गया था। वह उस चैन को कायम रखना चाहती थी।''

''जलबोबा...?''

''मैं उससे नहीं मिला। पर सुनने में आया कि वह अन्दर रो रही थी और कह रही थी कि सामने-सामने एक आबाद घर लुट रहा है...बिखर रहा है...दरबदर हो रहा है...और हम देख रहे हैं। कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं पड़ोसी भी नहीं...क्या यही इस्लाम है...?''

''हूँ...।'' सुधा ने निःश्वास फेंका।

''अरे हाँ...। उसका बेटा मुझे विदा कहने निकला। उनके बच्चे निकले, बहुएँ निकलीं, यों तो उनकी आँखें गीली थीं...पर...कई-कई दुआएँ और सलाम दिये उन्होंने। जलबोबा का बेटा बोला कि बोबा कह रही थी कि 'मुझसे नहीं देखा जाएगा। मुझे अन्दर ही रहने दो। मुझसे विदा नहीं कही जाएगी...पूरे मुहल्ले पर गाज गिरेगी इन बेचारों की आहों से...यह मुहल्ले के लिए शुभ नहीं। मैं दुआ करूँगी कि ये लौट आएँ...फौरन लौटकर आए।' ''

''हूँ...।'' फिर सुधा ने ऐसे प्रश्नवाचक नि:श्वास फेंका और उससे कहा...''यह तो अविश्वसनीय है भैया।''

''हाँ री...पर। जब मैं अन्त में चल पड़ा। मैं ट्रक में रो रहा था। और हाथ हिला रहा था। वे समझ रहे थे कि मैं उनके लिए हाथ हिला रहा हूँ...पर मैं अपने निर्जीव सुनसान...निर्जन...घर के लिए हाथ हिला रहा था और रो रहा था...सोचते हुए कि...क्या पता अब वहाँ लौटकर आना नसीब होगा भी या नहीं।

''बीच-बीच में मुझे विभ्रम हो रहा था कि तुम सब भीतर हो घर में, और न जाने मुझे क्या हो गया है कि घर का सामान लूटकर भागा जा रहा हूँ...न जाने कहाँ।

''जानती हो विश्वास नहीं हुआ जब मैं ट्रक-समेत जम्मू पहुँचा। तुम्हारी भाभी तो अधमरी हो गयी थी। फोन का भी कोई सम्पर्क नहीं था कि उसको कहीं रास्ते से करता, और जम्मू पहुँचकर फिर एक परेशानी में उलझ गया। पर चलो...वह तो परेशानी ही थी। जीवन तो था न। फिर पता चला कि बच्चों ने दूसरे शरणार्थी शिविर में शिफ्ट किया है। फिर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आखिरकार मुझे मेरा तम्बू मिल गया। ट्रक वाला नेक आदमी था। उसने मेरी बहुत मदद की। मैं सोचता हूँ कि अगर जम्मू नहीं होता तो हम कहाँ जाते।''

❑❑

तो जम्मू के लिए अपना सामान समेटते हुए हचकुकिल से बनायी बच्चों के कपड़ों की गठरी से छूटे ये दो कपड़े यहाँ ज्यों के त्यों रस्सी पर अब तार-तार हो गये हैं।

अब असह्य हो रहा है उसके लिए सब कुछ।

''अच्छा अब चलते हैं...'' उसने जोरदार आवाज में शब्बीर से कहा ताकि वह समझ जाए कि अब उसकी इच्छा और कुछ देखने की नहीं...बस वापस जाने की है। एक दबी-दबी इच्छा उसमें एक बार जलबोबा से मिलने की थी...मगर पता नहीं अब वह भी फीकी क्यों पड़ गयी है। वह वापस होटल जाना चाहती है...और एकान्त में चित की साफ चटाई पर लेटकर घर-देवता सरीखी हो जाना चाहती है। वह कुछ ऑक्सीजन लेना चाहती है। क्योंकि अब उसका दम घुट रहा है।

वह हचकुकिल को जोर से धकियाते हुए अपना रास्ता बनाने लगी और उस ऊपर की दहलीज को भेद-भेदकर देखने लगी जिस पर जब सीमेण्ट लगाया गया था, उसका नन्हा बेटा उस गीले सीमेण्ट पर फुदक-फुदककर चला था। सुधा ने मना किया था पर भट्टिनी यानी सुधा के नन्हे-से बेटे की नानी बोली थी, मना

मत कर...चलने दे...इसके पैरों का सुन्दर डिज़ाइन पड़ेगा सीमेण्ट पर। कितना गहरा अर्थ था माँ की बात में...वह इस क्षण हैरान है और नन्हे पैरों का डिजाइन ढूँढ़कर देखने की कोशिश कर रही है। याद आ रहा है माँ ने कहा था, बड़ा होकर यह अपने छोटे-छोटे पाँव के निशान देखेगा तो...अजीब खुशी मिलेगी इसे।

यहाँ इतना धुँधला प्रकाश है पर वह भीतर के पूरे प्रकाश का इस्तेमाल करके उन पदचिह्नों को देखना चाहती है। 'भविष्य के पदचिह्न हैं इस दहलीज पर' उसने स्वयं से कहा। मानो एक गूढ़ रहस्य हो जो उसे पता है...हचकुकिल भला क्या जानेगी यह भेद...सोचते हुए। और सोचते हुए कि...ये चिह्न एक मुहर है...एक इत्मीनान है...पैसों से...खोटे सिक्कों के लेन-देन से क्या होता है? हचकुकिल भी अब बूढ़ी हो आयी है...अब मरेगी। यह घर उनका है...उसका है...उसके भाई का है...उनके भविष्य का है।

दहलीज से पार होते हुए वह सीढ़ियाँ उतरने लगी थी कि उधर से खजबोबा (खदीजाबोबा) का कलाकार बेटा इम्तयाज़ सीढ़ियाँ चढ़कर उससे मिलने को बेसब्र, आ रहा था। वह उससे गर्मजोशी से मिला।

"अरे मेरी प्यारी दीदी...तू कब आयी...कल भी आयी थी तुम...मुझे इत्तला तो करती कम से कम कि तुम आयी हो...।"

"आज मेरा यहाँ आने का कोई कार्यक्रम नहीं था। पर ये लोग होटल ही चले आये...फिर आना पड़ा। क्या करती?"

"अब चलो घर।"

"अरे अब नहीं। अभी एकदम नहीं। मैं बेहद थक गयी हूँ इम्तयाज़...एक संवेदनशील कलाकार होने के नाते तुम्हें मेरी हालत का अन्दाज लगाना चाहिए...अब मैं कहीं भी...किसी के भी पास नहीं जा सकती...अब मुझे आप माफ करें प्लीज...अब फिर कभी...अरे फिर कभी क्या...अब तो हम सब वापस अपने घरों में आएँगे..."

"इंशाल्लाह...खुदा को मंजूर हो...खुदा को मंजूर हो...अरे क्यों नहीं...हम तो आँखें बिछाये बैठे हैं दीदी...।" इम्तयाज़ बोला।

"क्या लोग थे पण्डित भी...वाकई...कलाकार लोग...मुकाबला नहीं...जोड़ नहीं उनका...उनके बगैर रंग नहीं यहाँ की जिन्दगी में कुछ...।"

उनकी वापसी के विचार का स्वागत गर्मजोशी से हचकुकिल और शब्बीर ने भी किया था, पर इम्तयाज़ के साथ सिर्फ होड़ के कारण ही। वह अन्तर समझा जा सकता था। निकाली गयी ध्वनियों से ही।

इम्तयाज़ उन दिनों छिटपुट नाटकों में काम करने लगा था, पर बाद में वह एक खरा कलाकार बन गया था। सुधा ने एक बार जम्मू में दूरदर्शन पर देखा था

कि कवि-महमूद गाम के जीवन चरित्र को उसने किस खूबी के साथ निभाया था, कि उसको आश्चर्य हुआ था, और उसकी प्रतिभा के प्रति उसके मन में सम्मान बन गया था।

सुधा देख रही थी कि हचकुकिल और शब्बीर को इम्तयाज़ का इस तरह आना और कबाब में हड्डी बनना पसन्द नहीं आया। पर वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। लेकिन उसे खूब रास आया। उन दोनों में एक किस्म की बहस छिड़ गयी कि चूँकि शब्बीर और हचकुकिल उसे होटल से ले आये हैं अतः वे ही वापस भी ले जाएँगे। पर इम्तयाज़ के आग्रह में आत्मविश्वास था।

''मैं समझता हूँ दीदी अब घर नहीं आ सकतीं—थक गयी होंगी, पर अब आइए गाड़ी में ही कुछ बातें करेंगे। देर हो गयी। देर हो जाना तो वैसे भी ठीक नहीं।''

उसे अचानक अपने साड़ी पहने होने का भी ध्यान आया। ''ओ हाँ।''

वह इम्तयाज़ की कार में सवार हो गयी। हचकुकिल और शब्बीर खिड़की से बोल रहे थे, ''बाबी और पापाजी से हमारी ओर से माफी माँगना। कहना हमें बख्शें। हमने गुनाह किये हैं...गुनाहों के लिए माफी दें...मेरा दिल करता है उनके पैरों पर गिरकर माफी माँगूँ...पर जाऊँगा कैसे...किस मुँह से...।'' शब्बीर बोला था।

''अरे क्यों...आइए आपका स्वागत है। आपका क्या कुसूर? आप क्या कर सकते हैं?...जैसी दुनिया हो गयी, वैसे आप भी हो गये...।''

गाड़ी चल दी। कल की तरह ही नुक्कड़ पर गुलामनबी पण्डित मिला और इम्तयाज़ से गाड़ी रोकने के लिए कहा। गाड़ी रुकी।

खिड़की से पण्डित बोला, ''जरूर लाना...माता-पिता को...जरूर...हम कई लीला सन्ध्याएँ करेंगे। मैंने मन्नत मानी है...मेहरबानी करके।'' वह अपनी ठुड्डी को पकड़कर प्रार्थना करने लगा। उसे विचित्र लगा और छूटते ही बोली, ''कैसे आ सकते हैं वे बूढ़े। बुढ़ापे में उन्हें झेलना पड़ा। कायापलट देखना पड़ा। वे कैसे यहाँ आना पसन्द करेंगे। आपको लीलाएँ गाना हैं, गाइए न। उनके बगैर गाइए। आपको तो कई लीलाएँ आती हैं 'होश दिम लगयो पम्पोश पादन।'

'...माउज्य सारिकायि कर दया...।'

—बिल्व तय मादल व्यन गुलाब पम्पोश दस्तय...। है न...हाँ मुझे इल्म है।

''अच्छा तो नहीं आएँगे बाबूजी और बाबी...?''

''आप समझिए। यह अच्छी बात है कि आप लीला गाएँगे...मैं इस शहर में रही तो मैं आऊँगी...आप इत्तला कीजिए मुझे...।''

''अच्छा इजाजत दीजिए...।'' और हाथ से उसने इम्तयाज़ को इशारा किया

कि वह गाड़ी चलाए।

उसे नबी पण्डित से ये शब्द कहने के लिए मन के किसी कोने में क्षोभ भी है...पर कोई लाचारी भी तो है।

"ठीक कहा तुमने दीदी...।" इम्तयाज़ ने उसकी यह चिन्ता दूर की।

इम्तयाज़ ने उससे पूछा कि वह किस सम्बन्ध में कश्मीर आयी है। और सुधा ने उसकी महमूद गाम के रोल की भरपूर प्रशंसा की।

और फिर इम्तयाज़ ने उससे राज खोला कि क्यों इतनी तत्परता के साथ हचकुकिल और शब्बीर उसे उस घर में घुमा रहे थे। उसके हर कोने में उसे ले जाकर उसे दिखा रहे थे जबकि उसकी रुचि इस सबमें नहीं थी।

❑❑

कि जब उन्होंने उसे खरीदा था तो जम्मू से वापस आते ही धाँय...धाँय... धम्म...धम्म... ठुकठुक...ठकठक उसे खोला...सारी खिड़कियाँ...दरवाजे आवाजें करते हुए खोले...मानो मुहल्ले में जबर्दस्त ऐलान किया हो इस शोर से...कि लो हमारे कमजोर और कमतर पड़ोसियो! हमने यह घर आखिरकार फतेह किया...प्राप्त किया। इतने मुहल्ले में हम ही खुशनसीब थे कि यह मुफ्त का माल हासिल किया। घर में ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर अपने घर से इस घर...इस घर से अपने घर दौड़ादौड़ी करने लगे...लग रहा था कि खुद हचकुकिल और उसके परिवारवालों को ही विश्वास नहीं हो रहा है कि वह घर अब सचमुच उनका ही है। वे अब उसमें कुछ भी कर सकते हैं...कुछ भी। बोलने लगे कि अब वे इस घर को मंजूर साहब के रहने के लिए ठीक कर देंगे...चूँकि उन्होंने जम्मू में बाबी से बाकायदा यह घर खरीदा है। और तभी एक अजीब घटना घटी कि हचकुकिल ज्यों ही बरामदे पर गयी कि वहाँ से उसी तरह सबके सामने एक किस्म की घोषणा करे...कि देखो तो बिरादरी वालो! अब भट्टों का यह घर उसका है...तभी देखते-देखते बरामदे का तल टूट गया। मानो वह भुरभुरी मिट्टी का हो...ऐसे ढह गया। या यों भी कह सकते हैं कि उसने हचकुकिल का भार उठाने से एकदम सख्त इनकार कर दिया हो और उसे नीचे गिरा दिया हो, ठीक उस घोड़े की तरह जिस पर सनक सवार होती है तो वह अपने सवार को बुरी तरह से गिरा देता है। ऐसे उस आदम-माप के सुराख में से हचकुकिल शूँऽऽ करके नीचे गिर गयी और साथ में सीमेण्ट पत्थर इत्यादि भी गिरा। एक भयंकर चीख निकली। उसके कई दाँत टूटे। उसे तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। वह छः माह तक भर्ती रही। उसकी कई जगह की हड्डियाँ टूटी थीं और बहुत सारे जख्म हो गये थे। लगभग छः मास बाद उसने बाहर की दुनिया देखी।

''ताला तभी से लगा घर में फिर से। तब से शायद आज ही खोला गया हो तुम्हारे लिए ही।''

''तो यह बरामदा तभी का टूटा है क्या? और आँगन में मैंने टंकी भी देखी। बहुत खराब लगा। खैर मैंने सोचा मेरे खराब लगने और अच्छा लगने पर अब कोई अधिकार ही नहीं है। जब मेरा कुछ है ही नहीं।''

''नहीं किसने कहा सब आपका ही है। सारा कश्मीर आपका है...सब आपका है...देखिए आपका ही है वास्तव में सब कुछ।''

उसका मन मानो ऑक्सीजन से भर गया। वह कलाकार की तरह बोल रहा था। एक सर्जक...एक मनुष्य की तरह बोल रहा था। एक महात्मा की तरह बोल रहा था। सुधा ने उसे भेदती हुई प्रश्नपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा, ''रहने को घर नहीं है इम्तयाज़, सारा जहाँ हमारा।...खैर मैं मुसलमानों को दो तरह के मुसलमानों में बाँटती हूँ...एक मुसलमानों को डुबोनेवाले मुसलमान और दूसरे मुसलमानों को बचानेवाले मुसलमान। जिनमें तुम हो, तुम जैसे हैं—मसलन जलबोबा है, शायद टाठा भी है...तुम्हारी माँ खजबोबा है...।'' यह मौन वाक्य इम्तयाज़ ने नहीं सुने। कुछ अधिक ही मौन व्याप्त रहा...इन वाक्यों के लिए...कुछ क्षणों के लिए।

''गुलामनबी पण्डित को भला लीलाओं की अचानक क्या सूझी है इम्तयाज़? मेरी समझ में नहीं आया कुछ।...ढोंग था? मुझे प्रभावित कर रहा था क्या?''

''अरे नहीं दीदी...हो सकता है वह बात सिर्फ दो फीसदी सच हो मगर वही सच नहीं...जो इसने ख्वाहिश तुमसे जाहिर की वह भी सच है...असल में यह हाल ही में बना मुसलमान है न...पण्डित है...इसको नमाज से तसल्ली नहीं होती है...तो सोचता होगा कि लीलाएँ गाएँगे तो हालात सुधरेंगे...।''

''यह ठीक समझा होगा तुमने। क्या यह हाल ही में बना मुसलमान है?''

''हाँ ये...और जो सप्रू की कोठी के ऐन सामने प्रिंसिपल कौल वे भी सब ताज़े मुसलमान हैं...नये मुसलमान...।''

''पर मैंने तो सुना है कि नया मुसलमान ज्यादा प्याज खाता है...।''

''अरे नहीं...गलत है...नया मुसलमान बहुत देर तक पछताता है और चोरी-चोरी भजन और लीलाएँ गाता है...।''

''ओ ऽ ऽ ऽ...यह तुमने खूब कही इम्तयाज़...खूब कही...सचमुच।'' और दोनों खूब हँसे। सुधा को लगा कि उसकी थकान मिट रही है...या उसके फेफड़ों में कुछ ताजी हवा आ रही है।

''देखिए दीदी जुल्म तो जुल्म है। हिन्दुओं में भी, मुसलमानों में भी, सिक्खों में भी, ईसाइयों में भी...यानी हर धर्म में। इसलिए इन्सानियत का ताल्लुक किसी एक धर्म से नहीं, सब धर्मों से एक-सा है...और यह सब आदमी अपने आप पढ़

जाता है...खुद-ब-खुद। अब मुसलमानों ने यहाँ जो हिन्दू घरों में लूट मचायी, उनके घरों को फूटी कौड़ियों के दाम खरीदा, क्योंकि वे वहाँ बेघरी और लाचारी में झुलस रहे थे। कोई मर रहा हो और दूसरा उसे देखकर सोचे...कि मर तो वह रहा है...वह। देखनेवाला थोड़े न मरेगा कभी...और तमाशा देखें...यह सब तो बेहूदा है। बेहूदा और हास्यास्पद। मौत के जबड़ों में सबका निवास होता है। कितने भट्ट बाहर आहें भरते होंगे दिन-रात और मेरा यकीन है कि हवा में वे टनों-टनों, मनों-मनों बददुआएँ इधर भेजते होंगे। एक आदमी की बददुआएँ हों तो बात कुछ और है मगर एक पूरे बेगुनाह कौम की बददुआएँ तो आलम को फना कर देंगी। आफताब और चाँद का उगना बन्द करेंगी। हवा का बहना, पानी का गिरना बन्द करेंगी...इतनी ताकत होगी उनमें...है कि नहीं...।''

क्या इम्तयाज़ उसे मरहम लगा रहा है? या ये उसके भीतर के सच्चे उद्गार हैं। 'होने तो सच्चे उद्गार ही चाहिए। ध्वनि और अंग-विन्यास से, या चेहरे के हाव-भाव से ऐसा ही लगता है।...सम्भवत: शब्द जो उसने कहे, नाभि से उगे और ब्रह्माण्ड में कई प्रकाश चिनगारियाँ उत्पन्न हुईं।' उसे लगा।

'इम्तयाज़ की बातों से उसे विश्वास हुआ कि ऐसा नहीं कि धर्म के अवलम्बियों में अन्धश्रद्धा हो। आत्मविश्लेषक भी मौजूद हैं। भले ही कम और कम असरदार। अच्छाई पता नहीं हमेशा कम क्यों हुआ करती हैं?' उसने यह प्रश्न स्वयं से पूछा।

''और फिर हचकुकिल जब ठीक हुई तब तक उनका घरेलू झगड़ा बढ़ गया था और उसकी नवैयत बदल गयी थी। मंजूर ने भट्टों वाले घर में रहने से साफ इनकार कर दिया और वह अड़ गया कि हचकुकिल वाला घर ही उसे मिले और वे लोग तुम्हारे वाले घर में आएँ।

''तुम्हें पता ही है दीदी कि हचकुकिल उर्फ अज़ीज़ा राज शरीके हयात जिनाब गुलाम नबी राजा किस प्रकार की स्त्री है। और बेटों में से किसकी पक्षपातिनी भी। सो वह शब्बीर के लिए सीना तानकर खड़ी हुई और झगड़ा बढ़ गया। मंज़ूर से कहा कि वह यह वाला घर शब्बीर को ही देगी और उसको देने के लिए ही उसने भट्टों का घर खरीदा है। यही उसकी इच्छा है...शायद अन्तिम इच्छा। मंज़ूर ने विद्रोह किया और वह घर छोड़ कर ससुराल चला गया। वहीं रह रहा है। नयी सड़क में कहीं है ससुराल। पलटकर यहाँ कभी नहीं आया।''

''टाठा ने कुछ नहीं कहा...?''

''उसने न्याय की बात कही। कहा कि दोनों घरों में से आधा-आधा हिस्सा दोनों बेटों को दो...न्याय भी होगा पक्षपात भी नहीं होगा...पर वह अज़ीज़ा उर्फ हचकुकिल टाठा की क्या कद्र करती है।''

''पर उसे दोनों बेटों को समान दृष्टि से देखना चाहिए।''

''हाँ दीदी...ये सब कहने की बातें हैं। असलियत में माताएँ भी पक्षपात करती ही हैं...लाख चाहकर भी समदृष्टि नहीं रख पातीं। आखिर माताएँ भी मनुष्य ही होती हैं...हाड़-मांस की मनुष्य। मेरी माँ कितनी खुदा-दोस्त है। ठीक तुम्हारी माँ की तरह...मगर उसने भी मेरे बड़े भाई के कान ऐसे भरे उसकी औरत के खिलाफ कि वह अपनी बीवी को मायके में छोड़ने को मजबूर हो ही गया आखिरकार। एक बच्चे की माँ, खूबसूरत, जवान मेरी भाभी बेचारी अपने माँ-बाप के घर में दिन भरने लगी...दम-दम मरने लगी...माँ सारी इबादत उठा-उठाकर नदी में फेंकती जा रही थी, ऐसा मैं जानता था, पर माँ को ऐसा कतई नहीं लग रहा था कि वह पाप और अन्याय के कामों में डूबी है...बस अनवर भैया की देखभाल माँ उन दिनों ऐसे करती थी कि क्या कहूँ...अपनी माँ के बारे में खैर इस तरह नहीं बोलना चाहिए...लेकिन मैं अन्धे प्यार और अन्धे अकीदत में विश्वास रखने वाला शख्स नहीं हूँ। मैं सब कुछ चुपचाप देख रहा था और आँक रहा था। देख रहा था कि मेरा अनवर भाई अपनी बीवी और बच्ची के लिए किस कदर अन्दर-ही-अन्दर तिल-तिल मर रहा था। परन्तु माँ को कुछ बोल नहीं सकता था। तब मैंने पहल की और ऐसी जबर्दस्त पहल की...भाभी को वापस लाया। माँ को ऐसा सुधारा कि आज तक कोई शिकायत नहीं। दोनों बड़े आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बच्चे बढ़िया पल रहे हैं...न्याय हो रहा है। माँ के सिर पर से भी पापों की गठरी उतर गयी, जिसे वह रोज-रोज और-और बोझिल कर रही थी। भैया, भाभी और बच्चों का जीवन भी सार्थक हो गया है। माताएँ कभी-कभी बड़े-बड़े अन्याय करती हैं, माताएँ होने की आड़ में और कहती हैं कि माता हैं...माता थोड़े न एक बच्चे के साथ राय और दूसरे के साथ न्याय कर सकती है...लेकिन मैं यह सब बकवास मानता हूँ।''

सुधा को लगने लगा कहीं वह उसके जीवन का सूत्र लेकर ये क्रान्तिकारी बातें तो नहीं कर रहा...। 'अरे काश। मेरे जीवन में भी कोई इम्तयाज़ जैसा देवर होता। यहाँ तो जिसकी पूँछ उठायी, उसी को मादा पाया...धन्य है इम्तयाज़ की भाभी जिसने ऐसा ईश्वर जैसा देवर पाया। पर यह एक शहर में एक ही होता शायद...तो फिर पूरे विश्व में दस-पाँच ही होंगे।' उसका एकालाप था।

''मंज़ूर के जाने से हचकुकिल को दुःख नहीं हुआ। उसने उसे रोका नहीं। जाने दिया क्योंकि वह अपनी पत्नी का वफादार है और बच्चों का बहुत अच्छा बाप भी।''

''पर शब्बीर की भी तो बीवी है?''

''हाँ, है न। आजकल हचकुकिल उसके काम में तो लगी है। उसे ही

उखाड़ने में...आपको कुछ महसूस नहीं हुआ होगा मगर यह हक़ीकत है...वह कहती है शब्बीर से कि इसे छोड़ दे यह खूबसूरत नहीं।''

"पर उसका नन्हा-सा बच्चा भी तो है?''

"उससे क्या होता है। बच्चा औरत का होता है। मर्द तो पाको-साफ होता है, कुछ भी करने के बाद।''

सुधा की आँखों के सामने शब्बीर की बीवी का चेहरा घूम गया...याद आया कि उसके चेहरे पर दो जगह इकट्ठा कई फुंसियाँ थीं और वह एकदम खूबसूरत नहीं मानी जा सकती थी। बच्चा तो बेहद प्यारा था...मगर...।

"मंजूर की बीवी तो खूबसूरत थी इम्तयाज़...।''

"अरे दीदी। हर बीवी खूबसूरत होती है। जिससे शादी की वह खूबसूरत। जिसकी कोख से बच्चा पाया, उससे बढ़कर कौन है। पर जो बेटा माँ का गुलाम और बीवी का दुश्मन हो वह अच्छा-अच्छा बेटा है, वही खूबसूरत बीवी का खाविन्द है। समझे न।''

"तो इस मामले में हमारा समाज बिल्कुल बराबर है...है न...?''

"बिल्कुल...।''

"लेकिन इम्तयाज़ तुमने जब शादी की...?''

"मैंने सब इन्तज़ाम पहले किये। डंके की चोट पर माँ को कहा...माँ तुम्हारी मैं इबादत करता हूँ, मगर मेरी बीवी मेरी जिन्दगी की हर चीज की हिस्सेदार है पूरी-पूरी...मेरी मालकिन है...मेरे प्यार की मालकिन...बच्चों की मालकिन। उसमें तुम ज़रा भी दखल नहीं दोगी...ज़रा भी नहीं...जैसा तुमने भैया के साथ किया...।''

"अरे मरहबा है तुम्हें। तुम तो क्रान्तिकारी हो...सचमुच एक सच्चा विश्लेषक।...मैं वाकई अभिभूत हूँ...तुम एक अच्छे इन्सान हो इम्तयाज़...।''

कहते हुए सुधा को याद आया कि इम्तयाज़ ने जब अपने भाई अनवर का उजड़ा हुआ घर आबाद किया था तो मुहल्ले में यही बात हो रही थी...इसी बात के नगाड़े बज रहे थे...कुछ लोग यहाँ तक कह रहे थे कि दरअसल इम्तयाज़ अपनी भाभी से इश्क फरमा रहा है।

"हचकुकिल को आशा है कि शब्बीर अपनी बीवी को तलाक, तलाक, तलाक कहेगा और वह उसका ब्याह डी. एस. पी. की बेटी शुगुफ्ता से कर डालेगी। क्योंकि दहेज में वे मारुति ज़ेन देंगे। तुमको पता है, अनवर भाई भी माँ की बातों में आकर भाभी को तलाक, तलाक, तलाक कह चुका था...।''

"ओ ऽ ऽ...अरे...सच?...फिर...?''

"अरे छोड़ो भी। इन शब्दों से अगर इस तरह के हादसे होने दिये गये तो फिर जीना ही नहीं। उधर मेरी भाभी तिल-तिल मर रही थी, उधर मेरा भाई

तपेदिक का मरीज़-सा लगने लगा था...मैं थूकता हूँ...ऐसे शब्दों पर...सुलह होने के बाद माँ बोलने लगी थी कि अनवर तो तलाक, तलाक, तलाक कह चुका है... ?''

''तो मैंने हँसी उड़ायी। कहा, कोई बात नहीं। तीन बार निकाह, निकाह, निकाह बोलेंगे दोनों। मैं नहीं मानता यह सब।''

वह आनन्द-विभोर थी और कह उठी, ''तुम तो काफिर हो फिर भाई मेरे।''

''तब तो सबसे बड़ा धर्मात्मा हूँ मैं मेरी बहन।'' और दोनों आनन्द की अद्‌भुत हँसी में हँस दिये।

इम्तयाज़ मानवाधिकारों का हामी और स्त्री का पक्षधर है। '...अरे यह दुनिया जीने लायक है अभी लोगो...मेरे मुहल्ले की स्त्रियो। चिन्ता न करो। एक ईश्वर...एक कलाकार तुम्हारे वहाँ विद्यमान है...जिसकी किरणों से मैं अभिभूत और आनन्दपूरित हूँ...यह दुनिया जीने लायक है...मेरे लोगो। मेरी बहनो! यहाँ इम्तयाज़ है।' वह अपने से बोली।

वे होटल के नजदीक पहुँच रहे थे। सुधा को मानो सारी थकान उड़ गयी हो। वे झील-डल की बगल की सड़क बुलवार्ड से जा रहे थे। हाउसबोटों की रंगबिरंगी, मुरझायी-सी रोशनियाँ बड़ी कंजूसी से मानो डल के उदर से प्रतिबिम्बित हो रही थीं...हर तरफ तबाही की और मौत की बू है। सन्नाटे में एक पूरा इतिहास मुँह बनाकर उसे चिढ़ा रहा है...पर दुनिया जीने लायक है, अगर उसे इम्तयाज़ जैसे लोग चला रहे हों तो।

कुछ क्षण दोनों में एक शान्ति-सी रही...जिसे इम्तयाज़ ने तोड़ने की पहल की, ''आपका परिवार अब ठीक है दीदी? जीजाजी कैसा सुलूक कर रहे हैं?''

''अरे इम्तयाज़, अगर मेरे जीवन में कमी है तो तुम जैसे एक देवर की। खैर हम बेकार बातों में यह सुनहरे लम्हों का गुच्छा बर्बाद नहीं करेंगे...कृपया कोई और बात करो। क्या तुम्हें नहीं लग रहा कि यह वादी रो रही है?''

''अरे लगना क्या? मैं तो इसका रोना जी रहा हूँ...रो रहा हूँ।''

''तुम्हें नहीं लगता कि यह धरती हमारी कमी में प्राणहीन लाश-सी हो उठी है... ?''

''यह सबको पता है।''

''बस मैं यहाँ तीन दिनों में ही घुट गयी...सिर्फ तीन ही दिनों में...मैं कल वापस जा रही हूँ...यह सोच-सोचकर खुशी के मारे अपने ही अन्दर लोट-पोट होती जा रही हूँ। सोचती हूँ जम्मू पहुँचकर पहले वहाँ की गलियों में दौड़ लगाऊँ और उन गलियों को चूमूँ...उस पुल को चूमूँ...उन शरणार्थी शिविरों को चूमूँ...जहाँ आत्मसम्मान हिलोरें मार रहा है...जहाँ जीवन के समुद्र का ज्वार चढ़ा है...मुझे तो

यहाँ से जम्मू को देखने की दृष्टि मिल गयी है सचमुच इम्तयाज़...भले ही यहाँ डल झील है, उल्लर झील है, बागात हैं, हरमुकुट है, जोजीला के विराट द्वार हैं और रहस्यपूर्ण चीड़ और चिनार हैं...मगर जिन्दगी यहाँ से भाग चुकी है। मैं जम्मू की धरती को प्रणाम...बारम्बार प्रणाम...तुम्हारी भाषा में सलाम कहती हूँ...लोट-लोट जाऊँगी उस मिट्टी पर मैं...चूमचूम लूँगी उस मिट्टी को...परिक्रमा करूँगी उसकी...वह हमारी माँ का स्तन है...मैं उसके गीत लिखूँगी...मैं उसे धन्यवाद दूँगी...इम्तयाज़...अपने शरणार्थी बन्धुओं को भी बोलूँगी कि इस तरह देखो...।''

''मैं भी सोचता हूँ शरणार्थी लोगों पर और समाज की इन पीड़ाओं को कलाकार केन्द्र में लाएँ...ज़्यादा से ज्यादा नाटक करें उस पर...किन्तु अपना दूरदर्शन हकीकत का कायल नहीं...वहाँ होनी चाहिए उथली-सी लव स्टोरी। हकीकत किसी भी तरह न हो...हकीकत न सरकार बताना चाहती है और न मीडिया ही...और लोगों की एक बहुत बड़ी तादाद भी हकीकत से मुँह फेरने के ही मूड में मैंने अक्सर देखी हैं। अब मैं कुछ स्वतन्त्र नाटक मंचित करने जा रहा हूँ...मैं तैयारी में लगा हूँ...।''

''अवश्य...इम्तयाज़...मगर सच्चाई जो बहुआयामी हो...एकरूप एकरंगी नहीं, मैं भी मदद करूँगी...अवश्य मैं भी उसमें तुम्हारी मदद करूँगी।''

कार रुक गयी। वह होटल के अन्दर थी। उसे होश आया कि समय को बदलना है...इम्तयाज़ जाएगा और उसे कल जम्मू पहुँचकर 'कुछ करना है।'

❑❑

'चित की चटाई पर लेटना है, आज सुख-दुःख दोनों अनुभव हुए। पर दोनों से बाहर आना है। दोनों को डल में फेंकना है। साफ चित की चटाई पर शव- आसन में लेटना है। कि मैं हूँ ही नहीं...यह संसार है ही नहीं...समय है ही नहीं...यों भी अरे समय है ही क्या...? है ही कहाँ। समय तो कब का चल बसा है...हमारा होना ही समय है...है न...हमारा जीना और मृत्यु को प्राप्त होना...क्या यही समय के हाथ-पाँव नहीं...क्या है यही...सारा सार...इस सारे निस्सार का...' वह एकालाप में लिप्त होटल के भीतर गयी कि सामने खलील लोन मिला। वह अपनी दुकान बन्द करके जा रहा था। पर उसने ताला लगाना स्थगित कर फिर अपना आसन ग्रहण किया और बोला, ''आओ बेटी! बताओ आज कहाँ गयी थीं? मैंने तुम्हारी सहेली से तुम्हारे बारे में पूछा था तो पता चला कि तुम्हारे पड़ोसी तुम्हें लेने आये थे। कैसा रहा?'' उसका जबर्दस्त कुतूहल था।

जिस दिन वह होटल में आयी थी उसी दिन सन्ध्या-समय जब वे सारी स्त्रियाँ बुलवार्ड पर घूमने निकली थीं तो खलील लोन से मुलाकात हुई थी। उसकी

दुकान होटल के अन्दर ही थी जहाँ वह कश्मीरी कालीनें, शॉल, नम्दे, पेपरमाशी इत्यादि का सामान सैलानियों को बेचता है। वह बेहद अपनत्व भरी मुस्कान से बोला था, ''अरे बेटी, क्या नाम है तुम्हारा? यहाँ कहाँ रहते थे...देखो ग्यारह साल बाद कश्मीर की धरती पर डेजिहोर देख रहा हूँ और विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ।''

सुधा ने भी इतनी आत्मीयता पाकर कह ही दिया था, ''अगर एक बात कहूँ तो बुरा तो नहीं मानोगे?''

''बिल्कुल नहीं बेटी...ज़रा भी नहीं...खुलकर बोलो...मानो अपने पिता से कुछ बोल रही हो...।''

''आप मुसलमान लगते ही नहीं...आप ठेठ...ठेठ भट्ट लगते हैं...मुझे उम्मीद है कि सिर्फ मैं ही नहीं...सब आपसे ऐसा ही कहते होंगे।''

''हाँ हाँ, तुम सच कहती हो बेटी।'' और तभी खलील लोन ने अपना नाम बताया था।

चूँकि इस समय वह थक गयी है और अपने कमरे में जाना चाहती है। अपने हुए अनुभवों को जरा तरतीब से रखना चाहती है। थोड़ा रुकते हुए बोली, ''आपको भी घर पहुँचने में देर हो जाएगी और मैं भी थकी हूँ...अंकल...कल सब बातें बताऊँगी...कल।''

''लेकिन कल तो तुम जा रही हो।''

''दोपहर के बाद जा रही हूँ...हमारे पास समय काफी है।''

''अच्छा इतना तो बताओ कि पड़ोसियों का सुलूक कैसा रहा? अच्छा ही रहा न...? अच्छा ही लगा न यहाँ कुल मिलाकर।''

अब और भी कुछ न बताने की इच्छा से भर गयी वह।

''कल बताऊँगी अंकल...कल सचमुच सब कुछ बताऊँगी...हर एक बात...ऐसे कुछ नहीं बता सकती...अच्छा नमस्कार।'' वह जानबूझकर उसे नमस्कार कहती और वह भी 'नमस्कार' से ही उत्तर देता।

सीढ़ियों से सुमोना के साथ मीनाक्षी नीचे जा रही थी। उसको देखकर दोनों ने प्रसन्नता एक झटके में व्यक्त कर दी और मीनाक्षी ने बड़े ही बौद्धिक अन्दाज में अँग्रेजी में पूछा, ''कैसा अनुभव रहा...सुधा...? हम सुनने के लिए मर रही हैं...?''

''हाँ...अच्छा...अच्छी बात है...बताऊँगी सब...मगर क़ल...अभी मैं आराम करना चाहूँगी। मुझे इस समय कुछ खाना भी नहीं है...मैं खाकर आयी हूँ...अच्छा...गुडनाइट...।'' कहते-कहते वह चलायमान रही और सीढ़ियाँ पार करती रही।

सुमोना और मीनाक्षी ने कौतूहल को समेटकर एस.टी.डी. की तरफ रास्ता लिया...वे दोनों अपने-अपने परिवारजन से दिल्ली में बात करना चाह रही थीं। उनकी आवाज सुनना चाहती थीं।

❑❑

'कि चित्त का पट। जरूर चित्त से ही चित्र भी निकला होगा। पहला सृष्टि का चित्र—चित्त में ही बनकर बाहर आया होगा। 'चित्तं मन्त्रः' और प्रथम अक्षर भी...फिर शब्द भी पहले चित्त पर ही लिखा गया होगा...फिर चित्त के गर्भ से बाहर आया होगा।' उसकी विचार श्रृंखला थी।

कि उसे अब साफ करना है। कार्यक्रम अनुसार। चित्त को चित्रमुक्त और मन्त्र मुक्त करना है। भूत मिटाना है...भविष्य मिटाना है। घर मिटाना है। मिटा हुआ घर चित्त से मिटाना है। शहर मिटाना है। मिटा हुआ शहर चित्त से मिटाना है। मुहल्ला मिटाना है। मिटा हुआ मुहल्ला चित्त से मिटाना है। पड़ोसी मिटाने हैं। मिटे हुए पड़ोसी चित्त से मिटाने हैं। और फिर जिस चित्त से ये सब कुछ मिटाया...उस चित्त को विसर्जित कर...मिटाना है। "मगर...खैर...।" वह साड़ी खोलकर फिर एक तरफ फेंकती है और जल के कुछ घूँट पीकर कुछ अलग महसूस करने की ताक में है। कुछ नहीं बन पड़ता जल की इन बूँदों से जब तो वह हवा का प्रयोग कर लम्बे-लम्बे श्वास खींचने लगती है...और बाहर फेंक देती है...पूरे ब्रह्माण्ड में।

उसकी दृष्टि पर्दों की दरारों के रास्ते पानी में झिलमिल रोशनियों के साथ चली जाती है। वह पर्दे ऐसे पास-पास सरकाने की मेहनत करती है कि उसकी दृष्टि पानी से उठकर वापस आए...उस खून-सने पानी से।

उसके चित्त पट पर एक तहरीर एक निमिष में लिखित रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत हुई...इस डल में आतंकवादियों ने कई हत्याओं को निपटाया। यह एक भयानक कब्रगाह है...लगभग सात वर्षों तक यहाँ भयावह बदबू बनी रही। खुला पानी और खुली हवा होने के बावजूद। फिर उस पटलपर उसने पढ़ा, लिखा था कि इससे पूर्व के बर्बर धर्मान्धों ने इसी झील डल में हजारों भट्टों को उनके दुर्लभ साहित्य के साथ स्वाहा किया...सिर काटकर फेंका गया उन्हें...ओफ्फ...उसे तबकी भयावह, तेज, तीखी, असह्य बू आ रही है इन दरारों से...उस बू ने शक्ल अख्तियार कर ली है...उस बू की शक्ल दिखाई दे रही है उसे। 'ओह डल! मैं तुम्हें नहीं देखूँगी।...तुमने अपने पेट में क्या-क्या समोया है... ? जरा...फट पड़ो...और बोल दो सच...उठो और बोलो सारे रहस्य...ओ...बदबू को ढोने वाली कब्रों की झील! मुझे मत दिखाओ अपना घिनौना रूप...'

'कल सुमोना बुलवार्ड घूमी थी और चलते-चलते बुट्टा प्वाइण्ट तक गयी थी। सुमोना कह रही थी...हाऊ वण्डरफुल...ब्यूटीफुल...हाऊ मिस्टीरियस...रियली... गॉडली...। हँ हँ हाँ हँ हँ सुमोना मैं जानती हूँ हाऊ गॉडली...इसने बड़े मनुष्य खाये हैं...यह भैरवी प्रकृति...मनुष्य को गढ़कर मनुष्य के हाथों मनुष्य का खून करवाती है। अन्यों की प्राण-शक्ति नाकारा करती है। जैसे तुम्हारी थी कल...मुझे यहाँ कुछ भी रहस्यमय...अद्भुत और ईश्वरीय नहीं लग रहा...पता नहीं तुम्हें और भी क्या-क्या लगता है...मुझे कुछ भी नहीं लगता।'

'ऐसा सौन्दर्य मारक होता है सुमोना। जैसे ट्रॉय की हेलेन। वैसे ही यह सारा सौन्दर्य। विस्मृति प्रकृति की सबसे चालाक रचना है सुमोना...याद करो...तुम आलिम फाजिल हो, याद करो...यह बू...यह मनुष्य के मांस की है न...मनुष्य के खून की है न...खून की बू से स्त्री बेहद संवेदनशील ढंग से वाकिफ होती है और तुम हो कि इस कंजरी सुन्दरता की तारीफ कर रही हो...मैं तुमसे सहमत नहीं...मैं इसके भीतर का समूचा असौन्दर्य जानती हूँ...मैं इसके गलीज राज जानती हूँ सुमोना। इस तरह मत दिया करो तुम अपने बयान सुमोना। चुप रहा करो। भगवान के लिए चुप रहा करो...जो यहाँ भासित हो रहा है वह है नहीं वास्तव में, और जो वास्तव में है, वह भासित ही नहीं हो रहा सुमोना...।' वह आत्मालाप में चीख रही हो मानो।

पर्दे सरकाकर वह दूर से देख रही है कि कहीं कोई दरार छोटी-से-छोटी भी तो नहीं रही है...। उसे अहसास हुआ कि इस बीच वह सुमोना के साथ अच्छी-खासी बकवास कर बैठी है। उसने स्वयं को थका दिया है।

जबकि उसे चित्त पट साफ करना है, उल्टे वह मलिन होता जा रहा है। उसके भीतरी हालात उसके वश से बाहर होते जा रहे हैं। चित्त को साफ करने में काफी मेहनत की दरकार है। वह जिस कोने को साफ करती है फिर उस पर पलटकर देखती है कि पूरी जगह पर शब्द और अक्षर खुब गये होते हैं। चित्र बन चुका होता है। '...हे माया...हे महामाया यह तुम करती हो क्या? यह सारी कारिस्तानी तुम्हारी है क्या? शब्दब्रह्ममयी शक्ति देवी त्रिपुर सुन्दरि...।' अब वह चाहती है हारी पर्वत को पर्दा हटाकर प्रणाम करे...शायद उसके बाद उसके चित्त पर शब्द और चित्र बनना बन्द हो...शायद उसे आराम मिले। पर वह पर्दा हटाएगी तो उसे हाहाकार करता हुआ रोशनियों से खून जैसा पानीदार डल भी तो दिखेगा। वह उसे कैसे नहीं देखेगी...दृष्टि पर भी भला कोई चाबुक चल पाता है कभी।

उसने मन-ही-मन हारी पर्वत को प्रणाम किया और प्रणाम के क्षण ही उसके मन में कौंधा—'यहाँ तो यह चित्त पट ही मेरे मित्र के तौर पर काम आया। मैं

यह ज्यादती फिर क्यों कर रही हूँ...आखिर वह मेरा बन्धु...सहयात्री...मित्र भी तो है।'

'आओ चित्रो...आओ शब्दो, आओ। तुम जितने भी क्रूर हो...जितने भी सुदूर हो, आओ मेरे इस पट पर बैठ जाओ। आराम से पसर जाओ...ओ मेरे चित्रो...मित्रो...शब्दो...समय के वाहको...आओ...स्वागत।'

❑❑

सफेद खान के हाथ में गेंती है। वह मिट्टी खोद रहा है और गुलामा मिट्टी के बेलचे उठा-उठाकर बाहर फेंकता जाता है...'यह घर की नींव है। नींव गहरी होनी चाहिए। और खोदो' पूर्ण कौल यानी सुधा के पिता कह रहे हैं और उसके साथ खड़ा गुलाम कादिर भी।

'नींव गहरी होनी चाहिए, यह पापा ने तो कहा था। पर क्या गुलाम कादिर ने भी कहा था? क्या यह सच है।' वह अपने कानों के मस्तिष्क से पूछती है कि क्या उन्हें पूरा यकीन है कि ये शब्द गुलाम कादिर ने भी कहे थे।

'हां...हाँ।' कानों ने विश्वास के साथ उत्तर दिया।

गुलाम कादिर उन मुसलमानों में था जिनमें हाजी था, मैनेजर अली मुहम्मद उर्फ उसका बूढ़ा भाई, बड़ा भाई भी था। इसलिए वे सब सिधार गये।

'सैकड़ों बार जब कभी नमक का जिक्र आता है तो दीप्ति बोलती है...नमक कभी नहीं छितराना चाहिए। यह महापाप है। नमक जो छितराता है, उसे आँखों की पलकों से वे नमक के दाने उठाने का दण्ड मिलता है...दीप्ति किसी को नमक की बेकदरी नहीं करने देती है। दार्शनिक गुलाम कादिर को प्राय: उद्धृत करके डराती और सबको नमक का कद्रदाँ बनाती है।' उसे अचानक याद आया।

मगर नींव खोदते हुए अथाह जल निकलता जा रहा है पृथ्वी से। मानो सारा सतीसर यहीं यहाँ की चमड़ी जितनी धरती की परत के नीचे पड़ा हो। यह हजारों वर्ष पूर्व जल...बाप रे...शिव...शिव...गुलाम कादिर कहता है, यह सतीसर था न...बस वही पानी है...जो भी घर के लिए नींव खोदता है...पहले जल के सैकड़ों टन बाहर निकालता है, तब जाकर प्लिन्थ में कहीं ईंट, पत्थर या मसाला रुकता है।

पास में खड़े गुलाम नबी राजा बोल रहे थे...''इतनी मजबूत नींव यहाँ किसी की नहीं...कोई इतना गहरा गया ही नहीं खोदते-खोदते...सिर्फ पण्डितों की ही नींव इतनी गहरी है...मुसलमानों की किसी की भी नहीं...।''

प्लॉट पर मेले जैसी रौनक थी। मजदूर पत्थर उठा रहे हैं। बाहर अथवाजन की पत्थरों की गाड़ियों की गाड़ियाँ आ रही हैं और पत्थरसाज़ पत्थरों को गढ़कर

कभी चौकोर और कभी मुरब्बा की शक्ल दे रहे हैं। पत्थरों पर से हरी आभा निकलती है और फैलती है।

और सफेद खान गा उठा है मलंग होकर, दुगाढ़ एक तरफ नींव में फेंककर। एक कान पर एक हाथ रखकर और दूसरे से पेशेवर गायकों की तरह ध्वनि को आलोक का रास्ता दिखाते हुए '...कैंची...दिला नूँ...दिल डाडा तंग...।' सबका ध्यान उसकी तरफ चला जाता है।

सफेद खान ने हाथ से बनी ऊनी चादरों की चिन्दियों से पैर ढँके हैं ऊपर से मोमजामा लगाया है और उसके बाद पुलहोर, जो उसने खुद बुने हैं धान के सूखे घास से। एक फटी हुई ऊनी चादर का टुकड़ा उसने सिर पर लपेटा है और उन्हीं चादरों से बनी कई फटी और तार-तार कमीजें उसने पहनी भी हैं...उसी का घुटनों तक ऊपर एक पाजामा भी पहना है...दुगाड़ा उठाकर ऐसा मारता है कि मानो कोई पहलवान हो...न कि एक फटेहाल गूजर।

उसके जिस्म की पूरी त्वचा सफेद दागों की बीमारी से पूरी तरह भरी है कि कहीं से भी असली त्वचा का रंग नहीं दिखता। पूरा का पूरा चेहरा लालिमायुक्त सफेद। इसलिए बाल, मूँछें, भौंहें, दाढ़ी सब सफेद। ऐसा लगता है मानो वह इस पृथ्वी पर लोगों के लिए घरों की नींवें खोदता है। वह जब मुहल्ले में आता है तो कोई शुभ्र आभा फैलती है...कोई अच्छी बात मानो चुपचाप घटित होती है। उसके लिए किसी को भी अलग से परिचय की जरूरत नहीं...।'सफेद खान...ओ...आ गये...आओ...क्या हाल है।' लकड़ी काटने से लेकर घरों की नींव खोदने तक के सारे काम करता है वह। दाम सात रुपये दिन के। भोजन भी। चाहे आप भट्ट हो या मुसलमान...उसके लिए अन्तर नहीं। एक लम्बी तान छेड़ी है उसने फिर ''कान्हा रे...सुन मेरी पीर...।''

''कान्हा रे...?''

''काहे कान्हा रे...? सफेद खान तुम तो मुसलमान हो।''

''मगर मेरा दिल का भगवान तो कृष्ण है...मेरा क्या सब गूजरों का भगवान कृष्ण है...खुदा है...पर पहले कृष्ण।''

''...अरे यह तो पहेली है भई।''

''वर्षों बाद प्रभु ने बताया था—गूजरों का कान्हा जस का तस है...ये उसके ग्वाले हैं...भला इनका ईश्वर उसको छोड़कर और कौन हो सकता है...बेचारों को मार-मारकर मुसलमान बनाया गया...पर इन्होंने भी अपने कान्हा को नहीं छोड़ा...।''

''सफेद खान कहाँ रहते हो।'' भट्टिनी ने पूछा।

''एक सराय है। दूर से मजदूरी के लिए आये सभी मजदूर उसमें रहते हैं। या अगर वहाँ जगह न हुई तो किसी के तबेल में, अपने लिए थोड़ी-सी जगह

बनायी...उसके घोड़े की थोड़ी-सी खिदमत की और रात काटी या बारिश या बर्फ का दिन काटा।''

''बाल-बच्चे हैं खान?''

''नहीं।''

''बीवी?''

''थी। मैंने बेच दी।''

''अरे क्यों?''

''मैं उसे खिला ही नहीं पाता था। क्या करता। एक मालदार गूजर आया। बोला, तीन हजार ले लो। मैंने सोचा वह बेचारी भी खाएगी और मैं भी भूख से नहीं मरूँगा।''

''पर यह तो बात अच्छी नहीं कि तुमने...। वह उसे गुलाम बनाएगा...तरह-तरह से सताएगा।''

''नहीं सताएगा। ज्यादा सताएगा तो वह भाग जाएगी...मेरे पास फिर वापस आएगी...या किसी और के पास जाएगी।''

नींव खोदते-खोदते वह ये बातें बड़े ही इत्मीनान से कह रहा था। मानो ये बातें कोई बड़ी दुःख की बातें नहीं हों।

''कमाल है इस धरती से जल कितना निकल रहा है, मानो अभी कल की ही बात हो सतीसर।''

''इतिहास कितना ताजा बना रहा है यहाँ जैसे फ्रिज में सब्जियाँ और पदार्थ ताजे रहते हैं।''

और घर बनने से पहले सतीसर का 'कथाजपं' गुलाम नबी राजा, गुलाम कादिर और हचकुकिल और सब मजदूरों और मिस्त्रियों ने किया।

और घर बन गया। सदियों तक बना रहनेवाला घर। आगामी पीढ़ियों की आगामी पीढ़ियाँ भी इसमें रहेंगी। सदियों तक सलामत बना रहेगा यह घर। मगर।

घर बन गया। गुलाम कादिर की देख-रेख के नीचे। सफेद खान की प्रार्थनाओं के साथ-साथ और उसके सामर्थ्य के साथ-साथ। सफेद खान को देखकर प्रायः लगता कि चाँद पर बर्फ गिरी है सघन।

घर बना था गुलाम नबी राजा और हचकुकिल की दीवार के साये में। दूसरी तरफ जिस घर का साया था वह था शफी गुण्डे का। दोनों ने पहले ही दो-दो तीन-तीन फुट जमीन हड़पी थी। भट्टिनी और उसके पति में इसी बात को लेकर प्रायः झगड़ा होता। भट्टिनी कहती कि कैसा प्लॉट खरीदा तुमने। टण्टे वाला। पूर्ण ने आश्वासन दिया था कि उनके कब्जे से वह जमीन निकाल लूँगा। पर अब भट्टिनी ही उनसे जमीन छोड़ने का आग्रह कर रही है, उसका पति चूँ तक नहीं बोल पाता।

पूर्ण ने आश्वासन दिया था कि कानून भी तो कोई चीज होती है, जमीन छोड़नी ही पड़ेगी।...पर अब भट्टिनी सोच रही थी कि अब कहाँ गया कानून। एक दिन जब जमीन मापी गयी तो पता चला कि हचकुकिल ने तीन फुट से अधिक जमीन कब्जे में की है और वह डंके की चोट पर कहती है, 'हाँ मैं नहीं इनकार करती कि मैंने जमीन नहीं हड़पी। पर हड़पी तो हड़पी। अब तुम जाओ और करो क्या-क्या कर सकते हो। हिन्दुस्तान के वजीरे आजम के पास जाओ। मैं जमीन देने वाली नहीं...सुनती हो ओ दालभट्टिनी?' उसने भट्टिनी को चिढ़ाया था। भट्टिनी का भी खून खौल गया था...पर चुप रह गयी थी भट्टिनी। कहकर 'मैं तेरे ही खुदा की अदालत में यह मामला रखूँगी...और देखूँगी न्याय तो होगा ही ओ मुसलमाननी। मेरे पास बड़ा कलेजा है। सहने का माद्दा है...या हम चारों तरफ से मुसलमानों में फँस गये हैं, तुम इसी का नाजायज़ फायदा उठा रही हो...तो उठाओ...हो जाओ लुत्फअन्दोज़...मैंने कहा न एक दिन अल्लाह या भगवान न्याय करेगा।'

नहीं डरी थी वह भट्टिनी की अल्लाह या भगवान की अदालत की धमकी से बल्कि एक विरूप अट्टहास में हँसी थी तालियाँ बजा-बजा कर "...ओ ओ ओ...भट्टिनी भट्टिनी दोदयय मस...इके हे करुथम दालि घडवस।" हचकुकिल ने हाथों का साज बजाना और अपनी आवाज में चिढ़ गाना शुरू किया। पता नहीं कहाँ से पुलिस आयी थी और यह गाना गाते हुए उसे रँगे हाथों पकड़ा था। यों डण्डा दिखाते हुए उस घड़ी के लिए ठण्डा किया था, 'ओ...ए...इधर ओ बहना...न...न...यह नाजायज है, बिल्कुल नाजायज। यह नहीं बोलना चाहिए...और आप तो गा रही थी। इतनी बड़ी औरत हैं आप...क्या हो गया आपको...कहाँ है आपका खाविन्द?"

वह सकते में आ गयी थी। गुलाम नबी राजा, हचकुकिल का पति...ऊपर के कमरे में बैठा था। शायद वह न्याय का पक्ष ले रहा हो और पत्नी ने उसे कमरे में इसी वजह से बन्द रखा हो। किसी भी किस्म की दखलअन्दाजी करने से मना कर रखा हो। "मैं इस भट्टिनी के होश ठिकाने लाऊँगी...तुम बिल्कुल दखल न देना...आखिर मैं एक औरत से लड़ रही हूँ...वह भी भट्ट औरत। यानी मेरी जीत निश्चित मानो।"

पुलिस के एस. एच. ओ. ने गुलाम नबी राजा को तलब किया और कमरे से बाहर निकाला, 'क्या यही है मर्दों का कौल। तुम्हारी स्त्री क्या कर रही है, क्या-क्या बक रही है...तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं... ? अगर आपके दरमियान कोई झगड़ा है जमीन का तो आप मर्द लोग आपस में प्यार से बातचीत से उसे हल कर सकते हैं...औरत को इस तरह आवारा छोड़ दिया है।"

हचकुकिल यह देखकर कि एस. एच. ओ. उसके पति से बात कर रहा

है...वह फिर एक बार बोली—''भट्टिनी...भट्टिनी...दोदयय मस...'' और खिड़की का पल्ला बजा-बजाकर नाचने लगी। मगर एस. एच. ओ. तेज था। उसने एकदम उसके नजदीक आकर कुछ दूरी से डण्डा ऊपर करके जोरदार आवाज में कहा, ''सुनो राजा साहब...ये औरतों के अच्छे लक्षण नहीं। फिर यह जो शब्द बोल रही है, आपको पता है कि कहर बरपा सकते हैं...इस सारे मामले को साम्प्रदायिकता का रंग मिलेगा...कोई नहीं बचा पाएगा...खुद समझ लो आपकी बीवी तो अल्फाज़ से तबाही मचाने पर तुली हुई है। क्या इसलिए कि दूसरी तरफ की औरत भट्ट समुदाय की है? इसीलिए न? यही बात है तो ठीक। डी. एस. पी. साहब इन मामलों में बहुत सख्त हैं। मैं इसी वक्त डी.एस.पी. गंजू को ही खबर करता हूँ। फिर देखो क्या होता है।''

एस.एच.ओ. जाने को उद्यत हुआ और साथ में उसने हचकुकिल के पति गुलाम नबी राजा और भट्टिनी के पति पूर्ण कौल को भी खींच लिया।

हचकुकिल अब डर गयी। एस.एच.ओ. गवाह था उन शब्दों का जो उसने बके थे। अब इसके कारण उसे अपना आप मुजरिम नजर आ रहा था। उसने सिर का कपड़ा उठाकर एस.एच.ओ. के पैरों में डालने का नाटक करना शुरू किया, ''माफ करिए जनाब। इनको छोड़िए...मगर मैंने इनकी जमीन नहीं हड़पी।''

हचकुकिल के चेहरे का भूगोल बदल चुका था। उसके तीन छोटे-छोटे बच्चे पुलिस के डर के मारे रो रहे थे।

''देखिए, ये लोग पण्डित हैं। बहुत तमीज और तमअदुन वाले। ये लोग नीचे नहीं गिराते खुद को। आपने इतनी गालियाँ दीं, इतना चिढ़ाया...पर इन्होंने क्या किया? सिवा बर्दाश्त के? इनसे आपको कुछ सीखना चाहिए। इनसे सीखना चाहिए कि कैसे बड़प्पन का इम्तहान पास किया जाता है...इनके साथ रहते हो तो उसका कुछ अच्छा फायदा उठाओ...इनसे इन्सान बनना सीखो...न कि इनको चिढ़ाओ। अगर आपके पास इनकी जमीन है तो दे दीजिए वापस बेचारों को, नहीं है तो उसका सबूत दीजिए...आपस में बैठकर मसला हल कीजिए। आपको अपना आप खुशनसीब मानना चाहिए कि आपका पड़ोसी पण्डित है। पण्डितों के साथ रहकर अक्ल आती है, शऊर आता है, बच्चों का मुस्तकबल बनता है...आपको समझना चाहिए। आपको अपने पड़ोसी की कदर करनी चाहिए...।''

माहौल शान्त हो गया था। सिर्फ पूर्ण और गुलाब नबी राजा कोई औपचारिकता निभाने के लिए थाने गये थे और दो घण्टे बाद हँसते हुए, आपस में बातें करते हुए लौट आये थे।

रात को घर में बहुत उदास माहौल रहा था। भट्टिनी की बड़ी बेटी टॉठी ने जैसे-तैसे खाना बनाया था। भट्टिनी से किसी बच्चे ने बात करने की हिम्मत नहीं

की थी। सबके कानों में हचकुकिल का गाया 'भट्टिनी भट्टिनी...' का अपमानजनक गीत गूँज रहा था और अन्दर-ही-अन्दर खून खौल रहा था। एस.एच.ओ. का लगाया सारा मरहम उस समय बेकार हो चला था जब पूर्ण ने थाने से आकर उजागर किया था कि वह एस.एच.ओ. असल में पण्डित था 'श्री ननजी कौल।' और पुलिस में इत्तला की थी गुलाम कादिर ने।

"तो मतलब कि वह खुद एक भट्ट था," भट्टिनी ने थोड़ी-सी निराशा के साथ इन शब्दों को कहा था।

"मगर तब भी उसकी दाद देनी चाहिए, काफी हिम्मतवाला और अपने समाज का पक्का हिमायती था...वर्ना ज्यादातर पण्डित डरपोक और मुसलमानों के चमचे ही होते हैं न...।" टॉठी ने कहा था माँ से ताकि उसकी निराशा कुछ कम हो।

"हाँ, यह भी सच है...।" भट्टिनी ने बेहद धीमी आवाज में कहा।

सुधा और दीप्ति को भीतर बहुत चोट पहुँची थी...वे सोचतीं और इस बात पर आपस में विचार-विमर्श भी करतीं कि चूँकि उनकी माँ सच्ची है और उसने अल्लाह और भगवान की अदालत में मामला भेजा है अत: जरूर हचकुकिल पर त्रेठ पड़ेगी। हचकुकिल फना हो जाएगी। उसके तो सचमुच बाल जल जाएँगे और "भगवान हमारी जमीन भी हमें लौटा देंगे और हमारी माँ को खूब सुखी करेंगे।"

मगर इतने से बात नहीं बनती। आज उनके मनों से वह ग्लानि घुल गयी थी कि आयशा के सुन्दर कपड़ों में उन्होंने कितना गन्द फेंका था। "इसी के लायक हैं ये लोग...ये भट्टों को दु:ख देते हैं...सताते हैं...खुदा से भी नहीं डरते...क्या हिम्मत पायी है...कि बार-बार और खिड़की का पल्ला बजा-बजाकर हचकुकिल ने इस चिढ़ को गाया। सारे मुहल्ले ने सुना...इसका प्रतिकार भला कैसे किया जाए।" भट्टिनी की दोनों बेटियाँ इस मानसिक संकट से जूझ रही हैं और तुरन्त सुधा बोलती है—"मुझे मिल गया इसका उत्तर, मिल गया मुझे...सुनो तो ओ दीप्ति...मुसलमाननी मुसलमाननी दोदयय मस...इके हे कोरथम रोहणअ फकस।" दीप्ति भरसक हँस दी...मानो उसे यह उत्तर न जँचा हो, फिर हँसी पर रोक लगायी ताकि भट्टिनी न सुने। भट्टिनी इस समय गम्भीर मन:स्थिति में हैं। वे सोचेंगी कि इन बेटियों के पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा। तभी हँस रही हैं। पर वह क्या जानें कि इसी समस्या का निराकरण करने में तो वे इस समय तन-मन से लगी हैं।

तुम ठीक से सुनो दीप्ति, "मुसलमाननी, मुसलमाननी दोदयय मस, इकेहे कोरथम रोहनअ फकस...।" है न? इससे बेहतर नहीं बन सकता है न सही। इनके लिए अगर हमारी दाल है...तो हमारे लिए इनका लहसुन...है न।

"पर लहसुन तो सभी खाते हैं।"

"तो क्या दाल ये लोग नहीं खाते...वह क्या कुफ्र है? खाते सबसे ज्यादा ये लोग हैं और दाल को लेकर चिढ़ाते हमें हैं नीच।"

"हाँ है तो सच।"

"तो फिर... ?"

"फिर क्या। फिर अगर हचकुकिल ने चिढ़ाया तो इधर से यही चिढ़ गाओ। है न?"

"मगर अब तो झगड़ा खत्म।"

"पर मैं क्या माँ को किये गये अपमान का बदला नहीं लूँगी। अवश्य लूँगी।"

"मगर यह तो तुमने बनाया। इसने जो गाया वह सभी मुसलमानों में मशहूर है, पुराना है। लगता है जैसे पारस्परिक हो।"

"मैं इसको सबमें प्रसिद्ध करूँगी...। स्कूल में सब भट्ट लड़कियों को कण्ठस्थ कराऊँगी, ताकि ज्योंही कोई मुसलमान लड़की बोले तो उसको यह सुनाया जाए वापस, देखना उसको दम हो जाएगा।"

"ऐसा करोगी? मैं माँ को बता दूँगी।"

"बता दे।"

"तेरी पिटाई करवाऊँगी...यह किसी को नहीं बताना...समझी... ।"

"क्यों मगर।"

"अरे मुसलमानों से पंगे नहीं लेते। ये नीच हैं...कमीने हैं...ताकतवर भी हैं...इनसे पंगे नहीं लिये जाते। नहीं लेने चाहिए... ।"

"कमीना और नीच होना ताकतवर होना होता है क्या... ?"

"तो क्या।"

"फिर हमें भी वैसा ही बनना चाहिए।"

"हम नहीं हो सकते। टॉठी परसों कह नहीं रही थी क्या कि पण्डित कमीने नहीं हो सकते। तुम कल्पना करो जब सबके सब भट्ट ही रहे होंगे...तब कैसा रहा होगा...। है न... ?"

"अरे हाँ...हाँ...काश। हम तब रहे होते। आज के इस युग में न जन्मे होते।"

उसे अच्छी तरह याद है कि उसने स्कूल में सब भट्ट लड़कियों में अपनी उस रचना का प्रचार किया था जो उसने हचकुकिल की अपमानजनक चिढ़ के उत्तर में उसी तर्ज पर बनायी थी कि—'यदि तुमको कभी कोई मुसलमान स्त्री यह गा कर तंग करे तो तुम इन शब्दों से जवाब दे सकती हो...और हमें इसे और भी आगे प्रचारित करना चाहिए...सभी भट्ट लड़कियों में।'

पर किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया था...न प्रचार योग्य ही माना था। कैसी

बात है कि भट्टों का समाज बिल्कुल भी प्रतिक्रियावादी नहीं। मगर यह बात ठीक नहीं। प्रतिकार करना चाहिए...प्रतिरोध जरूरी है...सिर्फ स्वीकार...सहिष्णुता नहीं...पराजय है...घोर पराजय...।

❑❑

और उन्हीं दिनों में स्कूल में भी क्या हुआ था। मास्टर निरंजन नाथ ने दो दिन पहले बताया था 'मैसेन्जर' का अर्थ होता है पैगम्बर। यह हजरत मुहम्मद के सन्दर्भ में पढ़ाया जा रहा था। इसे अवतार भी कह सकते हैं। यानी जो खुदा का या भगवान का कोई सन्देश लेकर इस जमीन पर उतरे हों।

और दो दिन बाद मास्टर निरंजन नाथ ने पूछा था, ''लड़कियो! मैसेन्जर के मानी बताओ।''

सुधा खड़ी हो गयी थी। उसे मास्टर जी ने खड़ा कर दिया था। अवतार और पैगम्बर के चक्कर में खड़े होने के क्षण भूल गयी थी असली शब्द। 'अवतार' बोली थी...पर मास्टर जी जो सुनना चाहते थे वह शब्द उसकी स्मृति में उस क्षण लोप होकर बैठ गया।

''मास्टरजी...'र र र...रसूल' बोलते हैं शायद।''

और हाहाकार मच गया था। पिछली पंक्ति में बैठी, पढ़ाई में एकदम ठूँठ जैतून हुसैन, जो सरस्वती के ऐन बगल में बैठती—चिल्ला उठी—''ऐ खबीस भट्टिनी। तेरी जीभ जले। तेरे बाल जले। कैसे हिम्मत की तूने इस काफिर जुबान से 'रसूल' कहने की। आज रात को नींद में अल्लाहताला तेरी जुबान में आग लगा देगा। क्या तूने इससे पहले दरूदख्वानी की थी...तू रसूल पर बलाय जाएगी। तेरी बोटी-बोटी चीलें खा जाएँगी। मैं तुम्हें रसूल के कदमों पर वार दूँगी, जलील कहीं की।''

अरे अन्धकार छा गया था। मास्टर निरंजन नाथ घबरा गये थे और चुप हो गये थे। ज़ैतून हुसैन जो कभी किसी सवाल का जवाब नहीं देती थी, जिसे न अँग्रेजी पढ़ने की पड़ी थी न ही हिसाब, यहाँ तक कि उर्दू भी उसे बेहद कमतर ही आती थी। जो हमेशा अपनी औकात में सबसे पीछे वाले बेंच पर रहती थी, अचानक बम की तरह फट पड़ी थी।

'मुझसे गलती हो गयी।' सुधा बार-बार बोली थी। पर ज़ैतून हुसैन ने अन्त तक माफ नहीं किया था। सुधा बहुत रोयी थी। मास्टर निरंजन नाथ भी ज़ैतून को विनयपूर्वक ही चुप करा रहे थे। ज़ैतून से डरे हुए थे। सुधा को मास्टर जी भी खा जाने वाली नजरों से देख रहे थे।

छुट्टी होने पर उसने घर जाते हुए रास्ते में सारी घटना दीप्ति को सुनायी थी

और दीप्ति ने कहा था, ''माँ को नहीं बताना। वह पिटाई लगा देगी। तुम्हें ही कोसेगी।''

भट्टों की परम्परा में यही रणकौशल था...कि 'भट्टों को ही डाँटो।' मुसलमान को कुछ कहा ही नहीं जा सकता। 'भट्टो! तुम जीत नहीं सकते। क्योंकि तुम भट्ट हो।' आदि आदि।

एक मेख उसकी आत्मा में ठुकी है। 'जैतून की बच्ची! अगर मैंने जानबूझकर अवमानना की हो तो रसूल ही न्याय करे...चूँकि था उल्टा इसलिए तुम्हें कच्चा खा जाए...ज़ैतून...तुम जहाँ भी हो...तुम्हारी बोटी-बोटी खा जाएँ चीलें। मैं तुम्हें अपने भगवान पर न्योच्छावर कर दूँ...बलि चढ़ा दूँ तुम्हारी अपने राम पर। तुम चुड़ैल ज़ैतून...पढ़ाई में एक लफ्ज नहीं आता...मुसलमाननी होने की काबलियत जता रही है...।' यह उसकी दीप्ति के सामने पराजय की पराकाष्ठा थी।

मगर जब सुबह प्रार्थना सभा हुई तो मंच पर अज़रा, जमीला, फरहद, लाजवन्ती और सन्तोष कौल सामान्य रूप से आयीं और सुधा देख रही थी नीचे विद्यार्थियों में जैतून आँखें मूँदें ऊँची-ऊँची आवाज में बोल रही थी—

> सुजले सुफले, सुवने सुजने जय
> भारतमातरनन्त गुणे।
> मुनिवृन्द विभूषित पुण्यवने
> कविभृंग सुगुञ्जित कीर्तिभरे
> जनकोटि सुवन्दित पाद युगे
> जय भारत मातरनन्तगुणे...
> सुजले सुफले सुवने सुमने...

सब कुछ सामान्य था। कल लगा था कि सुधा की गलती के कारण ज़ैतून पूरे कायनात में आग लगा देगी...मगर ऐसा कुछ नहीं। कायनात भारतजन प्रशंसा मन्त्रों से गुम्फित, गुंजायमान था।

अन्तिम क्लास शास्त्री जी के पास श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पाठ की थी तो तब दूसरे कमरे में खाली बैठी...हिन्दी पढ़ रही लड़कियाँ चिल्लायी थी...'

> ''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
> मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ।।''
> सञ्जय उवाच—

एक कश्मीरी लहजा देकर वे फिर चिल्ला उठतीं

काले वर्षतु पर्जन्या पृथ्वीशस्यशालिनी
देशोऽ यमशो भारेता ब्रह्मणाः सन्तु निरामयाः।

पता नहीं ये कब सचेत होती हैं। शायद ये सारे श्लोक गानेवाली लड़कियों में ज़ैतून नहीं थी। शायद ज़ैतून ने जो प्रतिकार उसके प्रति किया था वह उसका इन सबकी तरफ भी था...जिनसे ज़ैतून कुछ नहीं कह सकती। जो उसकी नजर में कुफ्र करनेवाली हैं। या ये श्लोक गाने वाली लड़कियाँ उसकी तरफ से ज़ैतून का प्रतिरोध करती हों...या क्या पता इस समय बेहिस होकर जैतून भी ऊँची-ऊँची आवाज में श्लोक-गायन का आनन्द ले रही हो...वह इस आत्मविवेचन में उन सबकी मूर्तिमन्त हो उठी थी।

श्लोक गाने वालों में अज़रा, जमीला, हबला, तोता, निकहत, फरहद जैसी जबर्दस्त मस्त लड़कियाँ थीं, जो हिसाब पढ़ाने वाले मास्टर श्रीकण्ठ की प्रिय शिष्याएँ थीं। चूँकि वे सब उम्र में लगभग पाँच-पाँच वर्ष बड़ी थीं इसलिए मास्टर श्रीकण्ठ कभी-कभी उनके साथ रोमाण्टिक भी हो उठते थे और उनके रोमाण्टिक हो जाने का ये लड़कियाँ स्वागत करती थीं।

सिर्फ हबला एक विशाल गन्धर्व-डीलडौल की प्रेमिका-सरीखी...अलग लड़की थी जो उस समय कक्षा की मॉनीटर बनायी जाती थी, जब मास्टर अत्यधिक व्यस्त होने के कारण कक्षा में आने में असमर्थ हों, बच्चे ऊधम मचाने के मूड में हों और उन्हें नियन्त्रण में रखना जरूरी हो।

एक दिन जो अप्रैल के प्रथम सप्ताह का था, लड़के-लड़कियाँ कार्ड-बोर्ड लेकर परीक्षा देने आये थे, तो स्कूल के खुलने का इन्तजार करते हुए गली के नुक्कड़ से चिल्ला रहे थे, ''फिल्म उपकार...फिल्म उपकार...आओ देखो बच्चो फिल्म उपकार...देखो देखो हबला उस हाजी से करती है प्यार...फिल्म उपकार...।'' गली के नुक्कड़ से सुधा ने भी देखा था कि वितस्ता का मस्त पानी बहता हुआ दिखाई दे रहा था, जिस पर लकड़ी के मोटे-मोटे लाठ भी बह रहे थे। हबला अपने प्रेमी के साथ इन लाठों पर कूद रही थी, कभी बैठती थी कभी लाठों की एक खेप से दूसरी खेप पर उछलकर चली जाती। यह तो जीवट का काम था। वह किसी ऐसी उछाल में किसी समय पानी में गिरकर वितस्ता का ग्रास भी बन सकती थी...किसी बम्बइया हीरोइन से कहीं अधिक सहज। उसे उस समय दुनिया का होश ही नहीं था। वह एक तिलस्मी नजारा था। हबला घर से चली जो थी इम्तहान देने...मगर कर रही थी प्रेम...और बच्चे चिल्ला रहे थे फिल्म उपकार...फिल्म उपकार।

इम्तहानों के बाद जिस दिन परिणाम घोषित होने थे उसी दिन हबला की

मौत के लिए दो मिनट का मौन भी रखा गया था। हबला अपने घर की चौथी मंजिल से कूदकर पंचतत्त्वों में मिल गयी थी। ओह! हबला एक अच्छी और दिलदार लड़की थी। मास्टर निरंजन नाथ कई दिनों तक उसकी मौत से उदास रहे थे। फिल्म उपकार, फिल्म उपकार—चिल्लाने वाले बच्चे...कई दिनों तक उसे श्रद्धांजलि देते रहे थे...और अपने अपराध के लिए महीन रूप से क्षमा माँगते रहे।

❑❑

मास्टर निरंजन नाथ ने कहा था कि अतिरिक्त हिसाब की कक्षाएँ पढ़ाई जाएँगी। इसलिए शीतकालीन लम्बी छुट्टी होने के बावजूद विद्यार्थी पढ़ने के लिए आने लगे। पन्द्रह दिसम्बर को छुट्टियाँ घोषित हुई थीं और युद्ध भी पहले ही घोषित हो चुका था। हवाई फायरिंग से कहीं भी, कोई भी, किसी भी स्थल पर शहीद हो सकता था मगर ज्यादातर लोगों को बचने की ही उम्मीद थी। युद्ध बन्द होने की उम्मीद थी।

सुधा हिसाब की अतिरिक्त कक्षाएँ पढ़ने जाती और वह मुसलमान लड़कियों के चेहरों के द्वारा उनके मनों में दाखिल होने की कोशिश करती। मन वह पढ़ पाती थी या नहीं, मुख उनके वह जरूर गहराई से देखती...जहाँ से उनकी अपनी प्रश्नाकुलता उससे मुखातिब होती...या कभी-कभी उनके चेहरों पर से उसे कुछ भी लिखा हुआ नहीं मिलता। मानो वे मात्र हिसाब सीखने आती हों। मानो उनके हिसाब से दुनिया में इस वक्त कुछ भी नहीं हो रहा हो। यानी जंग नहीं हो रही हो भारत और पाकिस्तान में, या अगर जंग कहीं हो भी रही है तो वे तटस्थ हैं, उनका उसके साथ कोई लेना-देना नहीं। न वे हिन्दुस्तानी हैं। न पाकिस्तानी। वे फकत कश्मीरी हैं। मात्र कश्मीरी।

और मास्टर निरंजन नाथ ने ज़ैतून किस्से के बाद बहुत गम्भीर रुख अपनाया था। ज़ैतून ने उसी वर्ष पढ़ाई छोड़ दी थी और किसी शिया व्यापारी से उसका विवाह हो गया था।

अतिरिक्त कक्षाएँ चुपचाप विसर्जित होतीं और युद्ध बन्द होने के साथ-ही-साथ पाठ्यक्रम पूरा हुआ और कक्षाएँ भी बन्द हो गयीं। इसलिए स्कूल के स्तर पर सब कुछ ठीक रहा था, मगर मुहल्ले के स्तर पर अगर इन दिनों सबसे अधिक बेचैन कोई था तो वह थी अज़ीज़ा राजा उर्फ हचकुकिल।

❑❑

टॉठी की उसी वर्ष शादी हुई थी। युद्ध के दौरान चूँकि शिक्षा संस्थान बन्द थे इसलिए वह अपने पति के गाँव डूर में थी। टॉठी का जेठ सेना में कप्तान था।

किशोर यानी टॉठी का पति अपने ससुराल में अपने बड़े भाई का परिचय 'कैप्टेन' कहकर ही देता। मानो उसका नाम भी 'कैप्टेन' ही हो। 'कैप्टेन' यानी देश का सम्मानित सेना-अधिकारी। इसलिए यह एक कर्तव्य बनता था कि किशोर के बड़े भाई का कुशल-मंगल युद्ध के दौरान पता कराया जाए। इसलिए पण्डित पूर्ण कौल ने एक तार गाँव डूर के पते पर रवाना किया—"कप्तान साहब की सलामती की खबर कृपया दें।"

टॉठी के पति यानी किशोर कुमार पण्डित ने यह तार पूरे गाँव में घुमा-घुमा कर प्रदर्शित दिया, "देखिए, देखिए मेरे ससुराल से यानी कि शहर से तार आया है...मेरे ससुराल वालों ने मेरे बड़े भाई 'कैप्टेन' का हाल पूछा है। खैरियत पूछी है।"

तार के जवाब के तौर पर रत्नलाल पण्डित आया था। किशोर पण्डित के बड़े भाई का बेटा। रत्नलाल उस दिन भरी गोली-बारी में आया था। चारों ओर तनाव था। युद्ध कई दिनों से बराबर चल रहा था। हाजीपीर के दर्रे पर भारत की फौजें काबिज हो चुकी थीं और कारगिल इलाके से भी दुश्मन को पीछे धकेला गया था। फौज काफी मर रही थी। बांग्लादेश में हुई पाकिस्तानी फौजियों के हाथों ज्यादतियों की शिकार औरतों के बारे में खबरें उजागर हो रही थीं।

रेडियो पर दिन-भर जवाबी हमले चलते रहते। सुबह के 'ज़ून डब' प्रोग्राम में भी पाकिस्तान पर, याह्या खान और भुट्टो पर अच्छे-खासे तंज कसे जाते। आजाद कश्मीर रेडियो से कश्मीरी में जवाबी हमलों की भाषा एकदम घटिया और असांस्कृतिक होती थी। उसके उत्तर में रेडियो कश्मीर से प्रसारित जवाबी हमलों में जबर्दस्त दम और स्तर होता। 'आजाद कश्मीर' रेडियो से पाकिस्तान की बौखलाहट का अन्दाजा लगाया जाता...अक्सर वह एक वाक्य कहना न भूलते कि 'जल्दी ही हम हिन्दुस्तान की फौज की टाँगें तोड़ देंगे...।' इस तरह की निम्नस्तरीय भाषा का कभी भी रेडियो कश्मीर के जवाबी हमलों में इस्तेमाल नहीं होता।

रत्नलाल टाँगें पसारकर बैठ गया था। वह अपने चाचा की ससुराल आया था, वह भी इन हंगामी हालात में। वह भी 'कैप्टैन' का कुशलक्षेम लेकर और पण्डित पूर्ण कौल की तार का उत्तर लेकर...सो वह खा-पीकर कैसे न जाता। चाहे आसमान से बम गिर रहे हों या तोपें चल रही हों दिशाओं में।

भट्टिनी के घर में ऐसे मुअजिज मेहमान, वह भी बिना सूचना दिये आये हुए के स्वागत के लिए कोई तैयारी नहीं थी। घर में उसके साथ सुधा और दीप्ति ही थीं, यहाँ तक कि घर में कढ़म भी न था...मूली तक नहीं। आजकल लोग सूखी दालों का प्रयोग कर रहे थे। सब्जियों की मण्डियों को एहतियात के तौर पर हटा दिया गया था। कहीं-कहीं रेहड़ी वाले दूर-दूर होते हों तो उन्हें ढूँढ़ने की जरूरत

पड़ती थी।

पण्डित पूर्ण कौल चूँकि यातायात के दफ्तर में काम करते थे इसलिए उनकी खास ड्यूटी लगी थी। फौज के लिए हथियारों, खान-पान, कपड़े, दवाइयाँ इत्यादि सब कुछ ढोने के लिए कॉनवॉय पर कॉनवॉय आती रहती...इसलिए ट्रकों को एकदम तैयार रहना जरूरी था। इसकी सारी निगरानी का जिम्मा पण्डित पूर्ण क़ौल पर था। उसके लिए विभाग ने एक विशेष पास बना रखा था क्योंकि उसका ड्यूटी पर होना बेहद जरूरी था। इस सूरत में भट्टिनी और उसके बच्चे बेहद परेशान और घबराये हुए रहते...जब तक देर रात को पूर्ण कौल घर नहीं पहुँचते...सुबह सवेरे...पौ फटते ही कारखाने में वापस पहुँचने के लिए।

''कब यह जंग खत्म होगी...अब तो पूरा खून सूख गया है मेरा...मेरे ये बच्चे बेचारे आधे रह गये हैं...।'' भट्टिनी ने एक दिन अपने पति के आते ही पूछा था...मानो जंग बन्द कराना पूर्ण कौल के हाथों में हो। वह चाहे तो तुरन्त युद्धविराम की घोषणा कर दे।

''अरे भारत की फौज आगे बढ़ रही है। यह तो मुबारक की बात है...।'' पूर्ण ने हौसलाअफजाई करने की गरज से कहा।

''आहिस्ता से बोलो...इस तरह मुबारक मत बोलो। सुन रहे होंगे। हचकुकिल तो सुन ही रही होगी जरूर। तुमको तो मालूम है कि वह क्या चीज है...।''

''अरे पैंतरा बदलने में ये लोग माहिर हैं। जब हिन्दुस्तान जीतेगा तो ये लोग अपने को हिन्दुस्तानी बोलेंगे। जीतनेवाले के साथ ही सब होते हैं...समझी।'' पूर्ण कौल ने बीवी को बात इस तरह समझायी मानो कोई गूढ़ मनोवैज्ञानिक रहस्य बता रहा हो।

''तुम मुझे क्या कह रहे हो। आजाद कश्मीर को सुनो वे तो दावा करते हैं कि कल-परसों कश्मीर में अपना झण्डा गाड़ देंगे और कि पाकिस्तान कई सरहदों पर फतह करते-करते काफी आगे बढ़ चुका है।''

''आजाद कश्मीर...? वह भी कोई रेडियो है। अगर झूठ भी नहीं बोलेंगे तो बोलेंगे क्या। सच को प्रसारित नहीं किया जाता दिद्दा की माँ। जिसने एक बार झूठ का दामन पकड़ा, वह कभी नहीं छोड़ सकता...मुझ पर यकीन करो मैं कहता हूँ न हिन्दुस्तान जीत रहा है...और बदस्तूर आगे बढ़ रहा है जीतता हुआ। मैं सीधे सरहद से आये फौजियों से बात करता हूँ न...। सच तो यह है कि दो दिनों के अन्दर पता लग जाएगा कि पाकिस्तान तबाह हो गया है। मुक्तिवाहिनी और भारतीय फौजों ने बांग्लादेश को लगभग-लगभग आजाद कर ही डाला है।''

आज पन्द्रहवें दिन जब युद्ध निर्णायक दौर में से गुजर रहा है, भट्टिनी बाजार जा रही है, ताकि रत्नलाल पण्डित उर्फ उनकी सबसे बड़ी बेटी के जेठ के लड़के

की आवभगत की जाए।

भट्टिनी सुधा से कह कर गयी थी, ''चूल्हा जलाना, पतीले में एक तरफ राजमाश चढ़ाना और दूसरी तरफ सूखे बैंगन उबालने के लिए रख देना। जब तक मैं न आऊँ...।''

सुधा ने चूल्हा जलाया। माँ के अनुसार चूल्हे पर एक तरफ सूखे बैंगनों को उबालने के लिए रख दिया और दूसरी तरफ देगची में राजमाश चढ़ा दिये। बीच-बीच में वह दीप्ति से मिलकर आजाद कश्मीर और रेडियो कश्मीर श्रीनगर से जवाबी हमलों को सुनती। खबरें सुनती। उसके पल्ले हालाँकि बहुत कम पड़ता पर यह तो पड़ता कि भारतीय विजयपथ पर अग्रसर हैं। तब वह माँ के दिये हुए कामों में और ऊर्जस्वित होकर जुट जाती। जितने भी गन्दे बर्तन पड़े थे, वे उन सबको इस बीच नीचे नल पर ले जाकर धोकर लायी। शून्य के नीचे छः के जमाव-बिन्दु पर तापमान होने के बावजूद उसे आश्चर्यजनक ढंग से सर्दी नहीं लग रही थी। उसे माँ की फिक्र किसी एक कोने में खाये जा रही थी, पर उतनी ही गहन आशा भी थी कि माँ सही-सलामत सारा सामान लेकर आएगी। भट्टों का सम्मान इस जीत से बढ़ गया है। एक महीन परिवर्तन वातावरण में हो उठा था उसके लेखे।

कल ही रेहड़ी वाला यहाँ से आलू और प्याज बेचने आया था और जितनी भट्टिनियों ने उससे आलू-प्याज खरीदे उन सबको बोला...''हमें क्या बहनजी हिन्दुस्तान जीते या पाकिस्तान...हमें तो आपस में प्यार से रहना है, भाईचारे से रहना है। जितना हम सुख-दुःख में एक-दूसरे के काम आएँगे उतना न हमारे काम पाकिस्तान आएगा न हिन्दुस्तान।''

भट्टिनियों ने ये शब्द गनीमत माने थे। गद्‌गद होकर बोली थीं, ''हाँ हाँ और क्या...खुदा तुम्हें तन्दुरुस्त रखे...बखुदा और क्या...।''

चाय का पतीला और काँसे के प्याले धोते हुए सुधा ने अचानक देखा कि हचकुकिल उनके तरफ की दूसरी मंजिल की खिड़की खोलकर बैठी है। आज असाधारण सर्द हवाएँ बह रही हैं...मगर चूँकि असाधारण ढंग से आसमान मेघविहीन है...और सूर्य अपनी निर्विघ्न धूप यहाँ, पृथ्वी के इस हिस्से पर भेज रहा है। शिशिरगाँठें...टक टक पिघल रही हैं और इसी धूप के नजारे के बहाने हचकुकिल खिड़की पर, खिड़की के दोनों पल्ले भरपूर खोलकर बैठी है और गा रही है। सुधा ने उसके गाने पर कान लगाये और पहचान गयी कि वह गा रही है—''वतन हमारा आजाद...कश्मीर...वतन हमारा आजाद कश्मीर...आजाद कश्मीर...आजाद कश्मीर...आजाद कश्मीर...'' आजाद कश्मीर का यह राष्ट्र गान है...मगर चूँकि हचकुकिल को इस पंक्ति के आगे के बोल नहीं आते थे, इसलिए

वह गला फाड़-फाड़कर सिर्फ इन्हें ही दोहरा रही थी...''वतन हमारा आजाद कश्मीर...वतन हमारा...।''

भट्टिनी थोड़ा मांस, थोड़ा पनीर, कुछ सागदार कढ़म और अन्य सामान लेकर ज्यों ही लौट आयी तो सुधा उसके साथ पकवान बनाने में जुट गयी थी। माँ की आज्ञानुसार वह करती जा रही थी। इसी वर्ष टॉठी का विवाह हो जाने से सुधा पर अब माँ की सहायिका होने का भार भी पड़ा था।

''आज धूप कैसी खिली है न माँ...।''

दरअसल वह माँ के ठीक-ठाक और सामान सहित लौट आने से आभारग्रस्त थी, चूँकि वह बाहर से आयी थी तो वह समझती थी कि माँ ने बाहर की हवा-नवा का अन्दाज भी लगाया होगा।...चाह रही थी कि माँ युद्ध सम्बन्धी समाचार उसे दे कुछ।

''हाँ है न...मगर जानलेवा हवा भी बह रही है साथ में।''

''माँ, तुमको पता है जब मैं बर्तन धो रही थी न, हचकुकिल धूप में इस तरफ की खिड़की खोलकर बैठ गयी और ऊँची आवाज में अपने घुटने को तुम्बकनारी की तरह बजाते-बजाते गा रही थी—वतन हमारा आजाद कश्मीर...वतन हमारा आजाद कश्मीर...।''

भट्टिनी ने सुधा को ध्यान से सुना पर कुछ न बोली सिवा इसके कि ''और क्या गाएगी बेचारी...।''

फिर सुधा ने पूछा, ''क्यों माँ।''

''और क्या आजाद कश्मीर ही तो इनका वतन है। हिन्दुस्तान में अपने को कैद समझते हैं। चल चूल्हा तेज कर। दो सूखी लकड़ियाँ इसमें और डाल। देर हो गयी है। रत्नलाल को भूख लग गयी होगी। इसे गाँव भी वापस लौटना है...ऊपर से...जंग चल रही है।''

भट्टिनी को रत्नलाल की भूख की चिन्ता थी...यह समझकर सुधा ने सोचा कि पहले माँ का हाथ मेहमाननवाजी के कर्तव्य को निभाने में बँटाना लाजिमी है.।

लकड़ियाँ लाकर, चटक-चटक चूल्हे को सूरज की तरह चमकाकर सुधा ने माँ से फिर पूछा, ''माँ बाजार में क्या हालात थे?''

''क्या था। अरे सब ठीक था। मानो जंग हो ही नहीं रही हो...ऐसा था माहौल। सब जंग को कोस रहे थे। भुट्टो को कोस रहे थे...याह्या को कोस रहे थे।''

''माँ, पता चल गया क्या कि बारह बजे जो पाकिस्तान ने बम गिराया था—कहाँ गिरा था...?''

''कहते हैं किसी बिजली के खम्भे पर, गोल पार्क में। खम्भे को भी खास

नुकसान नहीं पहुँचा है।''

वे काम करने में भी तेजी से जुटी थी। सुधा मन में सोच रही थी कि हिन्दुस्तान वाकई एक महान देश है...दुनिया का अजीम मुल्क है यह...कितनी बड़ी मूर्खता है हचकुकिल की कि वह अपना वतन फिर भी आजाद कश्मीर को ही घोषित कर रही है। इसे भारत को अपना हृदय दे देना चाहिए। अब तो कश्मीर के तमाम मुसलमानों को भारत से प्रेम करना चाहिए वर्ना उनकी तरफ से एक बहुत बड़ी गलती होती रहेगी उन्हीं के खिलाफ...शायद...। सुधा सोच रही थी और सोच रही थी...कि पूर्ण-विजय की घोषणा के बाद कश्मीर में भट्टों का 'जीवन बदल जाएगा'। क्योंकि वे बीज के 'भारतीय हैं'...युगों से 'भारतीय' हैं...ठेठ 'भारतीय' हैं।

हवा में पकवानों की और मांस के तले जाने की सुगन्ध फैलने लगी। चिमनी से तेज जल रहे चूल्हे का धुआँ निकलने लगा। जबकि दोपहर के बाद चूल्हा कोई नहीं जलाता और हचकुकिल ने भट्टिनी को सामान के थैले के साथ आते हुए कहीं से देख लिया था।

मुहल्ले में उससे उत्तम कोई जासूस, उससे उत्तम कोई खबर रखनेवाली, उससे उत्तम कोई खबर देनेवाली नहीं थी और न ही कोई था।

आँगन के दरवाजे के खुलने की आवाज भट्टिनी के कानों तक ऊपर आयी। ''कोई आया है दिद्दा...?'' भट्टिनी ने कहा।

सुधा ने रसोई से बाहर झाँककर देखा, हचकुकिल सीढ़ियाँ चढ़ रही थी और खुश लग रही थी...चेहरे पर ऐसी चालाक मुस्कान चिपका रखी थी।

''बेटा...ठीक हो क्या...। बाबी बाजार गयी थी...आ गयी क्या लौटकर...घर में मेहमान आया है क्या...?''

वह रसोई की दहलीज के बाहर बैठ गयी और सुधा की माँ से बतियाना शुरू किया, ''मेहमान कौन है? कहाँ से आया है? आने का उसका प्रयोजन क्या है? क्या यह वही तो नहीं जिसके पूरे चेहरे पर चेचक के दाग हैं, पतला-दुबला नदरू जैसा है...काला रंग है...बिल्कुल सुन्दर नहीं।''

''अरे हाँ...हाँ...बिल्कुल...।'' भट्टिनी ने कहा।

''तभी मैं सोच रही थी कि क्या वजह थी इतने पकवान बनाने की...कहीं हिन्दुस्तान ने जीत तो नहीं ली जंग कि तुमने नेमतें पकानी शुरू कीं।''

भट्टिनी सिर्फ मुस्करायी थी। और उस व्यंग्य और सारगर्भित मुस्कराहट में मानो कह रही थी, ''हम ऐसी मूर्खता कैसे करेंगे...? हमें अपने को हिन्दुस्तान की जीत से लिप्त करने का क्या हक...और क्या जरूरत थी?...या क्या हम तुझे इस कदर परेशान करेंगे? हमें तेरे साथ जीने का गुर आता है।''

हचकुकिल ने लम्बी साँस खींचते हुए कहा था, ''वैसे एक बात कहूँ बाबी, हिन्दुस्तान जीते या पाकिस्तान, हमें क्या? हमें तो रहना है आपस में भाईचारे से। नेकनीयती से। हमें तो हमेशा एक-दूसरे के साथ ही रहना है...और वैसे भी बात तो यह भी है कि हिन्दुस्तान इतना बड़ा मुलुक। कहाँ छोड़ेगा कश्मीर को। कुछ भी हो...लोग मरें या जिएँ पर हिन्दुस्तान कश्मीर को कभी नहीं छोड़ेगा न? बहुत ताकतवर मुलुक है हिन्दुस्तान...पाकिस्तान से कहीं ज्यादा। टाठा भी यही कह रहा था कल। इसलिए हमें आपस में प्रेम से रहना चाहिए।''

भट्टिनी काम भी करती जा रही थी और उसकी बातों को आँकते हुए सम्मान भी देती जा रही थी। भट्टिनी भीतर-भीतर प्रसन्न होती जा रही थी और साथ में नृत्य कर रही थी सुधा अन्दर-ही-अन्दर।

''कि ये लोग अब खुद कह रहे हैं कि हमें आपस में प्यार से रहना है...हमेशा हमेशा के लिए रहना है। अब शायद ये हमें नहीं सताएँगे...शायद नहीं चिढ़ाएँगे...और शायद भगाएँगे भी नहीं...।''

हचकुकिल कुछ अन्य गृहस्थ की बातें करके गयी...मसलन वह भी सोच रही थी कि आज रात को मछली पकाए...पर पता नहीं मिलेगी कि नहीं क्योंकि युद्ध के कारण मछली बाजार पर वहाँ मण्डी लगाने की पाबन्दी है...आदि...आदि...।

''पहुँची हुई उस्ताद है हचकुकिल...।'' भट्टिनी उसके जाते ही बोली थी।

और बोली थी, ''लाख यह गाये वतन हमारा आजाद कश्मीर..., हकीकत इन्हें अच्छी तरह मालूम है कि इन्हें हिन्दुस्तान की ताकत और पाकिस्तान की तंगदिली और तंगी का बखूबी पता है। कमबख्त कहीं की, पता करने आयी थी कि कहीं जीत की खुशी में ही तो हम जश्न नहीं मना रहे। इनके भीतर एक चुपचाप और छुपा हुआ मातम है। जो मुझे बाजार में भी दिखाई दिया। आज नहीं न कहेगी भट्टिनी भट्टिनी...दोदयय...।'' भट्टिनी बड़े अप्रिय प्रसंग छेड़ रही है। उसे लग रहा है कि उसने उस दिन की वह जंग जीती है। जमीन की जंग। एक छोटी-सी जंग उसने बड़ी जंग से जीती है। जबकि हचकुकिल ने उसे इंच भर जमीन नहीं दी थी। फिर भी ईश्वर ने न्याय किया ही था।

❑❑

हाँ ईश्वर ने न्याय किया था। रत्नलाल पण्डित खा-पीकर पाँच बजे शाम अपने गाँव डूर के लिए रवाना हो गया था। दो दिनों के बाद यानी अठारहवें दिन भारत की विजयश्री की घोषणा की गूँज उठी थी और समूची घाटी में अप्रत्याशित मौन था। भट्टों में गूँज थी मगर...चुप-चुप...भीतर-भीतर...डर-डरकर बड़ी समझदारी से। 'गूँज उठा था आसमान'। 'उनका आसमान।'

शिवालय मन्दिर में भट्टों में बड़ी सरसराहट फैल गयी थी। गूँगों को जुबान आ गयी थी। मूकं करोति वाचालम्।

प्रातः आरती के मुखिया श्री जानकीनाथ वल्ली ने मन्दिर के द्वार पर बैनर ताना था—

''यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति र्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥''

और आरती के बाद उनकी खसूसी सियासी बैठक हुई थी। सबने अपनी-अपनी बौद्धिकता बघारी थी। सबने अपने-अपने हिसाब से अपने को सर्वोत्तम चिन्तक, विचारक या सियासतदाँ सिद्ध करने का नशा उतारा था।

उस दिन सुधा का भाई बिट्टू भी मन्दिर में लड़कों की पंक्ति में बैठ गया था। घर आकर वह हँसी से दुगुना हुआ जा रहा था कि, ''अरे नमूने हैं ये भट्ट। ये वह बैनर किसे दिखा रहे थे? जुल्फिकार अली भुट्टो को? मुसलमानों को कि लो तुम हार गये और हम जीत गये? श्रीमती इन्दिरा गाँधी को...कि मैडम आप के साथ स्वयं योगेश्वर कृष्ण थे, हम थे...इसलिए जीत गयीं आप...जीत गये हम...अरे यह संस्कृत किसे पढ़ा रहे थे वे...आपस में ही एक-दूसरे को? किसको भला...मैं समझा नहीं...अरे यह भट्टों की दाल।''

'कल तक तो सहमे हुए थे कि कहीं पाकिस्तान न जीते...और पाकिस्तान के हमलों का निशाना उन्हें ही स्थानीय लोगों की मदद से न बनाया जाए...तब तक एक भी बैठक न की...एक भी बैनर कहीं न था...एक भी प्रार्थना न की...संयुक्त। चुपचाप एक-दूसरे से भी बचकर भाग रहे थे...कायर...मानो कोई किसी को जानता ही न हो...। मानो अगर हिन्दुस्तान की विजय-कामना की खातिर बैठक की तो...कहीं किसी को पता चल जाएगा...अगर फिर प्रार्थना के विपरीत हुआ तो मारे जाएँगे। ये भी पैंतरे बदलने में सख्त माहिर हैं। बुजदिल हैं सब के सब...'

''और सुनो। कल चाय और कुलचों का इन्तजाम करना है। सब चाय पर आमन्त्रित हैं। यह न मेरे खयाल से मन्दिर के लिए ठीक है, न ही भट्टों के लिए। अगर आज पाकिस्तान हार गया तो उसे हमेशा की उसकी हार नहीं मानना चाहिए और न यह जीत हिन्दुस्तान की हमेशा की जीत ही है। पहले तो हिन्दुस्तान भी क्या देश है, लड़ मरो बाँग्लादेश की आजादी के लिए। जिद रखो पाकिस्तान के साथ। बाँग्लादेश भी इस्लामी। पाकिस्तान भी इस्लामी। कल को इस्लाम के नाम पर ये दोनों एक हो सकते हैं और आजादी के लिए हिन्दुस्तान का जंग में कूद पड़ना और इतना जानोमाल गँवाना कुछ मानी रहीं रखेगा। या तो आजाद करो

पाकिस्तान से और मिला लो अपने देश के साथ...नहीं तो बाढ़ में जाने दो...। ये चाय के शो उन्हें नहीं करने चाहिए। फिर गुरु बाजार के मुसलमान। एक-से-एक खतरनाक। वैसे ही शिवालय की जमीन पर कब्जा करने की कोशिश में कोई कसर नहीं रखते...फिर...।''

उस दिन से बड़ी-बड़ी शिशिर गाँठें बननी शुरू हुई थीं। तापमान जमाव बिन्दु से बहुत अधिक गिरकर दस तक आ पहुँचा था। मनुष्य की साँसों से निकली भाप तक की भी शिशिर गाँठ बनती। मगर मौसम की पहली बर्फ गिरनी अभी बाकी थी...मगर रात को जो कठकोश गिरता, वह धूप की किरणों से बमुश्किल पिघलते हुए ही फिर मनफी तापमान की हवाओं में फँसकर शिशिरगाँठों का रूप लेता।

''यह अच्छा रहा कि पूरे युद्ध के दौरान मौसम साफ रहा। न बर्फ गिरी और न बारिश ही हुई। इससे हमारी फौजों को कुछ तो आराम हुआ।'' एक महाशय ने अपना ताजा कलाम यों व्यक्त किया। और दूसरे ने यों—''अब चिलेकलाँ शुरू होगा। अब बर्फ गिरे चाहे पत्थर गिरे...अब कोई फिक्र नहीं। जब से जनरल ए. ए. के. नियाजी ने हथियार डाले हैं, हमारी फौजें थक गयी हैं सामान समेटते-समेटते। गोदाम भर गये हैं हथियारों से। जेलें भर गयी हैं युद्ध-बन्दियों से। नाक से लकीर खींचेगा अब पाकिस्तान। कभी युद्ध नहीं करेगा भारत के साथ।'' श्रीमान् ओंकार कौल ने फरमाया था।

''अब तो कश्मीर का भारत के साथ अन्तिम विलय समझो'' कहते हुए श्री सुरेश कुमार वातल जनरल सेक्रेटरी, मन्दिर समिति, शिवालय...गुरु बाजार, श्रीनगर कश्मीर कह रहे थे...इस बात की पुष्टि करते हुए कि कश्मीर का भारत के साथ अन्तिम विलय अभी होना बाकी है, या अगर हुआ है तो वह शुबहा के घेरे में है।

''हाँ, भय बिन प्रीत न होय गोसांई...।'' श्री जानकीनाथ वली ने कहा... समझाते हुए कि ''या तो पाकिस्तान या कश्मीर के मुसलमान अब भयभीत हो गये होंगे और या तो पाकिस्तान कश्मीर पर अपनी दावेदारी की रट लगाये रखने से बाज आएगा या कश्मीरी मुसलमान अब पाकिस्तान को दिल में छुपाये रखने से बाज आएँगे। कहीं न कहीं से प्रीति तो होगी ही।''

''आपकी सूचना के लिए बता दें कि जुल्फिकार अली भुट्टो को अब अपने ही लोग मार डालेंगे।'' एक पेशीनगोई की गयी और करनेवाला फिर से सुरेश कुमार वातल ही था।

''पाकिस्तान फिर फौज के हवाले होगा।'' किसी एक सज्जन ने कहा। ऐसा लगता था कि उन्हें अपनी चिन्ता के सभी समाधान पाकिस्तान के विनाश में सुरक्षित

नजर आ रहे थे। जो कि भविष्य का बहुत बड़ा सच भी था।

"ओ ओ लेन आये कश्मीर ले गये दर्रा हाजीपीर दा...लेन आये..." बच्चों का एक झुण्ड गा रहा था।

करण-नगर, बालगार्डन, सुथराशाही, चोटा बाजार, कनीकदल के लगभग ज्यादातर भट्ट और भट्टिनियाँ शामियाने के अन्दर बैठे थे। कुछ युवा लोग कहवा बना रहे थे...कुछ परोस रहे थे...कुछ लोग युद्ध के विषय में बातें कर रहे थे। दोपहर के बाद का समय था। धूप खिली थी और शाम ढलने के आसार भी कहीं-कहीं सूर्य की किरणों के व्यवहार से नजर आ रहे थे। ओह! बीच दिसम्बर की शिशिर-धूप, और उस पर यह मरियल-सा विजयोत्सव। भला क्यों? और किसलिए? शिवालय गुम्बद की शिशिर गाँठें, जो दोपहर बाद से पिघलनी शुरू हुई थीं, अब जितनी भी बूँदें बनती जा रही थीं, नीचे तक पहुँचते-पहुँचते शिशिर गाँठ में जुड़ जातीं और शिशिर गाँठ और लम्बी होती जाती।

इस बात का जिक्र बहुत ज्यादा हो रहा था कि शामियाना यहाँ लगाने से पहले अच्छी तरह सोच-विचार नहीं किया गया। इस जगह पर जुआरियों की एक बड़ी-सी भीड़ यहाँ पहले ही घुस आयी थी, जिसमें शामिल लोग बड़े-द्वार के पास ही जमा होकर जुआ खेल रहे थे।

आज सुबह से ही मन्दिर की देख-रेख के लिए तैनात दीनानाथ मिसरी ने उन्हें बार-बार बाहर खदेड़ने की कोशिश की थी। समझा-बुझाकर उन्हें वहाँ से जाने के लिए राजी करने की कोशिश की थी, पर उसका उन्होंने गन्दी-गन्दी गालियों से ही सत्कार किया था। उनकी गालियों की असह्य बौछार और चिढ़ों से दु:खी होकर वह मजबूर हो वापस अपने कमरे में आया था। और कमरे में आकर, दीवारों की तरफ देखकर, भीगे नेत्रों से कह रहा था कि भट्टों को भी क्या सूझी आज यहाँ कहवा और कुलचा पार्टी करने की...खासकर उस जानकीनाथ वली को। उसने निर्णय लिया चाहे कुछ भी हो...चाहे आज उसे धर्मशाला के उस कमरे से निकाला ही क्यों न जाए..."मैं साफ कह दूँगा, माफ करो भाइयो! मेरी हिम्मत नहीं है इतनी गालियाँ खाने की और इनके मुँह लगने की। ये मेरा एक ही हथेली से गर्दन मरोड़कर रख देंगे...चाहो तो मुझे कहो मैं धर्मशाला से निकल जाऊँ। मुझे क्या। ब्रह्मचारी आदमी हूँ...कहीं भी जगह मिलेगी...मैं तुलमुल में बाबाजी के साथ रहकर दिन काटूँगा अपने, बचे ही कितने हैं...।"

दो बजे भट्ट-सभा के वालण्टियर आये। चार बजे चाय का कार्यक्रम था। वालण्टियरों की अच्छी-खासी संख्या देखकर जआरी घबरा गये और दुम दबाकर भाग गये। परन्तु जमा होकर अब मुख्य-द्वार के बाहर ही बैठे रहे...जहाँ से वे, जब भट्टिनियाँ आना शुरू हुईं तब से...द्वार की दरारों पर मुँह रखकर कहते,

''भट्टिनी...भट्टिनी...दोदयय मस। इकेहे कोरुथम दालि गडवस...'' और बीच-बीच में कहते किसी पुरुष की तरफ इंगित करते हुए ''ओ भट्टा...दालिभट्टा हो...ओ...''

''भट्टिनी...भट्टिनी...हाइय... भट्टिनी...भट्टिनियय...इ केहे कोरुथम दिलि—जिगरस...भट्टिनीऽऽऽ...''

कुछ शाइस्ता से दिखने की कोशिश कर रहे भट्ट उनके नजदीक गये और उन्हें विनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया कि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। यह तमीज नहीं है। और कृपया वे वहाँ से चले जाएँ। कि उन्हें स्त्रियाँ को ऐसे नहीं चिढ़ाना चाहिए...आखिर वे उनकी बहनों जैसी हैं। इससे वे और भी आसमान पर चढ़ते। जाहिर है इसे वे भट्टों की कमजोरी ही समझते। आखिर बर्बर भद्रता क्या जानें और क्या मानें? थोड़े से इधर-उधर वे छितरा जाते क्षण-भर के लिए, पर मुख्य-द्वार से जरा भी नहीं सरकते। भट्टों के भीतर चले जाने पर वे फिर वहीं जमा हो जाते और पहले से दुगुनी ताकत से चीखते—''दाल भट्टो ओ...ओ... ।''

अब मुहल्ले के बच्चे भी आकर उनके साथ शामिल हुए थे। इस मुहल्ले में भट्ट कोई नहीं रहता। सिर्फ शिवालय मन्दिर यहाँ स्थापित था। अब वे मुस्टण्डे जुआरी बच्चों को निर्देश देते कि वे भट्टिनियों को बुलाएँ और चिढ़ाएँ और गालियाँ बोलकर ओझल हो जाएँ। गरज़ यह कहवा-कुलचा पार्टी जो हिन्दुस्तान की जीत की खुशी में बेवकूफाना ढंग से आयोजित की गयी है, उस पर पानी फेर दें। इसलिए बच्चे उन दरारों पर मुँह टिकाकर एक के बाद एक निरन्तर बोलते...''हे दालभट्टिनी...हयय दालभट्टिनी। भट्टिनी...ओ इधर...इधर...ज़रा देख...दालभट्टिनी'' और फिरन उठाकर अपना गुप्तांग दिखाते... ।

यह सारा माजरा देख दीनानाथ मिसरी जो इस तनाव से सुबह से ही जूझ रहा था, बोला था, ''अगर आपको कोई कार्यक्रम रखना था तो पुलिस का भी इन्तजाम करना चाहिए था न।''

''क्या अब पुलिस नहीं बुलायी जा सकती?'' सुरेश कुमार वातल बोला!

''पुलिस कौन-सी नेकों की है...या हमारे दोस्तों की है। उसमें भी ये ही मुसलमान हैं...फर्क इतना है कि वे वर्दी पहने हैं, जिसका वे कभी-कभी इनसे भी ज्यादा गलत फायदा उठाते हैं। कोई फर्क नहीं।''

इसलिए फैसला लिया गया...कि फटाफट चाय और कुलचे परोसे जाएँ, बाकी कार्यक्रम रद्द करके सभा समाप्त की जाए। कोई भाषण...या कोई बातचीत न की जाए। कोई ज्ञापन-वापन पारित न किया जाए। बेशतर की राय थी कि इस तरह का आयोजन नहीं किया जाना चाहिए था। भट्टों की औकात में यह जंग जीतने से कोई अन्तर नहीं पड़ा। उन्हें अतः, अपनी औकात में ही रहना चाहिए।

कि तुरन्त मुख्य-द्वार एक जोरदार धक्के से खुल गया। मानो अचानक भूकम्प या कोई ऐसा ही प्राकृतिक आपदा आयी हो। जुआरियों की एक बड़ी-सी भीड़ भीतर मन्दिर के अहाते में घुस आयी। यह संख्या उनसे कहीं अधिक थी जो सुबह से वहाँ एकत्रित हो दिख रहे थे। उन्हें बदस्तूर चिढ़ा रहे थे। पता नहीं ये इतने लोग अचानक कहाँ से पैदा हो गये थे। सुबह का लगाया आरती के प्रधान श्री वली का बैनर तार-तार किया गया था और उसकी चिन्दियों से मवालियों ने अपने जूते साफ कर एक तरफ फेंककर 'आक-थू' कर दिया था।

स्त्रियों के डेजिहोरों, सोने की चेनों पर हमला हुआ था। कइयों ने स्त्रियों के स्तन मसल दिये। पुरुषों और बच्चों पर इतने पत्थर फेंके गये कि हिसाब नहीं। शामियाना तक पत्थरों की मार से तार-तार हो गया। समावार टूट गये। काँसे के प्याले (खाडस्य) टूट गये। कुलचे बिखर गये। सारा कहवा फर्श पर ऐसे गिर गया कि इतनी भयंकर ठण्ड में भी उसकी गर्माहट की भाप उठती रही। भीड़ के लोगों ने बर्तन लूटे...खाडस्य लूटे....जेबों में भरे...और इस प्रकार एक-एक को बेहिस करके भीड़ भाग गयी। भीड़ में से ही किसी ने ऊँची आवाज में कहा—'भागो।' और सारी भीड़ भाग गयी। शायद उन्हें तब अपने ही किये से भय लगा। और लगा हो कि या तो पुलिस आ गयी हो अब तक या फौज। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ था। कोई नहीं आया था। वस्तुतः उन्होंने अपना सारा कार्यक्रम पूरा कर लिया था।

धीरे-धीरे सारे भट्ट अपने-अपने घर चले गये। इसका आयोजन करने वालों को कोसने लगे। भट्टों को ही कोसने लगे। भीड़ को या भीड़ के धर्म को किसी ने नहीं कोसा। भीड़ पापिन थी, किसी को ऐसा सोचना समीचीन ही नहीं लगा। वली को कोसने लगे, जिसने बैनर लगाया था।

"उन्हें असल में बैनर से ही गुस्सा आया।"

"पर उन्हें संस्कृत थोड़े ही आती है?"

"आती नहीं है...पर अन्दाज लगाया होगा। बड़े तेज लोग हैं। हमारे ही किसी भट्ट-भाई ने समझाया होगा कि उस पर क्या लिखा है।"

"हमें इस तरह विजय का जश्न नहीं मनाना चाहिए। इस विजय से यहाँ हिन्दुस्तान नहीं बना। न ही इनके मन से पाकिस्तान का कीड़ा गया...।"

भट्ट इस कदर पराजित और अपमानित महसूस कर रहे थे कि आपस में एक-दूसरे से भी आँख नहीं मिला पा रहे थे।

"हम इस जीत का अर्थ नहीं लगा पाये सही-सही...हम भी बस...।"

और दीनानाथ मिसरी ने जोड़ा, "आपने सुना कि वे भागते-भागते क्या कहते हुए जा रहे थे—या रलिव, या गलिव, या चलिव। या मिलो (विलय हो जाओ),

या समाप्त हो जाओ अथवा भाग जाओ...अगर पहली दोनों बातें असम्भव या अमान्य हैं। तुम जश्न मनाओगे ओ भट्ट-दल्लो...तुम्हारे हिन्दुस्तान की माँ की...ऐसी...तैसी...आदि...आदि...।''

"कुछ नहीं बदला। कुछ भी नहीं बदला इस जीत से। यह उनकी जीत नहीं, किसी बहुत बड़ी हार की तैयारी है, सारांश।''

❑❑

कैसे किया था पाकिस्तान ने उनकी हार का सिलसिला शुरू। सबसे पहले कॉलेज का ही काण्ड देखो तो...यह कॉलेज में सुधा का श्रीगणेश था—नौ बजे की आकाशवाणी की विस्तार से खबरें। इन्दिरा गाँधी की अपील—साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखो।

और जम्मू-कश्मीर में स्कूल-कॉलेज समय से बहुत ही पहले सर्दियों की छुट्टियों के लिए बन्द कर दिये गये।

"सिलेबस...?''

"गोली मारो सिलेबस को?''

"ऐसे में सिलेबस की नहीं सोचते।''

सूचना थी कि बहुत भयानक कार्यक्रम था—जो कि फ्लॉप करना था।

'जवाहर लाल नेहरू कॉलेज फॉर वीमेन', बोर्ड के टुकड़े-टुकड़े पूरे मौलाना आजाद रोड पर और अन्दर कॉलेज में बिखरे पड़े थे।

और 'जुल्फिकार अली भुट्टो कॉलेज फॉर वीमेन' का बोर्ड अन्दर दायीं तरफ के लॉन के अन्तिम कोने में छिपाकर रख दिया गया था।

और रमणी मेहरा की आँख निकल गयी थी। सुधा की टाँगें खून-खून थीं क्योंकि उसे पथराव के कई पत्थर लग गये थे। भागते हुए भी। आज सुधा ने जीवन के बेहद भयावह और विचित्र दृश्य देखे थे।

"अरे ऐसा भी होता है क्या?''

जब वह जैसे-तैसे पुलिस की सहायता से घर आयी थी तो घर को आश्चर्य चकित कर देना चाहती थी, इस सारे वृत्तान्त से। या उसे आशा थी कि घर में उसके लिए चिन्ता कर रहे होंगे। या यह कि कॉलेज में दंगे की बात घर में भी सुनी गयी होगी...। मगर घर में कुछ पता नहीं था। खबरें धीमी गति से चलतीं और किसी ठिकाने पहुँचतीं...जैसे वह आज देर से घर आयी। घर में किसी ने इस ओर भी ध्यान नहीं दिया था कि सुधा आज देर से कॉलेज से क्यों लौटी।

उसने सलवार के पहुँचे ऊपर कर दीप्ति को दिखाया कि उसकी पट्टी बँधी है टाँगों पर। कि दीप्ति पूछे तो कि 'क्या हुआ?' और वह सारा किस्सा सुनाए।

अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व की घटना घटी है...वह उसकी चश्मदीद गवाह है ''दीप्ति, ...पूछो तो...अरे सुनो तो...।''

''दीप्ति, पूछो मत। तुम विश्वास नहीं करोगी। माँ को यों ही गुस्सा है कि मैं देर से क्यों आयी, वह भी तब जबकि मैंने ही हिस दिलाया कि माँ मैं देर से आयी...। मैंने कहा कॉलेज में दंगा हुआ...माँ ने नजरअन्दाज किया...विचित्र है भई। शाम की खबरों में सुनना। मुझे तो लग रहा था कि तुम लोगों को इस बारे में पता चल गया होगा...मगर...।''

''दिन की खबरें कौन सुनता है... ?''

''और इस मुहल्ले से कौन मुसलमान लड़की जाती है कॉलेज दीदी! वह ऊपर वाले मुहल्ले की अफशाना तो नवाकदल जाती है...है न...और वह भी ऊपर के मुहल्ले से...।''

''खैर, माँ गुस्सा है तो हो। पता चल जाएगा उसे कि आज मैं बाल-बाल बची हूँ। आज यहाँ पाकिस्तान भी बन सकता था—कोई बड़ी बात नहीं थी।''

''अरे...रे रे रे। तुम भी गपोड़ एक नम्बर की। तो तुमने यहाँ पाकिस्तान बनने से रोका...शुक्रिया...शाम की खबरों में इन्दिरा गाँधी तुम्हें शुक्रिया भी तो अदा करेंगी...।'' बिट्टू ने आकर दखल दिया...और पूरी गम्भीरता पर पानी फेर दिया।

''अरे सुनो तो लड़ाई की शुरूआत। एस. पी. कॉलेज के लड़कों ने एक स्वेटर में एक कागज लपेटकर दीवार से हमारे प्लेग्राउण्ड में फेंका। हम उस समय वहाँ हॉकी मैच देख रही थीं और धूप सेंक रही थीं। आज नामकरण का जश्न था न, कॉलेज का, अतः कोई टीचर पढ़ाने नहीं आयी।

''तब हमारे कॉलेज की प्रेसीडेण्ट रूही खान ने स्वेटर उठाकर उसमें से कागज का टुकड़ा निकालकर खोला और चली गयी। लेकिन आधे रास्ते तक उसके साथ लगभग पचास लड़कियाँ भी पीछे-पीछे हो ली थीं। हम बेवकूफ। हम समझे कि इश्क-विश्क का चक्कर है उसी की तहरीरें होंगी। मगर ये तो थीं जंग की तहरीरें। भविष्य के इतिहास की तहरीरें भई। बाद में पता चला कि एस.पी. कॉलेज के लड़कों ने रूही खान को कागज पर लिखकर भेजा था कि दंगे की पहल किस प्रकार करें।

'जवाहर लाल नेहरू कॉलेज फॉर वीमेन' के बने बोर्ड पर अचानक पत्थर फेंकना शुरू कर दो, फिर जो सामने आये उस पर पत्थर बरसाना शुरू कर दो। इस तरह दहशत पैदा कर दो...पण्डित टीचरों और स्टूडेण्ट्स पर पत्थर फेंकना शुरू कर दो...बेरहमी से। रहम की जरूरत नहीं...रहम की जगह नहीं...आगे देखा जाएगा...अल्लाह हमारे साथ हैं...आगे बढ़ो...रूही खान आगे बढ़ो। हम तुम्हारे साथ हैं...उसके बाद हम आएँगे और जुल्फिकार अली भुट्टो कॉलेज फॉर वीमेन

का बोर्ड बशान चढ़ाएँगे...' तब तक अफरा-तफरी मची होगी...हम पूरे ताकत के साथ आएँगे। पुलिस भी हमें नहीं रोकेगी...लोग अपने हैं...पुलिस अपनी है...आगे बढ़ो रूही...इसमें सब मुसलमान टीचर और लड़कियाँ तुम्हारे साथ हैं...हम तुम्हारे साथ हैं...अल्लाह तुम्हारे साथ हैं...वगैरा...वगैरा।

''और सचमुच कुछ क्षणों के अन्दर ही अफरातफरी मची। लड़कियाँ इधर-उधर दौड़ने लगीं। हॉकी मैच रुक गया।

''पथराव हो रहा है...पथराव हो रहा है...लड़कियाँ रूही खान की अगुआई में पथराव कर रही हैं। सामने देखो...अभी पुलिस आएगी...लड़कियाँ न प्रिंसिपल का मान रही हैं और न ही टीचरों का।

''सुदेश सराफ मैडम को रूही खान ने धक्का देकर गाँधीजी के स्टैचू के साथ दे मारा और बोली, 'चल दफा हो दाल भट्टिनी।'

''प्लेग्राउण्ड में लाजवन्ती कानूनगो आ रही थीं जिस पर सभी के मुँह खुले के खुले रह गये।

''ओ ऽ ऽ...स्वेटर में यही सन्देश था।''

''अब एस.पी. कॉलेज के लड़के भी आ रहे हैं मॉब में...पर प्रिंसिपल ने गेट बन्द करवा दिया है, उन्हें अन्दर आने देने की इजाजत बिल्कुल न देने का सख्त हुक्म निकाला है, मगर वे दीवारों से कूद रहे हैं। बाहर ट्रैफिक बन्द है।

''लाजवन्ती और मैं तब कुछ घबरायीं, कुछ उत्तेजित और क्रुद्ध भी। तेज-तेज कदमों से कॉलेज के आगे वाले परिसर की तरफ बढ़ने लगीं और देखा तब तक गेट खुल चुका था। गेटकीपर या प्रिंसिपल नामक जीवों का गेट से या पूरे कॉलेज से नियन्त्रण उठ चुका था। कॉलेज में पुलिस भी आ धमकी थी। पुलिस वाले लाठियाँ दिखा-दिखाकर लड़कियों को डरा रहे थे कि वे पथराव करना छोड़ दें।

''मगर रूही डायन बन गयी थी। वह अत्यन्त रूपवान लड़की मानो कोई रूपसि राण्टस खुले बालों वाली हाथ में पत्थर उठा-उठाकर पागलों की तरह हवा में लहरा रही थी। वह यह तक भूल गयी थी कि आखिर वह कॉलेज की स्टूडेण्ट प्रेसीडेण्ट है।

''वह पत्थर उठा-उठाकर बने हुए लम्बे बोर्ड जिस पर जवाहर लाल नेहरू का नाम लिखा था तथा जिसका चूरा बन ही चुका था, उस चूरे को भी नहीं बख्श रही थी। रूही अपनी फौज में उत्साह देखकर और-और उत्साहित होती जा रही थी। उसकी फौज ने अब बोर्ड के बाद पण्डित लड़कियों पर निशाना साधना शुरू किया था। देखते-देखते इस सारे दृश्य को हैरानी से देखती जा रही, ग्यारहवीं में पढ़ने वाली रमणी मेहरा की एक आँख पर वेग से पत्थर पड़ गया और पत्थर

के आँख पर वार हो चुकने के बाद देखा गया कि रमणी मेहरा की आँख का मोती ऐसे नीचे गिरा मानो सतरंगी बाँट का गोला।

''हाहाकार मच गया। सुदेश सराफ और कुछ पुलिसकर्मी उसे उठा ले जाने में लग गये। पण्डित लड़कियों में गुस्सा फैल गया और वे भी आसपास के पत्थर समेटकर पथराव करने लग गयीं। बाकायदा पण्डित और मुसलमान लड़कियों में जबर्दस्त पथराव हुआ और गाली-गलौज भी।

''मुसलमान लड़कियों ने तो—'भट्टिनी भट्टिनी दोदयय मस... ।' भी समूहगान की तरह गाया।

''देखा गया और रेखांकित किया गया कि मुसलमान टीचर्स यह देख रही थीं और औपचारिकता के लिए उन्हें बड़ी हसीन अदाओं के साथ कहतीं—'लड़कियों! हम कॉलेज से आपको निकाल देंगी...प्लीज बन्द करो...यह तमाशा...प्लीज...सलीमा। मिसेज ठाकुर तो अपने भौंडे चेहरे से दूसरी ओर जाते हुए और हँसते हुए भी देखी गयी थीं।

''इधर पण्डित टीचरें बेचारी पण्डित लड़कियों को समझा रही थीं कि 'ऐसा न करें, चूँकि वे संख्या में बहुत ही कम हैं अत: इससे उन्हीं की हानि होगी... ।' पर उनका भी जुनून देखने लायक था।

''इतने में डी. एस. पी. भान ने जब रूही के तेवर भाँपे और देखा कि एस. पी. कॉलेज के लड़के परिसर में घुसे आ रहे हैं तो तुरन्त पानी की बौछार करने का हुक्म दिया। रूही खान उर्फ पागल खान स्साली तब जाकर ठण्डी हो गयी और देखो तो मुझे भी दो पत्थर लग गये।''

''तुम भी पत्थर मार रही थीं दीदी?''

''नहीं, पर अब मैं भी मारने ही वाली थी...जब मेरी टाँग में पत्थर लंग गया... । लेकिन एस. पी. कॉलेज के लड़कों की जो जमकर पुलिस ने पिटाई की वह देखने वाली चीज थी दीप्ति...आज रूही खान और वे कुछ टुटपुँजिए चले थे कॉलेज का नाम 'ज़ुल्फिकार अली भुट्टो कॉलेज फार वीमेन' रखने और लगे हाथों कश्मीर में पाकिस्तान का विस्तार करने...पर हमने ज़ुल्फिकार वाला बोर्ड तबाह किया...संयोग से हम लड़ भी उसी मैदान से रही थीं...जहाँ रूही खान और एस. पी. कॉलेज के लड़कों ने वह बोर्ड रखा था।''

''और आगे का हाल... ?'' भाई ऐसे बोला था...मानो सुधा का सारा किस्सा फ़र्ज़ी और झूठ मानकर रद्द कर रहा हो। ''हो ही नहीं सकता कि लड़कियाँ यह सब करें...ओ...अरे...लड़कियाँ...वाह भई वाह... ।''

''और आगे का हाल भाई साहब कि मैं आयी हूँ...और तुम्हारे सामने हूँ...तुम यकीन करो या न करो।''

"अरे बड़ी सूरमा हो तुम...कितनी गप्पें...राम...राम तुम्हारी गप्पें...भट्ट लड़कियाँ पथराव करेंगी?...और लड़कियाँ पथराव करेंगी? कश्मीरी लड़कियाँ...? पता नहीं क्या महा झूठ बोल रही है...देर से जो कॉलेज से आयी है आज...।"

मगर तभी रेडियो पर खबरें आयीं। विस्तार से खबरें। 'कॉलेज में दो समुदायों की लड़कियों के बीच जमकर पथराव। दस लड़कियाँ गम्भीर रूप से घायल...और पचहत्तर लड़कियाँ जख्मी। कॉलेज की दस टीचरों को भी मामूली चोटें आयीं और कल से मौसमे-सर्मा के लिए रियासत-भर के तालीमी इदारे बन्द।

"यानी तालीमी इदारे अब सीधे पहली मार्च को ही खुलेंगे?"

"युवा लोग कहीं फिर हंगामा न करें। वादी के इस हादसे की प्रतिक्रिया जम्मू के कॉलेजों में न हो इस संशय से। तुम तो सूरमा ही हो, मान गये...बहिन जी...तुम्हें मान गये...उन पचहत्तर जख्मियों में ये तुम्हारी शहीद टाँगें भी हैं...।" भाई चिढ़ा रहा था।

"लेकिन यह तो भयावह बात है। इसका मतलब तृणमूल पर कुछ खतरनाक पक रहा है। कोई विष...उबलने की तैयारी कर रहा है" पण्डित पूर्ण कौल के छोटे चचेरे भाई पण्डित मक्खनलाल कौल बोले थे, जो यों ही सत्थू बरबरशाह से उनसे मिलने आये थे, ताकि आगामी पक्ष में पुष्पा की शादी है, यह स्मरण भट्टिनी को करा दें।

"हे भगवान अब पुष्पा की शादी ठीक-ठाक निपट जाए...अब ये दंगे अगर और भड़क गये शहर में तो...?" पूर्ण कौल ने आशंका जतायी।

"पर होना तो ऐसा नहीं चाहिए। वह तो राज्य-प्रशासन की अयोग्यता करार दी जाएगी।" मक्खनलाल ने अशुभ काटा।

❑❑

पुष्पा की शादी का समारोह है। मगर भय के साये में।

कॉलेज का काण्ड जब से हुआ है, तब से भट्ट फिर से सहमे हुए हैं और हर विवाह, यज्ञोपवीत समारोह में सिर्फ अपने सहमने के और अनिश्चित भविष्य के और ...यदि हालात और बिगड़ गये तो कहाँ जाएँ...ये चर्चे करते हैं। भट्ट कभी कोई सांस्कृतिक-राजनीतिक समागम नहीं करते। कभी कोई धार्मिक सम्मेलन मुखर रूप से नहीं करते। पता नहीं कौन-सा लकवा मार गया है पूरे समुदाय को।

अगर, जिस तरह वे जी रहे हैं, उस तरह के जीने को जीना कहा जाता है, तो वे चुपचाप जी रहे हैं...साँस की ध्वनि अपने भीतर ही घोंटते हुए...जबर्दस्त ढंग से धर्मनिरपेक्षता का पक्षधर स्वयं को ठहराते हुए...धर्मनिरपेक्ष स्वयं को स्वयं ही करार देने में उन्हें आपस में स्पर्धा है, मुसलमान के सामने हर कोई भट्ट दूसरे

भट्ट से उसका कुछ ज्यादा ही सच्चा चाटुकार और उसकी हाँ में हाँ मिलाने वाला बनना चाहता है। अक्सर 'दाँतों के बीच जीभ की तरह' रहने वाले कलाकार स्वयं को बताते हैं। अब इस पर कोई मुसलमान किसी भट्ट को 'दाल भट्ट' कहे तो 'कोई फर्क नहीं पड़ता'। मुसलमान जाहिल है...उससे पंगे नहीं लेता भट्ट। वह आज भी अनन्त रूप से कहता जा रहा है...न भट्टोऽस्मि...न...न...न भट्टोऽस्मि। कोई 'दाल भट्ट' कहे तो एक कान से सुनो, दूसरे कान से निकालो...कोई 'दालभट्टिनी' कहे तो एक कान से सुनो, दूसरे कान से निकालो...अपना काम करते रहो।

"सुनो लड़कियो, कोई भट्टिनी भट्टिनी दोदयय मस...कहे तो चुप रहो। कोई फर्क नहीं पड़ता...आगे बढ़ो। एक कान से सुनो...दूसरे कान से निकाल दो।"

और निष्कर्ष निकला था कि ऐसा सिखाने वाली पीढ़ी भट्टों का आत्मसम्मान-सहित अन्त कर देने वाली पीढ़ी है। यह बचने की सूरत नहीं...यह मरने का सामान है भई। इसी को बाहर भारत के नेता विश्व-भर में साम्प्रदायिक सौहार्द और धार्मिक सहिष्णुता का नाम देते हैं, कहते हैं...ऐ दुनिया के आलमगीर रहनुमाओ। आओ देखो...हमारे यहाँ की रिवायतें। भाईचारा। मजहबी हम-आहंगी...। कहाँ से जानेंगे...वे...वह सारी रिवायतें कौन रख रहा है। भट्ट समुदाय। जैसे ललद्यद की थाली में भात के नीचे सिलबट्टा सास का...ऐसा ही हाल भट्ट समुदाय का।

अब कल सुधा के ताऊ का लड़का रामकृष्ण आया था। बता रहा था कि कोई दो जनों के बीच फतेहकदल में भिड़न्त हुई। दोनों के बीच चेहरे से यह फर्क करना कि कौन इनमें से पण्डित है और कौन मुसलमान। हुआ यों कि पण्डित ने डर के मारे पता नहीं चलने दिया कि वह पण्डित है। अतः मुसलमान समझ रहा था कि दूसरे मुसलमान से, जिससे कि वह भिड़ रहा था, वह ताकतवर है अतः उसे धराशायी कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और उसे कमीज़ के गले से खींचता गया...लेकिन पण्डित ने जरा भी आभास नहीं दिया कि वह पण्डित है। लेकिन कमीज का गला खींचते रहने की प्रक्रिया में उसके हाथ में पण्डित का जनेऊ आया और उसकी पकड़ ऐसी ढीली हुई कि मानो उसने स्वयं को लाश पर चढ़ा हुआ पाया हो। और कहा, 'अरे तुम? तुम भट्ट हो! दाल भट्ट...अरे तुमने पहले क्यों नहीं बताया...मैं तो मानता जा रहा था कि मैं दूसरे मुसलमान से ताकतवर मुसलमान हूँ...' और वह हँ हँ हँ हँ करता हुआ सिर्फ हँसता रहा...मानो अपनी ही बेवकूफी को इक़बाल करते हुए खुद पर ही हँस रहा हो।

पण्डित उठा और कपड़े झाड़कर गीदड़ की तरह भाग गया। यह हाल कर दिया गया है भट्टों का। उसमें से उसकी सारी प्रतिरोध क्षमता, विरोध क्षमता निकाल

के रख दी गयी है।

''कभी जब कोई सचेत कर देने वाली घटना होती है...तो दो-एक दिन भट्ट चिन्तित रहते हैं, और तुरन्त सामान्य हो जाते हैं। शतुरमुर्गों की तरह 'दालभट्ट' सुनते हैं तो मुस्कराते हैं और चलते बनते हैं, लिहाफ में घुसते हैं। ''एक दिन क्या पता ये लोग हमारे इस बर्दाश्त करने से भी चिढ़ जाएँ, नाराज़ हो जाएँ...गोली मार दें...कि ऐ दाल-भट्टा...मैं तुझे दाल-भट्टा बोलता हूँ...तू मुस्कराता है...और चुपचाप बिना कुछ कहे चल देता है...इतना चालाक बनता है तू...ऐ...मैं तुझे इसके लिए मार डालूँगा...नहीं रहने दूँगा यों चुपचाप भी जिन्दा...है न चाची...है न...ऐसा भी कर सकते हैं न तब ये...''

''इसलिए हमारे बीच कुछ बहादुरों को उत्पन्न होने की जरूरत है। हमें पुनर्जीवित होने की जरूरत है—'' यह रामकृष्ण की चिन्ता थी जो उसने अपने भाषण में व्यक्त की जो कि वह भट्टिनी, दिद्दा, बिट्टू और दीप्ति के सामने दे रहा था, जिसकी अध्यक्षता भट्टिनी कर रही थी। मगर रामकृष्ण नयी पीढ़ी से था और दालभट्ट कहलाये जाने से बेहद पीड़ित महसूस करता था।

''पर बेटा ऐसे विचार मैंने कुछ नौजवानों से काफी बार सुने हैं। जब से परमेश्वरी का काण्ड हुआ है कोई नेता बनने का नाम भी नहीं लेता। शेख-अब्दुल्ला ने अपने पहले मुख्यमन्त्रीय भाषण में कहा था—'भट्टो। तुमको स्मरण होना चाहिए कि अगर कबाइली हमले से तुमको आखिरकार किसी ने बचाया...तो वह शेख अब्दुल्ला था। मैं मानता हूँ कि तुम्हारे बिना कश्मीर अधूरा है। न के बराबर है। मेरे सारे उस्ताद जहीन और बेहतरीन—सिर्फ भट्ट थे। जिनके लिए मेरे मन में बहुत श्रद्धा है।...भट्टो, तुम रियासत की तरक्की में हाथ बँटाओ...मगर तुमको—मैं मानता हूँ जरूरत है—तो एक तगड़े नेता की...आज तक तुम्हारा कोई नेता ही नहीं हुआ सच मानो तो...।' मानो वह हम पर करुणा भी कर रहा हो...सहानुभूति भी जता रहा हो और हमें हमारी जगह भी दिखा रहा हो रियासत की तरक्की में और...मालो असबाब की हिस्सेदारी में।''

''सच!'' भट्टिनी ने अपनी इतिहास-चेतना की अभिव्यक्ति वर्तमान सन्दर्भ में करके रामकृष्ण को काफी प्रभावित किया।

''सदियों से हमारा सचमुच कोई नेता नहीं हुआ है...'' रामकृष्ण को यह कमी अचानक खली।

''1967। परमेश्वरी काण्ड के समय जो भी हुए उनका हश्र देखकर आगे किसी की हिम्मत नहीं हुई कि नेता बने। आधे-अधूरे उस आन्दोलन में नेता बिक गये, थक गये और डर गये। अरे यहाँ तो जो भी थोड़ा सयाना हो जाता है वही चुपचाप किसी दूसरे को बताये बिना कश्मीर छोड़कर भाग जाता है—बस यही

एक अन्तिम विकल्प बचा है। अब संगठित रूप से न हम जी सकते हैं...न ही कभी जी पाएँगे। हमारे पास है तो उत्पीड़न की स्मृति...हमारा कोई संघ नहीं। आखिर संघ बहुत बड़ी चीज होता है...संघ की शरण में ही रहना चाहिए।'' रामकृष्ण के उद्गार सचमुच तेज-तर्रार। मगर शब्दों तक सीमित। तब भट्टिनी ने उससे प्रश्न किया—

''तुम इस उत्पीड़न-मन:स्थिति से, लड़ने की कोशिश क्यों नहीं करते, संघ बनाओ न, तुम नौजवान हो...आलोचना तो सभी कर सकते हैं...करते हैं...राम... ?'' भट्टिनी ने उसे एक स्वप्न दिया।

''पर व्यापार कौन चलाएगा। वह भी तो बापूजी ने मेरे ही हवाले कर दिया... ।''

''फिर यही टाँय-टाँय फिस्स...व्यापार नहीं करते तो कहते नौकरी कौन करेगा...है न...अरे बेटा सब यही कहते हैं, बिल्ली के गले में घण्टी कौन बाँधेगा... ?''

❑❑

शामियाने में अतिथियों का आगमन बहुत सीमित रहा। एक तो शादियाँ बहुत थीं और इससे बढ़कर शहर में तनाव था। भट्टों के लिए भय जहाँ-तहाँ व्याप्त था। दुलहनों को जल्दी विदा कर देने का निर्णय किया गया था...इसलिए पुरोहितों ने भी ब्रह्मपद्धति वाले लग्न अनुष्ठान में अस्सी फीसदी तक सम्पादन कर डाला है।

पुष्पा की विदाई की तैयारी हो रही है। शामियाने में पड़ोस की मुसलमाननियाँ खुद-ब-खुद जमा हो गयीं ताकि विदा गीत गाएँ। या तो उन्हें गाने का इतना अधिक शौक है कि बिना मजहबो मिल्लत गाने के अवसर ढूँढ़ती हैं, या फिर कोई सन्देश देने के लिए भट्ट शामियानों में एकत्रित हो उठती हैं। पर उनके गानों से रंग चढ़ता है समारोह में। भट्टिनियों के गीत एक तो घोर शास्त्रीय और प्राचीन हैं, दूसरे भट्टिनियाँ स्वयं विवाह गीत कम गाती हैं। नयी पीढ़ी की स्त्रियाँ बनवोन बिल्कुल नहीं गातीं, शायद उन्हें यह सब आधुनिक नहीं लगता। गरज आज की भट्टिनियाँ सांस्कृतिक चेतना से शून्य हैं...और वह जगह मुसलमाननियाँ खुद-ब-खुद भर रही हैं...आपत्तिजनक गीतों से...जिन पर उन्हें मालूम है कि किसी भट्ट की हिम्मत नहीं कि आपत्ति करे। वर्तमान राजनीतिक संघर्ष देखिए मुसलमान स्त्रियों का...मरहबा ...मरहबा...कि भट्टिनियाँ...चुप हैं...और...खी...खी...करती जा रही हैं...मौका बे मौका अपने समुदाय का भविष्य अन्धकारमय देखकर कोई-कोई किसी मर्दुए मुसलमान के साथ भाग जाती हैं...निकाह पढ़ती हैं...कलमा पढ़ती हैं...मुसलमान हो जाती हैं...मुसलमानों को जनकर...कभी तलाक...तलाक...तलाक की शिकार

होकर कहीं की नहीं रहतीं। न घर की न घाट की....न भट्टों की न मुसलमानों की...। ऐसे में पर सुधा को याद है एक बार एक भट्टिनी, जो मुसलमान के साथ निकाह पढ़ने के बाद उसके दो बच्चों की माँ हो गयी थी और बाद में त्याग दी गयी थी, के लिए एक बुजुर्ग मुसलमान ही प्रयत्न कर रहा था कि वह अपने धर्म में वापस चली जाए और कोई भी भट्ट स्वयंसेवी उससे विवाह कर धर्म के कृतकृत्य करे...पर सुधा को आज तक नहीं मालूम क्या हुआ था अन्त में उस चूनी जी कौल का। खैर मुसलमान औरतें सुबह जब पुष्पा का दूल्हा आया था, तो भी गीत गाने आयी थीं और बार-बार गा उठी थीं—

> "पुष्पा तेरा दूल्हा आया जो पाकिस्तान का राजा है...
> उसके साथ आया है वह ज़िया उल हक का बाजा है...
> पुष्पा तेरा...।"

रामकृष्ण रास्ता बनाकर गा रही स्त्रियों के पास गया था और चुप रहकर उसकी बात सुनने की गुजारिश की थी...तब एक मोटी थुल-थुल-स्त्री बोली थी..."हाँ बोलो जिगरा..."

"आप बोबा हिन्दुस्तान का राजा गाओ...और इन्दिरा गाँधी का बाजा..." तब उस थुलथुल औरत ने दूसरी औरतों को निर्देश दिया था कि गाना शुरू करें और वही गाएँ कुछ ज्यादा ऊँची आवाज में ठीक से चिढ़ाते हुए उन्हें

स्त्रियाँ फिर गा उठी थीं—

> "पुष्पा तेरा दूल्हा आया
> जो पाकिस्तान का राजा...।"

भट्टिनी रामकृष्ण की बाँह पकड़कर उसे भीतर ले गयी थी।

"गाने दो इन्हें...कोई फर्क नहीं पड़ता। शहर में तनाव है...ये उसी में घी डाल रही हैं...हमें चुप रहना है...शादी सम्पन्न करनी है...लड़की को विदा करना है...।" और सब मुसलमान स्त्रियाँ मर्जी की मालिक हो गयी थीं। कुछ भी गाने के लिए मुक्त...। आजाद...।

भाग : दो

गुलशनआरा सहरी खा रही थी। नूरा ने वही कल रात की सब्जी, वह भी आधी गर्म और आधी ठण्डी और वे ही शाम के चावल आधे गर्म, आधे ठण्डे परोसे थे। गुलशन मुँह बिचका-बिचकाकर खा रही थी। सुधा ने देख लिया कि गुलशन घोर अरुचि के साथ खा रही है और उसका कौर ज्यादा-से-ज्यादा चावल के दो या तीन दानों का होता है। शायद वह कौर मुँह में डालते हुए सुधा को इसलिए देख रही है कि वह उसकी वजह पूछे। सुधा भाँप गयी और पूछा, ''क्यों, खाया नहीं जा रहा?''

''नहीं, शाम के ही चावल और सब्जी लाया है...वह भी आधे गर्म, आधे ठण्डे।''

सुधा ने इस समय गुलशन की आँखों में वह सदास्थायी मासूमियत गायब देखी, जो उसे उसपर प्राय: वात्सल्य छिड़कने को प्रेरित करती है। गुलशन सुधा को देखती जा रही है...अलग आँखों से। मानो एक अतिरिक्त आँखों का जोड़ा उसने अपने पास रखा हो...जो उसने इस समय पहना है।

वह अभी-अभी नहाकर निकली थी और हनुमान चालीसा का पाठ ठीक-ठाक आवाज में कर रही थी।

'शायद इस पाठ के कारण ही गुलशनआरा को परेशानी हो रही है...तभी वह मुझे अलग आँखों से घूर रही है...।' उसने सोचा।

मगर वह अपना पाठ जारी रखेगी। ऐसा उसने अपने भीतर तय किया। 'देखा जाएगा कि क्या होगा। शायद गुलशनआरा को देखने से जिस भाषा का निर्माण होता है उसका अर्थ है कि गनीमत मान कि इस धरती पर तू है...इसमें जाहिर है कि मेरा भी तुझ पर रहमोकरम है...फिर इस कदर कुफ्र उँड़ेल रही है...।' उसने अपने भीतर की गुलशन से अपने भीतर ही कहा—'मैं तो सारे पाठ पढ़ूँगी। उसी तरह पढ़ूँगी, उसी सुर और लय में पढ़ूँगी जिस तरह अपने ठाकुरद्वारे में, अपने घर में पढ़ती हूँ। अरे! यह शहर तो सारा का सारा मेरा ठाकुरद्वारा है, और पंचस्तवी में बार-बार लिखा है 'व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपस्तारां च तोयप्लवे' कि हे गिरिजे! पार्वति! जो कठिन और कठोर और विरोधभरे स्थानों पर तुम्हारा ध्यान करते हैं...हे

माँ गिरिजा! उनकी आपदाएँ तुम हर लेती हो...दूर करती हो।

'हम आपदाग्रस्त लोग हैं। हमारी ओर से मैं यह पाठ करूँगी। निश्चय ही यह मेरा घर है...गुलशनआरा...पृथ्वी का हर कण मेरा घर है...पर कठोरतम है...कठिनतम है...देखो न तुम्हारा घूरना...देखना...तोबा...तोबा! मैं तो खौफ खा रही हूँ...मगर वह दालभट्टिनी नहीं हूँ मैं अब...इसलिए मैं सस्वर पाठ करूँगी। जरूर करूँगी। चाहे मरूँगी। गुलशनआरा के हाथों। सुमोना के हाथों...मगर मैं करूँगी। सुमोना और गुलशन को भी क्या पता कि उनकी आपदाएँ इससे दूर होंगी...।'

'गुलशनआरा ने मेरे पाठ के खिलाफ हड़ताल की है...।' गुलशन के गुस्से के साथ प्लेट टेबल पर पटकते हुए देखकर उसने सोचा। उसे भीतर कहीं भय की भी सिहरन दौड़ती हुई लगी, तज्जन्य चिन्ता भी...मगर दृढ़ता समेटने के प्रयास में आनन्दानुभूति भी।

"नहीं खाया गया?" उसने पूछा।

गुलशनआरा ने जवाब नहीं दिया। अब गुलशन ने सुधा के मन के संशय को पक्का कर दिया। पर वह अपनी गति से बाकायदा पाठ की तैयारी करने लगी। धूपबत्ती बनाने लगी...वह पाठ की पोथियाँ थैले से निकाल आसन पर रखने लगी।

पश्मीने का एक पुराना शॉल जो उसने इसी प्रयोजन से साथ लाया था...बिस्तर पर बिछाया।...ताकि वह इस कठिन स्थल पर पंचस्तवी और अन्य पाठ करे ताकि माँ गिरिजा...तमाम लोगों की तमाम आपदाएँ हरें। उसने तरतीबवार पाठ करना शुरू किया।

पाठ करते हुए उसके भीतर कई द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न होतीं। कभी गिरिजा का ध्यान करती...जो महादेव की जाँघ पर, गणेश जी को साथ लिये बैठी...मुस्करा रही होतीं...कभी राज्ञी के आँगन के चिनारों का ध्यान...कभी माँ सारिका तक पहुँचने की सीढ़ियों का ध्यान। कभी उस दिन का ध्यान जब सारिका के प्रांगण में उसकी कुड़माई प्रभु के साथ हुई थी...प्रभु कितना खुश था...और फिर तुमुल में खो गया...जिसका उसे इस क्षण जरा भी दुःख नहीं...'धन्यवाद माता। तुमने एक छोटे दुःख से उबरने के लिए बड़ा दुःख दिया...धन्यवाद...कभी...वह अपना पाठ सुन रही है...' उसे होश है वह जम्मू में अपने ठाकुरद्वारे में नहीं...कहीं और है...कठिन कठोर जगह...खतरनाक जगह...तो क्या जरूरी है सस्वर पाठ करना यहाँ भी? यहाँ तो वह जप से भी काम चला सकती है...'क्यों...क्यों नहीं है यहाँ जरूरी सस्वर पाठ करना...जिस तरह जरूरी है गुलशनआरा के लिए नमाज पढ़ना, जायनमाज बिछाकर, उसी तरह जरूरी है मेरे लिए पाठ करना आसन बिछाकर। सस्वर।

'हाँ सुमोना सोचती होगी...कोई सोचता होगा...कि यह निरी पोंगाई है...सोचो मैं जानती हूँ...मैं पोंगा नहीं हूँ...मुझे अद्‌भुत रस मिलता है पाठ से...मैं इसमें कोई समझौता नहीं कर सकती ओ सुमोना की बच्ची। मुझे अद्‌भुत और अलौकिक रस आता है पाठ से। मेरे कण्ठ को, आत्मा को, मन को, प्राणों को, शरीर को, नसों को, रन्ध्रों को। खासकर उन रन्ध्रों को जो चिन्ता के विषाणुओं के यातायात में विषाक्त हो उठे हैं, उन्हें अद्‌भुत अनुभूति होती है। रन्ध्रों ने मानो ऐसा स्वयं उससे कहा हो कि 'पानय परान तअ पानय बोज़ान।' अत: मैं सस्वर गा रही हूँ...अपनी स्वयं की माँग पर...इन रन्ध्रों की माँग पर।'

गुलशनआरा के चेहरे से उसके मन का हाल जाहिर होता जा रहा है। बराबर जाहिर होता जा रहा है। उसका क्रोध उसके मुखमण्डल को आविष्ट कर रहा है, यहाँ तक कि सुमोना की बिस्तर के भीतर सुगबुगाहट बढ़ती जा रही है। सुमोना गुलशनआरा के प्रति संवेदनशील है और यह सोची-समझी लाभदायक संवेदनशीलता है। सुमोना गुलशनआरा का बखूबी ध्यान रखती है। सुमोना एक 'अच्छी बच्ची' है और 'अच्छी बच्ची' के रूप में अभ्यासरत एवं प्रयासरत...सतत। अत: चिन्तनरत भी।

सुमोना सोच रही है कि सुधा को भी अच्छी बच्ची होना चाहिए। गुलशनआरा के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। उसे उसके धार्मिक क्षण समाप्त हो जाना चाहिए। आड़े नहीं आना चाहिए...या सूक्ष्म हो जाना चाहिए। गुलशन को स्थूल होने देने के लिए। उसे उसकी किसी भी क्रिया में कुफ्र नहीं उँड़ेलना चाहिए...उसे क्या वह तो हिन्दू है...और हिन्दू कोई धर्म-वर्म नहीं दर्शन है...और यह दर्शन तो यों है...वो है...सुधा को मन-ही-मन पाठ करना चाहिए। धूपबत्ती बाहर जलानी चाहिए अथवा नहीं जलानी चाहिए।

उसने धूपबत्ती जलाने की शुरूआत की। गुलशन और ज्यादा खूँखार दिख रही थी। सुधा ने धूपबत्ती जला ही दी और माचिस पर टिका दी। अपने प्रभु का आह्वान किया। गिरिजा का आह्वान किया जिससे उसे आज बात करनी है...जिससे आपदाएँ हरने की विनय करनी है...।

गुलशन मूर्तिवत् उसे देखती रही। वह समझ गयी कि गुलशनआरा की मुद्रा से पता चल रहा है कि—'तू पूछ मैं नमाज क्यों नहीं पढ़ रही...मैं बोलूँगी कि तुमने धूपबत्ती जला दी—बस इसीलिए। क्या नमाज पढ़ूँगी, नमाज हराम हो जाएगी।'

सुधा फिर अपने भीतर कहीं अपने ही गर्भगृह में हँस दी—'वाह रे! वाह। मेरा पाठ तुम्हारी किसी क्रिया से—भगवान न करे—हराम नहीं होता...तुम्हारी नमाज मेरे ईश्वर से हराम होती है। क्या तमाशा है? अल्लाह भी ये तमाशे देखकर

शर्मिन्दा महसूस करता होगा।'

मगर ऐसा नहीं हुआ। गुलशनआरा ने आखिरकार जायनमाज खोलकर सूट के उस छोटे से कमरानुमा हिस्से में नमाज पढ़ना शुरू की।

ज्यादा-से-ज्यादा सुधा ने चार श्लोक पढ़े होंगे जब गुलशनआरा आँसू पोंछते-पोंछते वापस आयी और जायनमाज सोफे पर फेंककर बिस्तरे में घुसकर सुबकने लगी।

कहीं कोई मुस्कराया उसके भीतर और बोलने लगा, 'अरी ओ हठभट्टिनी।' और अब वह निष्कण्टक श्लोक गाये जा रही है।

'जो उलट परिस्थितियों में माँ हे गिरिजा तुम्हारा ध्यान करें...उनकी आपदाएँ तुम हर लेती हो।...' वह श्लोक पढ़ते हुए दूसरे मन से स्वयं को और एक पंक्ति सुनाती है। 'मैं उलट परिस्थितियों में हूँ...माँ अपना वादा निभाना।'

लेकिन घमासान तो होगा ही। गुलशनआरा ने ऐसी आवाज निकाली कि मानो जबसे बिस्तर में वह घुसी है, तब से खून के आँसू रोती जा रही है। सुधा के अत्याचारों के कारण उसके श्लोक-गायन के कारण।

और अचानक विस्फोट हो उठा। सुमोना ने लिहाफ चेहरे से हटाकर चण्डीरूप में आकर कहा, 'सुधा! पाठ तुम मन ही मन भी कर सकती हो...नहीं कर सकती हो क्या? डिस्टर्ब कर रही हो। इस बेचारी को नमाज तक नहीं पढ़ने दी। वाह! तुम पढ़ी-लिखी हो। यह तो गँवार भी नहीं करते।''

लेकिन उसने अहद कर रखा था। अपना पाठ न रोकने का। हृदय में भय की लहर उठी और फैल गयी। मस्तिष्क में द्वन्द्व बैठ गया और दुःखी कर गया। सुमोना का चेहरे से लिहाफ हटाना और उस क्रुद्ध चेहरे की एक-एक सूक्ष्म रेखा, और शब्दों का चयन और उच्चारण उसने पूरे होशोहवास में देखा। अगरचे वह पाठ ही कर रही थी। फिर सुमोना का लिहाफ को सिर के ऊपर से लेकर लिहाफ में दफन होना भी देखा था।

देखा उसने उसके ही शब्दों की लय का साथ छोड़ने की इच्छा और उनकी इस इच्छा को नाकारा करने की उसकी अपनी इच्छा-शक्ति की प्रचण्डता। यह सब देखा उसने। उसे आशा न थी इस सबकी। मगर उसे प्रत्याशा भी थी ही। वह घटित हो गयी।

उसके भीतर सुमोना के इस विस्फोट ने कहीं कुछ तोड़ भी दिया और कहीं कुछ जोड़ भी दिया। परिपक्व भी किया। धृष्ट भी किया। पुष्ट भी किया। चिन्तन-धारा को एक बहाव भी दिया। सुमोना के सारे उद्यमों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया...और कुछ क्षण वाणी के लड़खड़ाने के बाद वह फिर धाराप्रवाह गाने लगी।

'माँ, जो इतनी भयानक और उलट परिस्थितियों में तुम्हारा गान करे...उसकी

आपदाएँ तुम हर लेती हो न...हर लेती हो न...हँ हँ हँ है न न माँ जो...।'

उसके बाद सुमोना कुछ न बोली। गुलशनआरा कुछ न बोली। दोनों अपने-अपने बिस्तरों में दुबकी रहीं। उसका पाठ चलता रहा...महिम्नस्तोत्र...पंचस्तवी...सहस्रनाम सब...।

यह सम्भाव्य है कि जब सूरज उगेगा तो युद्ध घोषित होगा। अभी उसने पाठ समाप्त करके टी.वी. खोल लिया और नूरा को ढूँढ़ने निकली कमरे से बाहर। अपने साथ हँसती और घबराती। अपने को कहती हुई, देखते हैं अब आज क्या होता है। 'या तुम नहीं...या हम नहीं।' सुमोना कह सकती है हमें पण्डितों के लिए कुछ नहीं करना। सिर्फ मुसलमानों के लिए करना है। तुम हमारे ग्रुप से विदा ले सकती हो।

और वह मुक्त हो जाएगी। विदा लेगी। जिस किसी से मिलेगी, सारी बातें बताएगी। सब साफ-साफ। वह अपने लक्ष्यों को निर्धारित करके यहाँ नहीं आयी, बल्कि बृहद् लक्ष्य है उसका।

'मुसलमान पण्डित के प्रति सहिष्णु क्यों नहीं होता? क्यों सहिष्णुता को सीमित और कुण्ठित कर दिया गया है? क्यों बौद्धिक जगत में एक सीमित और चालाक दृष्टि से देखने की बीमारी फैला दी गयी है और फिर भी वह बौद्धिक जगत के रूप में बचा रहता है, बना रहता है।

'गुलशनआरा की धार्मिकता और धर्म के नियमों का पालन गँवारपन नहीं जो मेरा पाठ करना बकौल सुमोना के गँवारपन हो गया। मेरी धार्मिकता, धर्म का पालन, आस्था...सब उजड्ड गँवारपन है...हँह थूकती हूँ मैं सुमोना! इस तरह की तुम्हारी बौद्धिकता पर।...अगर यही बौद्धिक होना होता है...जैसी कि तुम हो...तो मुझे उजड्ड-गँवार होना बहुत पसन्द है।

'हाँ सुमोना! मैं उजड्ड गँवार हूँ...हाँ मैं हूँ एक उजड्ड-गँवार और मुझे ऐसा होने पर फख्र है। सुमोना! कान खोलकर सुन लो। मैं तुम्हारी इस धर्मनिरपेक्षता पर थूकती हूँ। मैं तुम्हारी ऐसी धर्मनिरपेक्षता की बोटी-बोटी काटकर कौओं को डालती हूँ। मुझे उग्रवाद ने मारा। मुझे मेरी सहिष्णुता ने मारा सुमोना। मैं इस उत्तर में मिल रही असहिष्णुता को मार डालूँगी...उग्रवाद को मार डालूँगी...। मैं चाहती हूँ मेरा प्रतिद्वन्द्वी भी मेरे प्रति सहिष्णु हो जाए और द्वन्द्व का निराकरण हो जाए...तब मुझे सहिष्णु होना बहुत...बहुत स्वीकार है...सहर्ष स्वीकार है।'

वह सीढ़ियों से ऊपर के तल पर गयी। सब निर्जन था। एक दरवाजा खटखटाया पर वहाँ भी शायद कोई नहीं था। मिसेज वजीर का बँगला शानदार है। वाकई शानदार। टेलीफोन को देखा तो बच्चों से बात करने की इच्छा हुई।

घर में बेटी जागी थी। स्कूल जाने के लिए तैयार हो रही थी। बेटा अभी

सोया था। उसे अच्छा लगा। मन की आँखों से जम्मू में अपने घर पहुँचकर। ''बेटा यहाँ बहुत सर्दी है। सर्दी और उदासी...बुखारी के बिना एक क्षण बिताना भी कठिन है...शीत और शीत...जम्मू आजकल स्वर्ग है...आज हम दौरे पर जाएँगे...।''

''कहाँ।''

''एक गाँव है...सीमान्त पर...कहते हैं कि उस गाँव में सब पुरुष आतंकवाद में मारे गये हैं। पुरुषविहीन है वह गाँव। हम उन स्त्रियों, विधवाओं की खैरियत पूछने जाएँगे आज।''

''फिर उस गाँव में कौन है मम्मी?''

''सिर्फ विधवाएँ और यतीम लड़कियाँ...बच्चियाँ।''

''ओह...डर तो नहीं है मम्मी...।''

''अरे नहीं...बेटा...माँ राज्ञी है यहाँ...त्रिपुर-सुन्दरी है न साथ।''

''नहीं, असल में आपके साथ और कौन है मम्मी...।''

''दो देवियाँ...सुमोना...और गुलशनआरा...शायद और भी जम्मू पहुँचने पर बताऊँगी।''

''आप अपने कमरे से बोल रही हैं...?''

''नहीं, बेटा सुमोना बहिन जी ने एक ही कमरे में सबकी चटनी बना दी। पैसे बचाये होंगे। और एक काण्ड भी हुआ...।''

''क्या...क्या?''

''बताऊँगी जम्मू पहुँचकर सब कुछ...अच्छा अपना ख्याल रखना बेटा...ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे...।''

और वह नूरा को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आउट-हाउस तक पहुँची। वहाँ राजू था। नूरा ने कल उसे बताया था—''राजू बचपन से यहाँ ही है। मिसेज वजीर उसे मद्रास से लायी थीं और पाला था। अब वही यहाँ खाना पकाता है। पहले वह घर का नौकर था, पर जब से मिसेज वजीर जम्मू गयी हैं, और इस घर को गेस्ट हाउस में बदला है तब से वह गेस्ट हाउस के लिए बावर्ची नियुक्त हुआ है। दो हजार रुपये राजू की तनख्वाह है जबकि नूरा की तनख्वाह सिर्फ एक हजार रुपये है...ऐसा नूरा ने मानो शिकायत के तौर पर ही सुधा से कहा था...या मानो नूरा यह जता रहा हो कि देखिए मिसेज वजीर हिन्दू और मसुलमान में भेद करती हैं या नहीं...खुद ही बताइए।'

यह सुनकर वह नूरा की राजू से ईर्ष्या पर मन-ही-मन हँस दी।

''आप ही राजू हैं...?''

''हाँ...हाँ...मैडम...आपको कुछ चाहिए...?''

वह हड़बड़ाते हुए बोला। वह सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश लेकर ढेर सारा

धुआँ बाहर फेंक रहा था...और उस धुएँ को वातावरण के साथ मिलते हुए देख रहा था। शायद उतने ही आनन्द और तीव्रता के साथ जितने से वह पाठ कर रही थी। उसने एक ऊनी मफलर गले में डाला था। एक पॉलियस्टर की कमीज और पायजामा पहना था। यानी कि मौसम के लिहाज से उसके तन पर बहुत कम कपड़े थे।

"नहीं, बहुत ठण्ड है...मैं दरअसल नूर मुहम्मद को ढूँढ़ रही हूँ...बुखारी जलाने के लिए...।"

"अच्छा...अच्छा, मैं अभी भेज देता हूँ।"

और वह मिसेज वजीर के वीरान घर को देखते हुए वापस आ गयी। गुलशनआरा और सुमोना अभी भी अपने-अपने बिस्तर में दुबकी हुई थीं। गुलशन की कोई आवाज नहीं आ रही थी मगर सुमोना खर्राटें मार रही थी।

'ओ ऽ ऽ ऽ...अन्ततः महारानी को...तमाम चिन्ताओं के बावजूद नींद ने आ दबोचा ही...। पढ़ी-लिखी औरत गँवारों की तरह खर्राटे मार रही है...' कहते हुए वह अपने ही साथ हँस दी। 'चलो मैं अब युद्ध की तैयारी करती हूँ...एक व्यूह रचना...युद्ध तो होना ही है...इसमें तनिक भी सन्देह नहीं...पर युद्ध पूर्व शरीर को गर्माना...अत्यावश्यक है अत्यन्त आवश्यक...' और नूर भी दरवाजे पर खड़ा होकर उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। उसे देखकर वह बहुत खुश हुई।

"आओ आओ नूर मुहम्मद। बहुत ठण्ड लगी है। मैंने काफी कोशिश की थी बुखारी जलाने की मगर मैं अब यह हुनर भूल गयी हूँ...लगता है...अरे अब तो हम कोयले की तरह काँगड़ी में ही जल रहे हैं...बुखारी क्या जलाएँगे भला। मैंने बुखारी जलाने की कोशिश में कल का तुम्हारा रखा हुआ सारा मिट्टी का तेल भी जाया कर दिया।"

"क्या करें बदकिस्मती थी। वर्ना आप यहाँ होतीं ही क्यों इस समय। वल्लाह, मैं कसम खाकर कहता हूँ कि अगर यह विपदा न आयी होती, कश्मीर आज भी कहाँ का कहाँ होता...काफी तरक्की की होती हम लोगों ने। ...मैं बुखारियाँ नहीं जला रहा होता...ज़रूर कहीं पढ़ा रहा होता...मगर खैर खुदा ही उसमें राजी नहीं था।...आपको बताएँ एक सच...कश्मीर में इस बीच में लगभग दो पीढ़ियाँ नहीं रहीं...पूरी-की-पूरी पीढ़ियाँ ही गायब हो गयीं...खासकर मर्दजात ...औरत जात की पूछो मत...उसके साथ तो जो हुआ...वह किसकी जीभ से बयान होगा? कौन कान सुनेगा...अल्लाताला रहम करे...खास ही कोई औरत बची होगी जुल्मोजबर से...अब क्या कहें।"

सुधा को लग रहा था कि नूरा जरूर कहीं-न-कहीं अपना नाम सार्थक कर रहा है। संवेदनशील होकर बातें करता भी है और दूसरे की बात सुनता भी है।

जानता है कि जख्मों पर मरहम की जरूरत है और वह मरहम नूरा भी लगा सकता है...कोई भी लगा सकता है...यह हर किसी का कर्तव्य है...हर कोई इसे निभा सकता है और एक बहुत बड़ा योगदान दे सकता है। नूरा जैसे जानता है कि जहाँ देखो, जिस सिक्त देखो, जख्म धड़क रहे हैं। जख्म ही जख्म हैं। जिसे भी देखो...रोजमर्रा की मामूली बातों में भी जख्मों की बू उतर चुकी है। सुबह उठकर एक-दूसरे के जख्मों को ही सलाम कहना पड़ता है। बीमार ही बीमार हैं। तीमारदार कोई नहीं।...पढ़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार...और अगर मर जाइए तो...मसलन नूरा...या मैं ही...तो...तो...। अचानक उसने अपनी आँखों को बेहद गीला पाया। इसका श्रेय उसने नूरा को देखते हुए उसने हल्के धुएँ को दिया।

'धुआँ भी क्या चीज है? पर्दा है।' सिर्फ नूरा के लकड़ियों को उठाने और पटकने की आवाजें आ रही हैं। सुमोना की खर्राटें बन्द हो चुकी थीं। जाहिर है कि वह लिहाफ के भीतर-ही-भीतर जाग गयी थी। गुलशनआरा के बारे में कुछ पता नहीं। पर उसके बिस्तर में स्थैर्य है। जरूर वह बिना खर्राटों के गहरी नींद सोयी है।

❑❑

अचानक आग की लपटें बुखारी के भीतर मचलने लगीं। यह दृश्य सुधा को भाया। मानो बहुत शीत और अन्धकार और अनिश्चय के बाद अचानक प्रकाश उमड़ पड़ा हो। प्रकाश—क्या चीज है? सब कुछ दृश्यमान करता है, ऊष्मा देता है। अन्धकार सब कुछ अदृश्य करता है और शीत में ठिठुराता है। वह लपटों के नाच को आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी...मानो वाह-वाह कहकर दाद दे रही हो...कलापूर्ण नर्तकी के सर्वश्रेष्ठ नृत्य को, शास्त्रीय नृत्य को।

आग की लपटें देखकर नूरा को कुछ इत्मीनान हुआ और अपनी सजल आँखें और नाक पोंछने लगा। कनखियों से वह सुमोना के बिस्तर की तरफ देख रहा था ऐसा सुधा ने देखा।

जरूर उसे सुमोना के बारे में भारी जिज्ञासा थी। उसे उसके साथ खास सहूलियत न थी क्योंकि वह उसकी भाषा नहीं बोल पाती थी। और इसके अलावा भी वह उसके बारे में पता नहीं क्या-क्या अटकलें लगा रहा था, सुधा ने यह जान लिया था।

"यह कौन हैं...?" वह फिर बोला था। शायद भूल गया था कि कल ही यह प्रश्न वह उससे पूछ चुका था। पर मात्र उतने उत्तर से उसके कुतूहल का कुछ नहीं बना था। वास्तव में वह उसके बारे में कुछ गहराई से जानना चाहता था।

''मैंने कल तुम्हें बताया कि कुछ करना चाहती है तुम्हारे लिए, हमारे लिए।''

''मसलन क्या करेंगी... ?''

''अब यही तो मैं भी देख रही हूँ। मेरी भी अक्ल में कुछ नहीं आता।''

''यहाँ कहाँ रहती हैं?''

''दिल्ली में ही रहती है।''

''वहाँ करती क्या हैं... ?''

''करना क्या है...यही काम करती है। पढ़ती-लिखती है, पढ़ी-लिखी है और पढ़ाई-लिखाई के जरिये गरीबों, औरतों और आतंकवाद के मारों के लिए कुछ करना चाहती है।'' सुधा ने बताया।

''यह पिछले साल भी आयी थी। इसी कमरे में ठहरी थी। दस दिन ठहरने के बाद इसने कहा कि इसके पास पैसे खत्म हो रहे हैं, क्या हमारे पास कोई सस्ता कमरा होगा, जहाँ यह रह सके। फिर यह उस बाहर वाले आउट-हाउस में रही थी।''

''अच्छा... ?''

''हाँ... ।''

''तो ?''

''नहीं मैंने यह आपको यों ही बताया कि मैं समझा नहीं कि क्या है इनका असली काम।''

''लिखना। लोगों पर खोज करना और उसको लिखना। अखबारों में वे बातें शाया करना।''

''मुझे तो लगता है कि कहीं कुछ भी शाया नहीं होता।''

''नूर मुहम्मद तुम पढ़े-लिखे तो हो, पर थोड़ा पढ़ा-वढ़ा करो...अखबार वगैरा जो दिल्ली से शाया होते हैं। दिल्ली से शाया होने वाले अखबारों में कश्मीर के बारे में खूब छपता है...बहुत कुछ छपता है...कश्मीर के लोगों को अच्छी लगने वाली बातें छपती हैं। अब हम लोग न पढ़ें तो इसका मतलब यह तो नहीं कि कहीं कुछ छपता ही नहीं। पढ़ा करो और जान जाओगे कौन लिखता है, कहाँ छपता है और क्या छपता है...है न ?''

''हाँ...हाँ, यह सच है...एकदम सच।''

टी.वी. पर अचानक कार्यक्रम बदल गया। स्वामी प्रभुपाद का विदेशी शिष्य श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या करने लगा। वह नूर मुहम्मद को देख रही थी और सोच रही थी कि वह अभी रिमोट उठाकर टी.वी. की चैनल बदलेगा।

परन्तु नूर मुहम्मद आँखें टी.वी. में धँसाकर व्याख्या सुनते हुए शायद समझने

की कोशिश कर रहा था। चैनल बदलने की मन:स्थिति उसमें बिलकुल भी नहीं दिख रही थी।

"यहाँ देख लेते हैं लोग यह सब...?"

"तो क्या, तभी तो चल रहा है यह चैनल, ऐसे दुनिया का काम नहीं चलता बहन। दिमाग को खुला रखकर ही काम चलता है। जानना सब कुछ चाहिए...देखना सब कुछ चाहिए...मानिए फिर आप कुछ भी।" नूर मुहम्मद ने अपना दृष्टिकोण जाहिर किया।

"यह अच्छा है। यह बात बहुत बढ़िया है भई...।" सुधा ने दाद दी।

सुमोना अब बिस्तर के भीतर हिल-डुल रही थी। लगने लगा कि वह बिस्तर से उठना चाहती है।

"यह यहाँ क्या कर रहा है?" सुमोना ने विचित्र क्रोध-भरी आवाज में पूछा। कि सुधा घबरा-सी गयी।

"बुखारी जला रहा था।"

"इससे कहो चला जाए...मैं उठना चाहती हूँ।" यह वार्तालाप अंग्रेजी में सम्पन्न हुआ।

नूरा समझ गया था। ऐसा नहीं था कि नूरा थोड़ी भी अँग्रेजी नहीं जानता हो।

"अच्छा जाता हूँ...जब आँच धीमी पड़े, ये लकड़ियाँ जरा धीमे से डाल देना। बुखारी गर्म रहेगी।"

"ठीक...।"

❑❑

सुमोना बेहद नखरीले अन्दाज से बिस्तर से उठी और अपने बालों के साथ एक खास अन्दाज में छेड़खानी करने लगी। सुधा ने सुमोना के चेहरे पर एक जिज्ञासापूर्ण नजर डाली, भरपूर और फिर भरसक हटाकर अपने को बुखारी का ताप सेंकने में व्यस्त कर दिया। वह जान गयी कि सुमोना कल से हुई घटनाओं से पूरी तरह भर उठी है। वह कुछ भी कह सकती है। वह सुधा की हर हरकत से नाराज है। वह उसे मूर्ख समझ रही है। क्योंकि वह उजड्ड गँवारों की तरह समझ ही नहीं पा रही कि उसे सुमोना की इच्छाओं के खिलाफ बिल्कुल नहीं चलना चाहिए।

अन्तत: अपने बालों को झटके के साथ पीछे की तरफ फेंककर वह उठी और बोली, "सुधा, तुम बुखारी से ज्यादा ही चिपकी रहती हो।"

वह मन्द-मन्द मुस्करायी। कोई शाब्दिक उत्तर नहीं दिया।

सुधा का मुस्कराना और कुछ न बोलना सुमोना को चुनौतीपूर्ण लगा। और

बोली, ''मुझे इस धुएँ से कोफ्त होती है। मेरी छाती में बैठ जाता है यह धुआँ और ताप सेंकने से जी घबराता है मेरा।''

वह फिर मन्द-मन्द मुस्करायी।

फिर से सुमोना के लिए चुनौती दुगुनी हो उठी और उसने बाथरूम की तरफ रुख किया।

'क्या मतलब है तुम्हारा सुमोना। तुम्हें जो खराब लगता है वह करना प्रतिबन्धित है। जो तुम्हें ठीक लगता है बस वही करने की अनुमति है। या जो मेरी साँसों के लिए जरूरी है वह तुम प्रतिबन्धित करती हो। तुम 'अच्छी बच्ची' हो लेकिन मैं 'मैं' हूँ। तुम मुझ तक यात्रा नहीं कर सकतीं।' उसका आत्मालाप था।

'बाथरूम से होकर आ, और सम्पन्न कर बाकी कार्यक्रम जो तुम्हें करना है। मैं जानती हूँ तुम्हारे चेहरे पर, आँखों के खुमार में छपा है सुर्खियों की तरह तुम्हारे कार्यक्रम का मसौदा। तुम उसे लागू करो। आओ जल्दी निकलो बाथरूम से। तब तक गुलशन भी उठेगी बिस्तर से...देखो वह भी बिस्तर में हिलने-डुलने लगी है। और सोनी टी.वी. पर स्वामी प्रभुपाद के शिष्य का प्रवचन समाप्त हो चुका है...अब आओ तुम घमासान करो...युद्धक्षेत्र में उतरो...सुमोना आओ...आओ तुम्हें मैं ललकार रही हूँ...ओ...मरे हुओं को मारती हो ओ...।' सुधा का एकालाप उच्छृंखल और अग्निमय था।

'उफ् यह धुआँ। यह तो अतीत के पलों का धुआँ है जो न जाने कहाँ से उठ रहा है...दिल के जान से उठ रहा है...। सुबहो याँ से उठता है। धुएँ में सुरक्षित है मेरा अतीत, मेरी स्मृतियाँ। मेरा पूर्वजन्म। धुएँ की गन्ध की टेप में लिपटा है परत दर परत मेरा स्मृति संसार। मेरे गाँव की शामें और उस जीवन का शहर तक विस्तार। धुएँ में कैद है मेरी माँ के बोल, भंगिमाएँ, कपोल-चित्र। धुएँ में मुझे लगता है, पापा अपने कमरे में अपने कोने में बैठे हुक्का इस तरह पी रहे हैं मानो बम-भोले भाँग पी रहे हों। चुप हैं वह मानो कण्ठ में विष को रोके हुए हों...इस धुएँ की गन्ध में खुल जाता है हमारा होना...नाचता है हमारा होना...आग की लपटों में अभी मैं नर्तन देख रही थी...।'

अचानक गुलशनआरा ने लिहाफ हटाया और उठ खड़ी हुई।

''गुड मार्निंग।'' उसने गुलशनआरा से कहा।

अच्छा है अन्तरराष्ट्रीय शब्दों में एक-दूसरे को अभिवादन करना। अच्छा है जताना कि कल रात में जो कुछ भी हुआ, न उसे कुछ समझ में आया और न ही उससे कोई अन्तर ही पड़ा। 'गुड मार्निंग' गुलशन ने भी कह दिया। एक नाराज मुस्कराहट के साथ।

"लगता है सुबह के समय तुम ठीक सोयीं।"

"हाँ पहले तो बड़ी देर तक नींद नहीं आयी, पर बाद में गहरी आयी।"

"यह तो रोजों के दिनों में आमतौर पर होता होगा।"

"हाँ, मुझे कल इफ्तार के वक्त पर घर की बहुत याद आयी और आती ही रही। माँ की बड़ी याद आयी। सहरी में माँ गर्म-गर्म खिलाती है...मजा आता है।"

"ओ अच्छा...मगर एक आध दिन यह भी सह लेने में भी अलग मजा है।"

"हाँ...हाँ...।" मानो उसे इसके अलावा भी कुछ कहना था परन्तु कहा नहीं। शब्द चबाये। क्या गुलशन को आशा थी कि सुधा उसे गुड-मार्निंग कहेगी? शायद नहीं...।

गुलशन सोफे से उठकर शीशे के सामने अपने बालों का, चेहरे का हाल जानने लगी। या शायद वह बाथरूम के खाली होने की प्रतीक्षा कर रही थी।

सुधा उसे देख रही थी। उसकी अंग-भाषा चेहरे की भाव-भंगिमा पढ़ना चाहती थी। उसे वह अपेक्षाकृत अधिक सामान्य लगी। 'सारी कालिख सुमोना के भीतर है'। सुधा ने सोचा।

उसे अचानक याद आया कि उसके पास कंघी नहीं है।

"गुलशन तुम्हारे पास कंघी है क्या? मेरे पास कंघी नहीं है। अगर तुम्हें कुछ फर्क न पड़ता हो तो मैं भी तुम्हारी ही कंघी से बाल बनाऊँ। हमें आज कितने बजे चलना है?"

"पता नहीं कितने बजे...मगर कंघी तो मैं भी भूल गयी हूँ। मैं तो सोच रही थी कि मैं सुमोना दीदी की कंघी इस्तेमाल करूँगी।"

"अच्छा...अरे...ऐसा कैसे...तुम भी कंघी भूल गयी और मैं भी। अजीब संयोग है। है न?"

"बिल्कुल है...।" गुलशनआरा अब बिल्कुल सामान्य लग रही थी। बिल्कुल गैर-नाराज।

'हो सकता है कि कल जब वह रो रही थी, उसे सचमुच घर की याद आ रही हो। या हो सकता है आतंकवादियों द्वारा अपने शहीद पिता की याद ने उसे भीतर-भीतर मथ लिया हो, असह्य ढंग से मैं यों ही नाहक सोचने लगी थी...कि...।' उसने स्वयं से कहा।

गुलशनआरा इस बीच अपना छोटा-सा बटुआ उठाकर बाहर जाने के लिए तैयार हो चुकी थी।

"कहाँ जा रही हो... ?" सुधा ने पूछा।

"माँ से बात करूँगी। पता है कल से जी बहुत घबरा रहा है...जब से आप

गणेश जी के मन्दिर में दहाड़ें मार-मार कर रो उठी हैं...तभी से मेरा जी बहुत ही ज्यादा घबरा रहा है...मेरा चित्त एकदम परेशान है तब से। आप यहाँ पहुँचकर भी सोफे पर बैठकर ध्यान कर रही थीं और रोये जा रही थीं, रोये जा रही थीं...ऐसा लग रहा था कि अब बस आप के आँसू थमने वाले नहीं हैं...मैं बहुत गमगीन हूँ तभी से। मैं माँ से बात करके कुछ हल्का महसूस करूँगी...।''

''अच्छा? मगर फोन तो ऊपर भी है।''

''हाँ, मैंने कल भी कोशिश की थी। मिला नहीं बडगाम का। एस.टी.डी. वाला नम्बर मिलाकर देता है। उसे गुर मालूम है....'' और वह चली गयी।

तो कैसे समझा जाए गुलशनआरा को। उसके मनोजगत को? कैसे समझे सत्य? कैसे पहुँचे सत्य तक? मनुष्य के भीतर भी अफवाहों और अटकलों का बाजार किस कदर गर्म रहता है। उसने सोचा।

सुमोना अच्छा-खासा समय लगाकर बाथरूम से बाहर निकली।

''गुलशन जाग गयी...।'' उसने चौंकने के अन्दाज से पूछा।

''हाँ...।'' सुधा ने उत्तर दिया।

''कहाँ गयी?''

''कह रही थी माँ से बात करूँगी...कल से मनोदशा ठीक नहीं...उसे दरअसल माँ की याद आ रही थी।''

''हाँ पर उससे नमाज भी नहीं पढ़ी गयी। बेचारी बच्ची...हमें उसका ख्याल रखना चाहिए...।'' अन्तिम शब्द उसने एक अध्यापक या उपदेशक के लहजे से कहे।

सुधा चुप थी और चेहरे को भरसक निर्विकार रखने की कोशिश में भी।

उसकी इस तीसरी चुप्पी से सुमोना पराजित-सी अनुभव करने लगी। आगे रणभूमि पर उतरने के लिए उसे कहीं कोई गली भी नहीं मिल रही थी मानो, ताकि वह कल का पड़ा हुआ मामला निपटा ले और सुधा के सुधा होने पर अंकुश लगा ले।

वह हल्के-हल्के अपने बायें स्तन पर हाथ रख-रखकर खाँसने लगी मानो धुएँ के खिलाफ अपनी सबसे प्रामाणिक शिकायत दर्ज कर रही हो। यह सब सुनकर भी सुधा भीषण रूप से मौन हो उठी थी। ताकि युद्धविराम बना रहे। युद्ध कतई न हो। वैसे वह युद्ध के लिए भी तैयार है मगर अगर टलता है तो टले। वह जानती है कि युद्ध का टलना ही श्रेयस्कर है। उसमें उसे खासी कामयाबी अभी-अभी गुलशनआरा को गुडमार्निंग कहकर भी मिली है। जिसकी सुमोना को खबर नहीं है।

सुमोना अब बालों को उठा-उठाकर मुआयना करने लगी।

शायद वह अपने सफेद बालों को खोजने और उनकी सघनता आँकने की कोशिश कर रही थी या यों ही बालों से छेड़ते हुए कुछ ठोस सोचने का स्थान अपने मस्तिष्क में बना रही थी।

"कहाँ गयी यह बच्ची सुबह-सुबह फोन तो ऊपर भी है...तुमने कहा नहीं?"

"हाँ, कहा तो...पर बोली बडगाम का फोन तो ऊपर वाले फोन से मिलना कठिन है। बाहर एस.टी.डी. वाला मिलाकर देता है। उसे माँ से बात करने का बेहद-बेहद मन था। दौड़ लगाकर गयी।"

"हाँ, रात को दुःखी रही न...नमाज भी नहीं पढ़ पायी बेचारी...।" सुमोना फिर चाहती है कि कहीं से उसे मैदाने जंग में उतारा जाए।

और बरामदे से किसी के कदमों की आवाज आ रही है। शायद गुलशनआरा आ गयी हो—या गुलामा—गाड़ी का ड्राइवर आ गया हो। जो भी हो...युद्ध टले। कोई आए...मगर युद्ध टले। सुधा सुमोना से युद्ध में भिड़ना नहीं चाहती।

❑❑

और यह मिस अली थी। बेहद सुन्दर और बाअदब स्त्री। तलाकशुदा स्त्री। पुरुष के पेट में हजम न हो पायी स्त्री।

मिस अली को सुधा प्यार से बेला कहती है। स्पेन की महारानी जिसने कोलम्बस को भारत खोजने के लिए सबकुछ मुहैया कराया।

'वाह! बेला आ गयी। लाख-लाख शुक्र है ऐ खुदा तेरा। शायद जंग टल गयी। हाँ अब तो जंग टल गयी। उसके और सुमोना के बीच की जंग। बिल्कुल टल गयी। गारण्टी से—कम-से-कम आज के लिए टल गयी।'

वे गले मिलीं। बेला पलंग के किनारे बैठ गयी।

"ओ...ऽ...ऽ यह बच्ची गयी कहाँ?...मुझे तो चिन्ता हो रही है।" सुमोना बोली। वस्तुतः सुधा भी चिन्तित थी।

"मैं जरा बाहर जाकर उसे देख आऊँ?" वह बोली।

सुमोना ने उत्तर नहीं दिया...मुँह किन्तु बड़ा-सा बनाया। मानो कहा हो कि क्या जाओगी बाहर देखने। तुम ही ने तो उसे अपने पाठ से दुःखी किया। किन्तु वह सुमोना का उत्तर पाये बिना ही निकल गयी।

वह निकलना चाहती थी। चाहती थी कि यदि सुमोना को बेला से कुछ कहना है तो कहे और खुद को कुछ सीमा तक खाली करे। और युद्ध अच्छी तरह टले। कहे कि यह बहुत अजीब भट्टिनी है। पाठ करती है। ऊँची आवाज में स्तोत्र गाती है। बदतमीज भट्टिनी है। जानती नहीं है कि अपने पाठ से दूसरे की नमाज

में दखल नहीं डालना चाहिए। तब तक गुलशनआरा भी आए। वह वास्तव में ही गुलशन के बाहर ज्यादा देर तक होने से घबरायी।

बाहर दहलीज पर उसने दूर दृष्टि डालकर देखा कि शायद गुलशनआरा ही तेज-तेज कदमों से आ रही है...और यह खुशखबरी बच्चों की मानिन्द अन्दर सुमोना और मिस अली को देने के लिए भागते हुए गयी।

''वह आ गयी गुलशन...शायद फोन मिला नहीं होगा आसानी से...कह रही थी कि यहाँ से बडगाम का फोन मिलता ही बड़ी कठिनाई से है।''

उसकी इस बात पर सुमोना अविचल थी...पर अली ने हामी का सिर हिलाया।

गुलशन भीतर आकर सीधे उसके पास बुखारी तक आयी।

''यह लीजिए... ।'' और एक मलाई रंग की कंघी उसे पकड़ायी।

''अरे यह क्या? कंघी? तो तुम्हें इसी कारण देर हो गयी। इतनी ठण्ड में इतनी सुबह। सुबह दुकानें कहाँ खुली होंगी।...अरे कहाँ तक पहुँच गयी थी कंघी ढूँढ़ते ढूँढ़ते। हम तो परेशान हो गये। सुमोना कुछ ज्यादा ही फिक्र करने लगी... ।''

''यह कंघी कैसी?'' सुमोना ने कंघी की कथा जाननी चाही।

सुधा दीदी और मेरे पास कंघी है ही नहीं। बाल कैसे बनाते? मैंने फोन किया और सोचा कि कंघी भी लेकर आऊँ। अपने लिए भी...इनके लिए भी।

और यह युद्ध-विराम था। कम-से-कम आज का युद्ध-विराम घोषित हो गया। कल का अल्लाह हाफिज है। सुधा जीवन के इन संग्रामों से थक-सी चुकी है...ऊब-सी चुकी है। इसीलिए आज का युद्ध विराम उसे अच्छा लगा।

सुमोना सूट के उस हिस्से में गयी जहाँ ड्रेसिंग टेबल था। शायद कपड़े बदलने। और क्षण-भर बाद वहाँ से लम्बी-लम्बी साँसें लेने की आवाजें आने लगीं। कल से सुमोना ने सुधा से कई बार कहा था कि वह सुबह उठकर सुदर्शन क्रिया करती है...पाठ-वाठ नहीं करती। धार्मिक होने का प्रदर्शन नहीं करती। यानी वह अलग किसी किस्म की आध्यात्मिकता में विश्वास करती है। उसकी आस्था धर्म में है, धर्म के प्रदर्शन में नहीं। उसकी धार्मिक आस्था कहीं ज्यादा संयत और गहरी है। वह इस उथली आस्था में आस्था नहीं रखती। वह नहीं मानती कि मन्दिरों में भगवान है। जैसे कि सुधा कल गणेश जी की मूर्ति के सामने पागल हो उठी, ऐसे उन्माद उस पर नहीं छा जाते।

और वह दूसरे धर्म का आदर करना खूब जानती है और समझती है कि वह वास्तविक आध्यात्मिकता है।

ओऽ वह दिखा रही है सुधा को कि सुमोना ज्यादा बौद्धिक है, ज्यादा

तर्कयुक्त, ज्यादा युक्तियुक्त, ज्यादा संयमबद्ध, ज्यादा समझदार, ज्यादा नियम-बद्ध और ज्यादा नफासत की कायल। सुमोना उजड्ड-गँवार नहीं।

❑❑

गुलामा ने दरवाजा खटखटाया। गाड़ी आ गयी। यात्रा ठीक साढ़े नौ बजे शुरू होनी है।

"तुम समय की खूब पाबन्द हो इज़ा...तुम गुलामा से भी पहले आ गयीं।"

"अरे सरकारी नौकर हूँ...पाबन्द हूँ ही। अपनी भी...अपने औरतपने की भी।"

"अरे रे...क्या औरतपने की...?"

"मिस अली क्या खूब कही...सचमुच बहुत खूब इज़ा। तुम्हारे शब्दों के अर्थों के निचले तह तक पहुँचने का दावा सुधा कर सकती है...सिर्फ सुधा।"

"तुम तैयार हो?"

"हाँ, मैं तुम्हारी तरह पाबन्द हूँ...सरकारी नौकर हूँ और औरत हूँ।" दोनों हँस दीं। एक मिश्रित हँसी, सुधा ने खिड़की के पल्ले पर सुनहरी तह देखी।

"इज़ा, बाहर धूप है...कुर्सियाँ लगी हैं...बुखारी धीमी पड़ गयी है। चलो जब तक ये लोग तैयार हो जाते हैं...हम धूप में बाहर रंग-बिरंगे फूलों का आनन्द लेते हैं।"

बाहर इज़ाबेला और वह है। दोनों देख रही हैं कि नन्ही-नन्ही चिड़ियाँ आकर घास में से चोंच से अपने लिए पता नहीं क्या-क्या निकालकर खा रही हैं। कभी लड़ रही हैं। कभी आपस में पता नहीं चूँ-चूँ में क्या संवाद कर रही हैं। उनका दृश्य अद्‌भुत है।

"लगता है पिछले कई सालों में पहली बार मैंने इतने इत्मीनान से इतनी प्यारी चिड़ियाँ देखी हैं।"

"हाँ, इतने वर्ष तुम जिन्दगी की कशमकश में बुरी तरह महरूमियत के शिकार रहे...।"

"अरे वह कशमकश तो बदस्तूर जारी है इज़ा...अभी हम...लौटकर आये क्या..."

"हाँ हाँ सुधा। सचमुच। ऐसे में मामूली औ़र छोटी-सी खुशी भी आपके लिए बहुत बड़ी और मूल्यवान और मानीदार हो उठती है। घर का छूटना...इस कदर...कोई मामूली वाकया नहीं...मैं अन्दाजा लगा सकती हूँ तुम्हारी कशमकश का...मुसीबतों का...सुधा। खुदा बचाए...बहुत...बहुत संगीन तकलीफें हैं इसमें...।" इज़ा ने सच्चा मरहम लगाने की कोशिश की। शायद ईमानदारी से सुधा के दु:ख

की परतों को उठाकर महसूसने की कोशिश की। शायद सुधा होने की कोशिश की।

''इज़ा रोजेदार हो?''

''बिल्कुल...पाबन्द हूँ...स्त्रीत्व की...ईश्वर की।''

''ओ...ऽ ऽ...मैं भी...हमें पाबन्दियाँ ही फलती हैं। हैं न?''

''हाँ, बिल्कुल।'' और वे दोनों एक सुगन्धित और ठोस मुस्कराहट के साथ हँस दीं।

''बच्ची ने कहा तो नहीं...मम्मी आज छुट्टी है...कहाँ जा रही हो...?''

''नहीं मैं शाम को उसके साथ हूँ...तो उसे कोई आपत्ति नहीं। मगर रात के लिए शहर से बाहर जाना हो तो उसे मान्य नहीं। उसे मनाना पड़ता है।''

''स्वाभाविक है।''

''पिता कभी आते हैं...?''

''कतई नहीं। उसने तो कब का नया विवाह कर डाला है। उसकी एक बच्ची भी है। उसको उसने पैदा होने के बाद से देखा ही नहीं।''

''और तुम? तुमने कुछ सोचा है पुनर्विवाह का?...अरे इज़ाबेला कहीं मैं संवेदनशून्य तो नहीं हो रही...मुझे माफ करना और ठीक भी करना...।''

''सुधा, जरा भी नहीं। बिल्कुल भी नहीं। तुम नहीं पूछोगी तो कौन पूछेगा। दरअसल हम स्त्रियों की असुरक्षा ही यही है कि हम एक संगठन नहीं हैं। स्त्री की कोई स्त्री संवेदनात्मक मित्रता नहीं। विडम्बना यही है। इस विडम्बना से पुरुष संसार परिचित है और इसी ज्ञान के रहते उसने स्त्री को अपना गुलाम कर दिया है। स्त्री कुछ भी हो, स्त्री होती है। मेरा पति कहा करता था—जूती सोने की हो क्या फर्क पड़ता है...है तो जूती ही। उसे जूती की जगह ही रखा जाएगा। उसका रोल इससे अधिक नहीं हो सकता। किसी भी तरह नहीं। उसके हृदय में स्त्री के प्रति द्वेष था। खासकर मुझ जैसी स्त्री के प्रति। उसको चाहिए थी अनपढ़ और गँवार। अब वह मिली है, सुखी है। इज़ा का भारत सरकार की परियोजना अधिकारी होना उसकी साख को धूल में मिला रहा था सुधा। वह इज़ा को छोड़ना नहीं चाहता था, मगर उसे खालिदा की तरह रखना चाहता था।''

''खालिदा...?''

''उसकी वर्तमान पत्नी।''

''ओ...ऽ...अच्छा...।''

''सुधा मुझे अपनी पोस्टिंग के पहले प्रशिक्षण के दिनों में गाँव-गाँव घूमना पड़ा। कभी-कभी मुझे घर से अल्लसुबह निकलना होता और शाम को देर से घर वापस आना। कभी-कभी रविवार को भी घर से बाहर। आखिर ग्रामीण विकास

मन्त्रालय को हफ्तावार सजीव रिपोर्ट देनी होती थी। इसको उसने मेरा दुश्चरित्र होने के रूप में प्रचारित किया, जैसा कि कुण्ठावश पुरुष प्राय: करते हैं या उनके पास स्त्री के खिलाफ यह एकमात्र हथियार बचता है। परन्तु मैं डरी रही। मेरे माता-पिता को मालूम है कि मैं क्या हूँ। यहाँ तक कि उसे भी पता चला था कि मैं क्या हूँ...खैर...।

''पापा बोले—'बेटा, ग्रामीणों में मन लगाकर काम करो।' मैं करती रही। किया। उसने एक दिन तलाक, तलाक, तलाक कह दिया।...'' कहते हुए अचानक वह रुक गयी और अन्तर्मुखी-सी हो गयी। मानो उसे इसी क्षण अचानक याद आया हो कुछ अनिवार्य, कुछ बेहद जरूरी।

फिर थोड़ी देर बाद उसी रौ में बोली, ''परन्तु मैं सोचती हूँ कि बहुत अच्छा किया उसने जो तलाक तलाक तलाक कहा। मैं एक बड़े दायरे की द्वन्द्वमुक्त होकर, उतराधिकारी हो गयी हूँ। मैं कई गाँव की इच्छा-पुत्री बन गयी हूँ। पूरा रफियाबाद इलाका ही मुझे प्यार की नजरों से देखता है। वहाँ लोग कहते हैं कि पहले जितने भी लोग यानी पुरुष अधिकारी इस इलाके में कार्यरत रहे, सब-के-सब अपने को मालामाल कर गये। कोई धेले की भी तरक्की नहीं की गयी। पर मैडम ने आबादी के कई मुश्किल काम अंजाम दिये। बिना किसी लालच के। लाग-लपेट के।

''फिर तलाक ने मुझे खुद को जी जान से इन कार्यों में झोंक देने की प्रेरणा दी। अब मैं बहुत आरामदायक महसूस कर रही हूँ। कई पुरुष मेरे पास पति की पड़ी खाली जगह भरने की गरज से आते हैं...पर वितृष्णा होती है उनकी इस मंशा से। देखो सुधा, अगर मेरे पास जगह खाली है...तो खाली रहने देने में मुझे कोई मलाल नहीं...फिर वही दकियानूस पुरुष मिलेगा...मैं खुद को ताजिन्दगी माफ नहीं करूँगी...देखो...खुदा क्या-क्या करिश्मे दिखाता है...मैं देख रही हूँ...देख रही हूँ कि क्या कभी जिन्दगी में कोई शिक्षित और सभ्य और हस्सास मर्द मिलेगा...अभी तक कोई नहीं दिखा...। कौन मर्द जानता है कि औरत के साथ कैसा सुलूक करना चाहिए...खैर, पहले तो औरतें ही नहीं जानतीं कि कैसे मर्दों को संवेदनशील बनाया जाए...।''

इज़ाबेला की बातों में एक आवेग एक वलवला भरता जा रहा था...सुधा नजरें लॉन की घास में धँसाये सुन रही थी। इज़ाबेला की अचानक चुप्पी से चौंककर सुधा ने देखा सामने हुर्रत खड़ी थी। हुर्रत। इस पूरे दल की जान। हास्य की स्रोत। स्त्री-अस्मिता से जुड़ी अनिवार्य स्वातन्त्र्य की प्रकाण्ड पक्षधर और स्पष्ट दृष्टि रखने वाली, पुरुष के तलाक, तलाक, तलाक की शिकार, एक सुयोग्य पुत्री की माता। राजनीतिक चिन्तन को धरोहर के रूप में धारण करने वाली हुर्रत। एकाकी जीवन जीने वाली हुर्रत। जुर्रत वाली हुर्रत।

हुर्रत को देखकर बातों का सिलसिला टूट गया था। उसके प्यार और सम्मान में इज़ा और सुधा दोनों खड़ी हो गयी थीं। हुर्रत को गले लगाने के लिए। हार्दिक अभिवादन के लिए।

अभिवादन हो चुकने पर हुर्रत ने भी एक कुर्सी समीप खींची और बैठ गयी।

''तुम कब आयीं?'' हुर्रत ने इज़ा से पूछा।

''बस अभी। कुछ लम्हा पहले।''

सुधा बोली, ''चलो इज़ाबेला आफताब की रोशनी में बैठें।''

सूर्य सचमुच अब निर्विघ्न खिला था। धीरे-धीरे आगे भी बढ़ता जा रहा था। श्रीमती वजीर के उद्यान में वह चतुर्दिक् खिलकर रोशनी फैला रहा था इससे ओस की परत और निखरकर दिख रही थी और गेस्ट हाउस की छत से पानी इस कदर बरस रहा था मानो बर्फ पिघल रही हो। 'ओस पूरा अस्तित्व रखती है यहाँ...।' उसने खुद से कहा। 'कश्मीर से बाहर ओस को अगर देखना है तो शिशिर में भी हम उसे जलकणों के रूप में ही देख सकते हैं—जहाँ सूर्य निबल है वहाँ ओस ठोस है। जहाँ सूर्य सबल है वहाँ ओस तरल है...।' उसने पुनः स्वयं को कहकर सुनाया। ठण्डी भेदती हवा के झोंके उनसे छेड़खानी करते हुए गुजर रहे थे।

वह इज़ाबेला और हुर्रत को गृहस्थ की बातों में निमग्न पाकर मौन उन्हें देखती और सोचती जा रही थी—'काश हम यहीं होते...फिर...फिर...फिर कितना ही अच्छा होता सबकुछ। चारों तरफ...यह ओस और ज्यादा सुन्दर और यह धूप कुछ और ही सुनहरी और गुनगुनी। इनको क्या मालूम हमने कितना दुःख झेला है यहाँ से जाने पर। कौन-कौन रास्ते नापे हैं यहाँ से जाने पर। कौन-कौन भयावह नदियाँ पार की हैं...किस-किस रेत पर महल बनाये यहाँ से जाकर...क्या-क्या सपने देखने से घबराये यहाँ से जाकर। तलाक, तलाक, तलाक भी सुना और घर भी नहीं था यहाँ से जाकर। बच्चे मासूम थे, ठिकाना न था। तन पर कपड़ा न था यहाँ से जाकर। भाई के घर जाते, वह भी बेघर था। बहन के घर जाते वह भी बेघर थी...माता-पिता भी बेघर थे...हम कितने निस्सहाय थे यहाँ से जाकर।

उसकी दृष्टि भीतर-भीतर से पता नहीं कितने ब्रह्माण्डों से उड़कर आयी और आकर चुगती हुई चिड़ियों पर स्थिर की जब हुर्रत ने पूछा—''और सुधा, बच्चे लोग ठीक हैं?''

''हाँ, आपकी दुआ से।'' हुर्रत और इज़ा को उसके मानस का इतनी मुलाकातों के बाद काफी कुछ पता चला है। वे अक्सर संवेदनशीलता से काम लेती हैं और स्वयं को भी बचाती हैं किसी संकट में डालने से। उन्हें किसी-न-किसी तंज से पता चल ही जाता है कि सुधा के मौन के क्षण बेहद विकट होते हैं।

भीतर से गुलशन और सुमोना तैयार होकर आयीं और बरामदे से ही बोलीं,

"चलों? ओ ओ...हुर्रत आप भी आ गयी हैं...ओ शुक्र है खुदा का। मैं तो सोच रही थी कि आप नहीं आएँगी शायद...पर देखिए आपने सचमुच कृपा की जो आप आ गयीं। सचमुच कृपा।"

सुधा ने अब यह सौ फीसदी सच पाया कि सुमोना समुदाय-विशेष की सदस्यों के प्रति विशेष आभार-प्रदर्शन करती है और सुधा के प्रति वह बेहद संवेदनशून्य और लापरवाह है। यहाँ तक कि सुधा के प्रति व्यवहार में छोटी-छोटी बातों में भी लापरवाही बरतने का वह हौसला रखती है। एवं अपनी इच्छा थोपने की किसी भी कोशिश से गुरेज नहीं करती सुमोना। मगर हुर्रत, इज़ाबेला और गुलशनआरा को देखकर तो उसे लगा मानो उसकी निकली हुई आँखें वापस आ गयी हों, या उसके निकलते हुए प्राण अब उसके शरीर में वापस स्थिर, प्रतिष्ठित हो गये हों। 'वाह सुमोना।'

सुधा ने वेदना की एक लम्बी साँस खींची और आ-अन्त:करण मौन हो गयी। और धीरे-धीरे उठकर गाड़ी की तरफ उन चारों के पीछे-पीछे बढ़ने लगी। सुमोना का अपनी लटों को मस्ती में आगे-पीछे झटकाना उसे मानो किसी जिद से भर देता था तथा उसके भीतर का मौन धीरे-धीरे मानो किसी विस्फोट के रूप में आकार लेता जा रहा था।

'यह विस्फोट होगा?'

'हाँ, यह विस्फोट जरूर होगा।'

उसके भीतर कौन होता है जो यह विश्वास जताता है और जताये हुए विश्वास की ताईद भी करता है।

❑❑

सुमोना अपना सप्ताह भर का कार्यक्रम क्रमवार बयान कर रही थी। वह भी सुन रही थी मगर शब्द-अर्थच्युत। सुमोना साथ ही यह भी बताने लगी कि पाँच वर्ष पूर्व से उसने कैसे खुद को इस शोध-कर्म में लगा दिया और तब से पीछे नहीं मुड़ी। वह ऐसे सारे वृत्तान्त बताये जा रही थी मानो कश्मीर अब मात्र उसके ज्ञान के अन्तर्गत की बात हो, शेष कोई भी कश्मीर की समस्या को नहीं जानता। सिर्फ वह जानती है। शेष किसी को देखना नहीं आता, सिर्फ वह देखती है या देख सकती है। और देखा हुआ समझती है। शेष किसी को भी देखा हुआ समझ में नहीं आता।

"आज शाम हमें बारामूला जिले से जल्दी लौटना होना, उसके बाद मुझे ज़े. के. एल. एफ. के यासीन मलिक का इण्टरव्यू भी लेना है। वह डाउन-टाउन में रहता है न। मैं कुछ शॉलें भी खरीदना चाहती हूँ। वह सस्ती शॉलें दिला देगा।"

"हाँ, बेचारा एक ही गुर्दे पर जिन्दा है। हाय खुदाया कौम की खातिर लड़ने वाले को कुछ नहीं मिलता...सिर्फ थूकें मिलती हैं, बस थूकें और कुछ भी नहीं...हाय वही उसे मिली। बेचारा। बड़ा काम किया उसने और बाद में उसके ही लोग उसे दगा दे गये।" हुर्रत बोली।

"क्यों दगा दे गये... ।" सुधा का हृदय हुर्रत की बातों से तेज-तेज धड़कना शुरू हुआ था और कानों में एक-एक शब्द उबलते हुए तेल की तरह पड़ता चला जा रहा था।

"अरे मुद्दा ही हाइजैक किया...तो और बरतरफ...। इसको क्या मिला भला?" हुर्रत ने सुधा के प्रश्न का उत्तर दिया।

सुधा के कान पूरी तरह से उबलते हुए तेल से गलकर बह गये थे...हृदय अब था नहीं। मृत था। हृदय की बारम्बार मृत्यु और इस बार जैसी कठिन इससे पूर्व नहीं।

'ओऽफ्...! हुर्रत। हुर्रत तुम्हारी जुर्रत। सचमुच...सचमुच। हुर्रत तुम्हें पता होना चाहिए कि मैं भी हूँ यहाँ। यासीन मलिक की गायिका तुम हो। तुम क्या गा रही हो कि उसने मासूम, निर्दोष, निहत्थे, जो आजादी के तुम्हारे संकल्प में कहीं भी कोई विघ्न नहीं थे, को मौत के घाट उतारा। यही थी तुम्हारे एक गुर्दे पर जी रहे यासीन मलिक की कुर्बानी?...हाँ जीवट...जीवट था क्या यही? कैसा जीवट भला? कौन-सा महान काम है निहत्थे...शान्तिप्रिय भट्टों को मारना? क्या कमाल किया हुर्रत उसने। मैं तुम्हारे संग हूँ इस क्षण। क्या तुम हत्या को हत्या नहीं मानते? मैं यह किस देश में रह रही हूँ? किस कायर देश में। जहाँ यासीन मलिक जैसे हत्यारे छुट्टे घूम रहे हैं, या जब कभी बन्दी होते हैं, तो राजनीतिक और इज्जतदार बन्दी कहलाते हैं। गुर्दे के रोग के बहाने जेल से मुक्ति पाते हैं...भारत सरकार के पैसे पर अमेरिका जाकर भारत सरकार के ही धन से इलाज कराते हैं, और विदेशों में अपने विघटनकारी कार्यक्रमों की सम्बन्धित बैठकें भी, ताकि विश्व के मुसलमानों को एकजुट करके काफिरों के विरोध में खड़ा करें। काफिर हैं कि पैसा भी देते हैं, मौका भी देते हैं, मुक्ति भी देते हैं। उनकी हत्याओं पर उनके लिए तालियाँ बजा-बजाकर वाह-वाह भी करते हैं...और भट्टों को मारने पर मानदेय और श्रेय यानी दौलत और शोहरत दोनों देते हैं। जिसका इण्टरव्यू अभी-अभी प्रतिष्ठित अखबार टाइम्स ऑफ इण्डिया के उसी कॉलम में छपा था जहाँ उन लोगों के साक्षात्कार छपते हैं जिन्होंने जीवन में कुछ असाधारण उपलब्धियाँ प्राप्त की हों। वह साक्षात्कार लेने वाली भी सुमोना धर ही थी। आज शाम को भी उससे पुनः इण्टरव्यू करने सुमोना धर ही जा रही है। सुमोना के गर्व का ठिकाना नहीं। पर अखबार में नहीं छपता कि सुमोना यासीन मलिक से सस्ती

शॉलों के अलावा और क्या-क्या प्राप्त करती है। आज का इण्टरव्यू पता नहीं किस अखबार के लिए है।

'मेरे देश के नेताओ! लाख लानतें तुम पर। लाख लानतें। वोट के लिए जिबह को जिबह न कहने वाले जल्लादो! मेरे देश के पत्रकारो! बड़े-से-बड़े अखबारों में छपने के लिए अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों के विरोध में झूठ के निर्माताओ...अरी ओ सुमोनाओ! लाख लानतें हैं तुम पर भी सुधाओ। लाख लानतें हैं तुम पर, तुम कुछ कर ही नहीं पाती हो...कह ही नहीं पाती हो कुछ। सुनती हो, चुप रहती हो, और इनके दल के साथ घूमती हो। ले-देकर सुमोना को भी सहती हो और अपनी आत्मा को कहती हो, कोई भी शब्द-जाल में बन्द झूठ।' सुधा का अन्तर्मुखी विलाप था।

"सब रोजेदार हो?" सुमोना ने उनसे पूछा था।

"हाँ...और क्या।" हुर्रत सबकी तरफ से बोली थी।

"आज मेरा भी मन है रोजा रखने का। रास्ते में खाने के लिए कुछ मिलेगा भी नहीं। इसीलिए।"

बेहतर है रोजा रखो और इफ़्तार के समय खाने-पीने का सब सामान मिलेगा। तब तक हम वापस श्रीनगर भी पहुँच जाएँगे।"

सुधा फिर से अपमान का घूँट पी गयी। सुधा को वह अपने कार्यक्रमों में हामी भरते हुए ही मानकर चलती है। सुधा को ऐसा ही महसूस हुआ यानी कि सुमोना ने ऐलान किया कि वह आज रोजा रखेगी तो सुधा गद्‌गद होकर कहेगी...हाँ सुमोना मैं भी आज रोजा ही रखूँगी...तुम्हारे साथ...इज़ा, हुर्रत, गुलशन इत्यादि के साथ। सुमोना की कामना पूरी हो, इसके मद्देनजर सुधा को भी आज रोजा रखने की घोषणा करनी चाहिए।

मगर सुधा ने दूसरा फैसला लिया कि वह चुप रहेगी। बोलेगी नहीं। खाना-पीना मानो नहीं मिलेगा रास्ते में, मगर फल तो मिलेंगे ही। सेब तो मिलेंगे ही। फल क्या नहीं खाये जा सकते। अब वह जिद से फल खरीदेगी और सुमोना को बता देगी कि उसका रोजा उसी को मुबारक, वह नाहक में 'अच्छी बच्ची' या 'धर्मनिरपेक्ष हिन्दू' नहीं बनना चाहती। सुधा सोच की रौ में सोचती रही, ? जैसे एक व्यक्ति का भाग्य होता है, उसी प्रकार एक समुदाय का भी भाग्य होता है। जरूर होता है। इस समुदाय का भाग्य देखो। ये कत्ल करें तो मुआफी मिलती है और पैर पकड़कर प्रार्थना की जाती है। 'मत करो बच्चो! शरारते मत करो। अच्छे बच्चे हो तुम। क्या चाहिए तुम्हें...बताओ तो सही। सब कुछ मिलेगा तुमको।'

'हम कत्ल होते हैं और वे कहते हैं चुप रहना...उफ् तक नहीं करना...।

कुछ नहीं होता, मर गये तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा, सहो, सहना सीखो। बड़प्पन से काम लो।

'पता नहीं दुनिया का व्यापार इस तरह से क्यों ज्यादातर चलता हुआ दीखता है नेताओं को, सामाजिक कार्यकर्ताओं को, शान्ति-कर्मियों को, पत्रकारों को, संवाददाताओं को, सूचनादाताओं को? क्या यह समुदाय-विशेष का भाग्य है? क्या पता वैसा ही कुछ हो।' सुधा को एक बार सुनी हुई एक बात याद आयी जो उसने सांख्यिकी विभाग में एक भट्ट से सुनी थी। वह भट्ट उस क्षण कम्प्यूटर में व्यस्त था...और व्यस्तता के दौरान ही बोला था—'अरे देखिए, क्या जबर्दस्त पैकेज मिला है भारत सरकार की तरफ से कश्मीर के आंतक-प्रेमियों को। वाह भई वाह।' सुधा उस समय प्रश्न की मारी हुई थी—पूछ बैठी...''ऐसा क्यों? क्यों करती है भारत सरकार ऐसा...मानो गुनहगार वही हो...क्यों करती है भारत सरकार इन्हें प्रसन्न चाहे काँग्रेस हो या बीजेपी...और ये हैं...खा पी के दुम हिलाते हैं...कि लो जी हम तो तब भी भूखे के भूखे हैं...इसका आखिर क्या कारण है भई?'

''इनकी किस्मत है...आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं...किस्मत है इनकी।''

''किनकी किस्मत है?''

''कश्मीरी मुसलमानों की किस्मत है।'' वह ऊँची आवाज में बोला था।

शायद सुधा को लगा था कि उसे ऐसा नहीं बोलना चाहिए था। 'हमें' ऐसा मानकर नहीं चलना चाहिए, धारणा थी सुधा की मगर अब वह भी मानने लगी है।

❑❑

गुलामा ने गाड़ी की स्टेयरिंग सँभाला और एक झटके के साथ एक और लोक की तरफ चल पड़ी गाड़ी। सारे जीव उस लोक के हैं। सुमोना उस लोक की शोधकर्त्ता, संवाददाता और सुधारक होने का दम भरती है। बाकी सब-की-सब उस लोक की निवासी हैं। वह कौन है? हाँ तो फिर वह कौन है? फिर वही सिर्फ यह यात्रा अलग से क्यों कर रही है। ऐसे कि मानो अपने सभी पिछले जन्मों की गाथाएँ जानती हो और उन जन्मों में समानान्तर रूप से चल रही हो। अगर कृष्ण उसे मिलेंगे, तो नहीं कह पाएँगे यह बात, जैसे कि कही थी अर्जुन से। और वह आत्मालाप में लीन है। 'हे कृष्ण! मैं तुम्हारे बाद दूसरी हूँ। मेरा पूरा समुदाय तुम अकेले के बाद दूसरा है जो अपने पूर्वजन्मों को जानता है। हाँ हाँ मैं भी अपने सब पूर्वजन्मों को बखूबी जानती हूँ। हे यादव! मगर मैं मनुष्य हूँ और तुम ईश्वर हो। एक अदना मनुष्य। मैं कैसे साबित करूँ यहाँ, इन रास्तों में, इन रास्तों के गाँवों में मेरा बार-बार जन्म हुआ है और बार-बार विलय हुआ। बार-बार जन्म

हुआ, फिर से विलय हुआ। मैं कुण्ठित हो रही हूँ इनके सामने उसी तरह जिस तरह तुम अर्जुन के सामने कुण्ठित हो उठे थे और तुम्हें अपने सारे भेद बताने से कोई चारा नहीं रहा था।

'हे कृष्ण! तुम ईश्वर थे। तुम्हारे पास जादू था, तुम्हारे पास ताकत थी, तुम्हारे पास शब्द थे और तिस पर तुम पुरुष भी थे। तुम्हारे पैरों के नीचे समग्र धरती थी।

'मैं मनुष्य हूँ प्रभु! मेरे पास कुछ नहीं है। न शब्द। न ताकत। न कोई फरेब, छद्म। न कूटनीति। तिस पर मैं स्त्री भी। मैं क्या करूँ। मेरे पास तो आँसू भी नहीं, ऐसी नायाब स्त्री हूँ मैं प्रभु। हे कृष्ण! मैं साबित करना चाहती हूँ कि यह मेरी धरती है। मैं साबित करना चाहती हूँ इन मजे लूटती सहयात्रियों के समक्ष कि यह जो मिट्टी है इस नगर की, यह मेरे कई जन्मों की...या अनगिन जन्मों की अनगिन कायाओं की राख है। लेकिन मैं कैसे करूँ साबित अब? इस प्रकार की पीड़ा कितनी दारुण होती है प्रभु! प्रभु मेरा साथ दो। मुझे अर्जुन की तरह उकसाने की जरूरत नहीं, मैं निर्णायक युद्ध की अनिवार्यता समझती हूँ मेरे इष्ट! बल्कि जीती हूँ हर क्षण। अतः आओ और मुझे बताओ कि मैं क्या करूँ।

'प्रभु, मैं भी तो तुम्हारी भक्त हूँ, हे कृष्ण! मनसावासिन् क्वासि यादवनन्दन? इमां अवस्थां सम्प्राप्तम् अनाथं किम् न रक्षसि?

'इस अवस्था में। इस विवशता में, इस निरीहता में हे प्रभु! हे गुडाकेश के सारथी! मेरी मदद करो। मेरे जीवन का रथ खींचो। मेरी तरफ रहो। तुम्हारे पाण्डवों ने इस धरती पर घर बनाये थे। अभी तक मौजूद हैं। खड़े हैं। प्रमाणित करने की जरूरत नहीं। प्रभु मेरे प्रमाण बनो। बोलो क्या करूँ?'

❑❑

गुलामा ने बाईपास का रास्ता पकड़ा और अब वह नारबल की नजदीकी प्राप्त करता जा रहा है। नारबल यानी अग्निबल। कुछ कहते हैं नरबल।

दागेजिगर-से दिख रहे भट्टों के घर। सुधा देख रही है आत्मालाप से उबरकर। एक महायुद्ध से भी भयावह भीतर-बाहर। वह सोच रही है घरों को देखकर—जरूर इनको देखना, इनका उनके बीच होना, इनको एक ग्लानि, एक अपराध-बोध से भर देता होगा। 'आखिर आत्मा है भई। आत्मा न हिन्दू है न मुसलमान। आत्मा मनुष्य है भई। उन्हें कहीं परेशान करता होगा भीतर-ही-भीतर इन घरों का उनके घरों के बीच होना। कोई मानवाकार उन्हें दिखता होगा और भयभीत करता होगा।' और सुधा कामना करने लगी—'ईश्वर करे नूर मुहम्मद ने जो कहा वह सत्य हो। ऐसी घटना हर उस घर में हो जिसे ये लोग लोभ की नजर से देखें। जिसे हड़पने की इनकी नीयत बने।

'हचकुकिल की तरह हर घर से उस घर को हथियाने वाला, खोटे सिक्कों में खरीदने वाला गिरे। उसकी हड्डियों का चूरा बने। प्रभु इतनी मदद तो करो हमारी। हो सकता है प्रभु जी इतना करने से ही हम कभी यहाँ के लिए अनिवार्य बन जाएँ...हैं न? हो भी सकता है न। बड़ी बात क्या है। प्रभु, तुम कुछ भी कर सकते हो।'

नारबल के स्थान पर एक बड़ा-सा साइनबोर्ड इस गाँव के आरम्भ पर लगाया गया है 'अली आबाद'। सरल, सहज उर्दू सुधा को पढ़नी आती है, पर वह भी दु:खी होने के लिए? सोचा उसने कि, 'काश मुझे उर्दू पढ़नी ही न आती...इस अतिरिक्त दु:ख से बचती मैं। अच्छे खासे नारबल को नारबल रहने देने से क्या फर्क पड़ता भला? क्या बिगड़ता? कितनी विद्रूप है जेहाद का यह रूप? पर सुमोना को दिखाई देगा क्या? नहीं। दिखेगा भी अगर तो उसे आँखें मूँदनी हैं। इस धर्म के लिए बहुत छूट दी गयी है।—इनकी किस्मत है।'

गाड़ी चल रही है। आस-पास के मिट्टी के पहाड़ सुधा को पागल कर रहे हैं। मानो सिर्फ सुधा जानती है उन पहाड़ों की मिट्टी का माधुर्य। मानो पहाड़ न होकर मिट्टी के बताशे हों। सुमधुर मिट्टी। गुड़ जैसी मिट्टी। क्या ऐसी मिट्टी इस पृथ्वी के किसी अन्य टुकड़े की होगी? नहीं हो सकती। उसने चाहा तापर में गुलामा से कहे—रुको। ताकि कुछ मिट्टी ले लूँ। कितनी स्वादिष्ट मिट्टी। कितनी अनमोल मिट्टी! कितनी दुर्लभ मिट्टी। कितनी अद्‌भुत-वर्ण मिट्टी। किसी को परन्तु इस रहस्य की खबर नहीं। इस मिट्टी के एक-एक कण से कई किस्म के अनाजों, दालों, फलों, केसर और फूलों की एक साथ ही गन्ध आती है। ''यह सिर्फ मैं जानती हूँ सिर्फ मैं। भरि भरि बानअ् तअ चवान नुं कांह...कहती है न ललद्यद कि हर पात्र आकण्ठ भरा है पर पीने वाला ही कोई नहीं। पीता ही कोई नहीं। इस मधुशाला के होने का रहस्योद्‌घाटन ही नहीं हुआ किसी पर। अभी तक! कि पी लें इस मधु को। इस शराब को कोई नहीं छूता कोई भी नहीं छूता।'

हाँ, यह उसके करोड़ों जन्मों के शरीरों की राख है। यही सत्य है।...सुधा कालातीतता में क्षण भर विलय होती जा रही है—'हे कृष्ण। तुम कहते हो आत्मा नश्वर नहीं। अरे बन्धु! मैं तो दावे से कहती हूँ कि शरीर भी कतई नश्वर नहीं...बिल्कुल नश्वर नहीं। देखो सुरक्षित हैं इस मिट्टी में मेरे करोड़ों शरीर...करोड़ों करोड़ों सुन्दर शरीर। अली आबाद। हाँ अली आबाद। नारबल बिल्कुल नहीं। सिर्फ अली आबाद।''

❑❑

''अरे यह तो बहुत पुरानी बात है। बेहद पुरानी दास्तान। यह तो टेररिज्म के

शुरूआत में ही किया गया था। नारबल का अली आबाद।'' हुर्रत बोली।

''लेकिन हुर्रत। मुझे नहीं लगता कि नारबल नाम कुछ ऐसा हिन्दू नाम था या वैदिक नाम था। कोई आपत्तिजनक बात इसमें ऐसी थी कि कट्टरपन्थियों को इसे बदलने की जरूरत महसूस हुई। फिर ऐसा क्यों? आखिर आग को नार वे भी बोलते ही होंगे। इसका मतलब है कि हर गाँवों के नामों की दुर्दशा की गयी होगी...इसी को कहते हैं नामोनिशान मिटाना। है न?'' सुधा ने कहा।

''अब इस बात को तुम रोक कैसे सकती हो बोलो?'' सुधा की स्पष्टवादिता को हुर्रत ने ठीक धक्का पहुँचाया।

''नहीं...नहीं...मैं रोकने की बात नहीं करती हुर्रत...मगर...पर...क्या यह दु:खद नहीं...आखिर ये गाँव हमारे भी तो हैं...आपको मौन सहमति देनी चाहिए क्या? यह तो दु:खद है। हृदय-विदारक है...क्या यह धार्मिक है? है यह किसी भी तरह धार्मिक...यह इस्लामीकरण?...हुर्रत? मैं...मैं...भला क्या कर सकती हूँ। मैं तो यह भी नहीं साबित कर सकती कि मैं और यह मिट्टी वास्तव में भिन्न नहीं।'' और अन्तिम वाक्य सुधा ने स्वयं से कहा। सुधा का नाम के प्रति विरोध सुनकर हुर्रत कुछ खीझ-सी उठी थी और आँखें मूँद कर चुप हो ली थी।

और सुधा पुनः स्वलीन हो गयी, 'वह देखो। फिर से वे अद्‌भुत पहाड़। पहाड़ों की एक और श्रृंखला। इनकी एक मुट्ठी से ही तो बनी हूँ मैं। हुर्रत किसे बताऊँ अपना दु:ख। कैसे कहूँ कौन हैं वे शब्द जिनमें बताऊँ कि मैं कौन हूँ। कौन हूँ मैं हुर्रत?'

❑❑

वह जौ की तरह उगी थी काकनी के वटू में। जौ जैसी पवित्र नहीं हो, पर जौ जैसी ही अपने-आप सहज।...और फालतू...। अकाल में खाद्य—वैसे त्याज्य। यदा-कदा पूज्य।

तब जब वह घुटनों चली, बाहर खिली धूप थी। बेहद खिली। इतनी खिली और खरी कि सोना मढ़ा गया हो पेड़ों के पत्तों पर, तनों पर, घास की छतों पर, दीवारों पर। पेड़ थे सफेदे के कद्दावर। हरे-हरे पत्तों से लैस...चमकदार...मालिश किये...नहाये...धुले, सजे-धजे, चिकने और अद्‌भुत आकारों के। उसका मन उसी समय गाने को आतुर हो उठा था। पता नहीं...कहाँ-कहाँ से होते हुए अब वह यहाँ आयी है।

कितना अद्‌भुत है सब कुछ। यह मिट्टी की सुगन्ध-सनी सीलन। यह धूप, ये पत्ते...ये सफेदे...यह काकनी अत्यन्त रूपवान स्त्री। उसकी माँ की माँ। जो हँसती तो और और ऊष्मा फैलती। कोई शब्द बोलती तो मानो कितनी स्वर्गों के किवाड़

खोलती। काम करती तो पता नहीं कितने नये कायनात बनते।

तब उसी शाम पेड़ों के जाने पहचाने पत्ते सरसराये। हल्की मद्धिम रोशनी थी, चाँद की। जो कि खिड़की के रास्ते से आ रही थी। काकनी के वट्टू की खिड़की खुली थी और वह स्वयं खिड़की पर ऐसे बैठी थी जैसे क्षण-भर के लिए चिड़ियाँ इधर-उधर निहारने के लिए बैठती है।

काकनी अन्दर चूल्हे में जल रही आग के सामने थी। पत्तों का सरसराना ऐसा था मानो वह अपने होने के समन्तात फैल रही हो। अनियन्त्रित हो रही हो, कहीं किसी तरफ आगे बढ़ रही हो।

फिर उसने सोचा, 'अगर रात्रि है यह तो फिर यह प्रकाश? आकाश में ये दीप? ये कौन जलाकर जाता है। यह जिज्ञासा उसने अभी-अभी काकनी से की थी कि आकाश में ये चमकते बिन्दु क्या हैं काकनी?'

''दीप जला देते हैं भगवान।''

''भगवान कौन?''

''है कोई। आकाश उसका घर है...वैसे पृथ्वी भी उसका घर है...पर वह आकाश पर रहता है और ये उसके घर के दीपक हैं। रात में अँधेरा होता है न। हम भी तो दीपक जलाते हैं न। वह भी जलाता है ये तारे। आज वह ताक में रही थी। एक-एक तारे को उसने दृश्यमान होते हुए देख लिया पर दृष्टि से पकड़ न पायी इन्हें जलानेवाले को।''

पुनः काकनी से जिज्ञासा की। उसने कहा, ''वह नहीं दिखता।''

''क्योंकि उसके लिए आँखें काफी-काफी बड़ी और ताकतवर होनी चाहिए, मानो आँखें नहीं, एक विराट जाल हो। तब वह कहीं किसी की आँखों के जाल में फँसता है।''

काकनी गुल, हन्द, हाक, राजमाशबीन, सोचल, वोस्तहाक और अन्य शाकों का सतसोस पका रही है। चूल्हे के दूसरे मुँह पर है चावल की हँडिया, जिस पर उसके और काकनी के लिए चावल पक रहे हैं।

वह अब खिड़की की चौखट से हटकर रसोई की चौखट पर आकर खड़ी थी और देख रही थी काकनी के चेहरे को, जो चूल्हे में जल रही आग के प्रकाश में दमक रहा था। बीच-बीच में लकड़ियाँ चटक उठतीं और चिनगारियाँ काकनी के चेहरे पर भी बुझतीं और कुछ आस-पास के अँधेरे में फैलकर भी।

तत्क्षण उसे आकाश में तारों के दीप जलाने वाले का विचार आया और विचार आया कि हो न हो वह काकनी जैसा ही होगा। या क्या पता वह भी कोई काकनी ही हो। पर वह तो उसे पुरुष बताती है। पर हो न हो वह भी काकनी है। आकाश की काकनी और यह रही उसके पास वट्टू में उसकी काकनी। दोनों

में भेद नहीं हो सकता। क्या पता वह भी अब तारों के दीप जलाकर रसोई में सप्तमिश्रण यानी सतसोस का सब्जी बना रही हो। चावल पका रही हो।

यह उस शाम की बात है जब उसकी बुद्धि पहली बार अन्दर से बाहर उड़-उड़कर जाना शुरू हो चुकी थी और मन की सृष्टि उसने देखी थी।

❑❑

वह खिन्नता, व्याकुलता से अब परिचित होने लगी थी। तुलनात्मक मन उदय हो गया था उसमें। उदासी, उसे लगा, मानो वायु के झोंकों की तरह नृत्य कर रही हो। उसकी खोज भी शुरू हो चुकी थी। इन व्याकुलताओं के कारणों की खोज करने की। वट्टू में हुए अचानक अँधेरे के कारण विशेष रूप से उसे बुद्धि का आकार कुछ तब्दील-सा लगा। मन को लगा कि आकाश की काकनी भी धरती की उसकी काकनी की तरह ज्यादातर मन के प्रकाश से ही काम चलाती होगी सम्भवतः।

ताऊ का घर! ताऊ का घर माने भाईजान का घर। सिर्फ सौ कदम दूर। उसी का अपना घर। चमक रहा होगा। ऊपर से नीचे तक बिजली के बल्बों से। हर जगह चमकदार भाईजान का घर। लोग। बीस-पच्चीस परिवारजन। हँसी-ठट्ठा। बातें। खाना-पीना। आनन्द। मट्ठा-दही। गोरस। मक्खन। सब कुछ। सुबह उठकर शीरचाय और चावल के आटे की रोटी। स्वाद-पुंज।

यह काकनी का घर। उदास-पिंजर। है क्या यहाँ? उदासियों से प्यार करनेवाली काकनी। आसमान में दीप जलानेवाली अदृश्य काकनी की मनजलाऊ खोज, सरसराते पेड़, टिमटिमाती हुई चिमनी का बेहद धुँधला, मरियल प्रकाश। यह तो कारागार है। जो काकनी ने अपने लिए बनाया है। जहाँ काकनी ऐसे रहती है मानो सिंहनी माँद में रह रही हो।

अभी वह वे चावल एक थाल में डालेगी ऊपर से गुल-हन्द वाला वह सतसोस की सब्जी भी उसी पर उँड़ेल देगी। तब वह हुक्म देगी—'खाओ गर्म-गर्म।'

तब उसे ताऊ के सम्पन्न घर की याद आएगी। याद आएगी शिद्दत से। मारक याद। सिर्फ सौ कदम दूर की याद।

❑❑

और दूसरे दिन जब वह बाहर निकलकर आयी तो देखा कि काकनी के वट्टू के दायें और बायें बिना छत के ढाँचे थे। दीवारों में खिड़कियों का शून्य था। कम-से-कम दो-दो फुट ऊँचा पलिन्थ था। उसे उनका होना लगा ही नहीं कि वे खँडहर

हैं। लगा कि उसके (या उन सब बच्चों के) खेलने के लिए स्टेडियमनुमा जगह बनायी गयी है। वह बेहद प्रसन्न हो गयी थी। तब धूल, मिट्टी की परवाह किये बिना, बगैर बिन्दु और शीला की मदद के ऊपर चढ़ गयी थी। कमरों के तलों पर हरी-हरी दूब उगी थी और बीच-बीच में हेंद के पीले-पीले नफीस फूल भी।

खिड़की से जब वह देखने लगी थी तो तितरी से कहा था, 'तू दूसरी तरफ हो ले...दूसरी खिड़की पर...और मुझसे बातें कर...जैसे काकनी और तुम्हारी माँ करती हैं। मान ले यह मकान है। मान ले यह मेरा कमरा और वह तुम्हारा कमरा। यह मेरी खिड़की और वह तुम्हारी खिड़की। उसने आज तितरी की मदद से अभूतपूर्व खोज की थी। बीच-बीच में वह जाती और काकनी को अपना चेहरा दिखा आती, कि देखो मैं कहीं दूर नहीं गयी खेलने। बस यहीं पास में खोज लिया है मैंने एक खँडहर। एक घर। एक स्टेडियम। तुम्हारी हुक्म-उदूल नहीं। मैं हूँ यही पास में ही एक पुराने, टूटे ब्रह्माण्ड में। अलग लोक में। नये नक्षत्र पर, जो आसमान से टूट कर गिरा—अमूल्य। पर मूल्यहीन।'

सब लोग गये। बिन्दु भी। तितरी भी। पर वह वहीं थी। शायद इस नक्षत्र, इस टूटे नक्षत्र से उसे दिखेगा तारों के दीप जलानेवाला। पर उसकी आँखें छोटी हैं। काकनी कहती है तो सच ही होगा। वह इन आँखों से नहीं दिखता। कभी भी। किसी को भी।

फिर अगले दिन उसने और मीना ने मिट्टी की हँड़िया, कड़ाही, पानी की नलकेदार नारियाँ, तगारियाँ, वारियाँ सब कुछ वहाँ करीने से रखा है। कल वे चूल्हा बनाएँगी और फिर जीवन का प्रारम्भ होगा। मानो महाप्रलय के बाद फिर जीवन से भरे युगों के प्रारम्भ का प्रारम्भिक क्षण। घास की कालीन वहाँ है ही। बाहर देखने की खिड़की भी है। तारे जलाकर रोशनी करती ही है कोई आसमान की काकनी। जिसे धरती की काकनी भगवान नाम से पुकारती है।

काकनी ने लकड़ियों पर पानी छिड़का। शुभ-शकुन-सम्मत मुद्रा में अधजली लकड़ियाँ चूल्हे के ऊपर रख दीं। अंगारे सारे निकाल-निकालकर जमींदोज हाँडी में डाल दिये। चूल्हे के दोनों मुँह पोंछ दिये और फिर समूचा चूल्हा लीप दिया।

वह बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही थी। भाईजान के घर के भोजन के बारे में सोचना बन्द कर वह गर्म-गर्म गुल-हन्द समेत सप्तमिश्रण या सतसोस का स्वाद चिन्तन में रखे परेशान है। यह काकनी के पास इतना धैर्य कहाँ से आया है? काकनी के आनन्द के केन्द्र कैसे हैं? आश्चर्य! क्या ऐसे भी आनन्द के स्रोत हो सकते हैं? नीम-अँधेरा और भूख। पका हुआ भात और सब्जी। परन्तु खाने की कोई उत्सुकता नहीं। काकनी ने चूल्हे को लीपा तो अत्यन्त छेदती हुई मिट्टी की

सुगन्ध सुधा के नथुनों में गयी। उसकी व्याकुलताओं, भूख और भय को उपजाने वाले और उन्हें तीक्ष्ण करनेवाले प्रश्नों के उद्‌भव में चार चाँद लगा गयी।

'चलो माला...अब खाएँगे हम खाना...तुमको भूख लग गयी होगी...है न गबरू...।'

उसकी आँखों में कुछ चमक, हृदय में कुछ व्याकुलतापूर्ण आनन्द और हलक में कुछ सुख का वाष्प मरोड़ की तरह घुमड़-सा उठा जैसे अन्दर-ही-अन्दर चुपचाप बिजली कड़की, कुछ रहस्यमय दिख गया, अँधेरे में।

अजीब स्वाद भर देती है काकनी इस सतसोस में, इन चावलों के भात में। जैसे चावल न होकर अखरोटों की गिरियाँ हों। काकनी उसे छोटे-छोटे पिण्ड खिला रही है। चिमनी के मद्धिम प्रकाश में काकनी के हाथ पर लिखा कठोर आदेश देख रही है और चुपचाप गर्म-गर्म निगल रही है। काकनी उसे खिलाकर फिर खुद निगलने लगती है सतसोस से मिश्रित भात के पिण्ड।

❑❑

चीजों को समझने के सूत्र सीधे हमारे सामने नहीं...कहीं दूर हैं आड़ में...। सुधा का बालमन सोचता है। और सोचता है शहर में अपने घर के बारे में कि 'पापा माँ लेटे हुए बातें कर रहे होंगे। नया घर, बड़ा और सुन्दर घर बनाने की बातें। दीप्ति गहरी नींद सोयी होगी। माँ के साथ। माँ उससे कितना प्यार करती है न। मुझे नहीं करती है। दीप्ति कभी नानी के पास नहीं आती। मैं ही आती हूँ। अकेली और उदास होने के लिए। फिर बिन्दु भी अगर मेरे मिट्टी के सारे खिलौने नहीं तोड़ती तो काकनी को भी मुझे अपनी कोठरी में बन्द करने का बहाना नहीं मिलता।'

वह सोचती है कोई खिड़की खटखटा रहा था। सुधा ने क्षण-भर में सोचा—भगवान करे भाईजान के घर से कोई आ गया हो। इस समय वह सारे भय भूलकर, खिड़की के पास जाकर तपाक से खिड़की खोल बैठी। शायद वह भाईजान के हाथ की खास ठुकठुक पहचान गयी थी। भाईजान खिड़की खुलने के अन्तिम निमिष में खाँसे भी थे। शायद जताने के लिए कि 'मैं हूँ।'

उसने खिड़की से ही भाईजान का स्पर्श पाया। उसके स्पर्श में पापा का स्पर्श छिपा है। उनकी शक्ल कितनी ज्यादा पापा से मिलती है...उनका बात करने का ढंग...गले से निकली कुछ विशिष्ट आवाजें...जैसे पापा बोल रहे हों,...अचानक उस पर प्रसन्नता का एक घट उँड़ेल दिया था प्रकृति ने।

"तू आया नहीं गबरू...मुझे गाना नहीं सुनाना था?..." भाईजान ने पूछा।

"काकनी ने जाने नहीं दिया आज।"

वह धीमे स्वर में बोली। मानो भाईजान के कान में कह रही हो। काकनी को पूरा यकीन था कि वह ऐसा कहेगी। काकनी भाईजान को अन्दर आने को नहीं कहती...आखिर वह समधी ठहरा। दामाद का सबसे ज्येष्ठ भाई। पुत्री का ससुर समान।

''दिन में रो रही थी। बिन्दु ने आकर इसके सारे खिलौने तोड़ डाले।'' वह बिन्दु की शिकायत लगा रही थी जो कायदे से सुधा को लगानी चाहिए थी।

''तो नाराज है हमसे।'' यह सुनकर उसके आत्मसम्मान में चार चाँद लग गये। उसने रूठने की मुद्रा बनायी मगर मन में भाईजान से कहा—'भाईजान मैं तो आपसे जरा भी नाराज नहीं...पर काकनी चाहती है न कि नाराज हो जाना चाहिए मुझे...बस उसकी आज्ञा का पालन कर रही हूँ।'

''चलेगी बेटा मेरे साथ घर।'' भाईजान ने फर्ज निभाया।

''नहीं, अब खाना खाया है। सोएगी। मैंने बिस्तर भी लगाया है।'' ओह काकनी का चेहरा सुधा के देखने में कितना सख्त धारदार लोहे-सा आया।

''शहर से कुछ खबर-वबर आयी।'' अब बात समय पर आ गयी। इसलिए काकनी ने भाईजान से यह प्रश्न पूछा।

''ठीक ही है यूँ तो पर सुना है कि बटमालू में कबाइलियों ने फिर से अड्डा जमाने का यत्न किया है। सरकार को इसकी खबर मिल गयी है। अब वहाँ की बस्ती जला दी जा रही है...क्योंकि हथियारों का जखीरा वहाँ है और, इसलिए हथियारों के लिए इस बस्ती को मकानों समेत राख करना जरूरी है।''

''वह तो सरकार की द्यानत है, पर लोगों के घर और लोग?''

''नहीं, नहीं लोग निकाले गये हैं...वे कुछ दिन करीबी रिश्तेदारों के पास रहेंगे...फिर सरकार उनके लिए क्या न करेगी।'' भाईजान बोले थे। उनकी आँखों में सुधा ने चिमनी के थरथर प्रकाश में काकनी की मानवीय पक्ष की सोच के लिए सम्मान की विशेष दीप्ति देखी थी।

''चलो ठीक है...पाकिस्तान से लड़ते रहना तो एक लगातार का कर्म है। जागते रहना है, तभी जी सकते हैं।''

''और क्या खबर है?''

''बाकी शहर में शान्ति है। सब ठीक है। चिन्ता की क्या बात है। रविवार को पूरण भी आ ही जाएगा।''

''हाँ, मुझे लगता है सरकार की इस कठोर कार्रवाई से अलफतह वाले भी दब जाएँगे।''

''यकीनन अलफतह ही तो दब जाएगा। यह हथियारों की जखीरा अन्दोजी वही तंजीम तो कर रही है।'' भाईजान ने खोलकर हालात की व्याख्या की।

"तो क्या राजा बेटा नहीं आएगा?" भाईजान अपने उद्देश्य पर वापस आये।

"राजा बेटा हमसे रूठा है...क्या है? सुरमई उजाला है। और क्या है?...चम्पई अँधेरा है। बोलो, हाँ बोलो।...शाबाश...चम्पई अँधेरा है...हाँ...।"

भाईजान ने सुधा का चुम्बन लिया और काकनी को नमस्कार कहके चल दिये। काकनी ने खिड़की बन्द कर दी। एक चोर निगाह से उसने दायें-बायें के खँडहरों, पेड़ों, आसमान की रंगत और तारों की पंगत पर घुमायी। आधा भय और आधा आह्लाद लेकर वह भीतर आयी और रजाई में दुबक गयी। इस रजाई में कितनी सीलन है। तोबा! यानी सीलन की तीखी गन्ध।

□□

जोलुर भी एक गाँव है इसी गाँव की तरह। मानो धरती इसी सीध में चलते-चलते एक जगह व्यथ के किनारे जोलुर हो गयी।

जोलुर फूलों से आपूरित धरती। इसी जगह कभी रामनाथ का जन्म हुआ था। नन्हा अंचल फूलों का झालर हो मानो।

श्री रामनाथ जोलुरी ने जन्म तो लिया पर खिल न पाया। धूल-धूसरित होता रहा। सतत निष्कासित होता रहा। आदि से अन्त तक। आदि में भी धूल अन्त में भी धूल। लेकिन निश्चित रूप से इस तवील धूलत्व के बाद उन्हें जरूर कोई स्वर्ग मिला होगा क्योंकि वह एक शान्त और चुप शहीद की तरह शहीद होते रहे आजीवन।

आफ़ताब जोलुरी के तीन पुत्र और उनके पैदा होने के बाद ही उन्हें जोलुर से जाना पड़ा।

उस दिन गनीडार आया। कुछ इलायचियाँ दीं और कहा, "आफताब राम। मुबारक हो। एक और भट्ट पैदा किया। क्या नाम रखा इसका?"

"श्रीराम। श्रीरामनाथ भट्ट।" आफताब ने सहमते हुए ही उत्तर दिया था।

"हाँ, नाथ-ही-नाथ हो रहे हैं। पण्डितों को इतने बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए। फसल काफी हो गयी है। लगता है काटनी पड़ेगी।" उसने हँसते हुए कहा।

"गनीडार क्या बक रहे हो? बधाई देने आये हो या फतवा?" आफताब ने एक सही गुस्से का इजहार किया।

"आफताब! तुम भी यार मजाक के आगे टिक नहीं पाते हो। गुर्दे रखो भई। मजाक-वजाक तो होता ही है जीवन में। कच्ची धातु के हो दरअसल। टिक नहीं पाते हो...अरे भई, इससे श्रीरामनाथ की उम्र बढ़ेगी।" गनीडार ने मजाक की आड़ ली।

आफताब एक जबर्दस्ती की हँसी हँस दिये और अन्दर-ही-अन्दर हिल गये। 'ये लोग जो कहते हैं वह इनके अगले कार्यक्रम का सारांश होता है।' सोचा उसने।

❑❑

फसल उस वर्ष खूब हुई थी। देगचियाँ तक धान से भर गयी थीं। तब पूरे मिट्टी के पाँच घड़े खरीदे थे आफताब ने और शिशिर खूब आनन्द का कटा था।

एक दिन हुदहुद की बोली सुनाई दी फिर दूसरे दिन कतिज यानी अबाबील की भी। तब एक खुशी की टीस उठ गयी, मौसम बदल जाने का और वसन्त के आने का रोमांच, यहाँ तक कि गृहदेवता के अन्दर तक भी। धरती को एक रूमानी रोमांच हो आया। बर्फ अभी भी काफी थी। छोटी कुल्या जो आँगन से जरा दूरी पर बह रही थी, पानी के वेग के कारण उसे शिशिर जमा कर रोक नहीं पाता था। बहुत ही छोटी-सी, नगण्य परन्तु जीवनदायिनी और वेगिल। किन्तु उसके किनारे भी अभी लदे थे बर्फ से।

आफताब बाहर निकल आये और खड़ाऊ की नोक से बर्फ के कड़ेपन को आँका। बर्फ की कड़क की शिद्दत से पता लगाया जा सकता है कि ये उसके पिघलने के लिए अभी कितना इन्तजार करना होगा। उसने देखा कि बर्फ विनम्र है। पिघलने को आतुर। जैसे कह रही हो—'आफताब! ऐसे क्यों कर रहे हो...बस जल्दी ही जा रही हूँ, अपने स्वामी शिशिर के साथ यह नगर छोड़कर।'

आफताब ने सिर ऊपर कर देखा—सफेदों को। सर्वप्रथम वसन्त के आने की जो सूचना देते हैं। देखा जैसे कुछ महीन-महीन, गोल-गोल आकार दिख रहे हैं टहनियों पर। क्या यह सचमुच है...या उसकी आकांक्षाओं में उसके मन से कुछ निकलकर टँग गया है सफेदों की टहनियों पर? वह कुछ भी नहीं समझ पाता और सोचता है कि एक दिन भी बिना ढंग से जिये वृद्ध होता जा रहा है। आँखों की रोशनी भी कम होती जा रही है...चलो फिलहाल फिर एक बार बहार आ रही है...देखो अबकी इस बहार में...मगर गनीडार ने उसमें एक नेजा ठोंका है...जो उसे बेचैन किये जा रही है...क्यों कहा ऐसे गनीडार ने...क्या करेगा गनीडार...क्या फसल काटेगा...भला। चिन्तित और प्रफुल्ल दोनों है वह।

कुछ दिनों बाद कोयल भी आयी और सारस भी आये...दूर रूस देश से। सारसों को तालाब के किनारे देखा था ग्रामवासियों ने। हवा में धीमी-धीमी गर्माहट और सूरज की किरणों में धीमा-धीमा मोतदिल ताप भरने लगा। आनन्द से कलेजा एकदम निकाल के रख देनेवाला। अब आँखों में वे सारे सब्जार, वे फूल, वे फल, वे पत्ते, वे धान की बालियाँ, मक्की, राजमाश के भरे-भरे खेत, पेड़ों पर टँगे

अखरोटों के झुण्ड, चेरी गिलासों के झुमके, नाशपातियों का सजाव, स्वर्णिम बादाम। कितना कुछ समेटे? कितनी कुदरत? सब कुछ मूर्त्तिमान होने लगा।

आफताब कच्ची मिट्टी की पंकिल सड़क पर चलते-चलते ईश्वर काक के पास जाने का एक अवचेतन इरादा रखता है। यह मैली बर्फ अब आँखों को अखरती है। मिट्टी का हाल खस्ता करती है बर्फ अब। आदमी की मिट्टी का फिर कहना ही क्या।

उसने देखा टेंग (टीलें) पर गाँव के दो बच्चे घर बना रहे हैं बर्फ का। यहाँ पर बर्फ सफाचट है। आफताब ने कदम धीमे किये और उनका घर बनाने का खेल देखना चाहा। सुनसान सड़क पर बच्चों को आफताब के द्वारा देखा जाना कुछ जँचा नहीं, वे काम रोककर उसके वहाँ से ओझल हो जाने की प्रतीक्षा करने लगे। तब आफताब ईश्वर काक की दहलीज पर पहुँच गये। ईश्वर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

नमस्कार इत्यादि के बाद ईश्वर बोले, ''लगता है हवा में काफी फर्क पड़ा है...क्यों आफताब... ?''

''हाँ हुद हुद, कतिज और आज तो देखा कि सफेदों पर कोंपलें भी आनी शुरू हुई हैं...और क्या हाल है?'' आफताब ने कहा।

''तुम अपनी जमीन पर गये थे... ?''

''इतनी मोटी-मोटी बर्फ है...वह भी एकदम शीशा जैसी। पहले यह गल जाए। रास्ता भी वहाँ तक है नहीं...सब बर्फ के नीचे है। खड़ाऊ फिसल गयी तो...बर्फ पर लगी चोट तो खतरनाक होती है।''

''लेकिन कल गनीडार आया था और एक अजीब बात बोल रहा था... ।''

''क्या?'' आफताब में अचानक भय का रोमांच हो आया। उसे लग रहा था कि कोई साजिश उसके खिलाफ हो रही है और अब यह पुख्ता हो गया कि हो न हो और यह भी कि उसमें चाटुकार ईश्वर काक की भी शमूलियत है। आशंका के मारे आफताब के प्राण फड़फड़ करने लगे।

''कि तुम्हारी जमीन पर उसने कब्र का पत्थर देखा है।'' उसने आफताब पर तलवार चला दी चुपचाप। गनीडार की तरफ से।

आफताब का मुँह एक साथ अविश्वास, लाचारी, भय, आतंक और असहाय के भाव से खुला का खुला रह गया।

''कब्र?''

''हाँ हाँ...कब्र का पत्थर।''

''मतलब... ?''

''मतलब जमीन पर मुसलमानों द्वारा कब्जा। क्या तुमसे गनीडार ने यह नहीं कहा। मैं तो सोच रहा था कि सबसे पहले तुम्हें ही उसने सूचित किया होगा।

दी नहीं सूचना क्या? अभी तक तुम वहाँ गये भी नहीं क्या...।'' ईश्वर काक ने कहा और आफताब पर उसके अन्तिम शब्दों का असर ऐसा रहा मानो जख्मों पर वह गनीडार की तरफ से नमक छिड़क रहा हो।

आफताब की हालत खराब हो उठी थी। उसके भीतर अन्धकार धीमे-धीमे उतरता ही जा रहा था। विशेषकर ईश्वर काक के अन्दाजेबयाँ और इस क्षण के व्यवहार से। उसके तटस्थ अन्दाज से और निर्लिप्ति से। याद आया उसे तत्क्षण गनीडार ने कहा था—'फसल की कटाई करनी पड़ेगी।'

आफताब के मन पर महासमय-सा कुछ घटित हो रहा है। विराट भविष्य अन्धकारमय है। जमीन उसकी नहीं है जबकि है उसी की। घर उसका नहीं है जबकि है उसी का। भविष्य क्या है? यहाँ तक कि निकट भविष्य। विगत में भी यही होता आया है। ये ही लाचारियाँ। ये ही दुश्वारियाँ। ये ही जीवन-मरण के द्वन्द्व ये ही—न आगा न पीछा। ये ही—आगे कुआँ पीछे खाई। कहीं-न-कहीं तो जाना है। किसी न किसी में तो गिरना है। या धर्म के कुएँ में, या कुफ्र की खाई में। समय के साथ गतिमय तो होना है। गति तो रुक नहीं सकती।

कब्र की शैतानी गनीडार के ही दिमाग का फितूर है। पर इसे फितूर भी नहीं कह सकते। और भिड़ भी नहीं सकते उससे। ''आखिर जिएँ कैसे?'' आफताब एक लम्बी चुप्पी के बाद बोला। इस बीच ईश्वर काक तम्बाकू के धुएँ के लच्छेदार और बेजोड़ कश लगा चुके थे। यहाँ तक कि धुएँ से पूरा कमरा भर गया।

''ऐसे ही...ऐसे ही...आफताब...किसी की भी हालत बेहतर नहीं। हमें ऐसे ही जीना है, इसमें दो राय नहीं।'' ईश्वर बोला।

कुछ क्षणों बाद फिर हुक्के को अपने शरीर के और नजदीक लाकर और एक घना कश लेकर फिर से बोला, ''तुम फौरन जाओ जमीन पर। कहीं ऐसा न हो कि अभी तक वहाँ कई-कई कब्रें खोदी जा चुकी हों। तुम जल्द-अज-जल्द नहीं जाओगे तो कल तक वहाँ कब्रिस्तान बन चुका होगा। मुर्दे थोड़े ही गाड़ने हैं, बस कब्रों के पत्थर फैलाने हैं, करीने से। दस पाँच लाकर फैला देंगे—फिर करना अल्ला-अल्ला खैर सल्ला।'' ईश्वर ने यह बेहद तनाव में कहा मानो हुक्का उसका एकमात्र साथी हो या एकमात्र जीवन की लौ। इतनी तेजी से वह हुक्के के कश निगल रहा था। मानो मन-ही-मन उसे अपनी जमीन भी खतरे में लग रही थी पर फिलहाल संकट से बचने का सबसे आसान तरीका था आफताब से कन्नी काटे रखना। उससे निःसंग रहना। और गनीडार को अप्रसन्न न करना! आफताब से भी दूर ही रहना क्योंकि वह गनीडार के लिए आपत्तिजनक है।

''हाँ...हाँ...हूँ।'' आफताब बोला। दरअसल ईश्वर के अन्दरूनी समझौतों

का अन्दाज उसे भी अपने भीतर लग रहा था और अब उसका यकीन पुख्ता हो गया।

"विचित्र आदमी है ईश्वर काक। मुझे अकेले जाने को कहता है। मेरे साथ बिरादरी के तौर पर चल नहीं सकता क्या? बन्धुत्व के नाते। धर्म के नाते। मेरे साथ ऐसा होना क्या एक प्रकार से उसके साथ ही होना नहीं है?"

ईश्वर ने स्वयं से कहा। "कैसी बीमारी है यह। यदि कोई मरा है तो वही मरे। मैं तो बचूँ। और मेरे बचने की खबर उसे न लगे। बर्बादी की छूत न लगे उसे...आखिर किस मिट्टी से गढ़ता जा रहा है हमें भगवान।' उसके धाराप्रवाह स्वगत प्रश्न हैं।

उसने हुक्के की नली हुक्के से अलग करके ऐसे फेंक दी मानो किसी खास आशय से फेंकी हो, ताकि उसमें कुछ आवाज पैदा हो जाए और उसके हो जाने पर कोई चर्चा हो जाए। कोई खुली चर्चा।

"हाँ तुम जाओ...।" ईश्वर ने आफताब के जाने की बेसब्री दिखायी।

"मैं सोच रहा था...आप भी चलते...बिरादरी के तौर पर...।" आफताब ने उसे संकट में डाला।

"हूँ...देखो...मैं समझता हूँ...आपको इसमें नुकसान न हो...।" ईश्वर ने टालने का प्रयास करना शुरू किया। मानो कह रहा हो कि इससे पहले कि 'गनीडार तुम्हें मेरे साथ बातचीत करते हुए देखें, तुम चले जाओ, आफताब।'

"नहीं नुकसान क्या होगा।" दरअसल नुकसान ईश्वर का होता। यह बात आफताब समझ गया।

"तुम्हें न हो आफताब...मुझे होगा।"

अब उसे सच बताने के अलावा कोई चारा नजर नहीं आया।

"क्यों? कैसे?" आफताब भी उसे सस्ते में छोड़ना नहीं चाहता।

"गनीडार के अन्दर कील ठुकी रहेगी...मेरे खेत में भी कल कब्र के पत्थर डाल जाएगा।" उसने अपनी कमदिली बयान कर दी।

"पर हमें इसके खिलाफ एक बिरादरी के रूप में...एक समुदाय के रूप में खड़ा होना चाहिए...इसको रोकना चाहए।" आफताब ने चेहरे पर क्रोध को यथेष्ट मात्रा में आने दिया। जिसे वह अभी तक कलाकारी से अन्दर दबाये था, ताकि ईश्वर पर उसके भीतर का भय जाहिर न हो।

"मैं कहता हूँ आफताब, अभी तुम अकेले जाओ। जरूरत हुई तो बिरादरी को इकट्ठा कर लेंगे।"

ईश्वर काक ने उसके जुनून का उत्तर देकर उतार दिया जुनून।

"ठीक है...यह खुदगर्जी है...यह गलत है जीने का...यही हमें मार

डालेगा...कोई नहीं बचेगा...कोई भी नहीं...ये लोग हमारे जीने के इस ढंग से बाखबर हैं...।'' आफताब ने भविष्य देखकर उसे ईश्वर को बताया ताकि वह सावधान हो जाए।

''नहीं, नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। तुम जाओ अब। मैं यह खबर चुपचाप पुष्कर और जियालाल को भी दूँगा। राय मशविरा करेंगे।'' ईश्वर आफताब से पिण्ड छुड़ाना चाहता था।

आफताब उठकर चल दिया। भीतर-ही-भीतर बड़बड़ाता हुआ। शाप देता हुआ अपनी ही बिरादरी को। जोलुर के भट्टों को। ''कल तुम सब-सब की जमीनों पर बारी-बारी से कब्रों की सिलें करीने से सजा दी जाएँगी...तब करना बावेला। लानतियो...।''

❑❑

जो कब्र का पत्थर वह अपनी जमीन पर देखने जा रहा है वह उसकी आँखों पर रखा गया है। दिमाग पर बैठ गया है, दिल पर बैठ गया है। ऐसा कि अब वह युगों तक हट नहीं सकता जहाँ-जहाँ बैठ गया है। पीढ़ियों तक नहीं उठ सकता अब वह पत्थर कयामत तक नहीं...। उसके नीचे एक ऐसा मुर्दा गड़ा है जो चिरंजीवी है...मृत्युंजय है...कालातीत है...उसे विदित है।

कब्र का पत्थर अभी उसकी आँखों से उठकर उसकी जमीन के किसी भी हिस्से का चुनाव करेगा। वह कुछ नहीं कर सकेगा। चुप रहेगा और लौट आएगा। इससे बड़ा फातिहा भी क्या हो सकता है।

''आखिर मेरा पाप? पण्डित होना? भट्ट होना? आखिर यह तो मेरे हाथ में न था। मुझसे अगर मेरी मर्जी पूछी जाती तो कतई भट्ट होना पसन्द नहीं करता। मुसलमान बनता...।''

''अच्छा...फिर...? फिर...आखिर?'' उसके अन्दर किसी ने उसके अन्दर किसी से पूछा।

''फिर किसी ईश्वर के जमीन पर कब्र का पत्थर डालता।''

''अच्छा...?''

''हाँ।''

''पर उससे जमीन तुम्हारे किसी काम न आती।''

''हाँ, सच है...पर इस्लाम फैलता...ज़मीन पर फैलता...कब्र जितने आसमान पर फैलता...हँ हँ हँ हँ।''

''क्यों सोच रहे हो यह सब...।''

''क्या सोचूँ फिर...मुझे आखिर क्यों सताया जा रहा है नाहक।''

''किसलिए...तुम्हें पता है।''

''सिर्फ सताये जाने के लिए...भट्ट हूँ...बनाने वाले के हाथों...मेरा धर्म जरा गलत...खैर।''

''और हटाये जाने के लिए।''

''काफिरी की सजा। ईश्वर की गलती की सजा। ईश्वर काक की नहीं।''

''आफताबरामभट्ट होने की सजा। मुसलमान न होने की सजा।''

''इस्लाम फैलाने के लिए...।''

□□

खेतों की तरफ जाते-जाते आफताब के भीतर एकालाप का एकांकी चल रहा है। बर्फ के बीच गड़ा हुआ पत्थर साफ दिख गया उसे। पहले उसके होशो-हवास मानो खो गये और इनकार में वह समूचा हिलता रहा। परन्तु इनकार एक बड़ा-सा पत्थर हो चुका था साकार में...ठोस में...सच में।

''वाह्य।'' यह एक दिलतोड़ और कमरतोड़ आह थी जो बर्फ ने सुनी तो बर्फ पिघली नहीं। जो कब्र के पत्थर ने सुनी और पत्थर फटा नहीं, जिस पत्थर को सब सच मालूम थे...कि उसके नीचे जमीन के अलावा और कुछ नहीं। महज जमीन है उसके नीचे। कोई मुर्दा नहीं...। यह आह आकाश ने...नंगे...ठण्डे...ठिठुरे पेड़ों ने...सफेद बादलों ने सुनी पर सब चुप थे...हुक्म फरमान थे...गनीडार के। गनीडार बहुत थे...बेचारी आफताब की 'आह' अकेली...क्षीण और कृशकाय...थी।

''मैं अब क्या करूँ?'' आखिर मेरा कुसूर क्या है? पूछता है वह अपने आप से।

''मैं अब कहाँ जाऊँ...?'' पूछता है फिर अपने आप-से आफताब।

''मैं चुप रहा तो गया काम से...। मुझे मुसलमान मुअतबरों को ही इकट्ठा करना चाहिए और न्याय माँगना चाहिए।'' देता है वह अपने आप को मशविरा।

''और अपनी भट्ट-बिरादरी?'' पूछा उसने अपने आप-से सवाल।

''उनके बारे में सोचो ही मत...दाल है निरे...यों ही निकल जाएगी...छरररर से...अपने-अपने को अलग-अलग बचा रहे हैं...द...'' दिया उसने जवाब।

''पर मैं भी तो...मैं भी तो...उन्हें आना होगा...मुसलमानों से न्याय माँगना ही होगा...।'' वह फिर द्वन्द्व में पड़ गया। आज उस अकेले के साथ यह हो रहा है क्योंकि प्राय: वह अपने भट्टों के बदले गनीडार और अन्य धाकड़ मुसलमानों के मुँह लगा है। उन्हें कानून बताये हैं...इल्म बताया है और अक्सर गलत करने से रोका है। आज वह अकेला है। कोई एक वह, जिसके लिए उसने दुश्मनी मोल ली हो और अपने को काली सूची में दर्ज कराया, आज उसकी मदद के लिए

दूर-दूर तक नमूदार नहीं।

आखिरकार उसने सोच लिया कि वह खुद गनीडार उसके बड़े भाई सुलडार, हकीम अब्राहिम, रहमान मलिक आदि को बुलाएगा और कहेगा कि वे ही फैसला कर लें। आखिर कौन खुदा इस जुल्म से खुश होगा। आखिर वह एक काफिर है...भट्ट है तो क्या हुआ...इन्सान ही तो है वह। इन्सानी हकूक उसके भी तो हैं। कि इस तरह जिन्दगी की, जिन्दा रहने की बात नहीं बनती। हकीम साहब शाइस्ता है...वह उन्हें समझा देंगे। और जरूर हल निकालेंगे। वह निराशा के घटाटोप में आशावादी होता जा रहा था। और उसने कदम लौटाये इस लिये हुए निर्णय के साथ। बर्फ में पगडण्डियों का आभास सिर्फ बर्फ के उभार से हो रहा है। वह पगडण्डियों से सँभल-सँभलकर जा रहा था कि अशमी दिख गयी। अशमी हकीम अब्राहम की बीवी है। 'है तो नेक औरत।' सोचा उसने।

"सलाम आफताब राम।" अशमी ने कहा।

"सलाम अशमी। कहाँ जा रही हो...?" आफताब ने पूछा।

"पहले बताओ तुम यहाँ कहाँ... ?" अशमी को जरूर उसे वहाँ देख हैरत हुई थी।

"देख नहीं रही, मेरी जमीन की तरफ। यह देखो...यह अशमी...यह जानबूझकर नहीं किया गया है क्या?" अगर अशमी हामी भरे तो आफताब इन्साफ का कुछ भरोसेदार हो जाए।

अशमी किन्तु निर्विकार हो गयी। जड़-सी हो गयी और बोली, "यह क्या?"

"देख तो रही हो...।" आफताब ने कहा मगर उसे अशमी के झट से हामी न भरने से धक्का लग चुका था। विश्वास उठ चुका था कि उसे न्याय मिलेगा।

"तो यह तुम्हारी जमीन है और तुम्हारी जमीन में दफन है कोई। कब्रिस्तान यहाँ तक फैलाया गया है गलती से...शायद।"

अशमी ने फिरन की जेब में भूने बीज-चावलों की मुट्ठी निकाल सीधे मुँह में डाल दी और अधखुली जुबान से बोली, "तो यह कौन मरा...पता नहीं...यह कब की बात है वल्लाह?" अब उसने आश्चर्य व्यक्त किया। शायद ईमानदारी से।

अशमी को सचमुच पता न था। आफताब के साथ यह षड्यन्त्र उसे गाँव से भगाने की गरज से किया गया था, वह समझ गयी।

"हाल ही में यहाँ किसी की मौत हुई है क्या अशमी?" आफताब ने अशमी से पूछा जबकि वह खुद इसी उधेड़बुन में थी।

"मुझे तो नहीं लगता...पर सात माह पहले नबी मर गया था, उसे ही यहाँ

तो नहीं दफनाया गया?...मैं अब्राहिम से पूछूँगी।'' अशमी ने कहा।

''अरे नहीं अशमी। मैं भी तो नबी को जानता था। सात मास पहले यहाँ फसल खड़ी थी। उसे तो ऊपर वाले कब्रिस्तान में दफनाया गया था। मैं क्या गाँव के मुसलमान मुहल्ले को नहीं जानता। कहो कि पक्की साजिश है। अच्छी-खासी, सोची-समझी कारिस्तानी अशमी।''

''फिर यह किसी दूसरे गाँव वालों की करतूत हो।'' अशमी ने सवाल को हल कर दिया।

''अशमी, यह सिर्फ कब्र का पत्थर है। इसके नीचे कोई दफन नहीं।'' आफताब ने अशमी के द्वारा सवाल हल किये जाने को रद्द कर दिया।

''लाहौल...।'' अशमी ने कानों को छूकर लम्बी आवाज में कहा, ''ऐसा मत कह खुदा के वास्ते आफताब राम। यह कहना भी गुनाह है। कुफ्र है। ऐसा कहना हमारे दीन के खिलाफ है...ऐसा कहना भी नहीं। कोई मुसलमान ऐसा नहीं कर सकता।''

अब वह दहशत से भर उठा। उसे लगा कि वह किसी तरह बच-बचा के निकलने पाये तो गनीमत है।...ज़र-जमीन छोड़कर भागो किसी दूसरे गाँव।

''पर कहाँ... ?'' कहा उसने खुद उससे।

''तो फिर... ?'' उपाय पूछा।

''तो फिर क्या मुसलमान बनूँ। एक और गनीडार हो जाऊँ और फिर किसी की कब्र उखाड़ने तक का भी मुझे हक हासिल होगा।''

❑❑

घर में तारावती ने यह सुनकर उस दिन खूब छाती पीटी थी। ''क्या कह रहे हो। कुछ भी कहो मगर मुसलमान होने को मत कहो। कुछ भी करो मगर यह भीषण-निन्दनीय कर्म मत करो। जिस धर्म में हमें ईश्वर ने पैदा किया है उसी का निर्वाह करते रहना अन्त तक हमारा परम धर्म है स्वामी। ईश्वर हमारी परीक्षा ले रहा है। चाहे हमें इसमें कितनी ही कठिनाइयाँ झेलनी क्यों न पड़ें। मगर मैं आपको यह सब सोचने भी नहीं दूँगी। कुछ भी सोचो मगर यह सब मत सोचो। ऐसा सोचने की भी मत सोचो। जो भी बोलोगे, करेंगे। गाँव से जाने को कहोगे, जाएँगे, मगर धर्म नहीं बदलेंगे।'' तारावती ने अपना संकल्प और निष्ठा बता दी। तारावती फिर बावरी-सी हो उठी थी—''गोली मारो अशमी को। हम बचे हैं। मानो सिर्फ हम ही बचे हैं, चाहे बाकी सब मुसलमान बन जाएँ। तुम यह बात, जिन्दा रहने का यह भयानक विकल्प सोचो ही मत।'' उसने आँखें और नाक पोंछते हुए डंके की चोट पर कहा।

आफताब राम वस्तुतः तारावती उर्फ अपनी पत्नी के इन विचारों, सिद्धान्तों और इस संकल्प का आपादमस्तक कायल है।

"चलो तारावती...जब तुम शक्ति-सदृश मेरे साथ हो तो...फिर हम चलते हैं यहाँ से। फिलहाल शहर की तरफ...कुछ काम-वाम वहीं ढूँढ़ते हैं।"

और छोटे-छोटे तीन नन्हे बालकों को लेकर आफताब श्रीनगर चला गया। वहाँ अर्से तक महाराजाओं के दफ्तरों में अर्दली के रूप में काम करता रहा। इस बीच उसे जोलुर से सूचनाएँ मिलती रहतीं कि एक दिन ईश्वर काक फिर एक और दिन पुष्करनाथ सबके सब क्रमशः अकरम भट्ट और हबीब भट्ट इत्यादि नामों के मुसलमान बन चुके हैं और अपने मुर्दों को आफताब की शेष भूमि में दफनाते हैं।

❑❑

आफताब का सबसे छोटा बेटा श्रीरामनाथ पचहार गाँव के साथ सटे गाँव कछू के एक जागीरदार को गोद में दिया गया। श्रीरामनाथ का पालन-पोषण ठीक हुआ फिर...समय के साथ...अपने जागीरदार पिता की मृत्यु से वह निर्धन होता गया।

मगर बेटी राजरानी का विवाह संग्राम के ताराचन्द के साथ धूमधाम से सम्पन्न किया। शान से, शौकत से।

सुधा के नाना ताराचन्द के साथ हुई सुधा की नानी काकनी की शादी...यहाँ सुधा इस समय काकनी यानी रामनाथ भट्ट की बेटी के सीलन-गन्धयुक्त बिस्तर में लेटी है और काकनी द्वारा सैकड़ों बार दोहरायी इस कहानी को फिर से खुद के ही सामने दोहराया सुधा ने।

कितना बड़ा जख्म है काकनी के भीतर इस इतिहास को लेकर। कितना बड़ा आघात है आफताब को जमीन से बेदखल करने को लेकर। उसके विस्थापन को लेकर। उसके सारे शीराजा के बिखरने को लेकर। मानो वह बिखराव काकनी बराबर अपने जीवन भर जीती रही हो, ढोती रही हो। असह्य बोझ की तरह।

कभी-कभी काकनी कहती—मैं वही हूँ तारावती। आफताब की पत्नी। इसलिए मुझे अपनी माँ से बढ़कर उसी के दुःख का सुराख ज्यादा गहरा और संगीन है। तभी मैं यहाँ ताराचन्द से ब्याही गयी। जरूर मैं ही हूँ तारावती। हाँ हाँ मैं ही हूँ तारावती। तभी तो उस जन्म से देख रही हूँ बराबर मुसलमानों के तमाशे, और अब पाकिस्तान के ताण्डव। बिरादरी का गलना। सब कुछ, सब कुछ देख रही हूँ...एक क्षण आँख बन्द नहीं हुई मेरी...एक क्षण अनुपस्थित नहीं हुई। और सब कुछ याद है मुझे।"

'क्या काकनी को अगले किसी जन्म में कुछ करना है अपने इन सभी

अभिलेखों के साथ।' उसने अपने भीतर-ही-भीतर इस प्रश्न का उतर ढूँढ़ने का प्रयास शुरू किया।

'हो सकता है। हो सकता है। काकनी के जीवन-नियम कठोर हैं। काकनी इस गाँव की केन्द्र बिन्दु है। कोई उसको नमन किये बगैर नहीं जाता कहीं। पता नहीं क्यों? यों तो काकनी के पास कुछ भी नहीं। कुछ भी...नहीं। उसका वट्टू...मानो किसी दीन-हीन बंजारे का तम्बू हो। एक लकड़ी की पेटी है।' सुधा को इस पेटी का बहुत देर तक बहुत सहारा था।

मगर एक दिन उसके मन की भगवान ने सुन ली। काकनी के मन में आया कि पेटी की चीजों को थोड़ी-सी धूप दिखाए। हवा दे कुछ। वह चाबियों का गुच्छा लाकर ताला खोलने लगी पेटी का।

चाबियों के गुच्छे में बेशुमार चाबियाँ मगर इस पेटी के ताले को छोड़कर कोई ताला नहीं दिखा कभी सुधा को।

"इस गुच्छे की चाबियों के बाकी ताले कहाँ हैं काकनी... ?" सुधा ने सीधे-सीधे पूछ ही लिया।

"...ताले ?...ताले ? ताले ढूँढ़ती हो ? वे तो स्वाहा हो गये।"

"कबाइलियों ने जब गाँव जलाया उसमें वे सब सन्दूक और अलमारियाँ राख हो गयीं। बच गयी हैं चाबियाँ...जैसे बचती हैं स्मृतियाँ और जैसे बचते हैं स्मृतियों के अक्स काल्पनिक रेखाओं में।...वर्ना यह पूरा गुच्छा बेकार है। सोचती हूँ मरने से पहले किसी दिन मुहूर्त देखकर फेंक आऊँगी यह गुच्छा वितस्ता में, नन्दबब के तट से। वहाँ सुरक्षित रहेंगी चाबियाँ...जैसे सुरक्षित है सारा सामान...गाँव की अलमारियाँ कहीं किसी धूल में, राख में...।" कहते हुए काकनी ने एक सीधी दृष्टि सुधा पर डाल दी और देखा वह रो रही है...मगर काकनी ने उसे रोने से मना नहीं किया। पूछा भी नहीं कि रो क्यों रही हो ? और आगे बोली, "इस पेटी को तुम्हारी माँ लालड़ गाँव के एक तरखान से बनवाकर लायी थी। उसे बड़ा ही शौक चर्राया कि यहाँ मेरे पास एक-आध रफल का फिरन रहे। एक तरंगा बँधा-बँधाया रहे। वह सब इसमें रहे। यानी कुछ मेरी चीजें रहें इसमें। वह मेरे लिए डेजिहोर भी बनवा रही है। पगली। उसे कितना समझाया। अरे गोली मार। मुझे अब इन चीजों का क्या करना। अब तो मरना है...फारिग होना है। मुझे क्या करना है इन रफलों-वफलों का। हो तो गया अब काफी। हो गया स्वाहा। आफताब राम से लेकर ताराचन्द तक। समय भी...चीजें भी...बारी-बारी से सभी...तो फिर...। स्वाहा हो गया सब मगर कोई कुछ न बोला...मुझे लगता है सबके अन्दर ज्वालामुखी होंगे...मगर लगता है कि नहीं है...किसी के अन्दर ज्वालामुखी नहीं। अब अगर कभी कुछ कोई बोला तो समय में विलीन हुआ। बचा-खुचा डर के

मारे मुसलमान हुआ।''

''कभी-कभी सोचती हूँ कि क्या ठीक नहीं किया उन्होंने ही, लेकिन तुरन्त सोचती हूँ...छि: चार जूते मारने का मन करता है खुद पर ही।...लेकिन मेरी चिन्ता है कि यह आगे कहीं रुकना चाहिए...आगे हमारी सन्तानों को अच्छा जीवन नसीब हो...एक अच्छा जीवन...भयहीन जीवन...है किसी को यह फिक्र क्या? किसी को नहीं।''

सुधा ने देखा कि उसकी ताई भी इस बीच आ धमकी है...वट्टू में...चुपचाप। दरवाजा खुला था इसलिए पता भी न चला उसके आने का। काकनी बोल रही थी, उसे सुनने के लिए शोभी ने आवाज भी नहीं की।

पेटी से निकाला बेहद हरा—यानी गहरा हरा रफल का फिरन देखकर सुधा का दिल बाग-बाग हो उठा था। वह एक नजर अपनी ताई पर डालती और दूसरी फिरन पर फिर तीसरी काकनी पर भी। नजर को कलाकारी से फिसलाते हुए।

'कम-से-कम ताई तो समझ गयी होगी कि काकनी बस यों ही नहीं...इतना सुन्दर प्यारा कीमती फिरन भी तो है उसके पास।' सुधा ने मन में सोचा।

फिरन से नेप्थॉलिन की गन्ध आ रही थी। पेटी में और कुछ नहीं था। सिगरेट के दो खाली टिन-डिब्बे। जिन पर लिखा था 'पाल-माल रोड लन्दन'। पढ़कर सुधा गर्व से फूल गयी। सोचने लगी कि 'काश ताई अँग्रेजी पढ़ पाती तो स्वयं देखती कि नानी के पास लन्दन के टिन-डिब्बे भी हैं। मानो उसे अचानक पता चल गया हो कि उसकी नानी के सम्बन्ध लन्दन तक रहे हैं। वह जानती है कि इस संसार में लन्दन नाम की एक जगह है जहाँ की चीजें काकनी की उस लकड़ी की पेटी में पायी जाती हैं।'

''अरे यह तो लन्दन का डिब्बा है काकनी।''

''हाँ, पता है। जा तू ले जा। इनसे खेल।''

काकनी ने विशेष ध्यान नहीं दिया उसके चौंकने की तरफ।

''लेकिन यह खाली क्यों है?''

''अरे एक दिन तेरा नाना लाया था। सिगरेटें थीं इसमें तब। गुलमर्ग में एक अँग्रेज ने दिये थे उसे दो डिब्बे। वह जब पी रहा होता तो किसी अँग्रेज जैसा ही लगता...यों ही ये डिब्बे हैं इसमें। दुनिया फना हो गयी मगर ये डिब्बे बने रहे मेरे पास ही। इसलिए जब कुछ नहीं था तो ये डिब्बे ही रख दिये इसमें। तू ले जा। बिन्दु के साथ खेलना इनसे। चाहो तो शहर ले जाकर इनमें पेंसिल-कलम रख देना। एक डिब्बा दीप्ति को देना, एक तुम रखना।''

सुधा की ताई तभी गयी थी। सुधा को आने का न्यौता देकर। कल भाईजान ने सारे परिवार में घोषणा कर दी थी कि सुधा उनसे नाराज है। क्योंकि बिन्दु ने

उसके खिलौने तोड़े हैं।

अब वह छाती फुलाकर जाएगी बिन्दु के पास। कहेगी—देख, आँखें खोलकर देख! ये टीन के डिब्बे हैं उसके पास। लन्दन के हैं। मिट्टी की वारी नहीं है यह, जिसे तू तोड़ सकती है। और यह उसके नाना को गुलमर्ग में एक अँग्रेज ने दिये हैं। आँक सकती हो इनकी कीमत? हाँ, यह सब कहने वह अभी जाएगी बिन्दु के पास।

बाहर चमकती धूप में काकनी का रफल फिरन हवाओं के झोंकों से लहरा रहा है। मानो अचानक समूचे ब्रह्माण्ड में उसे जहाँ-तहाँ हर जगह अपनी ही सम्पत्ति बिखरी पड़ी दिख रही हो, जिसे समेटना भी कठिन हो।

लेकिन उसे कुछ इससे अधिक और आश्चर्यजनक की आशा थी...कि पेटी से चकित कर देनेवाली बहुमूल्य चीजें निकलेंगी...पर चलो...निराश भी तो नहीं किया पेटी ने। जरूर उसकी माँ को भी इच्छा हुई होगी कि काकनी के पास भी सम्पत्ति हो। सन्दूक हो। और सन्दूक में ढेर सारी अच्छी-अच्छी चीजें हों। सोने के जेवरात हों। शायद भट्टिनी इसीलिए काकनी के लिए सोने का डेजिहोर बनवा रही है।

काकनी ने पीतल का डेजिहोर पहन रखा है—ऐसा सुधा को पता चल गया है।

"काकनी! ये डेजिहोर तुम्हारे सोने के नहीं हैं क्या?"

"अरे नहीं बेटा। सारा सोना लूटकर ले गये पाकिस्तानी कबाइली। इस गाँव में तेरी ताई को छोड़कर अभी तक किसी स्त्री के पास नहीं है सोने का डेजिहोर। तेरी ताई कबाइलियों के आने से एक दिन पूर्व श्रीनगर गयी थी तभी..."

"तेरी माँ को दुःख है कि मेरे पास सोने का डेजिहोर नहीं। अरे पगली। मार गोली। तेरी माँ तो है न तेरे पास। कबाइलियों को मैंने डेजिहोर उतारकर थमा दिया और जान छूटी। बोले, सोना दो सारा ऐ भट्टिनी। मैंने दिया और घर के चारों कोनों में आग लगा दी और दूसरे घर की तरफ मुड़ गये...ओह हो जान बच गयी...इस गाँव की इज्जत बच गयी। मैं बूढ़ी भी थी। वर्ना जवान-जवान औरतों को ले जाकर बारामूला में एक कैम्प में रखने का उन्होंने इन्तजाम किया था। मुझे भी लालड़ तक ले गये थे, फिर छोड़ दिया। मेरा बुढ़ापा मेरे काम आया। जब यहाँ वापस पहुँची पूरी बस्ती धू-धू कर जल रही थी। मैं टेंग पर रुक गयी, फिर बैठ गयी। तब बस्ती के बुझने का इन्तजार किया। इसी टेंग पर बैठकर मैंने जिन्दगी के कई खौफनाक तमाशे देखे। ताराचन्द का शव जब अठूर से आने वाला था, तो यहीं पर बैठकर इन्तजार किया, स्वागत किया। यहीं पर खड़ी होकर उन्हें अठूर जीवित जाने के लिए विदा किया था और ताँगे के आँखों से ओझल हो जाने तक

खड़ी रही थी...जैसे जानती थी कि यह अन्तिम देखना है...और मुस्कराती रही थी...अरे जिन्दगी... जिन्दगी...अन्त में न मरन दुःखदायक न जीना सुखदायक...सब विभ्रम...।''

सुधा को जूड़ी-सी लग रही है। काकनी मनुष्य नहीं है कोई मनुष्येतर जीव है। कैसे कायनात के बनने और प्रलय होने की बातें बड़े इत्मीनान से करती है। स्थितप्रज्ञ होकर...किसी प्रभाव में आये बिना। तटस्थ...निर्लिप्त। अद्भुत। आश्चर्यजनक। निर्मोह।'

'लेकिन फिर भी आँकड़े बराबर। दुःखातीत मगर फिर भी भविष्य की चिन्ता। घोर चिन्ता। संयत...चुप...मौन मगर अन्दर विचारों की लपटें। संकल्पों के विराट...आकाशपर्यन्त स्तम्भ...।'

''कबाइली कमबख्त मूर्ख और जाहिल थे। उन्हें एक ही कर्म आता था, दुष्कर्म।

''मारना। आग लगाना। लूटना। इज्जत लूटना। वे पाकिस्तान द्वारा इसी मकसद से भेजे भी गये थे। यों तो वे पीतल को भी सोना कहते थे। उन्हें दोनों में फर्क मालूम नहीं था। उनको कुछ लोगों ने सोने के नाम पर पीतल दिया तो उन्होंने उसे सोना समझकर ही लूटा। चाँदी वे लेते नहीं थे। ऐसा लगता है कि उन्हें बताया गया था कि भट्टों के पास सोना होता है...और उसे लूटकर लाना। चाँदी वैसे भट्टों के पास होती भी नहीं थी।

''तो मेरे पास बेटियों के विवाह के बाद डेजिहोर का एक जोड़ा ही बचा था सोने का। दे दिया। पता नहीं अपने आपको बचाकर मैंने क्या बचा लिया। लेकिन फिर भी बचा ही लिया मैंने। तेरी माँ के लिए खुद को बचा लिया। मैं डेजिहोर का जोड़ा नहीं देती तो वे गोली मारते। फिर डेजिहोर ले जाते। ऐसे मैंने दे दिया...ठीक किया न?

''रो रही हो तुम। अरे। जिन्दगी इसी को कहते हैं। खासतौर से भट्टों की जिन्दगी...भट्टिनियों की जिन्दगी। कठोर है। पिछले कई सौ वर्षों से हमारी जिन्दगी कठोर होती गयी है। अब इसमें रोना क्या। बहादुर होना है। पढ़ो...लिखो और जीवन में कुछ परिवर्तन लाओ। भट्टों को अपनी संख्या बढ़ानी है और संगठित होना है न कि अगर कहीं एक बच्चा पैदा हुआ...उधर से दो परिवार मुसलमान हो गये। हो गया न बेड़ा गर्क इसी से।

''सब कहते हैं मजहब यह नहीं सिखाता, वह नहीं सिखाता...कुरआन में यह लिखा है वह लिखा है...मुझे तो लगता है सब लिखा है।''

❑❑

सुधा के पास काकनी की दी हुई इस तरह की कई दीक्षाएँ हैं, जो सुधा ने अपनी पेटी में बन्द रखी हैं। कुछ लपटें हैं, कुछ खयाल हैं जिन्हें सुधा बाँटना चाहती है।

''उस दिन टेंग पर बैठकर मैंने पूरे गाँव को जलते हुए देखा। देखा...इत्मीनान से देखा। आँसू का एक कतरा भी नहीं गिरा आँख से। मानो पता नहीं हो कि क्यों स्त्रियाँ चली गयी थीं कबाइलियों के साथ बारामूला और पुरुष क्यों कर दिये गये थे ढेर गाँव में। त्राहि...त्राहि।

''अगल-बगल से पहले ही सूचना पाकर अगर कुछ खिसक गये थे, तो बच गये। वर्ना जो यहाँ थे उन्हें पंक्तिबद्ध किया गया और गोलियों से गिरा दिया गया...पक्षियों की तरह। मैंने सोचा। यह कबाइली नहीं कर रहे। जब विराट दुःख आन पड़ा हो तो कितना दुःख करे कोई। आखिर दुःख भी तो सीमित होता है...भला प्रलय महाप्रलय में कौन करता होगा दुःख। अतः इसमें दुःख क्या जिसे बचना होगा बचेगा, मरना होगा मरेगा।

''और सन्ध्या घिर आने के समय तक मैं भी जैसे ताण्डवी शक्ति का अंग बन चुकी थी। सोचने लगी...गाँव में अकेली मैं किस काम की।...फिर शुरू हुआ मेरी आँखों का बहना...और हँ हँ...विरूप अट्टहास में अपने साथ हँसना, अपने पर हँसना। ढेर सारे सवाल करना...कभी कुदरत से? कभी पता नहीं किससे? अपनी बिरादरी को खूब कोसना, गरियाना। पाकिस्तान नाम के इस नये दानव पर थू-थू करते फिरना। हिन्दुस्तान जिसके साथ हम थे, पर जिसे हमारी कोई खबर न थी को गरियाना...उस पर भी थू थू करना। कोई नहीं था, जो हमारा था...जिसके हम थे।

''हाँ, दिन में अलबत्ता। ऊपर से एक जहाज गुजरा था जिसने कुछ पर्चे बिखराये थे...जैसे बीज बिखेरते हैं। मुसलमान मेरा, गाँव का और आसमान में उड़ रहे जहाज के तमाशबीन थे। एक पर्चा उठाकर एक मुसलमान लड़के ने हिज्जे निकाल-निकालकर पढ़ा और बोला कि लिखा है पर्चे पर कि 'घबराओ मत। हम आ रहे हैं। हिन्दुस्तान की फौज।'

''मगर कहाँ थी फौज? किन्तु इन पर्चों से जरूर स्थानीय मुसलमानों में घबराहट फैल गयी। तब तक मेरे पास कोई मुसलमान नहीं आया था। पर पर्चे गिरने की खबर सुनने के बाद बारी-बारी से सभी आ गये।

''जाना आयी। रहमाना आया। गुलामा आया...सुला आया और बहुत मनाने लगे कि मैं उनके घर आऊँ और उनके घर में पनाह लूँ। मैं लेकिन एक न हिली। मुझे पर्चे पर लिखी बात का अन्दर-ही-अन्दर गहरा भरोसा होने लगा और मैं फौज का इन्तजार करने लगी। हालाँकि फौज को जब आना चाहिए था तब नहीं आयी

थी...पर फिर भी...।

"लेकिन शाम ढलने को हो रही थी। मैं पश्चात्ताप में घुली जा रही थी कि मैं जीवित क्यों बची। मुझे कभी बेटियों का ध्यान आता। खासकर अठूर का ध्यान आता। जब कबाइली यहाँ तक आ पहुँचे हैं, अठूर तो इससे पहले ही पड़ता है। मैंने सोचा पता नहीं गुणवती का क्या हाल हुआ होगा। उस पर उसका बच्चा होने वाला था। पहला बच्चा। पर अब मैं क्या कर सकती थी। भला किस-किस की चिन्ता करती। मैंने तेरी ताई के बड़े बेटे को उसकी खबर लाने के लिए अठूर भेजा था और अब मुझे समझ में नहीं आता कि ब्रजनाथ की फिक्र करूँ या अपनी बेटी की। तेरी ताई बेटे के इन्तजार में यहीं रुकना चाहती थी...पर भाईजान ने विवश कर दिया श्रीनगर जाने के लिए। वह छाती कूटती हुई...अपने को अपने आप ही मसलते हुए चली गयी। आखिर बेटे को छोड़कर। भाईजान ने कहा— ब्रजनाथ अक्लमन्द लड़का है। खुद को बचाने की तरकीब जानता है। जो बचेगा...वह मिलेगा वापस। जो नहीं बचेगा उसका क्या करें और तेरी ताई हिम्मत करके एक दिन पहले ही श्रीनगर के लिए रवाना हो गयी सपरिवार।

"जब सूरज ढलने को हो आया तो दूर से ब्रजनाथ आता हुआ दिखाई दिया मुझे। मैं खुशी से झूम उठी। पागलों की तरह उसे गले लगा-लगाकर मैं चूमती रही। पागल ही हो गयी समझो। विश्वास ही नहीं हुआ कि यह सच है कि वह आ गया है और जीवित मेरे सामने है। मैं उसे छू रही हूँ। सिर ऊँचा हो गया। मन किया तेरी ताई को अभी जहाँ कहीं भी वह है ढूँढ़कर खबर दूँ, यह लो तुम्हारा। अनमोल ब्रजनाथ। ईश्वर ने इसकी रक्षा की है।"

"मुझे गुणवती की अब इतनी चिन्ता न थी जितनी कि ब्रजनाथ की। ब्रजनाथ ने सारा वृत्तान्त बताया कि किस तरह वह अपने को बचाते-बचाते खेतों की पगडण्डियों से यहाँ तक वापस आ गया और बताया कि कबाइली अभी तक अठूर नहीं पहुँचे थे...इस तरह उनसे कई गाँव बीच में छूटे हैं...क्योंकि इन लुटेरों को भूगोल का ज्ञान नहीं। यह ज्ञान उन्हें देने वाले कश्मीरी ग्रामवासी मुसलमान थे। ब्रजनाथ ने यह भी बताया कि कबाइली अठूर लूटने आ रहे हैं, ऐसी अफवाहें गर्म हैं और अफवाहें फैलाने वाले हैं पड़ोसी मुसलमान।

"ब्रजनाथ ने जब गाँव का हाल देखा तो वह अपने बाल नोचने लगा। अपने घर को राख देखा तो जार-जार रोने लगा। सड़क पर बेहोश गिर गया। जमीन पर लोट गया। पर तब मुसलमानों ने और मैंने उसे सँभाला। डगों ने उसे बहुत ढाढस बँधायी। तब जाकर वह कुछ सामान्य हो गया और स्थितियों को स्वीकार कर लिया।

"जब मैंने उससे कहा, ब्रजनाथ बेटा। गाँव तो राख हो गया, मगर गाँव के

भीतर कुछ लाशें पड़ी हैं, उन्हें ठिकाने लगाना है। पहले देखना है कौन-कौन है। हिम्मत अपने अन्दर भर लो। दिल कड़ा कर लो। समझा दो कि यह महाप्रलय का क्षण है और जीवन मरण में भेद मिट गया है। वैसे ज्यादातर तो भाग गये थे पर कुछ फँस गये, भाग न पाये। और कबाइली दया नाम की चीज तो जानते ही नहीं थे। निर्दयता से बन्दूक चलायी...उन सबको एक पंक्ति में खड़ा करके।''

❑❑

काकनी और ब्रजनाथ अब गाँव में घुस गये और एक-एक कदम सावधानी से रखने लगे। काकनी आगे-आगे ब्रजनाथ की ढाल बनकर चल रही थी।

''अभी पर्चे एक जहाज ने ऊपर से गिराये हैं। हिन्दुस्तानी जहाज ने। जिन पर सुनहरे हरफों में लिखा है हिन्दुस्तानी फौज बहुत जल्दी आ रही है...। शबडग बोल रहा था...।'' काकनी ने ब्रजनाथ से कहा।

''जब मैं खेतों-खेतों आ रहा था तो जहाज को मैंने भी देखा...पर पर्चों के बारे में मुझे कुछ पता नहीं। तुमने उठाया कोई पर्चा...दिखा जरा।''

''मुझे क्या करना था रखकर वह। पढ़ना तो आता नहीं...अलबत्ता जो भी लिखा था, सुनहरी स्याही मैंने जरूर देखी। फिर डगों के एक लड़के ने पढ़कर सुनाया कि उसमें क्या लिखा था। ये लोग पर्चों से कुछ डर गये होंगे। कबाइलियों जाहिलों को तो पढ़ना-वढ़ना कुछ आता नहीं।''

''हर गाँव का एक स्थानीय व्यक्ति कबाइलियों के साथ है, जो उन्हें गुप्त रूप से या खुलकर भी रास्ते दिखाता है, और इनके लूटमार के कार्यक्रम बनाता है। औरतों, मर्दों और वृद्धों, बच्चों की संख्या की सूचना मुहैया करता है। यह बातें मैंने अठूर में सुनी।''

''हाँ उसके बिना ये कैसे किसी गाँव में पहुँच ही सकते हैं।'' काकनी ने कहा।

''स्थानीय लोग दोनों काम करते हैं, हमें बचाने का नाटक भी और इन्हें रास्ता दिखाने का काम भी।'' ब्रजनाथ यानी गाशा बोला।

''कैसा दारुण क्षण है ब्रजनाथ...।'' काकनी ने कहा और वे दोनों गाँव की तरफ आगे बढ़ रहे हैं। वैद्यलाल की गली पार करके उन्होंने काकनी की गली पार की। दोनों घरों में आग की दहक तेज थी। चीजें जलने के बावजूद अपने-अपने अस्थिपिंजरों को अक्षुण्ण बनाये हुए थीं राख में...शायद इसलिए कि पहचाना जाए कि कौन राख किस वस्तु की है।

अभी भी चीजों के जलने की चिटक-चिटक आवाजें आ रही थीं।

''जहाँ तक मुझे याद है शायद प्रभावती के आँगन में ही उन्होंने गोलियाँ

चलायी थीं...।'' काकनी ने अपनी याददाश्त पर जोर देकर कहा।

''गोलियाँ कब चलीं?''

''पहले उन्होंने औरतों को कतार में खड़ा किया और तब उन्हें चल पड़ने की आज्ञा दी डराते हुए—तब जब हम सभी औरतें टीले पर पहुँच गयीं तो तड़ तड़ तड़ गोलियाँ चलने की आवाजें हुईं। हम समझ गयीं कि पुरुष मारे गये हैं। स्त्रियाँ रोने-बिलखने लगीं। पर कबाइली विकराल दानव थे। हाँककर ले गये। कहते हैं बारामूला कैम्प में सैकड़ों पण्डित स्त्रियाँ हैं जिनकी वे अस्मत लूटते हैं। क्या होगा? अब क्या होगा ब्रजनाथ...?'' काकनी ऐसे पूछने लगी, मानो ब्रजनाथ कुछ हल जरूर बता देगा।

काकनी और ब्रजनाथ को पीछे से आ रही कुछ कदमों की आवाजें आने लगीं। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो चौंक गये। पीछे से रहमान डगा और उसके साथ दो-तीन और मुसलमान आ रहे थे।

वे तेज कदमों से उनके पीछे-पीछे आ रहे थे। काकनी और ब्रजनाथ रुक गये। जानने को उत्सुक हो गये कि वे उनके पीछे-पीछे क्यों आ रहे हैं। कहीं कबाइली फिर तो नहीं आ रहे हैं, या हो सकता है कि फौज गाँव में पहुँच गयी हो।

रहमान डगा ने काकनी के पास पहुँचते ही अपनी टोपी उठाकर काकनी के पैरों में डाली, ''आप घर में आइए। खुदा के वास्ते। अब रात होने वाली है। इस जल रहे गाँव में क्या करिएगा। यह बच्चा भी दहशत का मारा है।''

''नहीं, हम लाशें ढूँढ़ रहे हैं...उन्होंने कुछ मर्दों को मार डाला। गोली औरतों के टीले पर पहुँचने पर चलायी गयी। मुझे मालूम है। मैंने सुना, कई गोलियाँ चलीं।'' काकनी ने आक्रोश के साथ दबंग आवाज में कहा...मानो कह रही हो कि अब हम मरे हुओं को मारना या बचाना फजूल है। इस तरह मनुष्यता दिखानी थी तो तब दिखाते जब गोलियों से भट्टों को भूना गया, जब उनके घरों को राख कर दिया गया। इसलिए हमें हमारे हाल पर छोड़ दो।

''लेकिन मैं आपको कैसे विश्वास दिलाऊँ कि कोई नहीं मरा। हमने उनसे सबको छुड़वाया। हमने पुरुषों पर एक भी गोली नहीं चलने दी। कैसे चलाने देते। हम सब नन्दबब के बच्चे हैं। उन्होंने वे गोलियाँ सिर्फ दहशत पैदा करने के लिए चलायी और आखिर में गाँव को आग के हवाले कर दिया। पुरुष सब हारन के रास्ते भाग गये। वे सभी सही-सलामत हैं। मेरी बात मानिए। वल्लाह। मैं खुदा की कसम खाता हूँ राजरानी। चलिए। चलिए। गाशा। चल मेरे बच्चे। सब ठीक होगा। सब लौट आएँगे। सब आबाद होंगे।''

''हाँ फिर से सब कुछ बरबाद होने के लिए।'' काकनी अपनी भीतरी रगों

में बोली। उसकी अन्त:प्रज्ञा को पता है। उसको जन्म-जन्मान्तरों का अनुभव है। उसकी धमनियों को इसका ज्ञान है। उसकी धड़कनों को पता है, ठीक आफताब से शुरू करते हुए उसे सुदूर भविष्य की भी कथा पता है।

"अच्छा आप जाइए। हमें यहीं पहरा देने दीजिए। इन्हीं अपने जलते आशियानों के पास। हम इस वक्त कुछ नहीं खा सकते। जब हमें लगेगा, हम आप ही के घर चले आएँगे, रहमान डगा और जाएँगे कहा।" कहते-कहते काकनी जो अभी तक पत्थर की बुत हो गयी थी भरसक आँसुओं की नदी हो गयी। गाशा भी रो पड़ा। फूट-फूटकर। और वह उसे ढाढ़स बँधाने लगी, "मत रो बच्चे। मत रो ब्रजनाथ, गाशा चुप हो जा बेटा। मैंने तुझे अठूर नहीं भेजा होता, तू इस समय श्रीनगर पहुँच गया होता, पर कोई बात नहीं, सुबह होने दे। कहते हैं हिन्दुस्तान की फौज भी आ रही है।" काकनी ने ऐसे कहा मानो वह व्यंग्य कर रही हो उनकी इस देर से उत्पन्न हुई मनुष्यता पर। और भारत सरकार पर, अगर वह कहीं है या कुछ है, उनके सब कुछ स्वाहा हो जाने के बाद फौज भेजने पर। गाशा बड़ी देर के बाद चुप हो गया।

"आज की सुबह भी कैसी सुबह थी गाशा बेटा। विचित्र सुबह। किसने सोचा ये अधकटे कबाइली सुबह-सुबह आएँगे और दोपहर तक गाँव ही कहीं नहीं होगा। किसने सोचा था? पर ईश्वर दयालु है बेटा। दयालु है ईश्वर। मैंने नहीं सोचा था अभी तेरे लौटने से पहले कि तू सही-सलामत साबुत वापस लौट आएगा। या रहमान डगे ने जो शुभ-समाचार दिया कि सब मर्द बच गये हैं...यह कितना बड़ा सुख है...कितना बड़ा शुभ समाचार है...अरे ब्रजनाथ, सब फिर से बनेगा। सब कुछ। पर मनुष्य पुनः कहाँ मिलता है वापस। इसलिए हमें सुखी होना चाहिए। मैं नन्दबब की आभारी हूँ...एहसानमन्द हूँ...गाशा कि तू है मेरे पास बेटा। और गाँव के मर्द कल तक लौट आएँगे ही या कभी तो लौट आएँगे ही।"

रहमान डगा यह कहकर चला गया था कि वह कुछ दूध, कुछ चावल और कुछ खाने के इन्तजाम की चीजें जुटाकर वहाँ लौट आएगा। गाशा एक जमीनदोज चूल्हा तीन पत्थरों की मदद से बनाएगा। काकनी कुछ साग और भात पकाएगी क्योंकि वह मुसलमानों का पकाया नहीं खाती।

काकनी को उस दावानल में भी अमृतवर्षा की आशा है। एक सुख की बात है कि अठूर अभी कबाइली नहीं पहुँचे। दूसरे कि अगर हिन्दुस्तानी फौज आ गयी है तब तो कबाइलियों को भूनकर रख देगी। तीसरे कि अगर गाँव के मर्द जीवित हैं तो एक-एक कर किसी न किसी दिशा से सूर्य की तरह उदित होंगे और अन्तिम कि गाशा उसके साथ है प्रकाश की तरह। यह भी कि कोई बात नहीं। फिर से गाँव बसेगा। घर बनेंगे। फसलें लहलहाएँगी।

'पर स्त्रियाँ? स्त्रियों का क्या होगा? कहीं उनको उनके पति अस्वीकार न करें। कहीं उनको कबाइलियों का गर्भ न ठहरा हो। अगर कोई मर गयी हो...हे भगवान! अगर किसी को कबाइली अपने साथ सरहद पार ले गये हों...तो?' ये जटिल प्रश्न थे काकनी के मन में...ज़बरदस्त यातना थी।

काकनी के पास करने को कुछ न था। वह अपने घर के सामने बैठी मन्त्र पढ़ रही थी। इतने में थका-माँदा गाशा झपकियाँ लेने लगा था और काकनी ने उसका सिर अंक में लेकर उसे सुलाने के लिए भरपूर सहारा दिया था।

सुधा प्राय: सोचती है कि काकनी ने तभी से रात की नींद का त्याग किया होगा। कृत्रिम प्रकाश का त्याग किया होगा। द्रव्य का त्याग किया होगा। और काकनी तभी से बिन्दु के पापा ब्रजनाथ को विशेष प्यार करती है। उसके लिए विशेष आशीष देती है।

❑❑

सन्ध्या समय में काकनी को दैनिक सान्ध्य दीप का ध्यान आया तो ईश्वर से व्यंग्योक्ति में बोली काकनी...मानो 'कथाजपं' कर रही हो...मानो विनाश देखते-देखते...या शिवताण्डव की यह अवस्था प्राप्त कर वह शिवोपासना के इस सोपान तक पहुँच गयी हो और 'कथाजपं' में स्थिर हो उठी हो और शिव से कह रही हो—"आज सन्ध्या के समय मैंने पूरा गाँव ही तुम्हें समर्पित किया महादेव। प्रभु प्रसन्न हो तुम अब? खूब प्रसन्न हो न? इतना बड़ा दीप जलाया कि दीप कोई चीज ही नहीं रहा। वह छोटा दीप भी इस बड़े-से दीप में स्वाहा कर दिया। क्या अब मुक्ति का मार्ग प्रशस्त है...? बोलिए महादेव...बोलिए...मैं व्यंग्य नहीं करती...सच में पूछ रही हूँ...क्या निस्तार है अब...प्रभु जी कितना आभार व्यक्त करूँ कि तुम्हारी साधना में हमें क्या करना है...तुम सब सामान स्वयं करते जाते हो...हम मूर्ख इसे यातना कहते हैं...हमें पता भी नहीं कि दरअसल यह तपस्या है।...है न यह मुक्ति पथ...यह पथ...?"

रहमान डगा की दो बहुएँ और पत्नी कुछ सामान लेकर आयीं। रहमान की पत्नी काकनी के सामने खूब रोयी भी...जबकि काकनी उसे निर्विकार रोते हुए देखती रही। सोचने लगी, '...शैतान का दिल भी पसीज जाएगा...यह सब...यह सर्वनाश देखकर। तुम रो रही हो तो कौन-सा कमाल कर रही हो।' रहमान डगा की पत्नी ने काकनी से पुन: बहुत अनुनय-विनय किया उनके घर पर आकर रात काटने के लिए, 'यह बच्चा कम-से-कम ढंग से सोएगा...यहाँ इस श्मशान बियाबान में कैसे सोओगे?' पर काकनी नहीं मानी।

समयहीनता-सी छा गयी थी। सुधा को अचानक लगा कि बाहर जो अभी-

अभी सूर्य का निर्विघ्न प्रकाश फैला था उसमें कहीं धुँधलका घुस आया। मानो अचानक नभ अपना सारा उल्लास ताक पर रखकर अतीतजीवी हो गया हो...उदास हो गया हो...काकनी वर्तमान में लौटकर...देखने लगी गौर से सुधा को। जिसके कपोलों पर से अश्रु बह रहे थे...और बोली, ''मेरा फिरन बाहर से ला। कदाचित् बारिश हुई तो...।''

सुधा दौड़कर बाहर गयी। काकनी का फिरन लाया और उसे तह करने लगी। काकनी ने पेटी साफ कर ली थी और उसमें अब फिरन रखने ही वाली थी कि उसने देखा सुधा फिरन की तह लगा रही है और आँसू उसके रुक नहीं पाते...सुधा हैरान है कि काकनी अचानक रुक क्यों गयी कथा कहते-कहते। तब सुधा बोली, ''रुक क्यों गयी काकनी। सारी बात बताओ न। फिर क्या हुआ? क्या सारे मर्द लौटे? स्त्रियाँ लौट आयीं?

''इतने में रो-रोकर हलकान हो रही हो...आगे बोलूँगी तो...पता नहीं...रो-रो कर मर ही जाओगी...मैं कौन-सा मुँह दिखाऊँगी अपनी भट्टिनी को?''

सुधा ने किन्तु जोरदार आग्रह किया बल्कि हठ किया...तब काकनी बोली, ''उसके बाद क्या बोलूँ...हमने न कुछ खाया। न पिया। रहमान की बीवी एक घड़वा दूध लायी थी, जो नीम गर्म था। वह गाशा को मैंने पिला दिया और वह सो गया। वह थकान, भय और गम से चूर था। वे कुछ कम्बल भी लाये। पहले बहुत मिन्नतें कीं कि हम उनके घर रात काटें, पर मैं नहीं मानी...हम वहीं जमीन पर पड़े रहे पौ फटने तक। मैं मानो घरों की जलती लाशों की रखवाली कर रही होऊँ। जीवन में इससे दारुण क्या हो सकता है? अरे हिन्दुस्तान की फौज? कहीं से भी नजर नहीं आ रही थी। मुझे रह-रहकर ऐसा लगने लगा था कि पूरा हिन्दुस्तान ही जल रहा है...या कभी-कभी लगता कि ब्रह्माण्ड ही जल रहा है और हम महायातना के भागीदार हैं खामख्वाह। भला कहाँ से आएगी भारत की फौज। क्या पता कुछ धोखा लग गया हो हमें उस जहाज से। हो सकता है कि वह पाकिस्तान का जहाज हो और पर्चे उन्होंने कबाइलियों की वाहवाही के फेंके हों। यों ही शबडगे ने मुझे झूठ से बहलाया हो...या बेवकूफ बनाया हो...क्योंकि अनपढ़ हूँ।''

रहमान डगा की बीवी घनी रात में पति के साथ फिर एक बार आकर प्रार्थना करने लगी, ''आप आइए राजरानी! देखिए डर तो यहाँ है। बहुत-बहुत खौफ है। अल्लाह के लिए यह सितम न करें। आइए दोनों माँ बेटे। हो सकता है कबाइली फिर आएँ।'' पर मैं जरा भी नहीं डरी और बोली, ''कबाइली आएँगे तो मारेंगे हमें ज्यादा-से-ज्यादा। और क्या बिगाड़ेंगे हमारा। बोलो। आने दो। मन में आया था कि कहूँ कि भारत की फौज भी तो आएगी...अब डरना कैसा? पर मैंने नहीं

कहा ऐसा। मेरे मन में उनके आने को लेकर शंका भी उत्पन्न हो गयी थी। पर मेरे भीतर कोई गहरी आशा भी थी। कभी लगता कि क्या पता फौज को मुसलमान लोग इस गाँव का रास्ता न दिखाते हों इसलिए वे भूगोल के अज्ञान के कारण हम तक पहुँच न पा रहे हों।

''इसलिए मुझे उन मर्दों का इन्तजार था जो बकौल डगा हारन के रास्ते से भाग गये हैं छुपने के लिए। मुझे आशा थी कि किसी-न-किसी क्षण वे वापस आएँगे।

''समाचारों की हर क्षण जरूरत थी। पर समाचार कहीं से नहीं आ रहे थे। पता ही नहीं था कि किस-किस गाँव का क्या-क्या हश्र कर रखा है उन्होंने। ओह। उस साल फसल भी खूब हुई थी। जैसे कि हर तबाही के साल हुआ करती है। अब तो पूरा अनाज भी स्वाहा हो गया था। इतनी फसल होने के बाद भी लोग उस शिशिर को भरपेट चावल खाने को तरस गये। सारी फसल आग की पेट में गयी। लोगों ने अगली फसल होने तक जौ और मक्की की खिचड़ी खा-खाकर गुजारा किया...जिससे ज्यादातर बच्चे बेचारे बीमार रहे। कई बीमारियाँ नमूदार हुईं। एक आपदा कई आपदाओं को अपने साथ लाती है ना।

''रात भर मैं सोयी नहीं। हर गाँव में मुझ जैसा या गाशा जैसा कोई-न-कोई रहा ही होगा, जो उन रातों का, दिनों का चश्मदीद गवाह रहा होगा। कोई नहीं कल्पना कर सकता, एक जल रहे गाँव के बीच एक बच्चा और एक बूढ़ी औरत। ओफ्फ। छोड़ो... ।''

सुधा ने देखा अब काकनी भावुक हो उठी है। वेदना-विह्वल हो उठी है। लिप्त हो उठी है। उस क्षण के निकटतम पहुँच चुकी थी। उस आग की दहक के समक्ष। जिसकी स्मृति उसे अपने ही लिए असह्य हो उठी है। और सुधा रो रही है। बहुत रो रही है सुधा।

''अरे तुम रो रही हो। रोना कोई समाधान है। बचने और बचाने की तरकीबें सोचनी हैं। यह तुम्हारी जिम्मेदारी है कि आगे फिर से न होने पाये यह सब इस पर चिन्तन करना है।...यह जानना जरूरी है...यह ज्ञान होना चाहिए...समय का ज्ञान।''

''मेरी जिम्मेदारी...काकनी?''

''अरे तुम सबकी। बच्चों की...बड़ों की।''

''क्या अब भट्ट बदल गये हैं...मेरा मतलब है काकनी, भट्ट भट्ट बन गये हैं क्या?''

''खाक बदल गये हैं...रत्ती भी नहीं बदले हैं। मगर मेरा यकीन है कि बदली हुई और सीखी हुई पीढ़ी का कभी भी उदय हो सकता है। वह तुम्हारी पीढ़ी भी

हो सकती है। इसलिए जानना जरूरी है कि इतिहास क्या था?...इतिहास क्या है?...वह इतिहास सुधा जो अभी-अभी तुम्हारी आँखों के सामने हाले-हयात है। मसलन मैं।''

❑❑

सुधा यह जानने को बेहद उत्सुक थी कि फिर यह गाँव जो इस समय खड़ा है, खड़ा कैसे हुआ? कब हुआ? किस प्रकार हुआ। किसने खड़ा किया? उन मर्दों में से कौन-कौन लौट आया था।...या क्या वे सब-के-सब सचमुच सूर्य की तरह उदय हुए थे और उन स्त्रियों का क्या हुआ था जिनका जिक्र अभी-अभी निराशा भरे शब्दों में काकनी ने किया। क्या अर्जुन की वाणी को सत्य किया...कि ''स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः....।'' काकनी को पूरी चिन्ता है कि कैम्प में गयी हुई स्त्रियाँ अपनी-अपनी कोख में वर्णसंकरों के अंकुर न लायी हों...पर ऐसे में स्त्रियाँ कर भी क्या सकती हैं? सुधा की हिम्मत नहीं पड़ी थी पूछने की कि क्या स्त्रियों में कुँआरी लड़कियाँ भी थीं? या नहीं ही थीं।

समय के बहाव के साथ वह स्वयं जान गयी कि कैसे हो सकता है कि कुँआरी लड़कियाँ न रही हों उनमें।

काकनी बहुत देर तक रो रही थी। सुधा को लगता है काकनी जब रोती है तो यह पूरे ब्रह्माण्ड के लिए बड़ा कारुणिक क्षण होता है। काकनी जैसी शक्तिमती स्त्री का रो पड़ना स्थितियों का अन्त नहीं तो क्या है। समय का अन्त नहीं तो क्या है। उसके अभी भी भरे-भरे उभरे गालों पर पानी ऐसा डोलता रहता है बहुत देर तक मानो समुद्र में बाढ़ आयी हो न कि ज्वार। या वितस्ता आगे किसी व्यवधान के कारण पूरे गाँव के प्रांगणों में फैली हो।

❑❑

काकनी खुद नहीं सोती। उसको थपकियाँ देते हुए फुसफुस मन्त्र पढ़ती है। पढ़ती ही रहती है अन्तहीन। मानो पूरे मनुष्य मात्र को धीमे-धीमे कवच पहना रही हो। जैसे वह सन्ध्या दीप खिड़की की चौखट पर रखते हुए पढ़ती है। सुधा को बेहद उत्सुकता है उन मन्त्रों के अक्षर जानने की। 'क्या काकनी संस्कृत मन्त्र जानती है? क्या संस्कृत जानती है? क्या काकनी ने संस्कृत पढ़ी है? क्या पढ़ी-लिखी है काकनी? उसने अनुभवों की अलिखी शब्दातीत गाथा खूब समझी है। उसमें निमज्जित हो जाने का उसमें खूब दम है। पूरी पुरुष है काकनी। पुरुषार्थ से भरी पुरुष। पूरे गाँव में एकमात्र पुरुष है काकनी।' सोचा सुधा ने।

पर उन मन्त्रों को वह बड़े ही परिश्रम और पूरी एकाग्रता के साथ सुनने

में सफल हुई थी। "सन्ध्या ढले...विघ्न चले...धूपदीप...दीप...आदि संस्कृत...कश्मीरी सब मिश्रित।...नमस्कारं...कुरु...ॐ...।" काकनी कितनी सृजनात्मकता से लैस। जैसे वह सतसोस का साग बना सकती है, वह मन्त्र भी शब्दों के सतसोस से गढ़ सकती है...अपनी निरक्षरता को ठेंगा दिखाकर। तभी तो सुधा की ताई कहती है..."अपढ़ी पठित है तेरी नानी...।" उसके गालों में वर्ण का वर्ण तक पहचान लेती है सुधा।

काकनी मन्त्र अनन्त बार पढ़ती है। तभी उसने माला फेंक दी है...और कहती है, "माला... ? मुझे माला रास नहीं आती...माला मैंने श्वासों की पहनी है...उसका अन्तिम सिरा...अन्तिम श्वास पर मिलेगा और मैं...कुछ नहीं रहूँगी...कुछ भी नहीं और सब कुछ हो जाऊँगी...सब कुछ। इस गाँव की धूल...इस गाँव के फूल...पत्ते सब...धान...गेहूँ...सब कुछ...अखरोट की चार वेदों सरीखी गिरियाँ।"

बस मन्त्र पढ़ती रहती है रात भर काकनी। जब भी सुधा की नींद खुलती है, वह मन्त्र पढ़ रही होती है।

वह लेटती ही नहीं। 'क्या वह थककर चूर भी नहीं होती ? होती तो होगी।'

काकनी की थपकियाँ उसके दर्द कर रहे दिल पर पड़ रही हैं...ऐसे ही हर रात पड़ती हैं जिन रातों वह गाँव में होती है, और फिर उसकी आँख सुबह खुलती है। कभी-कभी जब उसकी आँख अगर रात को खुलती है, तो काकनी मन्त्र पढ़ रही होती है और उत्पाद मचा रहे चूहों को सफेदे से कटी एक लम्बी टहनी के डण्डे से भगा रही होती...उन्हें गालियाँ दे रही होती है..."खाविन्दख्वाहो...तपाली आये...तुम पर झाड़ू लगे तुम पर ऐसे जैसे पाकिस्तान से आये कबाइलियों पर लगा था।" इस अर्धनिद्रा में भी उन्हें चूहे कबाइलियों की सन्त्रास भरी स्मृति दिलाते।

उस समय उसे काकनी बेहद उबाऊ और दु:खमय जीवन जीती हुई लगती है, जहाँ वह भी आकर फँस गयी है...पर सुबह जब वह शीरचाय पीती या किसी-न-किसी बहाने वट्टू से भागती और लहलहाते खेतों की पगडण्डियों पर और फलों से लदे बागों और फूलों से अँटी क्यारियों में आवारा घूमती...तब उसे अपना आप तिलिस्मी संसार में लगता। यह भूलकर कि रात को उसे काकनी के पास लौटना है। कालिख से पुते ऊबड़-खाबड़ फट्टों और शहतीरों की छत...सीलन की गन्धयुक्त फर्श वाले वट्टू में जहाँ काकनी उर्फ राजरानी उर्फ सतीद्यदी सम्राज्ञी की तरह से दण्ड सुनाएगी पर देगी नहीं। उसको आवारा और दुश्चरित्र लड़की करार देगी जबकि अभी उसे 'चरित्र' का अर्थ भी नहीं पता।

❑❑

सुबह जब आँख खुली थी तो काकनी पानी का मटका लायी थी और शीरचाय

तैयार थी, उतने ही दूध से जितना कुछ कतरे-भर उनके पास कल था। सुधा सोच रही थी कि काकनी उसे परमेश्वरी के यहाँ दूध की घड़वी लाने के लिए भेजेगी। अच्छा हुआ कि उसने घड़वी बेबी के हाथ नहीं भेजी। पर काकनी का चेहरा सख्त था। सख्त सिल-सा। "उठ, चाय पीले...दिद्दा।"

वह पानी लायी और खिड़की से उसका मुँह धुलवाया। बाहर जाने की कतई इजाजत नहीं थी। खुद काकनी लूँग्य बाँधकर कहीं के लिए प्रस्थान करने को तैयार हो रही है। यानी अभी उसे कैद में रखा जाएगा।

"मैं इस रोशनदान से निकल जाऊँगी और तब दरवाजे पर बाहर से कुण्डी लगाऊँगी। तुम अन्दर रहोगी, वट्टू में जब तक कि मैं लौटकर न आऊँ।" काकनी आज्ञा-पत्र पढ़ रही है, जो उसने उसकी नींद और अपने मन्त्रपूत जागरण में ही लिख रखा है। वह उदास और चकित है और काकनी के जाने पर कैद से फरार होने की तरकीबों पर भी बराबर सोच रही है।

"परमेश्वरी के यहाँ से दूध नहीं लाना है क्या?"

"नहीं कोई जरूरत नहीं।"

फिर से वट्टू में चुस्कियों की और धड़कनों की आवाजें हैं।

"मैं भी आऊँ काकनी?" उसके स्वर में अनुनय था।

"बिल्कुल नहीं...मैं जल्दी लौट आऊँगी।"

"अगर मुझे पेशाब आया...?"

"तू अभी जाकर पेशाब कर ले...फिर जब मैं आऊँगी...तब तक नहीं आएगा पेशाब।"

"तुम जा कहाँ रही हो काकनी?"

"हारन...हारन में रहमान के साथ कुछ बीज बोने हैं। दो खेत अभी रह गये हैं। कुल्या में, कहते हैं, पानी आया है।...पानी लगा लेंगे मैं लौट आऊँगी...।"

वह उन बातों को उम्र कैद की तरह सुन ही रही थी कि रहमान वट्टू में घुसा। "चलिए राजरानी...।" रहमान ने वट्टू में घुसते ही अपने एकदम तैयार होकर आये होने की घोषणा कर दी, अपने अनुनासिक स्वर में।

"तनिक कदम रख रहमाना...चल रहे हैं।" वह लकड़ी के बक्से पर बैठ गया और दिद्दा से भौंहों को नचाते हुए पूछा...कि..."क्या हाल हैं?"

"दिद्दा यहीं रहेगी? अकेली...राजरानी?" रहमान ने वट्टू से ही रसोई के भीतर बर्तनों को मय ढक्कन रखती हुई काकनी से पूछा।

"हाँ...चलो।" रसोई की दहलीज पार करते हुए काकनी ने उत्तर ऐसे दिया कि रहमान समझे कि उसकी यही योजना है। शेष वह दखल न दे।

काकनी लूँग्य की छोर ठीक कर रही है और ऐसा करते-करते पाँव में

पुलहोर भी डाल रही है...चेहरा इतना सख्त है...जैसे कोई दुर्निवार चट्टान।

रहमान एक अलग ही राग छेड़ता है, ''अलफतह चालू है...राजरानी। आपको पता है... ?''

काकनी ने एक अस्वीकार भरा मौन वरण कर लिया।

''दो गाँव और जल गये। कल लालड़ में भी आग लग गयी थी, पर रोक ली गयी। जहाँ देखो आग...सिर्फ आग...लगता है एक दिन पाकिस्तान लेगा ही लेगा कश्मीर को, छोड़ेगा नहीं...।''

काकनी ने अप्रभावित दिखने का रणकौशल अपनाया। या क्या पता वह अप्रभावित रही। अगर वह अप्रभावित रही तो क्या उसके भीतर पाकिस्तान की कमजोरी पर गहन आस्था थी? या कि हिन्दुस्तान की ताकत पर? पर वह बेअसर रही और एक वेग से बाहर गयी। पीछे-पीछे रहमान भी चल पड़ा। उसने रोशनदान बन्द कर दिया और बाहर से दरवाजे पर कुण्डी चढ़ा दी।

काकनी को यकीन है कि अब जो खिड़की खुली है और जहाँ से दिद्दा उसकी राह देखेगी, वहाँ से वह कूदकर भागने से डरेगी अत: कूदेगी नहीं। काकनी कुल्या पार कर दाहिने मुड़ गयी। वह सोच रही थी कि रहमान उसे पाकिस्तान बनने के बारे में बता रहा होगा और काकनी बीजों की बुआई और आवपाशी पर ही बातें करेंगी।

काकनी के जाने पर सुधा के कानों में रहमान की अप्रिय बातें गूँजती रहीं। और वह सोचने लगी, 'रहमान को सबक सिखाना चाहिए। कश्मीर में हम ताकतवर हैं क्योंकि कश्मीर हिन्दुस्तान का एक राज्य है और हिन्दुस्तान एक विशाल और ताकतवर मुल्क है। रहमान बकवास करता रहता है। सपने देखता रहता है। हमारे भी कितने दुश्मन हैं? पाकिस्तान। तुलसीमची...टिकालाल और रहमाना...और भी कौन-कौन...।

उसने दृढ़ निश्चय किया था कि काकनी जब ओझल हो जाएगी तो वह छलाँग लगाकर खिड़की से बाहर निकलेगी। वहाँ तुलसी इतनी फुर्ती से गोशाला से गोबर निकाल रही है कि देखते ही बनता है। वह घूर-घूरकर दिद्दा को भी देख रही है। मतलब वह समझ गयी है कि वह वट्टू में बन्द है। फिर जब वह चौथी बार भी गोबर का टोकरा जमीन पर मारने लगी तो बोली, ''बन्द रखा है नानी ने क्या?''

''हाँ।'' उसने उत्तर दिया और पाँचवीं बार का गोबर लाने ज्यों ही वह गोशाला के भीतर घुस गयी तो दिद्दा ने धम्म से छलाँग लगाकर खुद को आजाद कर लिया, पर यह निश्चय करते हुए कि बस आँगन के भीतर-भीतर या उस इलाके के भीतर-भीतर ही वह आवारागर्दी करेगी जहाँ-जहाँ से उसकी नजर काकनी के

वट्टू की खिड़की तक जाएगी। इस परिधि से बाहर नहीं निकलेगी। वर्ना पीछे से तुलसीमची चोरी करेगी। क्या चुराएगी...क्या है वहाँ? यह सोचना उसका काम नहीं। भले ही कबाइलियों की तरह रात-भर दुःखी करने वाले चूहे ही वह चुराये...अगर काकनी कहती है कि वह चुराएगी तब तो चुराएगी ही और फिर किसी आते या जाते हुए से मदद माँगकर नानी के हारन से वापस लौटने से पहले वट्टू में वापस कूदेगी मानो वह वट्टू से बाहर कूदी ही न हो।

पाँचवीं बारी का गोबर लाते हुए तुलसी ने सुधा को बाहर देखा और समझ गयी। भरसक हँसते हुए कहा, ''छलाँग लगायी?'' उसने सिर हिलाकर हामी भरी। तुलसी से बात करना वर्जित है। यह वर्जना काकनी ने लगा रखी है। वह काकनी की ननद है, जिसने काकनी के वैवाहिक जीवन में वही रोल अदा किया जो परम्परा है।

पहले उसने आँगनबाड़ी में घुसकर एक खीरा तोड़ा और उसको छिलके समेत चबाती रही...मानो वट्टू में बन्द किये जाने का खीरे से बदला ले रही हो। फिर अचानक वह आँगनबाड़ी के उस तरफ चली गयी जो तुलसीमची का है। वहाँ कुछ चुराकर काटने का उसका मन था। दुश्मनों का कुछ-न-कुछ बिगाड़ते रहना चाहिए। तब कुछ लाल-लाल टमाटर उसने तोड़े। दो खाये और पाँच सफेदों की बाड़ पर दे मारे। अब हरे टमाटर बच गये थे। मगर उसकी उनमें रुचि नहीं थी।

अब वह जंगली अमरूद के पेड़ को जोर-जोर से हिलाने लगी। ढेर सारे फल गिरे। वह समेटकर उन्हें खाने लगी। पूरे गाँव में इस फल के दो ही पेड़ हैं। वे भी बड़े ही सलीके से लगे। आँगनबाड़ी के प्रवेश-द्वार पर। उस तरफ टिकालाल, अर्जुननाथ और तुलसी का, इस तरफ काकनी का।

अमरूद नाम का फल यहाँ होता ही नहीं इसीलिए इस फल को जंगली अमरूद कहा जाता है और काकनी कहती है कि, ''ये दोनों बीज ताराचन्द गिलगित से जेब में लाये थे और यहाँ बो दिये थे। आशा कम थी उनके उगने की पर उग गये और ऊँचे कद्दावर भी हो गये। फलदार भी हो गये। एक पेड़ पर इन शत्रुओं ने यों ही दावा बोला। कब्जा किया। अब मैं सोचती हूँ, खाने दो...मरने दो। पेड़ यही रहेगा...हम ही न होंगे कहीं।''

''यह कबाइलियों के पहले ही बात है या बाद की।''

''कबाइलियों के समय तेरे नाना ताराचन्द राजदान थे ही कहाँ...सितारों में बैठे थे जाकर...। उससे पहले की बात है। इन पेड़ों ने, उन अखरोटों और मैदान के बूढ़े चिनारों की तरह कबाइलियों के कदमों की विकराल टाप सुनी है। उनकी बलूच और पश्तो भाषा सुनी और समझी है। गोलियों की आवाजें सुनी हैं। गाँव

में आग लगाने के दृश्य देखे हैं। ये मेरे साथ-साथ चश्मदीद गवाह हैं...पूरी बरबादी के। इसीलिए मुझे खास प्यार है इनसे। इनके फल चेरी जैसे हैं...यानी उनका रंग और रूप चेरी जैसा ही है...पर वे चेरी नहीं।''

''स्वाद? स्वाद इनका रहस्यमय है। मादक है।''

❑❑

उसे क्यारियों में टिकालाल की आकृति दिखाई दी, जो उसे लम्बे हो रहे राजमाश और मक्की के पौधों के बीच में बैठा दिखा ही नहीं था पहले शायद, अब खड़ा हो गया था। इतनी देर बैठकर धूप सेंक रहा था। पास में एक काँगड़ी थी। जाहिर है वह टिकालाल ही था। इन बुड्ढों को काँगड़ी से ऐसा इश्क रहता है कि भरी गर्मी में भी सुलगाते हैं...फिर चिलम सुलगाने के लिए भी यह अग्नि-आगार जरूर रहना चाहिए उनके पास। उसने धुँधला-सा अन्दाज लगाया कि ये लोग काकनी को तंग करते हैं, वर्ना उसकी आँगनबाड़ी के साथ ही इनको आँगनबाड़ी लगाने की क्या जरूरत पड़ी थी।

आँगनबाड़ी में जिस जगह क्यारी नहीं है उसमें भी आधा भाग काकनी का है और आधा टिकालाल अर्जुन और तुलसी का। दोनों स्थानों पर सूखी घास के दो बड़े-बड़े ढेर हैं। टिका-अर्जुन का ढेर कुछ कम है, पर काकनी की घास अनछुई और बराबर है।

उसके दिमाग में एक प्रयोग सूझा। अलफतह का प्रयोग। काँगड़ी और सूखी घास के अन्तर-सम्बन्ध का प्रयोग। काँगड़ी के अंगारों से घास भीतर-भीतर जलेगी। लपट नहीं उठेगी। तब वह जाकर खिड़की से वट्टू में वापस कूदकर दूर से धुएँ का नजारा करेगी।

लगभग बीस गज से दूर लकड़ी के फट्टों का दो मंजिला मचाननुमा दुकान है माधवजू की। उस पर ऊपर के कमरे में भारत सरकार का डाकखाना है, जिसमें सतलाल बैठते हैं और डाक बाँचते हैं...फिर लोगों में डाक बाँटते हैं। टिका तब माधवजू के पास गया था। दिद्दा की नजरों से पूरा ओझल। उसने विचार के आते ही उसे अमली शक्ल भी देनी चाही। देना शुरू की। काँगड़ी उठाकर घास पर उलट दी। खाली काँगड़ी समीप ही रख दी और धीमे-धीमे कदमों में, भारी मन से, धड़कता हुआ दिल लेकर वापस वट्टू की तरफ बढ़ने लगी। 'मेरा नाम थोड़े लगेगा, अलफतह का नाम लगेगा। पाकिस्तान का नाम लगेगा और तुलसीमची, टिका और अर्जुन के होश उड़ेंगे।' उसे मजा आएगा और कोई नहीं समझेगा कि करतूत उसकी है।

सहज-सी बनते हुए वह तुलसी का काम देखती रही और बीच-बीच में

मुड़कर घने सफेदों के बीचोंबीच धुआँ उठने की प्रत्याशा करने लगी।

''तुलसीद्यदी बाल बनाऊँ... ?'' वह काकनी की अनुपस्थिति में कभी-कभी उसके दो-चार बाल जो उसके सिर पर बचे थे, बनाती थी और यह काम करते हुए वह तुलसी से बतियाती और तुलसी को खूब तंग करती।

''हाँ हाँ आओ, अभी तेरी नानी भी नहीं है। फिर वह आ जाएगी।'' उसने गेंद की तरह हाथ में रखा हुआ टोकरा दूर उछाला और भीतर जाकर जल्दी से तेल की गन्धाती शीशी और गन्दी-सी लकड़ी की कंघी लेकर आयी।

सुधा को पहले तो कंघी देखकर घिन-सी आयी, फिर बोल पड़ी, ''ओह तुलसीद्यदी कितनी गन्दी कंघी है?''

उसका हृदय धुआँ तेज धुआँ देखने की प्रत्याशा में असाधारण रूप से धड़का। और धुआँ देखने के लिए उसकी आँखें परेशान भी हुईं। अब वह बरामदे पर सामने तुलसी को रखेगी, उसके बालों से खेलेगी और धुएँ और आग की पूरी प्रक्रिया देखेगी।

उसके बालों से वह खेलने लगी। कभी-कभी वह उसके कानों के ऊपर से बाल सजाती, तब तुलसी दुःखी होकर कहती, ''मैं बूढ़ी हूँ...यह कानों के ऊपर बाल रखना अच्छा नहीं लगता दिद्दा...'' तब वह उसे परेशान या उससे विनोद बालों का कोई भिन्न स्टाइल बनाकर करती। मजा भी आता। ऊब भी मिटती और समय भी कटता और कैद भी।

धुआँ धीमे-धीमे जन्म ले चुका था...। घास के गट्ठर की भीतरी नसों में फैलता जा रहा था तथा घना होता जा रहा था। यहाँ तक कि लपट बनने की तैयारी कर रहा था।

धुआँ अब बहुत मोटा-मोटा उठ रहा था और सुधा की घबराहट बढ़ती ही जा रही थी। और इसी क्षणांश में तुलसी की नजर भी पड़ गयी और धुएँ की लपटें भी बनने लगीं। तुलसी जोर से चीखी, ''आग...आग...आग।''

वह स्तब्ध और अपराधी-सी खड़ी थी। इस बात का पूरा विश्वास रखे हुए कि आग उसने नहीं, अलफतह ने लगायी है।

तुलसी के पीछे-पीछे परमेश्वरी, प्रभावती, उसका बेटा अवतार, बिहारी लाल, काका जी आदि सब भाग रहे थे, धीमे-धीमे कदमों से, एक सेठ अन्दाज में, बिना किसी घबराहट का प्रदर्शन किये, अपना दुशाला बार-बार ठीक करते हुए जा रहा था प्रभावती का ननदोई भी।

गाँव में भीड़ जमा हो गयी। तुलसी आग लगाने वाले के नाम कोई दोजख नहीं छोड़ रही थी। कोई अपशब्द नहीं भूल रही थी। सुधा सुन रही थी और स्वयं को समझा रही थी कि आग उसने नहीं अलफतह ने लगायी है।

कुल्या पास होने के कारण आग पर जल्दी काबू पाया गया। बिहारी लाल ऊँची-ऊँची आवाजों में कहता हुआ सुनाई दिया कि ये अलफतह वाले दिखते नहीं, कहते हैं कि ये सामने से गुजरते हैं, मगर दिखते ही नहीं। रातों को जागना पड़ेगा अब। इसका मतलब है इस गाँव पर भी उनकी नजर पड़ गयी है।

तुलसी के बाल खुले थे। वह अपने उन हाथों से भगवान का शुक्र अदा करती फिर उन्हीं हाथों से अपने खुले बाल बाँधने की कोशिश कर, फिर से बालों को खुला छोड़कर हाथों को उठा-उठाकर दूसरा काम कर लेती। यानी इतनी ही देर में उसे अलफतह या आग लगाने वाले के नाम नयी और मौलिक गाली सूझी होती।

सुधा तुलसी के बालों को देख रही थी जिन्हें अब तुलसी ने ही जोड़-तोड़ कर एक चोटी में बाँध लिया था। तनाव के समय...काल में ही। उसने जो प्रयोग किया था उससे उठ रही लपटों के शान्त होते जाने के साथ उसका हृदय भी शान्ति का अनुभव करता जा रहा था और वह संकल्पबद्ध होती जा रही थी कि ऐसे प्रयोग घिनौने हैं और बचकाने। मारक। अक्षम्य अपराध है।

लोगों ने कुल्या से पानी के मटके, बाल्टियाँ और भगोने उँड़ेल-उँड़ेलकर आग बुझायी थी वर्ना वहाँ सब कुछ, सब कुछ यानी माधवजू की दुकान, भारत सरकार का डाकखाना और यहाँ तक कि काकनी की घास भी स्वाहा हो जाती। वह सोचने लगी कि अगर सरकार का डाकखाना जलता तो फिर पता चल ही जाता कि आग वास्तव में किसने लगायी है क्योंकि काकनी...।

❑❑

दोपहर तक राजरानी लौट आयी थी। आग के बारे में सुनकर वह चुप थी और प्रश्नपूर्ण भी। उसकी निगाह जब सुधा पर पड़ती तो लगता जैसे उसे आपादमस्तक निगलती हुई मालूम होती, क्या कहना चाहती है वह... ? क्या यही कि आग मैंने लगायी है...क्योंकि मैं घर में बन्द कर दी गयी थी, क्योंकि तुलसी, टिकालाल और अर्जुन ऊर्फ जनकाक की शत्रुता का तनाव जितना मेरे मन में हैं...।

'नहीं...नहीं...पर मैंने आग नहीं लगायी...मैंने ?...नहीं...नहीं...बिहारी लाल और काका जी भी चिल्ला-चिल्लाकर बोल रहे थे कि अलफतह वाले दिखते ही नहीं और आग उन्होंने ही लगायी...चाहे घास में ही सही।'

काकनी और सुधा ने भोजन खाया। पर सुधा से खाया नहीं गया। काकनी ने सात तहों में रखे कुछ नोटों में से एक रुपये का नोट निकालकर दिद्दा को पकड़ाकर कहा, "जाकर माधवजू की दुकान से एक आने की नसवार लेकर आ।"

सुधा ने दहलीज पर से दौड़ लगायी। एक राहत की लम्बी साँस खींची...शायद

समय का पहिया अब आग की बातों से आगे बढ़ गया है। अब आग की बात कोई नहीं करेगा और उसकी आत्मा-की-आत्मा को अड़ियल अखरोट में से गिरी की तरह कोई नहीं कुरेदेगा। अब बात आगे बढ़ी है। काकनी अब आराम से नसवार के बारे में सोचने लगी है।

इसलिए उसने सोचा कि काकनी के पैसों में से वह एक पाँच पैसा खर्च कर अपने लिए एक मिठाई ला सकती है। माधवजू की दुकान पर दो-तीन जार सस्ती मिठाइयों के अम्बार से भरे हैं पर उसने आज तक एक भी नहीं चखी। लोग तो रुपयों का हिसाब पैसों से करते हैं, परन्तु काकनी आनों से करती है। इसलिए उसके एक रुपये में से पाँच पैसे निकालकर वह अपनी मिठाई पर खर्च कर सकती है। काकनी को बता देगी कि ले ये पूरे पन्द्रह आने हैं जो माधवजू ने नसवार देने के बाद दिये हैं।

माधवजू से नसवार खरीदते हुए उसने पाया कि डाकखाने वाले सतलाल माधवजू के साथ पाकिस्तान, अलफतह की बातें कर रहे हैं। बातों में गहरा तनाव है।

तब भी उसमें माधवजू से सोलह आनों की मोटी रेजगारी में से पाँच पैसे का सिक्का मुँह में डाल दाँतों के पीछे जबड़ों के बीच सुरक्षित करने का हौसला बचा ही था।

नसवार और सिक्के काकनी के फिरन पर रखकर वह बिन्दु के साथ खेलने के बहाने बाहर दौड़ गयी। मन में भीति थी। भरपूर भय। एक के बाद दूसरा दु:साहस। उसे आज पता नहीं क्या हो गया है।

"अरे तेरे मुँह में यह क्या है?" बिन्दु ने घर-घर खेलते हुए दो टिन के डिब्बे घर में बड़े ट्रंकों की तरह सजाते हुए पूछा।

"अरे क्या है...कुछ नहीं...कुछ नहीं तो।" उसने सिक्के को मुँह के अन्दर और पीछे सरकाते हुए कहा।

"अरे कुछ भी तो नहीं है मेरे मुँह में...चलो। मटकियों को तर्ज में रखो...अच्छा तो यह हमारा किचन है...है न बिन्दु...?"

उसने बिन्दु को नजरें गड़ाकर देखा। देखना चाहा कि क्या बिन्दु को उस पर विश्वास हो गया या नहीं। पर उसको बिन्दु के देखने में कहीं कोई गड़बड़ महसूस हुई।

बिन्दु ने भी आगे कुछ भी कहने का साहस नहीं किया और काकनी के यहाँ से कोई प्रतिक्रिया न होती देखते हुए, क्षण-क्षण बीतते उसे लगने लगा, शायद वह अपने अभियान में, मिठाई का स्वाद चखने के अभियान में सफल होती जा रही है। काकनी को पैसों का हिसाब पूरा मिल गया है...अत: वह पूरी एकाग्रता

से बिन्दु के साथ 'घर-घर' खेलना चाहती है अब। ''सुधा...ओ सुधा...।'' काकनी बाहर आकर आवाजें लगा रही है। उसे बुला रही है। उसे एकाएक एक कँपकँपी-सी अनुभव हुई...मानो उसे एकदम एक सौ एक डिग्री बुखार चढ़ गया हो।

''माधवजू ने कितने पैसे दिये थे?''

''पन्द्रह आने।''

''ये पन्द्रह आने हैं...?''

''नहीं हैं क्या?''

''चल तू मेरे साथ चल। माधवजू के पास। वैसे माधवजू कभी इस तरह पैसे का हेर-फेर करता नहीं...पर...चलो हो सकता है उससे गलती हो गयी हो...आ चल मैं उससे पूछूँगी।''

''नहीं...नहीं। आप बैठो। मैं जाऊँगी। मैं ही लाऊँगी पूरे पैसे।''

''नहीं वह तुम्हें देता तो पहली ही बार पूरे पैसे देता न! चल मैं भी चलूँगी तेरे साथ।'' उसने लूँग्य बाँधना शुरू की

सुधा ने तीव्रता से कहा, ''नहीं नहीं, तुम नहीं चलो...नाहक...क्यों चलोगी...थकी हो...वैसे ही।''

''तो लेकर आ ये सारे सिक्के।...फटाफट पूरे पैसे लेकर आओ।''

उसने चैन की साँस ली। पैसे उठा लिये और माधवजू की दुकान की दिशा में भागने लगी। माधवजू की दुकान के बिल्कुल करीब अधेड़ उम्र के अखरोट के पेड़ की आड़ में रुककर पाँच पैसे का सिक्का मुँह से निकाला और पोंछकर सिक्कों में मिलाया। बहुत सहज होने की कोशिश करने के बाद वापस काकनी की तरफ दौड़ लगायी। दूर से दिख गया उसे कि खिड़की पर बैठकर काकनी की दृष्टि उसी की दिशा में एकाग्र थी, 'इतनी दूर से मुझे थोड़े ही देख सकेगी। काकनी कहती भी तो है अब बुढ़ापे के कारण और कबाइलियों के हमले के बाद उसकी आँखों की रोशनी आधी से भी कम हो गयी है।'

काकनी ने उसके करीब पहुँचते ही पूछा, ''दे दिये?''

''हाँ, उससे गलती हो गयी थी।''

''उससे? उससे गलती नहीं होती कभी भी।'' सुधा के पैरों तले की मिट्टी खिसक गयी। उसका मन अब बिन्दु के साथ घर-घर खेल खेलने का भी नहीं हुआ।

आज समूचा दिन वह ऐसे-ऐसे काम करने में व्यस्त रही कि न कहीं सम्मान रहा न आत्मसम्मान। इतनी असभ्य हरकतें। हे प्रभु! यह काकनी भी प्रभु जैसी है। अन्तर्यामी है। जानती है माधवजू से गलती नहीं होती इसलिए सुधरना है।

सुधा! सुधा! तू सुधर। सुधा को स्वयं से घृणा होने लगी।

❑❑

उसी शाम द्वाभा में सिद्धकाक के खँडहर पर ग्रामजनों की आपात बैठक हुई, जिसमें किशोर, युवक, अधेड़, बुजुर्ग सबने शमूलियत की। कुल मिलाकर संख्या पन्द्रह-सोलह थी।

इस खँडहर में कमरों के निशान हैं और कमरों में हरी-हरी लम्बी-लम्बी दूब। बीच-बीच में सरसों और हेंद के फूल। कहीं-कहीं क्रेछ के मूल और अन्य नन्हे-नन्हे फूल। दीवारें दायें-बायें इतनी हैं कि बराबर-बराबर ईंट रखकर उस पर छत रखी जा सकती है, किन्तु आगे-पीछे की दीवारें कुछ ज्यादा ही गिरी हैं। खिड़कियों के आकार और दरवाजों के आकार इन खँडहरों को भयावह और त्रासद इतिहास की पुस्तक-सी बनाते हैं, पर फिर बच्चे यहाँ दिन में मस्त होकर खेलते रहते हैं...सूरज के डूबने तक।

सिद्धकाक के घर का खँडहर, विद्यालाल के घर का खँडहर गाँव के शरीर पर जीवित जख्म हैं, जिन पर कभी-कभी चमड़ी की ढक्कन बैठती है और कभी-कभी खुरचने के कारण ये जख्म मवाद पैदा करते हैं। बस चन्द दिनों पहले ही ये जख्म लगे हैं, यानी कबाइली जब आये। कबाइलियों द्वारा घर को खँडहर बना देने के बाद सिद्धकाक और विद्यालाल कभी घर नहीं बना पाये और सर्वदास के घर के दो हिस्सों में रह रहे हैं।

सर्वदास का घर सुनसान और उदास। मगर सर्वदास का घर ही एकमात्र घर है जो गाँव के प्रवेश-बिन्दु पर स्थित होने के कारण कबाइलियों की आगजनी से न मालूम कैसे बचा था।

सर्वदास एक आवारा इंसान है। जिसकी पत्नी ने बड़ी-बड़ी यातनाएँ झेली हैं क्योंकि उसका मर्द सिर्फ उसके साथ सोता है और तदुद्भूत जनता को खिलाना, भरण-पोषण करना, सर्वदास की चिन्ता और चिन्तन से काफी दूर है। उसकी चार औलादें लेकर एक दिन उसकी पत्नी न जाने कहाँ चली गयी। पता चला कि वह किसी अस्पताल में आया का काम करने लगी। जहाँ एक विधुर सिपाही के साथ विवाह कर उस सिपाही के बच्चे को भी जन्म दिया और गाँव का सिर भरपूर नीचे किया। यह बात यहाँ की प्रभावतियाँ, परमेश्वरियाँ, सअंपकुजियाँ और लीलावतियाँ भी कहती हैं। पुरुषों का न्याय तो पूछिए मत।

बहरहाल ये खँडहर कबाइलियों के दिये जख्म हैं जो कि अलफतह की आग से बचने के मंसूबों की संसद है। यहाँ तय हुआ कि प्रभावती का बिहारी लाल, सतलाल का रोशन और दीनानाथ का अवतार कृष्ण आज रात को गाँव में

पहरा देना शुरू करेंगे। फिर कल दूसरा दल पहरा देगा। हर रोज एक बुजुर्ग आधी रात को इस दल का मुआइना करेगा।

इस खँडहर में कई पत्थर ऐसे हैं जो गिरने-गिरने को आ रहे हैं परन्तु गिर कतई नहीं रहे हैं। सर्वदास का घर ठीक-ठाक बना है। उसके पुरखों का बनाया हुआ और कबाइलियों के आने पर भी भाग्यशाली रहा। बारीक मिट्टी का पलस्तर, देवदारु की खिड़कियाँ, दरवाजे, रोशनदान, भट्टे की पक्की नक्काशीदार पुरानी छोटी-छोटी ईंटें। बीच-बीच में छतों की देवदारु शहतीरों पर नक्काशी की खुदाई। रोशनदानों पर लकड़ी के बुने महीन जाल और सलीके से बना लम्बा घरौंदा, जिस पर छः पानी के मटके रखने के अलग-अलग आसन। रसोई के तत्त्वावधान में दो तीनमुँहे, एक दोमुँहा और एक एकमुँहा चूल्हा और एक अंगार का चूल्हा भी। पर सर्वदास का सर्वनाश। उसका आलम ही तबाह है।

सर्वदास पीता है और घर की एक कोठरी में कुत्ते-सा पड़ा रहता है। पैसे मिलते हैं तो सोपोर से शराब लाता है और पीकर भी आता है और अपनी पत्नी और औलादों के नाम गन्दी-गन्दी गालियाँ बकता रहता है। चार बच्चों के पिता के रूप में अलग-अलग पुरुष को खड़ा करता है और आये दिन इनके नाम बदलता रहता है।

सिद्धकाक और विद्यालाल फिलहाल उसकी बरबादी से आबाद हैं। उसके मकान में निर्विघ्न रह रहे हैं और खँडहरों को यों छोड़ दिया है खुला, रिसते घावों की तरह गाँव में।

❑❑

सर्वदास प्रायः काव मुहल्ले से आते हुए भट्ट मुहल्ले के प्रारम्भ पर बने नुक्कड़ पर घर के छोटे से वट्टू में लुढ़क जाता है। कुछ दिन नन्दबब के मन्दिर में केरल से आये एक साधु रंगनाथानन्द के साथ दिन-भर गाँजे और चरस की चिलम भरता। जब रंगनाथानन्द वापस केरल चला गया तो सर्वदास घर में ही पीकर धुत रहने लगा। कुछ दिनों बाद मन्दिर में एक और दक्षिण-भारतीय साधु आया स्वामी अमृतानन्द। सर्वदास उसे अपना परिचय देने गया पर अमृतानन्द गाँजे और चरस से परहेज करने वाला था। किसी भी किस्म का नशा नहीं। 'भगवद्नाम का नशा करो।' उसने सर्वदास से कहा। वह स्वयं दिन भर ललिता सहस्रनाम का जप और पारायण, भवानी सहस्रनाम का अध्ययन और दोनों के तुलनात्मक अध्ययन में लगा रहता। इस प्रकार उत्तर भारत और दक्षिण-भारत के सांस्कृतिक एवं धार्मिक आदान-प्रदान के घटकों को दरियाफ्त करते हुए वह रोमांचित होता और सायंकाल में मुहल्ले के नवयुवकों से संस्कृति और धर्म से जुड़ी बातचीत करता। उनके पल्ले

कुछ-कुछ पड़ता और कुछ-कुछ नहीं पड़ता। जिनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता वे इसे 'फिलास्फरी' कहकर अपने को मुक्त करते। उनकी चिन्ता अलफतह थी। कबाइली थे। पाकिस्तान था। वे वर्तमान, भविष्य और हाल ही का विगत सोच रहे थे। उसी से लबरेज थे। न कि उत्तर-दक्षिण सांस्कृतिक सम्बन्धों से।

रात को पहरा देना तय हुआ। इस बीच डरावनी और आशाभरी बातें हवा ने बराबर सुनीं और उन बातों को हवा ने बराबर हवा दी।

❑❑

बिहारी, रोशन और अवतार का पहरा जब था तब विद्यालाल का दायित्व रखा गया था कि वह इनकी आधी रात को निगरानी करें और हिम्मत बँधाएँ। वास्तव में उनका दायित्व था गाँव का प्रतिनिरीक्षण करना। क्योंकि माना जाता था कि विद्यालाल एक आध्यात्मिक और निर्भीक किस्म का आदमी था।

विद्यालाल ने रोशन को झिंझोड़ा जो कि माधवजू की दुकान की पण्डाल पर ऊँघ रहा था। वह घबरा गया और अपना डण्डा सीधा करने गला।

"तो यह हो रहा है पहरा...क्यों अवतार और बिहारी कहाँ हैं?"

रोशन मानो चोरी करते हुए रँगे हाथों पकड़ा गया। वह भागता हुआ इधर-उधर अवतार और बिहारी को देखने लगा। श्वासों की ध्वनियों के निदेश पर वह सतीद्यदी के घास तक गया और देखा दोनों घास पर कुत्तों की तरह निढाल पड़े थे, पूरी दुनिया से बेखबर।

रोशन के दिमाग में कुछ मूल-प्रश्न घुमड़ने लगे, पर वह इन प्रश्नों का उत्तर पूछे किससे? या कहीं वे प्रश्न उसके अन्दर अपनी खराब हो रही नींद की सुरक्षा के लिए तो नहीं है?

"कि हमारे पहरे से क्या होगा?"

"कि हम पहरा देते, तब भी क्या हम कबाइलियों से बचते? वे नहीं मारते। नहीं लूटते? अगर हम पहरा देते? मैं...अवतार और बिहारी। सच तो यह है कि वे आते और सबसे पहले हमारा शिकार करते। यह सब फतूर है कि जी पहरा दो...अरे सबसे सही है लुटेरे और हत्यारे को खत्म करो। बाकी यह सब नाटक है। खुद को एक झूठी तसल्ली है। जो होना होगा, होगा। हम रोक नहीं सकते। हम आँधी को, ओलों को, टिड्डी दल को, बाढ़ को, अकाल को, खूँखार को, बर्बर को, शत्रु को...किस...किसको...हम तीन चींटियाँ या मानो चार या मानो पाँच...या...या... भला कैसे रोक सकते हैं...हम भट्ट चींटियाँ। मैं और, अवतार दुनिया में विरले नींद-प्रेमी...और दुनिया-भर का फिलास्फर...हुँह...रोक सकते हैं, हम शत्रु को?...नहीं।

"यह काम सरकार का है। सरकार करेगी तो हम बचेंगे। नहीं तो जो होना

होगा, होगा। हमारे पहरों से क्या होगा?''

''होगा क्यों न होगा। हम घर से बाहर जाते हैं तो फिर ताला क्या कर सकता है घर की सुरक्षा...हम ताला न लगाते...पर बहुत कुछ करता है ताला...बहुत सुरक्षा।''

''हूँ...हूँ...हूँ...?'' अलसाया-सा रोशन फिर से नींद के लिए व्यग्र था।

''आप जाइए व्यद जू। हम तो हैं यहाँ।'' रोशन ने उसे कहा ताकि वह जाए और रोशन को फिर से घुटनों-घुटनों ही ऊँघने का मौका मिले।

''चलो घर पर सोओ। इससे बेहतर वही है। जगाओ अवतार और बिहारी को। जगाओ। मैं सच कह रहा हूँ। मजाक नहीं। तंज नहीं। कल सुबह नन्दबब के अहाते में बैठक करेंगे। मैं कह दूँगा सबसे कि बेहतर है कि प्रार्थना करो। या फिर पड़ोस के मुसलमानों से अनुनय विनय करो कि हमें अलफतह वालों से बचाएँ। वैसे भी उनका फर्ज बनता है। और क्या कर सकते हैं। बचना होगा तो बचेंगे। नहीं तो मरेंगे। जीते जी नींद भी अपनी हराम क्यों करेंगे। सीधी-सी बात है। चलो अपने-अपने घर।''

❑❑

सुधा ने ये सारी बातें सुनीं। ऊब हुई उसे गाँव से। अपने पिता की प्रतीक्षा करने लगी। मन शहर माँ के पास दौड़-दौड़कर जा रहा था। बार-बार वह अपनी नानी को चिन्ता करते हुए देख और सुन रही थी कि कहीं अलफतह अठूर न पहुँचे और कहीं शहर न पहुँचे। भगवान दोनों जगहों की खासकर रक्षा करें। वैसे तो हर कहीं भगवान रक्षा करें, पर जहाँ काकनी की दो बेटियाँ हैं...वहाँ वह विशेष उपस्थित रहे। शहर भी खतरे में है यह जानकर सुधा भीतर-भीतर चिन्तित होने लगी। उसने सोचा था अलफतह की उग्रवादी कार्रवाइयाँ सिर्फ गाँव में होती हैं और बिजलियाँ भी सिर्फ गाँव में ही गिरा करती हैं। पर नहीं, यह मिथक टूट गया। जल्दी-से-जल्दी उसके पापा आ गये और वह चली जाएगी। यहाँ भी उसने घास में आग लगाकर, काकनी के पैसों में से पाँच पैसे चुराने की कोशिश कर अपनी आत्मा को बेहद प्रताड़ित और क्षतिग्रस्त कर लिया, कि उसे लगने लगा है कि उसकी आत्मा उसके पक्ष में नहीं है। नाराज है बेहद नाराज। 'आत्मैव आत्मना बन्धु, आत्मैव रिपु: आत्मन:।'

वह उखड़ गयी है। बिन्दु के साथ खेलती नहीं। उसकी धमाचौकड़ी में काफी गिरावट आयी है। यह जिसे वह स्टेडियम मानती थी उसे अबकी बार पता चला है कि खँडहर है। ''तो यह है हमारा सत्य।''

''मैं शहर जाऊँगी। मैं घर जाऊँगी...मैं शहर जाऊँगी...।'' करके वह रोती

जा रही थी। उसको माँ की छवि की स्मृति होती तो लगता जैसे उसकी माँ संसार की सबसे सुन्दर स्त्री है...और सुधा देखो...वह उससे दूर है। उसकी माँ संसार की सबसे बुद्धिमान स्त्री है। उसकी माँ संसार की सबसे महान स्त्री है...। विरह में मनुष्य कितना अद्भुत होता है, ओऽ...उसकी माँ संसार की सबसे शक्तिमान स्त्री है। विरह में मनुष्य मात्र प्रेम होता है। मात्र आत्मा होता है। मात्र उच्चतम भावना होता है।

सुधा को अब माँ की असह्य याद आती है और शाम को काकनी ने देखा कि वह बहुत तेज बुखार में जल रही है...न कुछ खा रही है...न कुछ बोल रही है...सिर्फ रो रही है और घर जाने की, यानी शहर जाने की जिद कर रही है।

इस बार उस पर गाँव में बहुत सारे रहस्योद्घाटन हुए। कई जख्मों का पता चला, वर्ना उसे लग रहा था कि गाँव में वह पहली बार आयी है। गाँव लहलहाया है। गाँव खूबसूरत है। गाँव को कोई दुःख नहीं। गाँव को न पहले कोई दुःख था न इसके बाद ही कुछ होगा।

चीजों ने पलटा खाया था। काकनी का सख्त चेहरा मातृवत मुलायम हो आया था। सुधा के बुखार से वह घबरा उठी थी। वह न हारन ही गयी, खेतों की सिंचाई करने, न ही उसने ढंग से कुछ पकाया ही। वह मन्त्र पढ़ती जा रही थी और हकीम के यहाँ से मँगायी शरबत नियम से सुधा को पिला रही थी।

''तुमको क्या हो क्या?''

''मैं शहर जाऊँगी माँ के पास।''

''आएगा न पूरन इतवार को। बुखार क्यों चढ़ा लिया?''

''मुझे माँ की बहुत याद आती है। बेहद।'' और वह फिर से भरसक रो पड़ी।

''तो क्या हुआ। तुम्हारी माँ मेरी बेटी है...माँ के पास पहुँचेगी न इतवार को।''

''नहीं...माँ कितनी अच्छी है। कितनी अच्छी है न माँ...मैं उसके पास जाऊँगी।''

''तपाली आयी। जब पिछले इतवार को आ गयी थी तो बोल रही थी कि माँ मारती है पीटती है...आज माँ अच्छी है? अब तुम ठीक हो जाओ। शहर चली जाओगी। पूरन आएगा। बोलो क्या खाओगी?''

''कुछ भी नहीं। मुझे भूख नहीं है।''

''बिन्दु को बुलाऊँ? उसके साथ खेलोगी?''

''नहीं मुझे बिन्दु के साथ बिल्कुल नहीं खेलना। माँ के पास जाना है और फिर अपने स्कूल जाना है।''

''हकीम कह रहे थे लड़की को कुछ खिलाओ, पिलाओ। नहीं तो लड़की मर जाएगी।''

''मैं कुछ नहीं खाऊँगी...मैं मर नहीं जाऊँगी।''

''नहीं कुछ खाना है दिद्दा। बोलो क्या खाओगी। वही बनाऊँगी। तुम बोलो किस चीज की भूख है तुम्हें...देखो तुम्हें कुछ हो गया तो तेरी माँ को क्या मुँह दिखाऊँगी। बेटा बोलो, क्या खाओगी? भगवान के लिए बेटा...।'' हकीम ने काकनी को बोला था कि बच्चा माँ की याद में दुःखी है, और वही बुखार हो गया है उसे...इससे प्यार करो। इससे पूछो कि क्या खाना चाहेगी...वही खिलाओ...किन्तु भूखा नहीं रखो।

तब सुधा को याद आया कि एक बार माँ बोली थी—बच्चे का क्या? बच्चा तो बोलता है जाकर मेरे लिए उड़ता हुआ पक्षी लाकर दो। बच्चों का मन तो पक्षियों की तरह उड़ता रहता है। यह बात उसने एक दिन काकनी के मुँह से भी सुनी थी और ताई से भी। तब उसे सूझी कि क्यों न यही फरमाइश की जाए जो उपलब्ध कराना काकनी के लिए असम्भव होगा।

सुधा को उस दिन यह भी पता चला कि काकनी 'काकनी' है।

''तो लाकर दो न चिड़िया काकनी। मैं आज चिड़िया के साथ भात खाऊँगी। उड़ती हुई चिड़िया के साथ।''

काकनी ने वट्टू का ताला बन्द किया। उसके लूँग्य बाँधते हुए सुधा को लगने लगा था कि काकनी चिड़िया लाने जाएगी और उसे वट्टू में नजरबन्द करेगी। आज उसमें खिड़की से कूदकर फरार होने की भी हिम्मत नहीं है। वह गहरी उदास हो उठी। आँसू भरसक छलक आने को हुए। पता नहीं जब काकनी जाएगी तब वह कितना रोएगी...शायद काकनी के वापस लौटने तक मर चुकी होगी। कितना अच्छा होता है मरना। सचमुच। मर के दिखाना। उसे मरने की कल्पना से डर के बदले रोमांच होने लगा।

मगर लूँग्य बाँध चुकने पर, ताला और चाबी हाथ में लेने पर, सुधा ने देखा कि काकनी उसके अपने हाथों से बुने छोटे-छोटे नन्हे पुलहोर लाकर बोली, ''पहन ले बच्चे।'' तो उसको भी जाना है, 'जरूर काकनी को पता चल गया है कि पीछे से मैं मर जाऊँगी,' वर्ना वह क्यों उसे बीमारी में भी अपने साथ ले जाएगी।

❑❑

काकनी सीधे रहमाना के घर पहुँची। सुधा ने देखा रहमाना भीतर बच्चों में उलझा उन्हें सत्तू के साथ चाय दे रहा था। सुधा को रहमाना का इस तरह बच्चों से घिरा होना और उनको गुलाबी चाय और सत्तू परोसना बहुत उदास कर गया।

"इन बच्चों की माँ कहाँ है?" उसने काकनी से पूछा।

"भाग गयी रहमाना को छोड़कर।"

सुधा का हृदय चिर-सा गया। क्या ऐसी भी माताएँ होती हैं जो बच्चों को छोड़कर भाग सकती हैं...हे प्रभु। उसने स्वयं से पूछा और उसे अपनी माँ की तीव्रतम याद आयी और बुखार का एक और झटका-सा महसूस हुआ।

काकनी को देखकर रहमाना के घर में हल्की खलबली मची।

"अरे राजरानी...आप...। क्या बात है? खैरियत तो है...बच्ची का बुखार कैसा है...?"

"ठीक ही है रहमाना...तू बच्चों को जल्दी-से चाय पिलाकर फारिग हो जा और मुझे अपनी गुलेल से एक चिड़िया मार कर दे। दिद्दा कहती है आज चिड़िया के साथ भात खाएगी।"

"अच्छा?"

"हाँ...।"

"तो अभी मार देते हैं हम चिड़िया अपनी दिद्दारानी के लिए...रानी बेटी के लिए...पर आप घबरायी क्यों हैं राजरानी...चिन्ता मत करिए...बुखार उतर जाएगा।"

"रहमाना, अगर इसे कुछ हो गया तो भट्टिनी को क्या मुँह दिखाऊँगी रहमाना। कल तक ठीक-ठाक थी, मस्त थी...अचानक आज इसे पता नहीं क्या हुआ।"

"माँ की याद आयी होगी।" रहमाना बोला। यह वाक्य सुनकर सुधा को एक विषाद की अनुभूति-सी हुई। 'रहमाना के बच्चों की माँ भाग गयी। उनको जब याद आती होगी माँ की वे क्या करते होंगे? हे भगवान! कितना दारुण, कितना कठिन। कितना असम्भव है माँ के बिना जीना...वह भी उस माँ के बिना जो भाग गयी हो...यानी यहीं कहीं हो...आसपास...' फिर उसे एक विचार कौंधा कि 'उन्हें यानी उन बच्चों को अपनी माँ को ढूँढ़ना चाहिए, खोजना चाहिए।' परन्तु वह यह विचार उन तक कैसे पहुँचाए। कैसे कहे उनसे कि आपको अपनी माँ को ढूँढ़ना चाहिए। पर वह कह न सकी उनसे। हाथ मलकर ही रह गयी। फिर उसके शरीर और आत्मा में एक टीस-सी उठ गयी।

❑❑

रहमाना ने अपनी गुलेल निकाली और चरागाह की तरफ चल पड़ा। सुधा आसपास देखने लगी कि चिड़ियाँ कहीं हैं भी या नहीं। उसे चिड़िया उड़ती हुई दिखी और उसे प्राप्त करने की सम्भावनाओं को लेकर इत्मीनान हुआ। वाह उसकी चिड़िया

वाली मिथकीय ख्वाहिश आज पूरी होगी। वह देखेगी कि उसके लिए उड़ती हुई चिड़िया कैसे गिरेगी।

चरागाह के बीचोंबीच पहुँचकर रहमाना ने गुलेल को साधा और फिर दूर वहाँ से एक फड़फड़ाती चिड़िया अपनी हथेली में लाकर काकनी को देने लगा। ''यह लीजिए राजरानी।...यह रही चिड़िया।...अब खिलाओ दिद्दा रानी को...और इसका बुखार उतर जाएगा...यह ठीक हो जाएगी अब राजरानी। तब तक पूरन भी आएगा और बिटिया शहर चली जाएगी।''

काकनी ने रहमाना को ढेर सारे आशीर्वाद दिये, ''जा तेरी बीवी लौटकर आए। तेरे छोटे-छोटे बच्चे आबाद हों, इनको माँ मिले, माँ का प्यार मिले। खुदा तुम्हें लम्बी और नीरोग उम्र बख्शें। तेरी बीवी को खुदा अक्ल बख्शें।''

सुधा को लगा काकनी एकदम सटीक आशीष दे रही है...अरे रहमाना तो इतना निशानेबाज है कि पता नहीं चला कहाँ से इसने निशाना साधा, गुलेल दागी और चिड़िया हथेली पर आ गयी। पता भी नहीं चला। इसलिए जो आशीष रहमाना को मिलने चाहिए काकनी से, वे सटीक मिले। सुधा ने सोचा।

❑❑

सुधा ने जब वट्टू में वापस कदम रखा तो उसे लगा कि वह दुनिया की सैर करके आयी है। आसमान से तारे तोड़कर लायी है या तारे तोड़कर आयी है...और सब कहते हैं कि इतवार को उसका पिता पूरन आएगा और उसको शहर ले जाएगा।

काकनी ने लूँग्य खोली। फिरन के बाजू ऊपर को मोड़े और चिड़िया का पकवान बनाने का प्रबन्ध करने लगी।

''अब तुम आराम करो...तुम्हारा बुखार कम है, नहीं तो फिर चढ़ेगा।''

सुधा को अपना शरीर आँकने पर लग रहा था कि वह बिल्कुल ठीक है। उदास कतई नहीं। अगर वह थोड़ी-सी उदास है भी तो वह रहमाना के बच्चों की पीड़ा देखकर। उसके थे भी काफी बच्चे...वह गिनना भूल गयी...।

''काकनी रहमाना के कितने बच्चे हैं? जैसे स्कूल की क्लास हो...कितने थे...?

''पूरे नौ...।''

''इतने...?''

''इनके होते हैं...।''

''किनके होते हैं...?''

''मुसलमानों के...।''

''क्यों...?''

"होते हैं...इसमें क्यों क्या?"

सुधा चुप हो गयी। लगा कि काकनी कारण नहीं बताएगी। काकनी के हाथों में मरी हुई चिड़िया थी, जिसके पर चरागाह में ही रहमाना ने कुतरे थे। चिड़िया बिना परों की, सुधा को बहुत घिनौनी लगी। यह उसने क्या खाने की इच्छा की। काकनी चिड़िया को ऐसे साफ कर रही है जैसे साग के पत्ते। न घिन्न आ रही है न कोई परेशानी हो रही है। पूरे तटस्थ भाव से।

काकनी ने जब भात की थाली में सुधा को चिड़िया परोसी तो सुधा को मितली आने लगी। क्या यह सुधा का प्रयोग था? शायद महज प्रयोग। काकनी का मातृत्व इस प्रयोग में खरा उतरा था मगर सुधा की इच्छा ने सुधा को इस प्रयोग से सदा के लिए एक विवेक तो दिया होगा...और मारक स्मृति भी। कुत्सित इच्छा की स्मृति। शायद अपने जीवन के कुछ ऐतिहासिक अक्स उस पर ढल गये होंगे जरूर।

❑❑

उस रात सुधा का बुखार जरूर कुछ कम था और वह धुत नींद सोयी थी। सपने में उसने देखा था कि माँ गाँव आयी है और उसे प्यार से पुकारते हुए कह रही है... 'अरी...तू मर क्यों रही है...यह ले...देख...मुझे छूकर देख...मैं हूँ न तेरे पास...तेरी सिर्फ तेरी...।'

'कितनी सुन्दर थी माँ सपने में...ओह...वह किसी से नहीं कह सकती कि कितनी सुन्दर थी माँ...हाँ।' जब सुधा की आँख खुली यह परम-आह्लाद-भरा सपना उसके मन-मस्तिष्क, आत्मा और खुली आँखों पर छा गया। वह स्वस्थ-सी हो गयी है जैसे...मैंने कल रात काकनी को बेकार में तंग किया। चिड़िया की माँग की। जो उसने बाद में खायी भी नहीं। फिर वह पूरी थाली काकनी ने सिद्धकाक के खँडहर में उँड़ेल दी कि पक्षी आएँगे और चिड़ियाँ और भात खाएँगे।

सुबह उठकर काकनी ने सुधा को तुम्ब पकड़ाया, "जा अपनी ताई के यहाँ से दूध ला...चाय पिएँगे...शीरचाय...आज मैं बहुत खुश हूँ कि तुम ठीक हो। तुम्हारा बुखार उतर गया है। चिड़िया की बलि से तुम्हारा बुखार उतर गया है जा।"

आज काकनी वास्तव में ही खुश थी। वर्ना वह उसे झोंपड़ी से निकलने ही नहीं देती या दूध लाने के लिए कभी नहीं भेजती। ताई के यहाँ भी नहीं। कहती, 'वहाँ वो है, तेरे ताऊ के लड़के। लड़कों से होश रखना चाहिए। लड़के जहन्नुमी होते हैं। भाई के पास अपनी बहन तक की सुरक्षा की गारण्टी नहीं होती। लड़कियों को अपने भाइयों से भी बचकर रहना चाहिए। बचपने में ही लड़के लड़कियों पर प्रयोग करना शुरू करते हैं...वह चाहे चाचे की लड़की ही

क्यों न हो...। लड़की लड़के की कभी भी सगी नहीं होती है।' काकनी का यह सारा भाषण अक्सर एक मोटे प्रश्न की तरह सुधा की बुद्धि में घुमड़ता रहता। वह भाईजान के सबसे छोटे बेटे भरत को प्राय: एक प्रश्न की तरह देखती जो सारी संवेदनशीलता को दृष्टि में रखकर सुधा से सुलूक करता। मगर प्राय: उसने काकनी को लड़कियों से लड़कों के विरुद्ध बोलते हुए सुना था।

सुधा जब तुम्ब लेकर जाने लगी तो दरवाजा धम्म से खुल गया। अन्दर आयी भाईजान की पत्नी यानी सुधा की ताई। हाथ में था दूध का ताजा दुहा भगोना। जिसके ऊपर ताजी-ताजी मोहक झाग अभी थी।

"कैसी है तबीयत... ?"

काकनी आवाज सुनकर चौके की सीमा पार कर बाहर आयी और बेटी की जेठानी को देखकर चेहरा उसका खिल उठा।

"अरे आप... ?" मैं सुधा को भेज ही रही थी।

"नहीं, मुझे तो रात भर चिन्ता रही...कि न जाने क्या हो गया लड़की को।"

"माँ का विरह है और कुछ नहीं...। इतवार को पिता आएगा। चली जाएगी।"

"सितम ढाया इस लड़की ने आप पर...।" शोभी बोली।

सुधा की ताई के आने पर काकनी विंशेष खूबसूरती के साथ मुस्करायी। एक खास अन्दाज में व्यवहार भी किया। आखिर उसकी समधिन थी।

काकनी ने एकमुँहा चूल्हा सुलगाया था। चौके से धुएँ के गुच्छे वट्टू की तरफ जाकर फिर वहाँ की खिड़कियों से मुक्ति के रास्ते ढूँढ़ रहे थे। यह धुआँ सदा के लिए सुधा की नसों में, आत्मा में बैठ रहा था। तुरन्त भीतर आया गाशा और सुधा का हाल पूछने लगा।

"आओ ब्रजनाथ।" काकनी के चहरे पर दीप्ति छा गयी। काकनी को ब्रजनाथ से खास प्रेम है, यह सभी जानते हैं। काकनी को उसका आना या कहीं भी दिख जाना आनन्दानुभूति से भर देता है।

"बिन्दु ने इसके खिलौने तोड़े...तभी बुखार चढ़ गया क्या... ?" गाशा ने कारण पूछा।

"नहीं बुखार अब उतर गया है, यह बोलो शहर की तरफ तो नहीं जाना है... ?"

"नहीं...क्यों... ?"

"अरे पूरनजी आ जाता। पिछले इतवार नहीं आया और यह बुखार में जल उठी देखो। फिर चिन्ता है मुझे कि पूरन जी आखिर आया क्यों नहीं पिछले इतवार।"

''कुछ काम पड़ गया होगा।''

''भाईजान कह रहे थे कि बटमालू में अलफतह का अड्डा पाया गया है इसलिए बटमालू की बस्ती में आग लगने वाली थी। क्या आपने रेडियो की खबर सुनी...? क्या हाल है...शहर का?''

''हाँ, खबर में तो अभी बटमालू के जलने की बात नहीं की गयी, पर यह तो बार-बार दोहराया जा रहा है कि कश्मीर आखिरकार हिन्दुस्तान का अटूट हिस्सा है, या अंग है।''

''मुझे लगता है यह नेहरू की गलती है। सवाल है कि इसे सवाल क्यों बनाया जा रहा है।'' सुधा की ताई ने एक पहुँची हुई जिरह की। काकनी ने मन-ही-मन सुधा की ताई की समझदारी की दाद दी।

''मुझे भी लगता है, सारा कुसूर जवाहरलाल नेहरू का ही है।'' काकनी बोली।

''ऐसा मत बोलो...सारा हिन्दुस्तान उसको भगवान मानता है...आप ऐसी बात करते हैं...!''

''सारा हिन्दुस्तान उसे भले ही भगवान माने...मगर मेरी नजरों में शैतान ही था, यह नेहरू...अरे नहीं नारू बोलो न...यह नेहरू क्या होता है। कश्मीर से बाहर जाकर नेहरू हो गया...प्रधानमन्त्री बनकर बैठा...अपने ही लोगों की खबर नहीं थी। अपने ही समुदाय को दरबदर हाल रखा...बेहाल रखा नारू कहीं का...। हिन्दुस्तान का खड़पैंच बना...इसे ही कहते हैं मूलों पर दराँती, पत्तों पर सिंचाई। वह नेता भी क्या जो पहले यह न सोचता हो, जानता हो कि उसके मूलों का क्या हाल है, क्या हमारी जड़ें सलामत हैं? अगर वह कश्मीरी होकर कश्मीर से बाहर जाने को मजबूर हो गया है तो क्यों?...जिसने पहले यह सवाल खुद से नहीं किया...वह फिर सैकड़ों सवालों का जवाब ढूँढ़कर दे देश को...लाख लानत ही है उस पर। मान ले चाहे जिसे भगवान मानना हो उसे...पर मुझसे पूछे कोई, मैं बता दूँगी कि क्या है वह असल में। क्या उसने कभी खोज की कि इलाहाबाद में उसकी बिरादरी जाकर क्यों बस गयी...और मिट्टी क्यों पलीत हुई... ?'' काकनी में अब विशेष तैश आयी थी। शायद शोभी की बुद्धिमत्ता-पूर्ण बात सुनकर। काकनी का चित्त कश्मीर के प्रश्न की अग्नि में सतत जलता है। सुधा को बाद में इसका कारण मिल गया। इस अग्नि की शुरुआत आफताब राम का गाँव से निकाला जाना है। काकनी के हृदय में वह अग्नि धधक रही थी। उस दु:ख का सातत्य वह झेल रही थी।

❑❑

काकनी प्राय: जवाहरलाल नेहरू के विश्वनेता होने की धज्जियाँ उड़ाती थी। ''कि सर्वप्रथम प्रश्न कि मैं कौन हूँ? जैसा प्रश्न जब तक एक प्रबुद्ध आदमी स्वयं से नहीं करता तब तक वह क्या प्रबुद्ध आदमी? क्या जिम्मेदार आदमी? हँसी आती है। कभी वह मुझे मिले, मैं उससे चन्द सवाल करके सारी हवा निकाल दूँ।'' कहते हुए काकनी फुर्ती से चौके में गयी और सूखी लकड़ियाँ चूल्हे के अन्दर देकर धुआँ कम करने की कोशिश करने लगी। उसके वट्टू में समधिन थी और समधिन का बेटा गाशा था। वह हँडिया में शीरचाय का रंग तेजी से आँकने लगी और कड़छी से उठा-उठाकर उसे हवा देने लगी ताकि रंग गाढ़ा हो और शीघ्र ही गाढ़ा हो। उसे डर था कि समधी लोग यों ही न चले जाएँ, बिना चाय पिये। कम-से-कम अपने ही दूध की चाय में वह काकनी का मामूली-सा सत्तू खा तो ले। जरा-सी ही सही चाय तो पी ही ले। इसलिए काकनी यह भी चाहती थी कि जवाहरलाल नेहरू की अपने मूलों के प्रति गद्दार होने के विषय को लम्बा किया जाए और उस पर ज्यादा-से-ज्यादा रोशनी डालकर अपनी समस्याओं की जड़ों को निश्चित किया जाए। इससे काकनी को बौद्धिक और भावनात्मक आह्लाद मिलेगा।

काकनी फिर चौके की दहलीज पर आयी और देखा कि उसके मेहमान सुधा से बातें कर रहे हैं...सुधा से प्यार कर रहे हैं।

''प्रधानमन्त्री ने भट्टों पर क्या कहा गाशा?''

''क्या कहेगा। सिर अपना। उसे कश्मीर की जरा भी फिक्र नहीं। उसे फिक्र है और बातों की। कश्मीरी भट्ट मरते हैं तो मरें, उसका क्या जाएगा। वह प्रधानमन्त्री है...भट्ट थोड़े है। बहुत मामूली बात है यह हिन्दुस्तान के हुक्मरानों के लिए। भट्टों का कोई मतलब नहीं।'' गाशा बोला।

काकनी को बात रास आयी।

''तुम सच कहते हो...जब उसे आलम की ही हुकूमत मिल गयी तो भट्टों की क्या औकात उसके सामने...रहीं जड़ें...तो उसे क्या देखना उसकी तरफ...मोर नाचते-नाचते पैरों की तरफ नहीं देखता जो भद्दे और गन्दे होते हैं... सच है...सच है...'' एक अस्त हो रही आवाज में यह काकनी ने कहा।

''मुझे बाग में सेबों की भरायी कर रहे बारामूला सिंहपुर के उस सरदार की बात में मजा आता है। मैं कभी-कभी उसका यह मजाक अकेले में खुद को खुद ही सुनाता हूँ और हँसता हूँ। ज़ोरावर सिंह कहता है, आपको पता है गाशा जी, जवाहरलाल नेहरू कैसे प्रधानमन्त्री बना?''

मैंने कहा, ''नहीं ज़ोरवर...ज़रा बताओ तो।'' मैं समझ गया कोई मजेदार बात होगी।

"अरे गाशा जी, मेरे पिताजी फौज में थे न! उनको सारे राज का पता है। उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को अपनी आँखों से देखा है, गुरु महाराज की कसम। उन्होंने ही कहा, बेटा यह राज किसी को नहीं पता। सिर्फ फौज के कुछ लोगों को कि जवाहर लाल नेहरू प्रधानमन्त्री कैसे बना। अरे उसके बाप मोतीलाल नेहरू ने पहले ही बीस हजार रुपयों की रिश्वत दे रखी थी।"

"काकनी, इससे बड़ा कोई मजाक नहीं, मगर इससे बड़ा प्रतीकात्मक सच भी नहीं...तभी मैं ज़ोरावर की बात को महत्त्व देता हूँ...बहुत महत्त्व देता हूँ। जब अपने कश्मीरी भट्ट होने का दुःख होता है जो ज़ोरावर का मजाक खुद को खुद ही सुनाता हूँ।

काकनी ने मजाक को गुस्से से ग्रहण किया। "सचमुच। सचमुच यही बात है। नहीं तो सरदार पटेल ज्यादा बेहतर प्रधानमन्त्री था। तुमको पता है पटेल ने कबाइलियों के द्वारा भट्टों की दुर्दशा से द्रवित होकर कहा था, इनको वहाँ बलि के बकरों की तरह मत रखो। हम इनको जहाज में कश्मीर से बाहर ले आएँगे...बेचारों पर आज कबाइली हमला हुआ, कल कोई और बलाय आएगी और उनके द्वारा आधी से अधिक तबाही हो चुकने के बाद हिन्दुस्तानी हुक्मरानों को खबर होगी।"

काकनी की यह बात सुनकर सुधा का मन उछला था।...कि क्या सचमुच सरदार पटेल को हमारी चिन्ता है? जो स्वयं कश्मीरी भी नहीं है...जवाहरलाल को फिक्र ही नहीं...जबकि फिक्र उसे ही होनी चाहिए थी। हम कहीं-न-कहीं सुरक्षित होते। खुला जीवन जी रहे होते...मर-मरकर नहीं जी रहे होते...। "पर नेहरू नहीं माना। कहा भट्टों को सुरक्षित स्थानों पर नहीं जाना। पटेल ने कहा फिर इनके लिए सुरक्षित जगहें वादी में ही बनाओ...जहाँ इनके लिए सारी सुख-सुविधा की, जीवन-यापन की और सुरक्षा की सारी शर्तें पूरी होंगी। जहाँ यह अपने मन का स्वतन्त्र जीवन, अधिकारों का प्रयोग करते हुए जिएँगे...पर तब भी नहीं माना जवाहर का बच्चा। उसने महापाप किये...घोर पाप किये हैं हमारे प्रति...ओह उसे जहन्नुम का निचला तल मिले..." शोभी यानी सुधा की ताई ने अपने उद्गार प्रकट किये। "अरे कर देते फैसला एक बार इस कश्मीर का...रोज-रोज का दाँत दर्द खत्म करते एक ही बार।" शोभी ने अपना उद्गार पूरा किया।

"अरे यह इतना आसान नहीं माँ। भारत को भी कश्मीर की जमीन चाहिए। हम भारतप्रेमी उसे नहीं चाहिए...कड़ुआ सच तो यही है।" गाशा बोला था।

यही कड़ुआ सच सारी व्यग्रता में निहित महीन आशाओं को धूसरित करता है। सारा शास्त्रार्थ 'इति' करता है। सारे क्रोध को मृतप्राय आग में बदल देता है। सारे केन्द्रीकृत प्रतिविष को इधर-उधर छितरा देता है।

शोभा ताई सुधा का हाथ पकड़कर काकनी की आज्ञा के लिए चौके की दहलीज तक आयी। काकनी अजीब-सी फुर्ती से चाय में दूध और सत्तू और नमक डाल रही है। लकड़ियाँ चूल्हे में धू-धू कर जल रही हैं, मानो काकनी की आज्ञा का पालन कर रही हों।

"मैं सुधा को ले जाऊँगी...राजरानी जी।"

"हाँ-हाँ ले जाइए...।" भला उसको मना कैसे कर सकती थी काकनी।

"मगर चाय अब बन गयी। आपका आना यों ही नहीं। आप चाय पीजिए...बस बन गयी।" काकनी ने अपना आग्रह दोहराया।

गाशा जानता था कि सतीद्यदी की चाय, चाहे दो घूँट ही सही, प्रसाद की तरह उड़ेलनी है, पर शोभा ने काफी जोरदार मना किया।

"मैं नन्दबब के मन्दिर जाऊँगी न पहले...मैं अभी नहीं पी सकती...चिनार पर जल चढ़ाऊँगी...शिवजी पर, नन्दबब पर...मेरा मतलब है...काकनी।"

❑❑

सुधा शोभा ताई का हाथ पकड़कर ऐसे भागने को उद्यत हो रही थी कि पुलहोर भी उलटा-सीधा पहन रही थी...कि कहीं काकनी पीछे से...पकड़ न ले और वट्टू में कैद न कर ले...या अपनी दी हुई आज्ञा को वापस न ले, क्योंकि उसे शोभा के यहाँ भरत के होने का ध्यान आ सकता है...शोभा ताई के सबसे छोटे बेटे का ध्यान, जिससे दूर रहने को काकनी प्रायः सुधा को कहती है।

परन्तु बाहर आकर अखरोट के प्राचीन और विशाल पेड़ को पार करते-करते सुधा यह सोचकर उदास हो गयी कि वह खुदगर्ज है...काकनी को वट्टू में अकेली छोड़कर जा रही है वह...न्याय नहीं कर रही है वह काकनी के साथ। न्याय और अन्याय के अन्तर्द्वन्द्व में पिसते हुए वह हाँफते-हाँफते बिन्दु के पास पहुँच गयी।

"सुना है तू मरने वाली थी," बिन्दु ने कहा।

सुधा ने व्यंग्य कसा, "हाँ, शोभा ताई ने बचा लिया न...कमीनी कहीं की..."

"देखा मेरी दादी को। अक्सर तुझे बचाती हैं। और तू है कि कभी रूठती है...कभी मरती है...और कभी शहर की होने का रौब दिखाती है।"

"हाँ, यह सत्य है, क्या करूँ। काकनी वट्टू में बन्द करती है न...इसीलिए।"

❑❑

सुधा इन्हीं रास्तों से दौड़ रही है। अपने भीतर पूरा ब्रह्माण्ड लिये हुए। कभी धमनियों में गाते हुए...एक हल्का-फुल्का गाना, 'ये रास्ते हैं प्यार के...चलना

सँभल...सँभल के...ड्राइवर गुलामाऽऽऽऽ चलना सँभल-सँभल के...सुमोना की बच्ची चलना सँभल-सँभल के। हुर्रत ओ हुर्रत...चलना सँभल-सँभल के। जरा सँभलकर पाँव धरना इस मेरी धरती पर...यह मेरी धरती है...लोगो...ओ लोगो...यह मेरी धरती है...इस पर चलना सँभल-सँभल के...सिर्फ मेरी धरती है यह...मेरी सुन्दर काया है...यही मेरे शिव की माया है। सुमोना! ओ सुमोना। तेरे शोध की ऐसी की तैसी...क्या तुझे पता है कि यह जो रास्ते हैं...यह क्या है? यह मेरा शरीर है...इदं शरीरं...क्षेत्रमित्यभिधीयते।''

''सुमोना! यह जहाँ से हम जा रहे हैं...यह मेरी माँ का आँचल है। उस दिन बुखार में मैंने जाना था कि मेरी माँ कितनी सुन्दर है...कितनी अद्वितीय है...सुमोना मैंने दिल्ली में जाना कि मेरी यह माँ कितनी रसमयी, गन्धमयी, रूपमयी, तेजोमयी और आनन्दमयी है। 'यस्यां कुक्षौ लीनं अखण्डं जगदण्डं' तभी तो हमारा प्रादुर्भाव हुआ। तभी तो शिव यहीं बने रहे। यहीं डोरे डाले। यहीं बसे। यहीं विचरे...यहीं इसी पार्वती की पलकों की छाया में। 'लीलायितं भवतु मे...।' यह लीलाएँ करती हुई मेरी माँ। इसने मुझे आँख दी माताओं को देखने की। तभी से मैं कहती हूँ, हे मेरी जम्मू माता...मैं तेरे पास किसी की अमानत हूँ। तुम मुझ पर अनुग्रहशील बनी रहना। मुझे अच्छे से रखना माँ। मेरे व्रणित मन को सँभालो माँ। मेरे लपटों से घिरे मन को, मेरे बेकार में उड़ रहे मन को अपनी गोद में बाँधो माँ...हे जम्मू माँ...मुझे अपने आदर और सम्मान की अदृश्य शिक्षा दो...मेरी गुरु बनो...मैं किसी की अमानत हूँ तुम्हारे पास...मैं तुम्हारी मिट्टी में मोहक गन्ध पाती हूँ तो ऐसा लगता है कि मैं स्तनपान कर रही हूँ...मैं मरने से बराबर बचती रहती हूँ......किसी की औलाद हूँ।''

'कहीं मैं...भीतर-भीतर पागल तो नहीं हो रही हूँ...।' सुधा भीतर से बाहर आने की कोशिश में है। कभी-कभी उसे अपना आप सुन्न महसूस होता है और लगता है कि वह कहीं दूरस्थ शून्य में ठहरा दी गयी है। निपट शून्य में...जहाँ कुछ भी नहीं है। सिर्फ सब कुछ भावात्मक है, ठोस कुछ भी नहीं।...मानो वह स्वयं भी नहीं है वहाँ...तब उसे मृत्यु और जीवन का भेद भी विचित्र ढंग से मथने लगता।

उसने स्वयं को झिंझोड़ा और देखा सुमोना अपनी खास अदा में अपने बालों को पीछे की तरफ झटकाती है और कश्मीर के बारे में अपने शोध की बातें कर रही है।

अचानक सामने के तापर की पहाड़ियों से सुधा के मन में कद्दावर मूर्तियों का आभास बनता है और वह लगे हाथों पूछती है।

''हुर्रत! मुझे बताइए अफगानिस्तान में बामियान बुद्ध की मूर्ति को तालिबान

द्वारा चूर-चूर करने पर आपकी क्या प्रतिक्रया है?''

''कितनी अच्छी बात पूछी तुमने सुधा। देखो न हम इन पापों का फल भोग रहे हैं। पिछले दिनों हमारे कॉलेज में यह बहस कई किस्तों में छिड़ी थी। मैं बार-बार इसी बात पर जोर देती थी कि हिन्दू तो सर्वप्रथम सूर्योपासक हैं। जरा मेरे दीन के सिकन्दर बुतशिकनो! सूर्य तक पहुँचिए और उसको क्षति पहुँचाइए। सूर्य का मन्दिर तोड़ना कोई बड़ी बात नहीं। सूर्य को तोड़ो मैं तुम्हारे मूर्ति-भंजन-दर्शन को मानूँगी। मूर्ति-उपासना के पीछे एक गहरा जीवन्त राज़ है...।'' उसने ऐसे कहा सुधा की आँखों में आँखें डालते हुए मानो सुधा से ज्यादा इन दार्शनिक तथ्यों का उसे इल्म हो और बोली, ''हम ध्यान करते हैं, वह वास्तव में मूर्ति उपासना ही होती है सुधा। हम नमाज में ध्यानस्थ होते हैं, तत्त्वों को श्रद्धा से पूजते हैं, वह भी वस्तुतः मूर्ति-पूजा ही है...सब कुछ शेष धर्म की राजनीति है...धार्मिकता नहीं।''

सुधा ने देखा था कि प्रश्न पूछते ही सुमोना के चेहरे का रंग उड़ गया था, पर हुर्रत की सूझ-बूझ और तार्किकता ने उसके चेहरे का रंग वापस लाया। सुमोना वास्तव में मध्यम दर्जे की शोधकर्ता है। उसके समन्तात भय है, जिसे वह कम ज्ञान और कम साहस के कारण निर्भीकता कह उठती है, मान बैठती है और इसी में मात खाती है। सुधा ने सोचा।

❑❑

सुधा तापर से गुजरती है। जब भी वह काकनी और पिता के साथ गाँव आती तो उसे दायें-बायें खेत दिखते तो वह सोचती कि कैसे चल रही है उनकी बस खेतों में से। उसे पुल न दिखता, सिर्फ नदी दिखती तो लगता वाह। बस सिन्धु को पार कर गयी। बच गये। या वितस्ता को पार कर गयी। कमाल है...बच गये। पता नहीं क्षण-क्षण बच जाने का यह क्षणभंगुर जश्न क्यों मनाती रहती थी वह, उसकी आत्मा। कभी-कभी बस दायीं तरफ गिरती हुई लगती तो सुधा उसे बायीं तरफ उठाने के लिए भरपूर जोर लगाकर सोचती—देखो तो। मैंने बस को सीधा किया। वर्ना मर गये होते सब-के-सब। उसी प्रकार जब बायीं तरफ झुकती हुई लगती तो वह दायें तरफ से बस को खूब जोर लगाकर उठाती और सोचती—कि चलो बच गये। गाँव पहुँच गये।

इस गाड़ी में सुमोना है, हुर्रत है, इज़ा है, गुलशनआरा है, गुलामा है।...काकनी नहीं है...उसके पापा नहीं हैं...उसकी 'वह' नहीं है। इस गाड़ी को 'वह' उठा ही नहीं, रही है। उठानी ही नहीं पड़ रही है। अब यह पूरी धरती ही उलट गयी है और सुधा कुछ कर भी नहीं पायी। जोर लगाकर सीधा करती

मगर इतना समय ही नहीं दिया गया। 'लगने ही नहीं दिया गया कि धरती को वे पलटेंगे...इतने खूँखार, चालबाज, धरतीखोर, आदमखोर थे वे।' वह धाराप्रवाह सोच रही थी।

खिड़की के बाहर सुधा देखती है दूर-दूर के अन्तरिक्षों को। सचमुच धरती पता भी नहीं लगने देती है कि उसका हृदय किस दारुण दुःख से दो-चार है। जब तक भूकम्प सचमुच नहीं आता और जमीन नहीं फटती। आँधी-तूफान नहीं आते। पहाड़ नहीं टूटते। वर्ना इस क्षण भी वही है। वही मेघदूती आसमान।

"प्रोफेसर गुरुटू प्रायः कहते। मेघदूत का रचना-स्थल यहीं है। यहीं...यहीं उन पर्वतों के पीछे जो जोजीला, जहाँ अलका नगरी की श्री है। जहाँ यक्ष की प्रेमिका है, जहाँ मानसरोवर है। जहाँ श्री ही श्री है जो श्रीनगर तक फैली है। जहाँ शिव के कैलाश हैं।"

आह मेघदूत का वह श्री लोक और श्रीलोक से उतरकर उसी नक्शेनुमा धरती पर उसके मन में अलका नगरी की खोज। मेघों का रहस्य-लोक।

'कश्चित्कान्ताविरह-गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः'

वह प्रेमिका के लिए विरह। उस विरह की व्याख्या प्रोफेसर गुरुटू द्वारा। आवेगमय। शिवशक्तिमय। वह मायावी व्याख्या। और सुधा का लिखा हुआ कॉलेजी भाष्य। वह भाष्य जिसकी कॉपी खो जाने पर सुधा आसमान में मेघों को देख-देखकर, फूट-फूटकर रोयी थी। जार-जार रोयी थी। मेघों से प्रार्थना की थी, "कि हे मेघो! कृपया मुझे मेरी कापी लौटा दो। मैंने तुम्हारे भारत भ्रमण का अद्‌भुत भाष्य लिखा है...कालिदास के शब्द-प्रकाश में। कहीं से ढूँढ़ निकाल दो मेरी कॉपी मेघो।" यक्ष की तरह रोयी थी वह। यक्ष प्रेमिका के विरह में रोया था, पर वह यक्ष के विरह की व्याख्या के विरह में रोयी थी। उस दिन पूनम थी। चन्द्रग्रहण था। जो देखना वर्जित था। मगर उसने वर्जना तोड़ दी थी और चन्द्रमा को ग्रहण-ग्रस्त देखा था। नतीजा उसकी मेघदूत व्याख्या कॉपी खो गयी थी और दशकों तक उसे उसका दुःख कम नहीं हुआ था। कभी नहीं।

परीक्षा के दिनों में उसने देखा था कि उसकी कॉपी विमला रैणा के पास है, पर उसके पहचानकर माँगने या दावा करने पर विमला डायन का रूप बन गयी थी। तब वह शान्त होकर 'मेघदूत' की व्याख्या दूसरी बार लिख गयी थी। स्वयं यक्ष बनकर। अलका नगरी बनकर।

'अरे मेरी 'मेघदूत' की कॉपी?' उसने स्वयं से चुपचाप चीखकर कहा। और अन्दर-ही-अन्दर हँस दी प्रोफेसर गुरुटू के साथ। विमला रैना के साथ। ग्रहण-ग्रस्त उदास चाँद के साथ। यक्ष के साथ। अलका नगरी के साथ। मानसरोवर के साथ। कैलाश-पर्वत के साथ और फिर बाहर रो पड़ी। आँखों के पोर गीले थे।

घनघोर गीले थे। इज़ा ने उसे आँखें पोंछते हुए देखा, धूप-चश्मा हटाकर। और मुँह उधर की तरफ फेर लिया। उसे कारण पता है। सुधा ने कहाँ से शुरू किया था रटना...'अरे मेरे गाँव का रास्ता...नारबल से...यानी अब अली आबाद से...अरे मेरे गाँव का रास्ता।'

सुधा ने देखा कि उसकी आँखों का गीलापन बढ़ता ही जा रहा है...वह स्वयं भी नियन्त्रण नहीं रख पा रही है। गर्जनाएँ हो रही हैं...डढ़म...डढ़म...डढ़म...। भयानक गर्जनाएँ हो रही हैं। सूराख कर देने वाले ओले बरस रहे हैं।

❑❑

बाहर मद्धिम गर्मी वाली धूप है। शान्ति है। सड़क के दायें-बायें किनारे पर लगभग हर बीस-बीस गज के फासले पर सैनिक नियुक्त हैं। दूरसंचार यन्त्रों की पेटियों से लैस सैनिक । कवच-युक्त सैनिक। शस्त्र-युक्त सैनिक। शिरस्त्राण-युक्त सैनिक।

काकनी की 'वह' भारतीय फौज। लोग किन्तु इत्मीनान से आ-जा रहे हैं। कहीं-कहीं फसलें कटी और लेटी हैं। कहीं-कहीं खेतों में ही धान की छटाई चल रही है। स्वर्णिम आभा का विस्तार है। शरद की धूप उसमें सुहागा डाल रही है। कितनी चाँदनी-सी धूप है...कम उष्ण...नर्म...और हुर्रत कहती है 'सिकन्दर बुतशिकनो! आओ सूर्य से लड़ो।' अरे सूर्य से क्या लड़ना, वह हँसता है...वह दयालु तब भी धान पकाता है...उसे स्वर्णाभ बनाता है।

''हुहु...सूर्य से लड़ो...ओऽ...मनुष्य की मूर्खता का चहुँ ओर साम्राज्य।''

चलती हुई गाड़ी में बैठी ये स्त्रियाँ आतंकवाद से उपजे हुए हास्य पर भी एक नजर डालती हैं तो हुर्रत कहती है, ''अरे अनपढ़ महिलाएँ कहती हैं...फिर जी बम ब्रस्ट हुआ।'' और वह हँसती हैं।

'अच्छा है दुःख में सुख खोज-खोज कर ढूँढ़ना। कैदी इसी तरह कनियों और छोटे-छोटे पत्थरों से लैस चावलों में से खाने लायक चावल के दाने ढूँढ़ते होंगे। कैसा है जीवन जीने की पद्धति में गुणात्मक ह्रास। विखण्डन। भयानक विखण्डन। अखण्ड होने की प्रयोजन की एकता की स्थिति में जीवन जीने के मौकों को चुराने की लालच भरी तलाश। स्वार्थयुक्त तलाश। आनन्द के क्षणों, हँसने के मौकों की मरणान्तक तलाश। वाह्य। हे प्रभु!' सुधा के भीतरी आवेगों का प्रवाह था।

संवेदनाएँ और पक्षधरता पागल हो रही हैं। कभी इधर हो रही है, कभी उधर हो रही है। कभी आत्मा के साथ। कभी बुद्धि के साथ। कभी विकारयुक्त मन के साथ।

❑❑

आँख खुल गयी सुधा की जब झटके से गुलामा ने गाड़ी को ब्रेक लगा दी। देखा! सुमोना और अन्य सभी स्त्रियाँ उतर रही हैं। गुलामा कहता है, "उतरिए आप भी। सुमोना जी कहती है कि यहाँ उतरना है।"

सुधा ने देखा सामने सड़क है। दायें और बायें पाण्डव-घर हैं।

"यह पट्टन है गुलामा जी?"

"हाँ।" गुलामा ने उत्तर दिया।

सुधा ने देखा कि सुमोना अपना कैमरा ठीक कर रही है, चित्र खींचने के लिए। बीच-बीच में जबरदस्त अन्दाज में बालों को झटकाती भी है।

सुधा भी उतरकर सड़क के किनारे आती है। यह जगह लोगों से अँटी पड़ी है। सुधा दर्दभरी, जिज्ञासा-भरी दृष्टि दौड़ाती है, हर तरफ। वह लोगों को उसे ही देखते हुए देखती है। उस देखने का वह मूल्यांकन करने की कोशिश करती है...अटकलें लगा रही है उनके मनों के दुनिया की।

सामने से तुरन्त एक ख्वाजानुमा व्यक्ति रौबदार फिरन पहने सड़क पार करता हुआ आ रहा है और सुधा को शत्रुवत् घूरकर देखते हुए कहता है, "अले भट्टिनी! दाल भट्टिनी। तू कहाँ से पैदा हुई? भट्टिनी?"

सुधा को गहन अपमान की अनुभूति हुई। पर वह संयत रही। हुर्रत ने भी यह देखा और सुना। सुधा ने हुर्रत को देखा। हुर्रत ने देखा कि सुधा ने देखा कि हुर्रत सब कुछ जानती है।

"त्रेठ पड़े तुम पर...हरामी की औलाद..." इत्यादि खराब शब्दावली में उस ख्वाजा को कोसा हुर्रत ने, ताकि सुधा को चैन मिले और सुधा को एहसास हो कि उसका अपमान हुर्रत का भी अपमान है, सिर्फ सुधा का ही नहीं।

दोनों देख रही थीं कि वह ख्वाजा बहुत दूर पहुँच चुका था और कुछ दूरी तक वह मुड़-मुड़कर उनको देख रहा था।

"यही लोग सबको बदनाम कर देते हैं, सभी को, पूरी कौम को।" हुर्रत फिर बोली थी।

सुधा ने चाहा कि वह निर्विकार बनी रहे। न हुर्रत के इस सच्चे झूठे नाटक को महत्त्व दे, न ही उस मवाली ख्वाजा के ही शब्दों को कोई अर्थ दे।

सुमोना आयी। उसने कैमरा पोजीशन में लाया था। वह यह बताने आयी थी कि वे लोग पाण्डव-घर के अन्दर बने लॉन में किसी क्यारी के पास या पत्थरों के निकट खड़ी हो जाएँ...ताकि वह उनकी एक फोटोग्राफ ले सके।

"देखा उस मवाली की ऐसी की तैसी हो जाए। सुधा को दाल भट्टिनी बोल रहा था।" हुर्रत ने सुमोना से कहा।

सुमोना बड़ी ही व्यंग्य की मुस्कान में मुस्करायी। सुधा को देखकर फिर

तनिक ठहरकर बोली, ''मैंने कहा था न कि डेजिहोर नहीं डालने चाहिए थे, न बिन्दी ही लगानी चाहिए थी।''

सुधा कुछ न बोली। एक विचित्र हँसी हँस दी ताकि सुमोना को उसमें एक जला देने वाला उत्तर मिल जाए। तब वह पाण्डव घर की तरफ जाने लगी। ताकि उन पत्थरों, विराट पत्थरों को देख सके, उन्हें छू सके।

उसके अन्दर अपमान की प्रतिध्वनियाँ तड़-तड़ बज रही थीं। वह सह रही थी। उसमें इतिहास था और उसमें सहने की एक लम्बी-तगड़ी सीख थी। जिस पर वह चिन्तन-मनन करना चाहती थी। जिसके समय में वह डुबकी लगाना चाहती थी जिसके साथ वह निमज्जित होकर कुछ अनुभव करना चाहती थी...उस मवाली ने उसका अपने व्रणों के साथ होने का भी सारा मजा ही खराब कर दिया था और नमक छिड़का था सुमोना ने...आव-न-ताव देखकर।

उसके सामने उस व्यक्ति का सड़क पार करके उसके सामने से जानबूझकर गुजरना ताकि वह उसे देखे और उसके शब्द सुने—बराबर जारी था।

वह भीतर-ही-भीतर पता नहीं किसके साथ मुस्करायी। पता नहीं किसके साथ? शायद सुमोना के साथ...या फिर समय के साथ...पता नहीं अपने ही साथ शायद...पता नहीं समय की इस चालाक पौध के साथ।...उसे पता नहीं। फिर बोली, ''जरा यह...फोटोग्राफ भी लेती...यह जो मैंने अभी लिया।''

'उसने ऐसा क्यों कहा। ऐसा तो था नहीं कि वह मवाली लगता हो। वह ठीक-ठाक ख्वाजा लग रहा था...पर क्यों कहा उसने ऐसा?' सुधा का एक बृहद् प्रश्न था स्वयं से ही।

'शायद इसलिए कि कहीं भट्ट भयमुक्त तो नहीं हुए हैं, वापस लौटने का हौसला तो नहीं आया है उनमें...अगर आया है, और अगर लौटने की इस भट्टिनी ने शुरूआत की है तो मैं हौसले पस्त कर दूँगा। इसीलिए। मैं...मैं...अपनी कौम का एक अदना-सा प्रतिनिधि भी यह दायित्व निभा सकता हूँ। आतंकवाद को शब्दों के माध्यम से भी बनाये रख सकता हूँ...ऐसा न लगे कि यहाँ आतंकवाद मुक्त अनुभव किया जा रहा हो। जेहाद में योगदान दे सकता हूँ मैं भी। इसीलिए।' सुधा ने सुधा को उत्तर दिया। 'चलो सुधा...यहाँ क्यों खड़ी हो...आओ।' हुर्रत ने उसे आवाज से झिंझोड़ा जो कि जानती थी कि सुधा आहत है।

सुमोना एक दुकान की छत पर सामने से चढ़कर उनकी फोटोग्राफ ले रही थी, आसपास के और सड़क पर आ-जा रहे सब लोग उसे देख रहे थे।

सुधा को हँसी भी आ रही थी उसके ये नाटक देखकर और वितृष्णा भी हो रही थी उसके तथाकथित अनुसन्धान के तरीकों पर। 'कुण्ठित मन-मस्तिष्क और अनुसन्धान। सत्य-विमुख संकल्प और अनुसन्धान। ऊपर की थोपी सरल,

सस्ती और बाजार में बिकाऊ विचारधाराओं के माध्यम से शोध?'

'ऐसे कितने हल्के, गलत निर्देश देते हुए, विकृत इतिहास को अंकित करते हुए, गलत सूचनाएँ देते हुए शोधों और पुस्तकों का बोलबाला है आजकल।' उसने चिन्तित मन से सोचा।

'ऐसा एक अनुसन्धान सुमोना भी करेगी तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा' सुधा का एकालाप बराबर जारी है।

कभी-कभी अपमान सहना कितना असह्य पीड़ा को सहने जैसा हो जाता है। कठिन होता है। उस समय दवा की तरह याद आता ललद्यद का वाक सुधा को—

"चा़लुन छु त्रेठ त् वुज़मलय
चा़लुन छु मन्दिन्यन घटयकार
चा़लुन छु पनुन पान कडुन ग्रेटय
हेत् मालि संतोष वाति पानय...।"

सहिष्णुता तो बिजलियों और गर्जनाओं को झेलना है। दोपहर में सायं के अन्धकार घिर आने जैसी स्थिति को सहना है सहिष्णुता। सहिष्णुता तो चलती चक्की के दो पाटों में से स्वयं को निकालना है...सन्तोष और (शायद मौन) एक मात्र उपाय है।

सुधा ने अपने लिए मन-ही-मन यह गाया और उसका हृदय निर्बाध रो उठा। ललद्यद की अपने भीतर उपस्थिति से विभोर होकर, दर्द की दवा पाकर। मगर असली दर्द तो पैदा किया था ख्वाजा के उन शब्दों ने। पट्टन के उस ख्वाजा के उन शब्दों ने। जो दिखने में अच्छा-खासा मुअतबर दिख रहा था...न कि कोई मनचला युवक। नहीं नहीं।

अगर ललद्यद ने मुझे दर्द की दवा दी, इनको भी तो एक सूत्र दिया दर्द न पैदा करने के लिए ज्ञानबद्ध। ललद्यद को ये भी तो दावे से कहते हैं 'हमारी थी'। उसके वाकों पर अमल भी तो उनकी होनी चाहिए। उसके वाक सिर्फ 'मेरे' 'हमारे' ही क्यों हैं?

❑❑

सुधा ने चाहा कुछ बातें की जाएँ हुर्रत से या इज़ा से। कुछ खरी-खरी बातें कि देखो इज़ा या देखो हुर्रत! तुम कहती हो मवाली, पर वह तो था पट्टन का ख्वाजा...अधेड़ से भी अधिक उम्र का...।

'पर हुर्रत कहेगी...ख्वाजा था?...क्या देखती हो तुम सुधा...वह शतप्रतिशत मवाली था।'

'ये गलत तत्त्व होते ही हैं हर कौम में सुधा लानत भेजो इन पर और मस्त हो जाओ। फिर सुधा कुछ नहीं बोल पाएगी। हुर्रत की बातें तो अर्धसत्य होंगी ही। कैसे काटनी? अर्धसत्य काटने कठिन हैं। कैसे काटें। फिर काट के निकलेगा भी क्या। उसे शोध तो करना नहीं सुमोना की तरह। वह स्वयं शोध है। शोध की एक बृहद् पाण्डुलिपि...।' सुधा के भीतर ध्वन्यात्मक तुमुल था।

चित्र खिंच गये थे। सुधा नजदीक जाकर पत्थरों को देख रही थी...आँखें गड़ा गड़ाकर...मानो उनकी शिद्दत माप रही हों। मानो उसे देखकर पत्थर भावुक हो उठे हों...अत: वे उठेंगे और उसे अपने-अपने अनुभव कहेंगे...सारी कथा बताएँगे अपने होने की...

"चलिए सुधाजी...क्या कर रही हैं आप...सॉरी...क्या सोच रही हैं आप? सोचना छोड़ो...चलो।" इज़ा उसे कन्धे से थपकाते हुए ले गयी।

उसने देखा गाड़ी में सब बैठी थीं। यहाँ तक कि सुमोना भी। वह दृष्टि उस पर और हाथों से ठीक कर रही कैमरा पर डालती जा रही है मानो कह रही हो...'अरे क्या करती हो...तुम्हारे कारण शोध के अभियान में अक्सर देर होती है...अक्सर तुम मेरे नक्शे कदम पर चलना भूलती हो।'

वह इज़ा के कदमों के साथ कदम मिलाते हुए तेजी से गाड़ी में बैठ गयी।

"लो यह बहुत बड़ा और अत्यावश्यक पड़ाव था" सुमोना बोली। मानो सबसे ज्यादा चित्र उसने यहाँ खींचे हों।

हुर्रत ने उसकी पीठ पर प्यार से अपनी हथेली रख दी।

❑❑

'पट्टन?' पट्टन जब आता था तब उसे पता होता था कि उसका गाँव अब जल्दी आएगा और वापसी पर भी जब पट्टन आता, तो उसे लगता कि शहर अब जल्दी आएगा। वह उसी पट्टन में थी। अभी अभी। पर उसे गाँव नहीं जाना है। न उसे शहर ही जाना है। उसे उस पार जाना है...डूबकर या तैरकर। जीकर या मरकर।

"डूबकर या तैरकर पार जाना है, आऽऽ पार जाना है...हुर्रत! पार जाना है। इज़ा पार जाना है। सुमोना। फना हो जाना है...और जान जाना है आऽऽऽऽ पार जाना है..." एक धुन वह गा रही है जो कि, उसे विश्वास है कि अन्तरिक्ष के रेडियो स्टेशन से प्रसारित हो रही है...उसे यह भी लग रहा है कि वह उसे गा भी खूब रही है...एक प्रकाण्ड गायिका की तरह...बिना किसी भूलचूक...दर्द भरे गले से...आत्मा के गले से...अद्वितीय नाच उस धुन पर वह नाच रही है...उसकी नर्तक आत्मा...अ अ आ...डूबकर या तैरकर...जीकर या मरकर...पार जाना है...पार पाना है...पार जाना...पार जाना है।

पर कोई नहीं सुन रहा इहलोक में उसका यह गायन। इन बीच के क्षणों में यहाँ मारक मौन है। सिर्फ गाड़ी चलने की आवाज है। और कुछ नहीं। दायें-बायें सड़कों पर सशस्त्र सैनिक पहरे के लिए नियुक्त मूर्तिवत्, कभी-कभी चलायमान मूर्तियों की तरह लग रहे हैं। वे अपनी-अपनी परिधि में कुछ कदम आ रहे हैं और कुछ कदम वापस जा रहे हैं। इस तरह वे कठोरतम काल समुद्र को पार कर रहे हैं।...इन्हें सुधा विशेष आशीष की दृष्टि से देखती है। वह उन्हें अनथक देख रही है। एक-एक को देख रही है। एक के बाद दूसरे को देख रही है, मानो उनके चेहरों पर उसे कहीं-न-कहीं अपने देश के क्लीव हुक्मरानों के लिए कोई शब्द, कोई सूत्र या कोई जुमला लिखा हुआ मिलेगा। 'यहाँ मेरे गाँव की सड़क के दोनों किनारों पर न जाने किस-किस धर्म, भाषा, रंग, नस्ल, संस्कृति की माताओं के लाडले पुत्र...समय का पानी माप रहे हैं...समय की लम्बाई तहा रहे हैं। कइयों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि उन्हें अपना जीवन इस अज्ञात...सुदूर और जमे हुए बारामूला श्रीनगर रास्ते, आतंकवादियों के खिलाफ पहरा देना होगा।'

मार्ग में एक उपमार्ग आया जिस पर लिखा था, 'पलहालन।'

वह उछल-सी गयी। हुर्रत की तरफ देखा और बोली, "अरे हुर्रत! अरणिमाल का पलहालन।"

इज़ा हँस दी और बोली, "तुम तो ऐसे रोमांचित हो रही हो मानो अरणी अपने गाँव में रह रही है और हम उसी से मिलने जा रही हैं।"

"इज़ा, मेरा विश्वास तो यही है। मुझे उसकी आभा से आच्छादित सब कुछ लगता है...सब कुछ।"

इज़ा कुछ नहीं बोली। हँस दी।

"तुम हँसी क्यों इज़ा?" सुधा बोली। और फिर बोली, "क्या तुम समझती हो कि मैं पागल हो गयी हूँ।"

इज़ा ने तुरन्त उसे अपनी तरफ खींच लिया और अपने साथ सटा लिया और देर तक सटाये ही रखा, "कतई नहीं सुधा...बिल्कुल नहीं...मैं तुम्हारे दिल की हालत जानती हूँ और दुःख से लबरेज हूँ।...तुम अभी पट्टन के पाण्डव-घर के पत्थरों को बुत की तरह देख रही थी। मैं समझ सकती हूँ कि तुम क्या सोच रही होगी। मेरा दिल रो पड़ता है। पर क्या करें। मैं क्या करूँ सुधा...मैं अदना-सी...खुद लाचार...क्या करूँगी...आखिर मैं तुम्हारे लिए कुछ करना चाहती हूँ...कुछ करना चाहती हूँ तुम्हारे लिए पर करूँ क्या सुधा, समझ में नहीं आता कुछ।" कहते हुए इज़ा की आँखों के किनारों पर मोटा पानी आन उपस्थित हुआ। जबकि इज़ा चुपचाप सुधा के अजस्र अश्रु पोंछ रही थी। चुपचाप इज़ा को पता चला था कि सुधा के आँसुओं का पारावार न होगा और चुपचाप वह पोंछती जा

रही है। कभी-कभी उसके माथे को चुम्बनों से भरती जा रही है जैसे उसकी माता का रूप उस समय इज़ा ही हो गयी हो—

'गनीमत हो इज़ा तुम,
गनीमत हो हुर्रत तुम,
गनीमत हो तुम सब'

सुधा की अँतड़ियाँ बोल रही थीं। रक्त-मज्जा, वसा-मांस से रो रही थी...रो रही थी...नियन्त्रणविहीन ढंग से। 'कौन हो तुम इज़ा? कौन हो तुम हुर्रत...कौन हो तुम सब...। तुम लेकिन कहाँ थीं, जब मैं यहाँ से भाग गयी और जब बनिहाल की पहाड़ियों के पार स्वयं को जीवित और साबुत पाया अपने प्रियजनों के साथ स्वयं को तो कहा,

'गनीमत है कि हम
ज़िन्दा है।
गनीमत है कि हम सब
ज़िन्दा है।
ज़िन्दा है इसलिए सोचेंगे
और ज़िन्दा ही रहेंगे...।'

'कहाँ थे तुम लोग उस समय? कहाँ थी तुम इज़ा? कहाँ थी तुम हुर्रत। सुमोना बस वही क्षण था जब शोध की तीव्र जरूरत थी। जब शोध प्रासंगिक था ज्यादा। उस शोध से कुछ अनहोना न होने देना था।' पर सुधा जानती है कि उसकी सारी शब्द-पेटी अन्तरिक्ष के प्रसारण केन्द्र पर खुल रही है। यहाँ नहीं।

❑❑

एक दिन जब वसन्त आया था तो काकनी ने अपना बोरा-बिस्तर बाँधना शुरू किया था। गाँव के लिए। अब वह गेंदे के फूल बोएगी। सबसे पहले। फिर मूँग, माश, राजमाश, रोंगी, वारिमुठ, मक्की। फिर खेत लहलहाएँगे। तितलियाँ समाँ बाँधेंगी।

काकनी, उसका पापा और वह चल पड़े थे करफली मुहल्ले से। चोट बाजार के चौक में वह काकनी का फिरन पकड़े जा रही थी। बीच-बीच में देखती थी कि पापा दिख रहे हैं या नहीं, कहीं वे गुम न हो जाएँ क्योंकि पापा दिख नहीं रहे। काकनी दृढ़ थी। भूगोल जानती थी। कभी डाँटकर और कभी प्यार से सुधा को चुप करा रही थी पर सुधा को विश्वास था कि सदा गाँव में अपने वट्टू में रहने वाली काकनी को भला क्या पता 'हम कहाँ पहुँच गये, हम किस सड़क पर हैं,' इसलिए 'हम दोनों खो गये।'

रो-रोकर मरने के बाद सुधा और काकनी को पापा दिखे थे, आगे करणनगर

के मोड़ पर जहाँ शहर की भीड़ कम थी। ''—यह ले तेरे पापा हैं...अब खो तो नहीं गयी थी न कहीं...बेवकूफ लड़की।'' और सारा रास्ता काकनी की गोद में बैठकर, काकनी ने उसके होने के अजाब का भरपूर आनन्द लिया था।

'ये सारे रास्ते काकनी के हैं, उसके हैं। यह सारी ज़मीन जायदाद, सड़कें, पेड़, फिजा, अन्तरिक्ष, तितलियाँ, रंग सब काकनी के हैं। ये नाम, ये धाम, सब उसके परमधाम हैं...इज़ा और हुर्रत सुन रही हो तुम? समझ रही हो तुम?'' उसके एकालाप की एक और खेप सम्पन्न हुई।

❑❑

रहमाना को इन्तजार था राजरानी का। बीज बोने में देर नहीं होनी चाहिए। वह भी इस शीत-प्रवृत्त अत्यन्त संवेदनशील स्थल पर तो बिल्कुल भी नहीं। फसलों से बढ़कर है धरती को हरे-भरे कालीन उढ़ाना, आच्छादित करना। तितलियों का लयबद्ध नृत्य देखना और भौंरों का हवा के महीन भँवरों के साथ-साथ लय-ताल मिलाकर घूमकर, निस्सीम और निगूढ़ शान्ति को संगीत से भर देना। फिर उस सारे वातावरण में सुधा का फुदक-फुदककर दौड़ना, झूम-झूमकर नाचना, खेलना, आनन्द विभोर होना और हवा और भौंरों के संयुक्त बोल समझने की कोशिश करना। उन पाररहित गीतों का छन्द पकड़ना और अर्थ खोलना। 'वही तो लास्य था, किसी के जानने से परे।' 'यः पश्यति सः पश्यति' सुधा ने इन दुःखमय आवेग के क्षणों में निष्कर्ष निकालकर दिया स्वयं ही स्वयं को।

तब काकनी पहले वट्टू की सफाई में जुट गयी थी। नन्हे-नन्हे हाथों से सुधा भी काकनी का हाथ बँटाने में सोत्साह जुट गयी। 'यह झोंपड़ी सत्य नहीं है। यह साधना का केन्द्र-बिन्दु है...इसका विस्तार बाहर हारन में है, धान के खेतों तक है' यही सोचकर उसने जुटाया होगा स्वयं को काकनी के वट्टू को साफ करने में काकनी के साथ तब। सारी सर्दियों की सीलन। लगभग गिरने-गिरने को मृत-घास की छत परन्तु गिरी कतई नहीं। 'नन्दबब ने अपने हाथों से थामी।' काकनी ने परमेश्वरी से कहा था, जब परमेश्वरी ने कहा था कि 'अब की सर्दियों में तो तूफानी बर्फ गिरी। पूरी-पूरी तीनों बार। आदमकद। किस की छत नहीं गिरी। सिर्फ राजरानी की छत बनी रही। गिरने को तैयार मगर गिरी नहीं। आश्चर्य। सब आश्चर्य जता रहे थे।'

दूसरे दिन रहमाना, अशमी, खदीजा, रहमाना के दोनों बड़े बेटे और सुलडार ने आकर घास के पट बाँधे और छत नयी-नवेली ताजी सुगन्धयुक्त बन गयी। मानो पुण्यमयी इत्र का छिड़काव छत पर किया गया हो।

झोंपड़ी सुगन्धित स्वर्ण की छत से लैस किसी कालातीत ऋषि की तपोभूमि

से कम नहीं लग रही थी। पीली घास पर सूरज की किरणें यों सजतीं मानो काकनी के व्यक्तित्व की आभा विस्तार का मार्ग बना रही हो, पूरे गाँव को ओत-प्रोत और धन्य कर रही हो।

पूरण काकनी और सुधा को वहाँ छोड़कर चले गये थे अगली ही सुबह। सुधा ने चौथी कक्षा के इम्तहान दिये हैं और परीक्षाफल आने तक वह काकनी के पास संग्राम गाँव में रहेगी।

उस रात अच्छी महफिल सजी थी वट्टू में। वट्टू ताजा-ताजा मिट्टी की सौंधी गन्ध से अद्‌भुत होकर महक रहा था। सुधा को यह महक पागल कर रही थी, इतनी कि मिट्‌टी की उस महक में ही समा जाए। इसलिए वह इस महक में डूबने के आनन्द की प्राप्ति की लालसा को असह्य और अदम्य पाकर बीच-बीच में अपनी जीभ चस्पाँ कर लेती-दीवारों पर और मिट्टी की गन्ध और स्वाद का कौर पाकर जीवन भी पाती। काकनी का गाँव में शुभागमन के अवसर पर उसका स्वागत करने हेतु पधारे व्यक्ति के साथ हो रही बातचीत भी सुनती।

अब प्रभावती आयी थी। वह अपनी जेठानी परमेश्वरी के अनुसार अपने ननदोई की प्रेमिका थी।

इस बार मौसम-सर्मा में एक बार शहर में काकनी और सुधा की माँ के बीच परमेश्वरी का अपने ननदोई से प्रेम-प्रसंग छिड़ा था। भट्टिनी ने ननदोई की प्रशंसा की थी और ननद मुगली के भाग्य की भी तारीफ की थी। ननद मुगली बहुत ही सीधी औरत है। सीधे व्यक्ति का ध्यान ईश्वर स्वयं रखता है। ईश्वर ने उसका भाग्य सोने की कलम से लिखा है। चोट-बाजार में उसकी तमाखू की थोक दुकान है। बहुत मशहूर दुकान। मुगली रईस है। बेगम है। "मगर वह उस कारण बेगम नहीं, वह अपने गुणों के कारण बेगम है...निर्लिप्त स्त्री। प्रभावती यानी भाई के बच्चे भी पल रहे हैं तो क्या बुरा है। गरीब भाई है बेचारा। परमेश्वरी ईर्ष्यालु औरत है। पागल औरत है। चाहती है वही भात खाए, उसके बच्चे ही पलें बढ़ें। बाकी घास खाएँ।"

काकनी ने कहा था कि उसे परमेश्वरी का दूध दे जाना अच्छा नहीं लगता। वह उसका दूध लेना भी नहीं चाहती...मन की अति मैली है वह। पर वह कह भी नहीं सकती कुछ।

प्रभावती को किस दृष्टि से देखा जाए, उसे भी कुछ समझ में नहीं आता। कभी-कभी परमेश्वरी के शब्दों के कानों में पड़ने से उसे यह सोचने के लिए बाध्य किया है कि प्रभावती जरूर कुलटा है...या होगी।

ये गाँव के अजीब जटिल प्रश्न थे। ये समाज के भी प्रश्न थे। शहर में सुधा की नानी और माँ के मध्य काफी विचार-विमर्श के बाद भी नहीं सुलझे थे।

अब प्रभावती वट्‌टू में आयी थी। सुधा का अब प्रभावती को देखना पिछले देखने की तुलना में नितान्त भिन्न था। बहुत ही भिन्न। किन्तु प्राय: प्रभावती कोई भी बात परमेश्वरी के खिलाफ या पक्ष में कभी नहीं करती जबकि परमेश्वरी करती ही सिर्फ उसी की बात थी।

प्रभावती की उपस्थिति से सुधा को लगा था कि काफी जीवन्तता का संचार हुआ है। वट्‌टू किसी अलग ही आभा से खिल उठा है। प्रभावती खुलकर हँसती है। कभी-कभी वह आत्म-स्वीकार की बातें ऐसे सहज ही कह देती है...कि सुनने वाला असमंजस में पड़ता है जैसे उस दिन काकनी से कहा था, कि ''इस सर्दी के मौसम में दीनानाथ की भूरी गाय बद्री मर गयी। जब इससे पहले हमारा बैल स्वर्ग सिधार गया था तो मैं पागल हो गयी थी। कम-से-कम हमें एक ही बैल कहीं और से लाना पड़ता था तो खेत जुत जाते थे...ओह वह तो पूरा विक्षेप था। मैं तो पागल हो गयी थी। पूरी पागल। फिर मुगली के घरवाले ने कहा कि किसी सयाने के पास जाकर पता करो कि यह क्यों हुआ। मैं दोबगाँव के रमज़ान पीर के पास गयी, उसने कहा, तेरी जेठानी ने ताबीज रख दिया है और उसी से बैल मर गया है। उसने कहा कि ताबीज हाहकोल (कच्चे कोयले की अँगीठी) के पास जमीन में गाड़ा गया है। वह भी अण्डे के छिलके में स्त्री के बालों से लपेटकर। मैं चलकर वह निकाल लूँगा। वह आया, अरे सतीद्यदी! क्या बताऊँ। रमज़ान पीर ने वट्‌टू और रसोई में पूरा अँधेरा कर दिया पहले। खुद चौके के बाहर रहा। जगन्नाथ को कहा कि एक खास जगह एक खास नुक्ते पर वह खुदाई कर ले। उसने की। थोड़ा-सा खोदने पर ही अण्डे के छिलके के अन्दर बालों का गुच्छा। बालों के उस गुच्छे के अन्दर एक कागज पर बैल की शक्ल। और बैल बेचारा...।

''मैं बदले की भावना से जल उठी। रहा नहीं गया मुझसे। मैंने कहा रमज़ान पीर! मैं खुद पर काबू नहीं पा सकती। इस हरामजादी परमेश्वरी को सबक सिखाकर ही रहूँगी। मैं बदला लूँगी। तुम मुझे भी कोई ऐसा ताबीज दो कि इसका भी बैल मरे।

''रमज़ान पीर का ताबीज एक दिन मैंने कपड़े धोने के बहाने बैठकर चिलमची भरी पानी के साथ उनके आँगन में बहाया। कुछ दिन बाद उनकी बूढ़ी बीमार गाय मर गयी। हाय! मुझे क्या हुआ। मुझे गौहत्या का पाप लग गया, सतीद्यदी। मैं बाद में बहुत रोयी, सोचकर कि मैंने ही उस गाय को मारा। उस समय मैंने तुमको बहुत याद किया, सतीद्यदी। सोचा तुम होती, शायद मैं ऐसा काम नहीं करती। मैं पछतायी। मुझमें बर्दाश्त क्यों नहीं है आखिर। तिनका भर भी।'' और परमेश्वरी पश्चात्ताप में रो पड़ी। उसके रोने के उपसंहार के साथ ही काकनी

हँस पड़ी थी। जाहिर है कि उसने उसका यह आत्मस्वीकार सराहा।

"एकदम बकवास बातों में विश्वास करती हो प्रभावती तुम। एक परमब्रह्म पर विश्वास रखो। देखो बात ही अलग होगी तब। सारे नाटक असल में रमज़ान पीर के थे। न परमेश्वरी ने ताबीज से कुछ बिगाड़ा किसी का न तुमने परमेश्वरी का। बैल का जीवन काल समाप्त हो गया था तो सिधार गया। गाय का भी अन्तिम समय आ गया था तो मर गयी। ताबीजों में इतना दम होता तो फिर दुनिया को और किसी व्यवस्था की जरूरत ही नहीं पड़ती। अरे भई बैल और गाय का अन्न-जल अभी शेष होता, साँसें अभी शेष होतीं तो कौन मार सकता था उनको। रमज़ान पीर की ऐसी की तैसी। वह अपने पेट की खातिर यह धन्धा करता है और बाल-बच्चों को पालता है, दुनिया को बेवकूफ बनाकर, समझी। तुम्हारे ताबीज से बूढ़ी और बीमार गाय ही क्यों मरी जबकि तुम चाहती थीं उनका बैल मरे। रहा तुम्हारा बैल—बेचारा पशु। जरूर कुछ स्वास्थ्य की गड़बड़ के कारण चल बसा होगा। दुर्भाग्य और क्या कह सकते हैं इसे। वर्ना परमेश्वरी की चेष्टा से वह नहीं मरा। कतई नहीं। जिसको मारने वाला मारता है, उसे कोई नहीं बचा सकता है पर यदि उसे वह बचाने पर हो तो उसे कोई मार ही नहीं सकता। उसकी आज्ञा के बिना धूल का तिनका तक नहीं हिल सकता। समझी।"

सुधा को याद हैं काकनी के वे फलसफे-दार विश्वास। उसे एक निमिष में याद आया पिछली ज्येष्ठ अमावस के दिन विस्थापित नन्दबब के अस्थापन में उसे बबली मिली थी। प्रभावती की सबसे छोटी बेटी। खुद कार ड्राइव करके आयी थी, नन्दबब के दर्शनार्थ। सुधा का रोम-रोम खुशी से खिल उठा था...पोर-पोर आनन्द से भर गया था। लगा था मानो प्रभावती के उस दैन्य भरे क्षण और बबली से मिलने के इस क्षण के बीच सिर्फ एक क्षण बीता है। मात्र एक क्षण। बस बीच का एक क्षण। ओऽऽ...समय कैसे सिकुड़ता है और कैसे फैलता है...एक नम्बर का जादूगर है समय भी। बीच का क्षण विस्थापन का क्षण था...बड़ा ही दारुण क्षण था। दैन्य से भी दारुण। प्रभावती का बेटा अवतार दानियों के लिए रसीदें बना रहा था।

नन्दबब, गोल गुजराल, जम्मू के मुख्य भवन में मण्डली (कीर्तन) हो रही है। प्रभावती कीर्तनियों के ऐन बीचोंबीच झूम-झूमकर नाच रही है। उसका अंग-विन्यास नन्दबब की भक्ति का तीव्र परिचय दे रहा है। और प्रभावती मुख्य गायक के तौर पर गा रही है—

नन्दबबऽ म्याने...
अज़रोज़ साने...

'नन्दबब म्याने...' कर-कर के झटक-झटककर वह अजस्त्र अश्रु बहा-बहाकर नाचती जा रही है। बिना दाँतों के मुँह से बोल पढ़ते जा रही है। मटका और चिमटे बजाने वाले भी बोल अब तीव्र पढ़ रहे हैं और देख प्रभावती की तरफ रहे हैं...मानो वही नन्दबब हो गयी हो।...भक्त अपनी भक्ति में भगवान हो जाता है...सोचकर। पर सुधा सोचने लगी, 'वह रो क्यों रही है...इस तरह भक्ति में विलीन क्यों हो जाना चाहती है...क्या हुआ है उसे। उसे नन्दबब ने अपनी कृपा से हर तरफ से पुरस्कृत किया है...। फिर...? क्या वह आभार व्यक्त कर रही है। या क्या वह प्रायश्चित्त कर रही है...या हो सकता है कि अब वह अपने दृश्य ननदोई के बाद अदृश्य नन्दबब के प्रेम में पड़ गयी हो। नन्दबब की चैतन्य प्रभु हो गयी है।' सुधा ने सोचा।

'क्या काकनी के उस दिन के उपदेश के बाद प्रभावती ने रमज़ान पीर जैसी चीजें, ताबीज जैसे विश्वास छोड़कर अपनी आत्मा का दीप जलाया होगा...क्या किया होगा...कुछ तो किया होगा...आज प्रभावती सचमुच प्रभावती है।...प्रभामयी आभामयी।' सुधा निरन्तर सोच रही थी।

जब प्रभावती ने दिद्दा को देखा था तो फिर उसके भावविह्वल होने की कथा ही दूसरी थी। जैसे एक खोया हुआ बच्चा अचानक उसे वापस मिल गया हो। कई मिनटों तक लगातार प्रभावती ने दिद्दा को अपनी विशाल छाती (जो आज भी खासी विशाल थी) से सटाये रखा था। मानो प्रकृति देवी के स्तन हों।

"भट्टिनी कहाँ है?" उसने पूछा था।

"दिल्ली में ही..." सुधा ने उत्तर दिया था। तब प्रभावती एक अलग कारण से रो पड़ी थी। मोह के कारण। स्मृतियों के कारण। स्मृतियों के दो दुनिया आपस में टकरा रहे थे। दोनों दुनिया में बहुत कुछ समान था इसलिए टकराहट तेज थी। टकराहट कुछ ज्यादा ही तेज सुधा के भीतर थी। प्रभावती अपने भीतर की टकराहटों को अश्रुओं के रूप में तरल कर रही थी...अत: जीना भी सरल कर रही थी।

सुधा सोचती रही।

❑❑

उस दिन काकनी के वट्टू में शोभा ताई आयी थी। गाशा आया था। बिन्दु आयी थी। भाईजान भी आये थे। अमरावती आयी थी। जो कि माधवजू की पत्नी तथा रुँचमाल की बहू भी थी।

"अमरावती विचित्र औरत है।" अमरावती के काकनी के वट्टू से उल्टे पाँव वापस जाने के बाद यम्बरज़ल आयी थी तो वृत्तान्त वहीं से शुरू हुआ था।

यम्बरज़ल काकनी के वट्टू में अमरावती को देखकर आश्चर्यचकित हो उठी थी। इस टकराहट से असहज होकर अमरावती ने फिर तुरन्त कुछ क्षणों में ही काकनी से विदा माँग ली थी। सुधा ने देखा था कि अमरावती का चेहरा एक नाराज और कठोर औरत का चेहरा लग रहा था। अपना पुलहोर पहनते-पहनते वह रह-रहकर यम्बरज़ल और काकनी और सुधा और वट्टू को देखती जा रही थी। ज्यादातर यम्बरज़ल और काकनी को। मुड़-मुड़कर देखते हुए ही वह निकल गयी, मानो अपनी नाराजगी ठीक से दर्ज करा रही हो, बेशुबहा। सुधा काफी देर बाद समझ पायी थी उन नजरों का अर्थ।

'अमरावती उन नजरों से कह रही थी, यम्बरज़ल कहीं की तुझे अच्छा नहीं लगा कि मैं काकनी के पास आयी थी। तुम आयी और एक ढीठ की तरह घुस कर बैठ गयी। जब मुझे अन्दर देखा ही था जो जरा-भर ठहरती। वापस अपने घर जाती और कुछ देर बाद आती या दूसरे दिन आती।'

'यम्बरज़ल! अब तुम मेरे किस्से यहाँ दोहराओगी। सुनोगी। मजा लोगी और काफी निर्दयी होकर हँसोगी। है न? हाँ मैं जानती हूँ...वैसे मेरी भी गलती है। मुझे काकनी के पास आने की अपनी इच्छा को भरपूर रोकना चाहिए था।'

वैसा ही हुआ भी था। यम्बरज़ल ने सुधा को बरामदे में भेजा था...देखने के लिए कि क्या अमरावती चली गयी या कहीं गली में ही आड़ में होकर उनकी बातें सुनने की कोशिश करने के लिए रुकी तो नहीं है। यह देखने के लिए सुधा को रुँचमाल के बरामदे तक अमरावती को देखते हुए जाना पड़ा और दौड़कर, वापस आकर, उसने वट्टु में घोषणा की, ''अमरावती अपने घर में घुस गयी...मगर वह होठों से कुछ फुसफुसा रही थी।''

काकनी हल्के से हँस दी और बोली, ''ईश्वर की माया है...किस क्षण किस रूप को धरने की उसकी इच्छा हो...वही जाने।''

''लेकिन यह क्या माजरा है राजरानी। आज अमरावती का यह हाल काहे? क्यों कर भला? इतनी घमण्डी...ईर्ष्यालु...अचानक तुम पर दयालु, कैसे...कि आपका गाँव में स्वागत करने पधारी...यह कैसे?''

''स्वागत करने नहीं आयी चाण्डालिन है एक नम्बर की। अरे आज यही लीला करने का मन हुआ। आते ही गले लग गयी। फिर बोली—'सतीद्यदी, वारी जाऊँ। अबके सारे गाँव को आपका लोल आया था। मुझे तो बहुत ही आया था। मुझे बहुत अच्छा लगा जब तुम आयी...और मैं भी तुम्हारे पास आने से रोक नहीं पायी।...' फिर मैंने उसकी आँखें भी सजल देखी...लगता है शायद उसे कुछ कहना था...कोई खास बात...पर वह अन्त तक साहस न जुटा पायी...फिर तुम भी आयी तो वह भी...जैसे रूठकर चली गयी।''

"पता नहीं समय के साथ-साथ शायद मन बदलते हों।"

"हाँ, शायद।"

"अरे क्या सिनेमा बन गया था उन दिनों गाँव में। अमरावती तो नायिका है जिसने सारे गाँव को सक्रिय कर दिया तब। कौन नहीं निकला था उस दिन अपने-अपने हथियार लेकर, या अपने-अपने औजार लेकर, अमरावती को ढूँढ़ने...और अन्त में खोदा पहाड़, निकला चूहा। अमरावती हाथ लग गयी सतीद्यदी के।"

"कबाइली हमले से पहले क्या मस्ती छायी थी गाँव पर...है न? पता भी नहीं था इतना खतरनाक है पाकिस्तान...कबाइली...या इस्लाम का आतंक...पता ही नहीं था ये सब क्या...है न राजरानी... ।" यम्बरज़ल बोली। सुधा अमाप्य उत्सुकता के साथ यम्बरज़ल के सामने बैठ गयी और बोली, "क्या हुआ था। बोलो न क्या हुआ था।"

"अरे क्या हुआ था...बिटिया...क्या बताऊँ? तेरी नानी ने करिश्मा कर दिया था उस दिन। राजरानी कहती है कि उस दिन अमरावती ने गाँव का सिनेमा बना दिया था जिसकी वह नायिका थी पर मैं सोचती हूँ कि अमरावती ने बेशक सिनेमा बना दिया पर नायिका की प्रतिष्ठा उसी दिन से राजरानी को मिल गयी।"

"क्या हुआ था?" सुधा फिर बोली। इस बार उसने यम्बरज़ल के फिरन का दामन थोड़ा-सा खींचा, ताकि उसपर सुधा की तीव्र जिज्ञासुता का दबाव पड़े। आज मन:स्थितियाँ अच्छी थीं...पंचतत्त्वों की मन:स्थितियाँ अच्छी थीं...गाँव की भी... काकनी की भी...क्योंकि वह गाँव में पधारी थी और उसमें गाँव पधारा था।

काकनी साफ-सुथरे वट्टू में चीजों को करीने से सजा रही थी और घरौंदे पर अन्दाजे से ही सन्ध्या-दीप ढूँढ़ रही थी ताकि खिड़की पर सन्ध्या-दीप ढूँढ़ सके क्योंकि सन्ध्या होने वाली थी।

सुंधा डर रही थी कि कहीं विकसित मन:स्थिति पलटा न खाए। काकनी को सन्ध्या-दीप जलाना है। इससे पूर्व काकनी की सिनेमाई कथा का श्रवण सम्पन्न किया जाए।

यम्बरज़ल शुरू हो गयी, "क्या बताएँ। अमरावती प्रसाद जू के कमरे में पकड़ी गयी थी। रँगे हाथों। इससे पहले अमरावती को सावधान किया गया था, कई बार, कि यह कुलटापन छोड़ दे। प्रसाद जू उसका देवर है। उसके लिए कोई लड़की ढूँढ़कर उसकी शादी करा दे। बड़ी भाभी माँ के समान होती है। पर उसे लगी थी प्रसाद जी की...खैर। रँगे हाथों पकड़े जाने पर खासी नाराज हुई अमरावती। उन दिनों माधवजू, टिकालाल अर्जुननाथ, ताराचन्द, प्रसाद जू एक संयुक्त परिवार में रहते थे। काकनी ने उसे बार-बार समझाया, अमरावती गाँव में

बात फैली है। बदनामी फैली है। यह लानत है। बाज आ। बाज आ। परिवार के लिए भी यह कोई शुभ काम नहीं।''

''काकनी ने क्यों कहा। रुँचमाल कुछ नहीं कह सकती थी...कुछ नहीं कहती थी वह क्या?'' सुधा का प्रश्न था। सुधा को खुशी हो रही थी कि काकनी सुधा को इन प्रसंगों को जानने और इनसे सम्बन्धित प्रश्न करने के लिए उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा रही। नहीं तो वह कहती कि लड़कियों को ऐसी बातें न सुननी चाहिए...न ही सुनने के लिए आग्रह ही करना चाहिए। 'शायद वह यह बात मान रही है कि मैं बड़ी हो रही हूँ और समझदार भी हो रही हूँ।' उसने स्वयं ही अपने प्रश्न का एक सन्दिग्ध उत्तर दिया।

''रुँचमाल क्या कहती बेटा। वह तो बेचारी बीमार रहती थी। आँखों की रोशनी न के बराबर थी। अमरावती कुछ भी करे, रुँचमाल की बला से।''

सुधा को याद आया रुँचमाल को उसने बेहद छुटपन में देखा था। वह आँगन में पेशाब फेर कर बरामदा लीपने के घड़े से शौच कर गयी थी। उसे पानी का घड़ा दिखाई नहीं दिया था। वह मन की आँखों से आँगन के एक तरफ जाती। या उस तरफ जाती जहाँ जाना उसको आवश्यक लगता। सुधा यह स्थल याद करते हुए अपने ही साथ हँस दी—मनुष्य किन दिल दहला देने वाली पीड़ाओं में से गुजर रहा होता है, दूसरे मनुष्यों की समझ से परे। कुछ दिनों बाद जब रुँचमाल पंचतत्त्व में विलीन हुई और सुधा ने सुना था कि सब एक स्वर में कह रहे थे—अच्छा हुआ रुँचमाल अमरावती के चंगुल से मुक्त हुई। मुक्त हुई। मुक्त हुई रुँचमाल। मृत्यु का सौन्दर्य और जीवन का बीभत्स...द्वन्द्व...द्वन्द्व...।

''तो रुँचमाल क्या करती?''

रुँचमाल के तुरन्त बाद प्रसाद जू भी सिधार गया। पता नहीं अमरावती ने क्या किया इन सबको। एक-एक कर मार रही थी। पर माधव जू एक था जो बच रहा। जीवित रहा। ज्यादातर वह अमरावती से दूर रहा।

''दूर रहा...क्या रहा...क्लीव था...अमरावती भी क्या करती...?

''प्रसाद जू के सिधारने के तुरन्त बाद अमरावती ने राम जू को जन्म दिया। सब दबी जबान में कहते कि यह राम जू प्रसाद जू का औरस पुत्र है। राम जू निकला भी वैसा। पूरे गाँव में निराला।

''भीतर-ही-भीतर घर में तूफान बनने लगा। काकनी प्रसाद जू के लिए लड़की ढूँढ़ रही थी...इस बात से पहले ही खीझती थी अमरावती अत: वह काकनी को किसी-न-किसी तरह तंग करने लगी थी। अमरावती काकनी के खिलाफ तुलसी, अर्जुननाथ और टिकालाल के खिलाफ कान भर-भर कर। पर काकनी घबरायी नहीं।

''और एक दिन जबर्दस्त खबर फैल गयी कि अमरावती भाग गयी है। भाग गयी है और जरूर उसने आत्महत्या की है।

''सारा गाँव सक्रिय हो गया। कुछ लोगों को मुफ्त का सिनेमा देखने को मिल गया। उन दिनों सिनेमा अभी नहीं हुआ करते थे...या शहर में होता हो, अभी सोपोर में नहीं आया था। लेकिन कुछ लोग सचमुच पीड़ित हो गये। गाँव की नाक कट गयी। ग्लानि का अनुभव हुआ। कुछ लोगों को लगा कि काकनी आदि ने ही अमरावती को आत्महत्या करने पर मजबूर किया है। बहरहाल, तेरे दादा बाइलाल ने खास भूमिका निभायी। वह अंग्रेजों के साथ ड्रजिंग में काम करता था। उसने राय जाहिर की कि शायद अमरावती ने वितस्ता में छलाँग मारकर आत्मघात किया हो। सारे मर्द नावों में सवार होकर लम्बे-लम्बे डण्डे लेकर वितस्ता में उतर गये और अमरावती को ढूँढ़ने लगे।''

''क्या अमरावती डण्डे को पकड़कर ऊपर आती... ? यह सोचा उन्होंने।'' सुधा ने आश्चर्य व्यक्त किया कि अमरावती भला डण्डे को पकड़कर कैसे ऊपर आती।

इसका उत्तर देने में दोनों बुद्धिमान स्त्रियाँ असमर्थ थीं और मौन रहीं कुछ क्षण, फिर काकनी बोली, ''अरे पता नहीं। मर्दों की बही। पता नहीं डण्डों से कैसे खोजते अमरावती को...खैर...तेरे दादा ने चुपचाप नदी के निर्जन किनारों के जंगलों और नन्दबब के पास की चरागाहों में दिलोजान से ढूँढ़ा। वह भी अमरावती का एक गुप्त आशिक था। उसे लगा होगा कि वह अमरावती को कहीं से ढूँढ़ लाकर सिनेमा का हीरो बनेगा और अमरावती के दिल में सदा के लिए जगह बनाएगा...अरे...अमरावती थी भी ऐसी ही...अभी है...तब की बात ही नहीं...उसके इतने गुल-खिलाऊ होने के बारे में जानकर भी गाँव का हर मर्द...या अगर पड़ोसी गाँव के मर्द भी उसको देखते तो उस पर आसक्त होते। आँखें इतनी मस्त और चमकदार जैसे कि अभी भी है...आँखों पर भौंहें ऐसे मानो दो कोहिनूर पर छाते रखे गये हों। चाल...एकदम नागिन की...उसकी पूच की लहराहट तो बस आश्वस्त करती है कि अमरावती श्यामवर्णा नागिन है।

''और तेरा दादा भी उसे चुपचाप दे बैठा था दिल। अपनी पत्नी तारा को तपेदिक से मार कर।...मर्दों का भी क्या मन होता है...राजरानी... ?''

सुधा सोच रही थी कि बराबर वर्जित बातें यम्बरज़ल कहती जा रही है सुधा को...यह समय बदल गया है...या क्या। काकनी जरा भी मना नहीं कर रही। विराम नहीं लगा रही कथा पर...जो कि वह प्रायः करती है। और अब उसे अपने द्वारा अपनी दादी को तपेदिक से मारने का भी पता चला...तो वह व्यथित हो उठी। इतिहास व्यथित करता है...।

''मगर मारा क्यों?''

''नहीं, मेरा मतलब है कि उसे तपेदिक हो गया और इलाज अच्छे से नहीं किया तेरे दादा ने...और मरने दिया...मर गयी। उन दिनों इलाज था भी नहीं तपेदिक का। तभी तेरी बुआ भी तपेदिक से मर गयी।

''जब तेरी बुआ तपेदिक से मर गयी दूसरे दिन तेरी ताई को पहली सन्तान हुई। काव मुहल्ले की मुसलमान औरतों, जो अफसोस करने आयी थीं, को तेरे दादा ने सन्तान जन्म की खुशी में दो-दो अखरोट दिये। उन्होंने अखरोट भी लिये और थूका भी बुड्ढे पर। उसने अपनी सन्तान के मरने के गम में डूबने की अपेक्षा बेटे की पुत्र-प्राप्ति का जश्न मनाना श्रेयस्कर समझा। शर्म भी नहीं आयी।''

सुधा के भीतर कुछ टूटता गया...टूटता गया...असह्य रूप से तब टूटा जब बुआ के मृत्यु के दिन की बात उसने सुनी और सुनी अपने दादा बाइलाल की करतूत। यह क्या हुआ वह चली थी अमरावती की कथा सुनने, उसमें उसकी अपनी कथा उसे गुँथी मिल गयी। ''तो क्या मेरा दादा भी निर्लेप नहीं...उसने मेरी दादी को मारा...मेरी दादी को, तारा को तपेदिक से मारा...ओह...कितनी अच्छी रही होगी मेरी दादी...कितना प्यार करती मुझे अगर वह होती।''

❑❑

''शाम हो रही थी। अमरावती का अता-पता नहीं मिल रहा था। गाँव में बेचैनी और खुसुर-फुसुर बढ़ रही थी। मुसलमान मुहल्ले से लोगों का ताँता बँधा हुआ था। शाम होते ही नावों से उतरकर डण्डे लेकर घर आये मर्द लोग।

''अगर वह वितस्ता में कूद भी गयी होती तो क्या तब तक पानी के बहाव के साथ बही नहीं होती, वह भी सोपोर के पानी के बहाव के साथ...हाँ ...उऽ...अब ढूँढ़ते भी कहाँ। बाकी जंगलों, बागों, चरागाहों आस-पास के गाँव में तो ढूँढ़ ही लिया था सबने...और ढूँढ़ने के प्रयास में भी थे निरन्तर।

''तब एक बात तेरी नानी को सूझी।'' किस्से का चरम आ रहा था। सुधा का दिल धड़कने लगा जानने के लिए कि क्या तरकीब लगायी होगी उसकी नानी ने...और भला कहाँ से ढूँढ़ निकाला होगा अमरावती को।

''अन्ततः उसका दिमाग काम कर गया। अमरावती कहाँ हो सकती है, काल-कोठरी में।''

''काल कोठरी में? कौन-सी काल कोठरी। किस वाली। वह कहाँ है?''

''बेटा, तुम उस काल कोठरी का वजूद मत ढूँढ़ो। वह ऐतिहासिक काल कोठरी पाकिस्तान से कबाइलियों के ऐतिहासिक आगमन ने भस्म कर दी। अब वह भूगोल कहाँ है...सब भस्मीभूत।

"इनका विशाल-सा घर था। सामने बरगद का पेड़ था। जो कि कश्मीर में बहुत कम होते हैं। जिसको अमरावती ने अन्ततः कटवाया था...उसी से यह सारी मुसीबत पैदा हुई। बहुत पाप होता है...बरगद का वृक्ष कटवाना।

"घर चार मंजिला। सबसे निचली तल में वट्टू साथ ही एक काल कोठरी थी। दरअसल वह स्नानघर था जहाँ एक विशाल टब रखा गया था...पर बाद में उसमें नहाना बन्द किया गया था क्योंकि वहाँ से निकलने वाला जल सारा मकान की नींव में चला जाता और मकान के कमजोर होने की आशंका जतायी गयी थी। तब वहाँ लकड़ियाँ...छोटा-छोटा ईंधन आदि रखा गया था...ताकि रसोई के निकट ही ईंधन का भण्डार रहे। घर की फालतू चीजें भी इस काल कोठरी में रहतीं। उसमें अँधेरा। घना रहता...यहाँ तक दरवाजा खोल कर भी उसके अन्तिम हिस्से में क्या है देखना असम्भव होता। सबके दिमाग में यह तो आया कि अमरावती डूब गयी होगी, जंगलों में घूम रही होगी, किनारों-किनारों कहीं भाग गयी होगी, या कहीं किसी बगीचे में छिप गयी होगी पर किसी की अक्ल में यह नहीं आया कि यह जो छोटी-सी जगह है...अमरावती यहाँ भी तो हो सकती है। तेरी काकनी की करामात है कि अमरावती को साबुत वहीं से पैदा किया। अब बताइए राजरानी अपनी जबान से कि क्या हुआ तब...मैं भी सुनूँगी...मुझे भी सुननी है...अमरावती के साबुत बच जाने की कथा आपके मुख से।"

काकनी कितनी भी कठोर और बुद्धिमान हों, अपनी गौरवगाथा का श्रवण...पुनः-पुनः कौन न सुनना चाहेगा...चाहे स्वयं उसे बताने को बाध्य किया जाए। अतः वह कथा कहने लगी—

"ज्योंही मेरी बुद्धि में यह खयाल आया तो किसी को बताये बिना मैंने काल कोठरी का दरवाजा खोला और भीतर गयी। सन्ध्या का समय था इसलिए अँधेरा अन्दर कुछ ज्यादा ही घहरा उठा था...इतना कि सूई से काटने लायक। इतना सघन। बाहर से कुण्डी लटकी हुई थी यह बात आशाएँ कुछ अधिक ही जगाती थीं। जब मैंने एक पैर भीतर रखा तो दोनों हाथों से टटोलने लगी क्योंकि दिख तो कुछ भी नहीं रहा था। कुछ भी नहीं मिला टटोलने पर भी। भीतर भी कुछ भासित नहीं हुआ। मैं लकड़ियों के ऊबड़-खाबड़ से टकरा रही थी और स्वयं को भी सँभालती जा रही थी...भीतर...भीतर घुसते हुए। पता नहीं मेरा विश्वास क्यों बढ़ने लगा कि जरूर अमरावती यहाँ से मिलेगी। आगे लकड़ियों के ऊबड़-खाबड़ का एक और भयावह टीला था। मैं उस पर चढ़कर आगे बढ़ नहीं पायी क्योंकि अगर गिरती तो हड्डी-पसली टूटती तो मेरी सँभाल या देखभाल कौन करता। तेरा नाना गिलगित में बड़ी देर से था...कोई खबर भी नहीं भेज रहा था। मैं अमरावती की उपस्थिति कुछ-कुछ सूँघने लगी। मुझे किसी के साँस लेने का आभास-सा हुआ।

जबकि अमरावती साँसें बड़े एहतियात से ले रही थी। अचानक मुझे लगा कि वह लकड़ियों के टीले में से लकड़ियाँ मेरी तरफ धकिया रही है, और मुझे निरुत्साह करने की कोशिश कर रही है। मुझे अचानक याद आया कि मेरे फिरन की जेब में माचिस रखी है। मैंने फटाफट माचिस की तीली निकालकर जलायी और तुरन्त वह बुझ गयी...यह जरूर अमरावती की फूँक से हुआ। यह बात समझकर मैंने बायें हाथ की ओट कर तीली जलायी ताकि उसकी फूँक दूसरी बार तीली को बुझा न दे। तब मैंने उसके शरीर की रूपरेखा देखी। और कहा, 'अमरावती! मैं जानती हूँ, तू यहाँ छिपकर बैठी है। पता है तुम्हें क्या कि सब तुम्हारे कारण ग्लानि से मर रहे है...चिन्ता से मर रहे हैं। पूरा गाँव शर्म-सार है। इसलिए अब तू शर्म कर और बाहर आ जा। यह नौटंकी खतम कर दे। यह तुझे शोभा नहीं देता। सारा गाँव तुम्हें ढूँढ़ रहा है। चल, निकल बाहर।'

"मैंने इस बीच मुँह काल कोठरी के दरवाजे की तरफ फेरा और तीली जलायी ताकि उसकी फूँक से वह बुझे न और प्रकाश फैलने लगा। और मैंने नुक्ता पकड़ लिया जहाँ मुझे भान हुआ कि वह अमरावती के फिरन का लाल डोरे वाला दामन होना चाहिए। बस फिर मैंने उसका फिरन पकड़कर उसे झिंझोड़ा और कहा—चल उठ, आ बाहर। क्या जीवन-भर यहीं बनी रहेगी। उठो। चलो! मैं तुम्हारे साथ बाहर जाती हूँ। उनसे कह देंगे कि तुम ऊपर के कमरे में सोयी थी, और मैंने उसे बाँह से खींचा। पर वह थी जोरदार। उसने मुझे दीवार से पटक दिया, अपना हाथ छुड़ाकर। तब मुझे सख्त होना पड़ा। बेशर्म...औरत...कुलटा कहीं की...अब मैं बाहर गाँव में शोर मचाऊँगी...तुझे जाँघों से पकड़कर घसीटेंगे और ले आएँगे, बाहर...बाजा बजेगा अच्छा-खासा तेरा...समझी।

"ओ ऽऽ...वह उठ गयी चुपचाप। पर मुँह से कुछ बड़बड़ाती हुई। बाहर आयी। तब मेरा क्रोध उतरा। मैंने बाहर सबसे कहा कि उसकी तबीयत ठीक नहीं थी और ऊपर के कमरे में कुण्डी बन्द करके सोयी थी। बेचारी को आराम कहाँ मिलता है...।

"फिर सब हँसने लगे। मुँह बनाने लगे। ईश्वर काक बोले—'यह कौन-सा कमरा था राजरानी। जरा हम भी देखें।...हमने तो एक-एक कमरा छान मारा था...यह कौन-सा कमरा, भला यह कहाँ से पैदा हुआ?' मैंने कहा...था 'एक कमरा तुम्हारी नजर से बाहर।...' यानी वे समझ गये कि वह रहस्यमय जगह पता चल ही जाएगी। तब से यह घर मत्तुओं का घर कहलाया। यानी पागलों का घर। अब राजदान के बदले इन्हें मत्तू कहा जाता है। कोई आपत्ति नहीं किसी को। किसको होगी। है कौन जो आपत्ति करेगा। आपत्ति तो तब जब कोई समझे कि क्या कहलाते हैं वे और क्यों कहलाते हैं...इसलिए आपत्ति ही नहीं है। जब

समझ में ही न आए तो आपत्ति कैसी भला? अब अमरावती राजदान अमर्अमची हो गयी है।''

इसके बाद इस दिलचस्प सिनेमा के दिलचस्प चर्चे बड़ी देर तक रहे या यों कहें कि ठीक कबाइलियों के आगमन तक यही चर्चे रहे।

सिद्ध काक की एक बहन थी रानीमाल जो विवाह के बाद सिर्फ एक माह के भीतर ही विधवा हो गयी थी और सदा के लिए वापस गाँव आयी थी। वैधव्य ने उसे विक्षिप्त किया। वह कुछ समय मौन में चली जाती और कुछ समय विदग्ध पाण्डित्य और भावलोक में लौट आती। कुछ समय पूर्ण रूप से मानसिक असन्तुलन में और जब वह विदग्ध होती तो लाजवाब कविता करती। प्राय: विरह गीत कहती, भक्ति-गीत कहती और कभी-कभी हास्य-व्यंग्य का काव्य कहती।

हास्य-व्यंग्य में काव्य कहने की उसकी प्रतिभा अमरावती प्रकरण के बाद ही अमरावती-सन्दर्भ में देखी गयी थी। दूसरी तरफ से उसमें राजरानी का विरुद गाया जाता। अमरावती रानीमाल को फूटी आँख नहीं सुहाती क्योंकि वह रानीमाल के लिए अपशब्द कहती। जिनको ग्रहण करने के क्षण रानीमाल विक्षिप्त होने के बावजूद पूरे होशोहवास में होती। राजरानी रानीमाल का स्वागत अपने विशाल हृदय से करती। उसकी विक्षिप्तता को झेलती तब काव्य के दिनों में जब वह कविता करती तो सतीद्यदी का उल्लेख जरूर ही करती...इस पर भी कुछ ईर्ष्यालुओं ने यह फैला दिया था कि सतीद्यदी रानीमाल के साथ इसलिए भिन्न व्यवहार करती क्योंकि वह अपनी कविताओं में उसका सुन्दर वर्णन करती है। रानीमाल अपने यौवन के चरम सम्भवत: पच्चीस-अट्ठाईस के बीच की उम्र में स्वर्ग सिधार कर यातना के जीवन से मुक्त हुई।

''ओ ऽ ऽ कभी-कभी मृत्यु जीवन जैसी आनन्ददायिनी हो जाती है और कभी-कभी जीवन मृत्यु से सचमुच भयंकर होता है। और लम्बा खिंचता है। कुछ पता नहीं कि यह सब कहाँ से हो रहा है, किस दफ्तर से? उस दिन रानीमाल की मुक्ति से सारा गाँव राहत से भर गया। जबकि वह थी सिर्फ ज्यादा-से-ज्यादा अट्ठाईस साल की। स्त्रियाँ भी अगर संवेदनशील हुईं तो...तो बस गयी...रानीमाल बन गयी...अरणिमाल बन गयी...ललद्यद बन गयी।'' ये शब्द काकनी ने जोड़े थे। सम्भवत: उसे रानीमाल की तीव्र याद आयी थी।

यम्बरज़ल की किस्सागोई में काकनी ने एक बुद्धिप्रधान हस्तक्षेप किया था फिर उसके बाद एक विचित्र मौन छा गया था वट्ट में। काकनी उठकर दीप खिड़की के पास लायी थी। सरसों का तेल उसमें पहले ही पड़ चुका था।

अब उसकी बत्ती रूई से तैयार करने लगी काकनी ताकि सन्ध्या का बिगुल बजते ही दीप खिड़की पर रखा जाए। यम्बरज़ल चुप बनी रही। सुधा को मौन

अटपटा लग रहा था। वह किसी और युग में चली गयी थी जहाँ अमरावती की स्थूल बुद्धि की शर्मनाक कथा और रानीमाल की अतिसूक्ष्म पीड़ा की शिद्दत उसके भीतर टकरा रही थी। वह अभी वर्त्तमान में नहीं लौटना चाहती थी...पर उसे लगने लगा कि उसकी नानी काकनी अब यह किस्सागोई खत्म करना चाहती है। उसकी मन:स्थिति बदलना चाहती है। वह कुछ क्षण आकाश में तारों के सन्ध्यादीप जलाने वाले के साथ होड़ लेना चाहती है। अत: उसने यम्बरज़ल से गुजारिश की कि वह रानीमाल का व्यंग्य काव्य सुनाये जो कि गाँव में काफी लोकप्रिय था।

''नहीं बेटा। सन्ध्या का समय है। प्रार्थना करो रानीमाल को दिव्य जन्म प्राप्त हुआ हो। वह अत्यधिक संवेदनशील स्त्री थी। बेहद बुद्धिमती थी। संसार में दु:ख के पहाड़ ऐसे ही लोगों पर टूट पड़ते हैं। कुछ उस दुख को उठा पाते हैं किन्तु कुछ सुपुर्दे-खाक उसी के साथ, उसी के नीचे हो जाते हैं। पर मैं मानती हूँ कि रानीमाल भाग्यवान थी कि कबाइलियों के आने से पूर्व ही वैकुण्ठधाम पहुँच गयी वर्ना उसकी फिक्र कौन करता। इसलिए अन्तत: नन्दबब को उसकी फिक्र करनी ही पड़ी।'' कहते-कहते यम्बरज़ल उठने का उपक्रम भी कर रही थी ताकि काकनी अपना सन्ध्या का उपक्रम कर सके। उसे अपना वांछित एकान्त प्राप्त हो।

''तो चलूँ मैं राजरानी?''

''नहीं पहले वह कविता सुनाओ''—सुधा अब ढिठाई पर उतर आयी। वह रानीमाल के बोल सुनने के लिए मरने लगी...रानीमाल उसकी मनोभूमि पर विचर रही एक अद्‌भुत, अतीव सुन्दर परी हो उठी हो मानो...जो गाती हो...और दुनिया से निराली हो...यम्बरज़ल हँस पड़ी। काकनी भी हँस पड़ी। यम्बरज़ल प्यार से अपना फिरन सुधा के हाथ से छुड़ाने लगी...''अरे कुछ खास नहीं थी...सब जानते हैं उस कविता को...सबको याद है गाँव में। बल्कि रानीमाल की और अच्छी-अच्छी कविताएँ सबने भुला दी हैं परन्तु यह वाली याद रखी है। तेरी माँ शहर में है, देखना उसको भी याद होगा...देखना...पूछना उससे...क्यों राजरानी...है न! मेरे खयाल से भट्टिनी को भी वह कविता याद होगी। जरूर याद होगी। तेरी शोभा ताई को भी जरूर याद होगी। उसके पास रानीमाल अक्सर शीरचाय पीती और काव्य सुनाती। वैसे वह उन दिनों सब चुनिन्दा घरों में जाती और काव्य सुनाती। सिर्फ विक्षिप्तता के दिनों में उसे सिद्ध काक की बीवी बेड़ियाँ पहनाकर कमरे में बन्द करती। बड़ा असहनीय होता था उन दिनों रानीमाल का जीवन। पर सिद्ध काक की पत्नी करती भी क्या। रानीमाल पूरे गाँव का जीवन उन दिनों दूभर करती।''

''ओह क्यों?'' सुधा लगभग चीखी।

''अरे वह पूरी मस्तिष्क-विहीन हो जाती। अगर उसे मुक्त रखते तो वह

पता नहीं किस-किस को ज़ख्मी करती। वह उन दिनों बिना किसी भेदभाव के सब पर पत्थर फेंकती और गालियाँ देती थी। करती क्या बेचारी सोमावती। बेड़ियाँ पहनाते हुए सोमावती जो रानीमाल के भयंकर अपशब्दों की शिकार होती, उनसे तो भगवान ही बचाएँ। तभी शायद उनका घर खँडहर ही रहा कबाइलियों के जाने के बाद। सारे गाँव के घर बन चुकने के बावजूद। ये जो खँडहर हैं इसी में रानीमाल को बेड़ियाँ पड़ती थीं, वह शायद ऊपर से इसे टूटा, उजड़ा और अस्तित्वविहीन देखकर तालियाँ बजा रही होगी और नवीन कविता कर रही होगी।''

''ओह...तो...'' सुधा के सामने विचित्र और हृदय-विदारक ढंग से, तेजी से भूगोल बदल रहा है। तो यह सिद्ध काक का घर, खँडहर। इसकी दीवारों में रानीमाल के काव्य और विक्षिप्तता की पीड़ा की अभिव्यक्ति के शब्दों का अभिलेख है...शब्दागार है। ध्वन्यागार है। तभी उसकी ईंट पर ईंट नहीं बैठती। पत्थर पर पत्थर नहीं बैठता और छत नहीं बैठती। शायद शब्दों का विस्फोट होता रहता है।—सुधा ने मन में एक विश्लेषण किया।

यम्बरज़ल चली गयी थी। वट्टू में विचित्र स्तब्धता छा गयी थी जिससे सुधा आक्रान्त थी। रानीमाल का जन्म अचानक हो गया था। अचानक अमरावती का चलचित्र वह देख चुकी थी और रानीमाल के रहस्यमय काव्य की खोज में उसकी आत्मा कहीं चल निकली थी। स्वाद बदल गया था। जीवन के केन्द्रबिन्दुओं का। स्रोतों का।

❑❑

उसे नींद देर तक नहीं आयी। बिस्तर की सीलन की गन्ध बढ़ गयी थी। सुधा को लगा कि कभी रानीमाल भी इस बिस्तर में सोयी थी। कभी उसे इसी गन्ध से काव्य की प्रेरणा मिली होगी। सुधा ने फिर सोचा क्योंकि गन्ध में उसे कुछ विचित्र लगा था, भीषण रूप से।

उसे सचमुच नींद नहीं आयी थी, रानीमाल-अमरावती का यह व्यंग्य-काव्य सम्बन्ध सुनकर। सुबह उठकर उसने काकनी से कहा था, ''मैं भाईजान के यहाँ जाऊँ?''

''नहीं। पहले चाय-वाय पिएँगे। भाग गये तेरे भाईजान वाले। मैं क्या अकेली चाय पियूँ? शहर से आती हो मेरे पास, यहाँ मन मचलता है भाईजान के घर जाने के लिए...यह अच्छी बात है क्या? अब तुम समझदार हो गयी हो, बड़ी हो गयी हो। यह लफंगई छोड़ दो।''

''अच्छा तो नन्दबब जाऊँ?''

''जाओ मगर इस तरह कि एक साँस में जाना और दूसरी साँस में वापस आना। तब तक चाय तैयार हो जाएगी। लो यह पानी का मटका भी भरकर लाओ। उस मेरी कमीज की ईंडुरी बना लो और मटका सिर पर धर लो।'' अब वह भागने के उल्लास में उल्टा-सीधा पुलहोर पहनने लगी।

''नंगे पैर जाओ। पुलहोर वहाँ गुम होगा। मेरे हाथों की उँगलियाँ यह तुम्हारा पुलहोर बुनते-बुनते टूट गयी हैं लगभग। तुम्हें कुछ मालूम है बच्चों का पुलहोर बुनना कितना कठिन है?''

वह नंगे पैर दौड़ पड़ी। उसे वह भी कैद से रिहाई की तरह लग रहा था। दरअसल पुलहोर उसने पहनना ही इसलिए चाहा था कि कहीं काकनी यह न कहे कि नंगे पैर जा रही हो...आवारा लड़की। उसे अभी समझ में नहीं आता था कि काकनी के हिसाब से कब, किस तरह कहाँ जाने और कहाँ रहने और क्या करने में बुद्धिमानी या बेवकूफी है। उसने पुलहोर तुरन्त पैरों से निकाला। ईंडुरी सिर पर रखी और छोटा-सा मटका लेकर दहलीज को पार कर गयी। सड़क पर पहुँचकर उसने ईंडुरी पर बिना पकड़े मटका रखने का अभ्यास करना चाहा सोचकर कि वह भी ग्राम बालाओं की तरह पानी का मटका सिर पर रखकर मस्त चाल चल सकती है।

पर वह एक पग भी ईंडुरी पर मटका रखे नहीं चल सकती, वह बार-बार गिरने-गिरने को आ रहा है और उसे बार-बार दायाँ या बायाँ हाथ मटके को थामने के लिए ऊपर करना पड़ रहा है ताकि वह गिर कर टूटे न।

मुख्य-मार्ग पर उसके इस संकट का दूर से नजारा किया गया था। उसे यह आभास तब हुआ जब उसे तितरी, बिन्दरी, सारिका, किश्नी आदि अपनी-अपनी ईंडुरियों पर दो-दो पानी से लबालब मटके रखे और दोनों हाथों में पी मार्का टीनों में पानी भरा हुआ ले जाते हुए दिखीं। मस्त, बातें करती हुईं। सिर पर धरे मटकों की तनिक भी परवाह न करती हुईं।

सुधा को इनसे ईर्ष्या हुई। 'क्या कलाकार लड़कियाँ हैं ये गाँव की लड़कियाँ। क्या काव्य करती हैं ये अपने अभ्यस्त हाथों और अंगों से...ये अद्‌भुत नायिकाएँ...तोबा...' जरूर उसने ऐसा ही कुछ उद्‌गार स्वयं से कहा उस समय।

सुधा ने इनके सामने झूठ-मूठ ही इस बात की कोशिश की थी कि वह उनकी तरह भटका सिर की ईंडुरी पर रखकर मस्त चाल चल सकती है...बिना मटके को पकड़े...पर तितरी, जो बला की नजर और जुबाँ रखती है, ने तुरन्त पकड़ा और कहा, ''ऐ शहर की लैला। यह नाटक मत कर। मटका टूट गया न तो राजरानी मार-मारकर मक्की का सत्तू बना देगी। इसलिए मटका पकड़ते हुए ले जा...ठीक।''

❑❑

सुधा को तितरी का यह संवाद जब याद आता है उसे तितरी किसी श्रेष्ठ फिल्म की नायिका से कम नहीं लगती। वाह! क्या आशु संवाद था। क्या नैसर्गिक संवाद था। सधा और सुष्ठु संवाद। संक्षिप्त और अद्‌भुत अदा से बोला गया। वह मन में तितरी को तीव्र रूप से याद करने लगी। उसे लगा कि कुछ यादें उसपर असह्य होकर टूट पड़ी हैं...बेहद मामूली यादें उसके लिए गैर-मामूली होती जा रही हैं।

''कहाँ होगी तितरी इस समय? क्या जम्मू के किसी कैम्प में? या दिल्ली के किसी शिविर में...किसी कम्यूनिटी हाल में...या कहीं अन्य...क्या कोई जादू नहीं हो सकता किसी क्षण कि तितरी उसे मिले...वह क्या जाने आज तितरी कैसी है? कैसे संवाद बोलती है...कैसे चीजों को देखती है...क्योंकि अब न उसके पास वितस्ता का कूल है...न वितस्ता है...न मटका है...न ईंडुरी है...कुछ नहीं है इस समय तितरी के पास...और जो होगा...वह जरूर इन सब वस्तुओं के विरुद्ध जो होता है, विलोम जो होता है, वही होगा...क्या...कभी...उसकी मुलाकात इस संसार में तितरी से होगी? उसने प्रकृति के विशाल अर्जी कार्यालय में अपनी इच्छा दर्ज की। एक फिल्मी गाना उसके हृदय के प्रकोष्ठ में स्वयं भर गया और जल की बूँदों की तरह या जलधार की तरह उसकी ध्वनि के माध्यम से बाहर आया...सधुन...वह गा उठी...गुनगुना उठी...कि 'छोटी-सी यह दुनिया पहचाने रास्ते हैं, तुम कभी तो मिलोगे, कहीं तो मिलोगे...तो पूछेंगे हाल...तो पूछेंगे हाल...तितरी...ओ...तुम जहाँ भी हो...तुम तक मेरा प्यार पहुँचे...ओ...तुम जहाँ भी हो तुम तक मेरा सम्मान पहुँचे...तुम्हारे वह अद्‌भुत सटीक संवाद मेरे भीतर के अभिलेखों में सुरक्षित हैं...ओ ग्रामबालाओ...मैं तुम्हारी बराबरी करने की कोशिश कर रही थी...क्या अद्‌भुत प्रतिमाएँ और प्रतिभाएँ थीं तुम सब... ?'

❑❑

सुधा पकड़ी गयी थी तो उसे होश आया था और उसके बाद उसने ईमानदारी से मटके को पकड़ा। उसने अपने असली आशय पर ध्यान टिकाया...वह रानीमाल को ढूँढ़ने, हवा में कहीं से उसकी काव्य-रचनाएँ प्राप्त करने...चाहे कहीं से भी मिलें, पंचतत्त्वों से या पंचतत्त्व-निर्मिति किसी मूर्ति ग्रामजन से। ताई शोभा से। भाईजान से...कहीं से भी उसे वे पंक्तियाँ सुनने को मिलें...वह ग्रामबालाओं से होड़ नहीं करेगी...वह उसके लायक नहीं...वह जरा-सा रानीमाल की जीवन की हल्की गन्ध लेगी। पता नहीं उसे अब इतिहास पीड़ित और प्रताड़ित क्यों करने लगा है, 'क्या इतिहास इसीलिए बनता गया है क्योंकि आदिकाल से पाप का यथेष्ट विश्लेषण नहीं हुआ है। पाप सुख और आनन्द का पर्याय होता गया। पुण्य मार्गी कृश और क्लीव होता गया...क्या हो गया है...आखिर... ?' सुधा का एक

बृहद्-प्रश्न जन्म लेने लगा।

❑❑

सुधा को नन्दबब वाले नाग पर, भीतर गर्भगृह में...वितस्ता की तरफ जहाँ जल का विस्तार शुरू होता है उस अन्तिम सीढ़ी तक भी शोभा ताई नहीं दिखाई दी। इसलिए उसने ध्यान कहीं और होने के कारण नन्दबब के द्वार पर औपचारिक होकर शीश नवाया और पानी-भरा मटका सिर पर धरकर वापस मुड़ गयी।

"आ गयी तू। चलो रख दो मटका और चाय पी लो।" काकनी ने उसका मटका पकड़कर घरौंदे में अपने आसन पर बैठाया और ईंडुरी पकड़कर देखा कि वह पूरी भीगी थी।

"पूरा पानी छलकाया है। नहीं है न अक्ल तुममें मटका सिर पर धरने की. जबकि भरा घड़ा नहीं छलकता। जानती हो नन्दबब के पानी की बूँद का अर्थ क्या है, इसका मूल्य क्या है? यह हर रोग की अकसीर दवाई है। यह अमृत है। जानती हो इसका मूल्य क्या है...यह अमृत-धार है न यहाँ, इसी के लिए बस नन्दबब महाराज यहाँ आये...यहाँ रुक गये और आश्रम बना लिया। इसी पानी की बूँद पर बस गया यह गाँव। इसलिए इसकी एक बूँद भी कहीं नहीं छलकनी चाहिए व्यर्थ...है न...? पर शहर में यह तमीज कहाँ से आएगी...यह शऊर कौन देगा?...शहर का जीवन...बरबाद जीवन होता है...एकदम व्यर्थ जीवन...।" पता नहीं काकनी यह भाषण क्यों देने लगी है, सुधा ने सोचा। उसे ऐसा लगने लगा मानो तितरी और अन्य लड़कियों के समक्ष उसकी जो पोल खुल गयी थी, उसकी जानकारी उसको मिल गयी है। या काकनी का एक तीसरा नेत्र है जो उसके पीछे-पीछे चलता रहता है।

"अजीब रहस्य बताती हैं काकनी की बातें...।" वह फिर सोचने लगी और सोचने लगी कि यह जलधार आखिर आती कहाँ से है? जबकि पहाड़ियाँ यहाँ से काफी मील दूर हैं। पूरा समतल मैदान है यह दूर-दूर तक...और जमीन में से पानी की स्वच्छतम धार कहाँ से बनकर आती है कोई नहीं जानता। ग्रामभट्टों ने उसपर छत बनायी एक अर्धवृत्ताकार और एक छोटी-सी खिड़की। जिस पर लोहे की जाली मढ़ी गयी...जिसमें से उत्सुक बच्चे देखने की कोशिश करते हैं तो कुछ भी नहीं दिखता। यह नाग पूरा रहस्यलोक है...कोई नहीं जानता कहाँ से आता है इसमें जल। तो सुधा ने काकनी से जिज्ञासा की, "कहाँ से आती है यह जलधार?"

"शंकर की जटाओं से।"

"क्या?"

"तो क्या। नन्दबब उसका इष्ट रुद्रगण है। अत: जहाँ वह विश्राम करें, अपनी कुटिया बनाएँ...वहाँ शंकर अपना जल न बरसाएँ?"

सुधा चाय पीते-पीते कहीं किसी मन मस्तिष्क के एक हिस्से में सोच रही है कि शायद काकनी उसके भीतर आस्था का रोपन करने के लिए ऐसा कह रही है, इसलिए उसे यह बात समझ से परे तथा विश्वास से परे लगी थी।

कुछ दिनों बाद भाईजान ने अपने आँगन में ट्यूबवेल बनवाया था जिसका हैण्डल घुमाने से लगभग एक बार में एक-डेढ़ किलो पानी बाहर आता है। सारे गाँव को राहत हो गयी थी। कपड़े धो लो, बर्तन धो लो, नहा लो, आँगनबाड़ियों को सींच लो, घर साफ कर लो...मगर जल यह पेय नहीं था। पेय जल नन्दबब के यहाँ से ही आता है बराबर। भाईजान ने पानी का परीक्षण भी कराया था, ट्यूबवेल के जल में सैकड़ों कीटाणु थे, जबकि नन्दबब के जल में एक भी न था।

"यही तो रहस्य है।"

"पर शंकर कहाँ हैं? उनकी वे जटाएँ कहाँ हैं? उनका वह प्रिय नन्दी कहाँ है?" एक दिन जब भाईजान सुधा से बातें कर रहे थे तो सुधा ने पूछा था। तो भाईजान बोले थे, "वे दिखाई नहीं देते। उनको देखने के लिए काफी तपस्या करनी पड़ती है...हाँ तेरी नानी राजरानी देख सकती है...क्योंकि वह जरूर इस गाँव की तपस्विनी है।"

ओ ऽ ऽ...तो...आज ही उसे अपनी नानी का स्थान इस गाँव में पता चला था। ओह। पर! उसके बिस्तर की सीलन। वट्टू का अन्धकार। प्राय: बिना दूध की कड़वी नून की चाय...सप्तमिश्रण की बिना मसाले की सब्जी। ...जीवन पर कठोर प्रहरी की गिद्ध-दृष्टि...कठोर प्रतिबन्ध...तोबा...तोबा...वैराग्य की पराकाष्ठा...दूध तक की भी आकांक्षा नहीं...नींद की तो कतई नहीं...रोशनी की तो बात ही नहीं...आराम का कोई नाम ही नहीं...कहीं किसी चीज की विशेष लालसा नहीं...कुछ नहीं में पूर्ति और आनन्दानुभूति...मात्र एकान्त की आकांक्षा।

❑❑

उस दिन दोपहर में भाईजान घर में आराम कर रहे थे और शोभा ताई बाग में गयी थी।

"भाईजान आपको पता है कि रानीमाल कौन थी?"

"अरे रानीमाल? तुम कहाँ से जान पायी रानीमाल का नाम। तुम क्यों पूछ रही हो उसके बारे में? पगली थी वह एक...और पता है वह कैसी पगली थी...दीवानी...पगली...ज्ञानी-पगली...एक बेचैन आत्मा। लेकिन तुम उसको जानकर

क्या करना चाहती हो? यह सब लड़कियों के जानने का विषय नहीं...।''

''बस मैं जानना चाहती हूँ भाईजान...उसका काव्य...रानीमाल की एक कविता सुनाओ... एक पंक्ति...एक शब्द...भाईजान...जो भी आपको याद हो...आखिर वह लिखती क्या थी अपने काव्य में...मैं शोभी से पूछती पर वह बाग में गयी है न...।''

रानीमाल का जिक्र सुनते ही भाईजान अपने ही भीतर कहीं किसी गहराई में डूब गये थे...बेहद कहीं दूर...। उनके उस अनुपस्थित भाईजान को देखकर सुधा भी अपने भीतर कहीं काँप-सी उठी थी और सोचने लगी थी कि हो न हो रानीमाल की स्मृतियों का भाईजान के मन से कोई गहरा तअल्लुक है। पर सुधा ने मौन की जगह भरी नहीं। खाली रहने दी ताकि भाईजान उन जटिल स्मृतियों में से तैर लें। फिर अचानक भाईजान जो अब तक लम्बे पड़े थे...उठकर बैठ गये और चौकड़ी मारकर काँगड़ी को समीप खींचा। चिमटे से देखने लगे कि क्या उसमें हुक्के की चिलम के लायक कोई अंगार है भी या नहीं।

भाईजान की आँखों के किनारे गीले हो उठे थे और एक-एक बूँद दोनों आँखों से गिर-गिराने की हुई थी।

''इसमें कुछ नहीं। जरा प्यारी से अंगार डलवा इसमें।'' काँगड़ी पकड़ाकर भाईजान ने सुधा को आदेश दिया। सुधा को भाईजान की आवाज भर्रायी-सी लगी।

'क्या भाईजान रो रहे थे चुपचाप? भाईजान को क्या याद आया होगा? रानीमाल कौन थी? क्या जब तक मैं अंगार डलवा रही हूँ...भाईजान ने अपनी गीली आँखें पोंछी होंगी तब तक'—सोचते हुए सुधा प्यारी से इसरार करने लगी थी कि जल्द-अज़-जल्द वह काँगड़ी में अंगार बना दे। भाईजान को हुक्का पीना है। ताकि उसी तल्लीन अवर्तमान अवस्था में वह भाईजान को देख ले और चीजों की गहराई और पीड़ा कुछ समझ ले।

सुधा जब अंगार लेकर काँगड़ी लायी तो दहलीज पर सुना कि भाईजान कुछ गुनगुना रहे हैं...पूरी रागिनी में किसी गीत की पूरी पंक्तियाँ गुनगुना रहे हैं...गा रहे हैं...शब्द स्पष्ट नहीं थे...पर आवाज से लग रहा था किसी पीड़ा की गाथा है...जो अब एक श्रेण्य रागिनी में फूटने को मचल रही है भाईजान के मानसरोवर से।

भाईजान चिलम में तमाखू सजा रहे थे और तल्लीन थे।

''मैं डाल दूँ अंगार चिलम में भाईजान?'' सुधा ने पूछा। वह उसे वर्तमान में उस स्मृति की अभिव्यक्ति से युक्त लौटाना चाहती थी...पर भाईजान आ नहीं रहे थे। काँगड़ी अपनी तरफ सरकाकर वह मशीनी गति से चिलम में काँगड़ी के चुने-चुने चौकोर छोटे-छोटे अंगार डालने लगे...मानो हाथों को स्वत: पता था कि

अब क्या करना है...आँखों को स्वत: विदित था कि किस तरह के सूर्यकान्त मणि-से अंगार चिलम के लायक होते हैं और पीने वाला अपने लोक में धुत बना रह सकता है, बिना किसी के सताये। भीतर रहता है किसी बाहर से मिटे हुए लोक में। इन्द्रियों की भी इन्द्रियाँ होती हैं। हर इन्द्रिय का अपना मस्तिष्क उग आता है...बार...बार के अभ्यास से।

भाईजान फिर पंक्ति गुनगुना रहे हैं...पल्ले नहीं पड़ता कुछ सुधा के। कभी उसे लगता है कि यह फारसी भाषा की पंक्ति है, जरूर फारसी ही होगी। फारसी पढ़ते थे यहाँ के भट्ट। बेचारों को संस्कृत अपनी कोशिशों से ही पढ़नी पड़ती थी। शारदा तो एक वर्ग ही जानता था। हिन्दी का तो कोई वजूद ही नहीं। जरूर फारसी की कविता पंक्ति है। सुधा ने अक्सर अपनी माँ से सुना था, ''बाइलाल? बाइलाल की बात ही मत पूछो। ठाठ ही अलग थे। जैसे कोई राजर्षि थे। सफेद चिट्टा फिरन। ऊपर से सफेद लट्ठे की चादर गर्मियों में और रफल की चादर सर्दियों में। गुनगुनाना। गुनगुनाना क्या? फारसी में कविता करते थे। फारसी विद्वानों को ही समझ में आती थी उनकी कविता पंक्तियाँ। हम बहुओं पर व्यंग्य भी वह फारसी में कसते थे।''

''आपको फारसी आती थी?''

''अरे नहीं।''

''शोभी को? बड़ी माँ को?''

''किसी को नहीं। कोई पढ़ी-लिखी नहीं थी।''

''फिर आप कैसे जान जातीं कि फारसी भाषा में आप पर कही गयी व्यंग्य कविता है।''

''अरे हम! हम अनपढ़ थीं, पर मूर्ख थोड़ी न थीं। एक दिन शोभी ने कहा कि अरे जानती हो तुम सब...यह हम पर फारसी में व्यंग्य करते हैं...सास नहीं है न, सो उसका कर्तव्य निभा रहे हैं...मगर फारसी में...ननद का भी काम पूरा करते हैं।''

''शोभी भी तो अनपढ़ थी...उसने कहा और आप ने माना?''

''अरे उसको भाईजान ने कहा था न...भाईजान भी फारसी में कविता करते हैं...उनको सब कविता बाइलाल की समझ में आती थी।''

❑❑

तो सुधा ने सोच लिया कि जरूर भाईजान अपनी फारसी कविता बोल रहे हैं। शायद रानीमाल की काव्य-स्मृति से उन्हें अपनी काव्य पंक्तियाँ याद आयी हों, या अपने पिता बाइलाल की काव्य पंक्तियाँ याद आयी हों।

"भाईजान क्या गा रहे हैं आप... ? क्या रानीमाल की याद आ रही है... ?"

सुनकर भाईजान सहज हो गये। हँस दिये। शायद तमाखू के धुएँ ने उनकी दु:खती रगों को सुकून दिया था। जख्मों को ढाँप लिया था।

"तुम क्यों यह जिज्ञासा रखती हो दिद्दा...मुझे आश्चर्य है...।"

"बस यों ही।"

"बेटा...दिद्दा...बस...क्या बताऊँ। गुनगुना रहा था, दॅमी डीठ्‌म गॅज दज़व्नी, दॅमी ड्यूठुम दॅह नतुँ नार... यह फारसी नहीं है...यह ललद्यद की पंक्तियाँ हैं...कि...क्षण में दिखा दहकता चूल्हा क्षण-भर में ही न कहीं आग...न ही कहीं धुआँ दिखा...सब गायब...। यही है किस्सा इस निस्सार संसार का। तुम छोटी हो अभी। तुम नहीं समझोगी। रानीमाल आज कहीं नहीं। कुछ भी नहीं उस तरह का आज। जानती हो यह गाँव अलग ही शक्ल का था। इसकी शक्ल बदल गयी है। पाकिस्तान से आये कबाइलियों ने बदल दी है। वे रास्ते भी नहीं हैं जहाँ से रानीमाल गुजरते हुए अपनी दमदार कविता गाती थी। वह भी सुर में। श्रीकण्ठ थी वह पगली! बिल्कुल तुम जैसी।"

"मुझ जैसी.... ?" सुधा को अटपटा लगा। आश्चर्य में डूब गयी सुधा। उसकी समझ में नहीं आया कि वह उसको क्या कह रहे हैं...अगर सुधा वैसी है...तो...तो।"

"पर मैंने तो सुना है भाई जान कि उस पर मानसिक असन्तुलन का दौरा पड़ता था, तब उसको बेड़ियाँ पड़ती थीं...।"

"अरे...बेड़ियाँ उसे क्या जकड़ती...बेड़ियाँ तो वह अपने को डालता था...जो उसको बेड़ियाँ पहनाता...वैसे वह करती भी क्या...पर रानीमाल का हसीन फलसफा था। वह यहाँ की दुष्ट औरतों को आड़े हाथों लेती थी तभी उन पर व्यंग्य लिखती थी। वह खूबसूरत थी, मगर उसे मारा गया...वैधव्य में उसे समाप्त होने दिया गया...गलने दिया गया...उसने काव्य मन्त्रों को गढ़-गढ़कर व्यंग्य गाये और एक दिन बहुत शीघ्र ही मुक्ति पायी। तेरी नानी को छोड़कर और किसी को उसने व्यंग्य कसे बिना नहीं छोड़ा। ज्यादातर काव्यपाठ वह तेरी नानी के पास करती।

मुझे कभी-कभी नन्दबब के रास्ते में नयी कविता पंक्तियाँ सुनाती। मैं दाद देता। वास्तव में वह गहरी पीड़ा की कवयित्री थी। कविता उसके हृदय में वास करती थी। लेकिन मुझे उसकी कविता याद नहीं। तुम शोभी से पूछो। उसे होगी याद। इस तरह की यादें स्त्रियों में सुरक्षित रहती हैं। रहीं चित्रात्मक यादें, वे पुरुष के भीतर रहती हैं...समझी?" भाईजान ने अपना व्याख्यान पूरा कर लिया...। सुधा के भीतर एक विराम बन रहा था...कुछ बड़े-बड़े भीषण प्रश्नों के आगे...इसलिए क्षणभर की स्तब्धता के बाद भाईजान एक अलग मन:स्थिति का निर्माण करते हुए

बोले, ''तो चलो। भूल जाओ अब रानीमाल को। वह अब स्वर्ग में है...तुम सुनाओ गाना...पर्वतों के पेड़ों पर...''

क्षणभर के उपरान्त सुधा गाने लगी—

पर्वतों के पेड़ों पर
शाम का बसेरा है
सुरमई उजाला है
चम्पई अँधेरा है...
रोशनी का झुरमुट है...

....

दोनों वक्त मिलते हैं
दो दिलों की सूरत में...
आसमाँ ने खुश होकर
रंग-सा बिखेरा है....
पर्वतों के पेड़ों पर
शाम का बसेरा है...।

सुधा ने यह पूरा गीत गाया। खुद को ही गाकर सुनाया। खुद ही भाईजान हो गयी और चुपचाप, मौन होकर यह कविता गायी। अत्यन्त गोपनीय ढंग से। पट्टन की आगे की यात्रा में स्तब्धता छायी रही। एक विचित्र चुप्पी रही। शायद सब भीतर रहे। बाहर कोई भी नहीं। सुधा ने क्षण भर बाहर देखा कि दायें-बायें से अनगिनत खेत हैं। कुछ खेतों में किसान चावलों की छटाई कर रहे हैं। बाकी सब शान्त-स्तब्ध हैं।

गाड़ी में भी सब-के-सब आँखें मूँदे हैं। यहाँ तक कि सुमोना भी। गुलशनआरा तो सचमुच ऊँघ रही है। शायद इसलिए कि वह रात को सोयी नहीं है और वह एक बेहद युवा देह है।

❑❑

भाईजान को इस गीत के चित्रों से प्यार था। 'सुरमई उजाले' से प्यार था। 'चम्पई अँधेरे' से प्यार था। इस तरह बनते रंगों से प्यार था। जहाँ दो का मिलन होता है उस सन्धि से प्यार था। मिलन के समय की उस आध्यात्मिक आनन्दातिरेक की चुप्पी की समझ थी, प्यार था। बार-बार वह तब तक यह गीत सुधा से सुनते रहे, जब तक वह होश में रहे। अन्तिम दिनों में तो जब उनसे सुधा मिली थी, भाईजान खूब-खूब रोये थे। उस समय गाशा का फेफड़ों के कैंसर के कारण देहान्त हो चुका

था दिल्ली में।

भाईजान हुक्का पी रहे थे। चिलम में गत्ता डालकर चिलम सुलगा रहे थे। ''सुधा, अब काँगड़ी और वे सूर्यकान्तमणि-से अंगार कहाँ से लाएँ दिल्ली में। हुक्के की लत है कि जहन्नुमी कहीं की बढ़ ही गयी है। गाशा भी गत्ते से चिलम पीने लगा था। गत्ते जैसी चीज ने उसकी जान ली...इससे तो वे मुसलमान ही लेते...जो आतंकी बनकर आये थे पाकिस्तान से। पर पहले मेरी जान लेनी चाहिए थी न? रानीमाल की कविताएँ साफ-साफ याद आ रही हैं मुझे आज।''

''आज वह गाँव भी नहीं सुधा।—'दॅमी डीठ्म गॅज दज़व्नी, दॅमी ड्यूठुम दॅह नतुॅनार...' है न। संसार का चलचित्र। चुप आसमान। पीछे खिसकती जमीन...समुद्र में डूबती जमीन...घूमती जमीन...गायब होती जमीन। है न? बोलो न... ?...बोलो तो—

पर्वतों के पेड़ों पर
शाम का बसेरा है...
दुनिया के फुटपाथों पर...
अब हमारा डेरा है...''

भाईजान ने गाया।

''है न... ? अच्छा हुआ गाशा को मोक्ष मिल गया। गत्ते ने मोक्ष दिया उसे। उसे अब बहुत ज्यादा अजाब था। दर्द सहा नहीं जाता था...अब दर्द की हद हो गयी थी दिद्दा। मुझे भी है...इसलिए गत्ते पीता हूँ...बेतहाशा।''

सुधा ने देखा था कमरे में फट्टे के नीचे एक तरफ गत्तों का ढेर लगा हुआ था। सौदा के डिब्बों के गत्ते, बूटों के डिब्बों के गत्ते...दवाइयों के डिब्बों के गत्ते...जिस भी किस्म का गत्ता मिल जाए भाईजान उसका भण्डार फट्टे के नीचे उस तरफ लगा लेते जिस तरफ फट्टे के ऊपर उनका बिस्तर था। मानो रानीमाल हो गये हों। विक्षिप्तता तो साफ थी।

शोभी बोली थी, ''पता नहीं क्या हो गया है इसे गाशा के मरने के बाद, जहाँ कहीं डिब्बे देखता है, वहीं से उठा-उठाकर यहाँ ढेर लगा देता है। और क्षण-क्षण में चिलम पीता है गत्तों की।''

'शायद भाईजान को गत्ते से चिलम सुलगाकर चिलम पीना मुक्ति का एक सरल उपाय लगता हो।' सुधा ने सोचा पर शोभी से कहा कुछ नहीं।

''मैं गत्ता पीता हूँ तो भी एक-एक दिन बीतने पर लगता है कि एक-एक दिन मानो घटने के बजाय बढ़ता ही जा रहा हो मेरी उम्र का। ओह...। दिद्दा मृत्यु कितनी सुन्दर होती है...जानती हो?'' सुधा चुप थी। सन्न थी। 'क्या यह रानीमाल के महाकाव्य का उपसंहार था? क्या ये राजरानी की तपस्या के फैले हुए बीज

थे?...यह सब क्या था?...क्या था?' कि चीजें उसकी समझ से परे होती जा रही थीं!

❑❑

अन्ततः सुधा को रानीमाल की लुप्तप्राय कुछ पंक्तियाँ मिल गयी थीं...शोभी से...और शहर वापस जाने पर अपनी माँ से :

खति मंज़ द्रायि मति बाये लोलो
दूरन मारान ग्राये लोलो
राजरानी कोडनास पाये लोलो
माधव जू छु रोज़ान छाये लोलो
प्रसाद जू विन सुरितस ज़ाये लोलो
अमरावती बेपरवाये लोलो
खति मंज़ कअड् राज़दान बाये लोलो
राजरानी कोडनस पाये लोलो...
दूरन छि मारान ग्राये लोलो...

काल कोठरी से मत्तुओं की बाई निकली। झुमके झलकाती। राजरानी ने उसका पता पाया। माधवजू खुद को परछाइयों में छिपाता है, और अमरावती प्रसादजू के बच्चों को जनती है...अमरावती मस्त है...बेपरवाह है...काल कोठरी से राज़दानों की बाई राजरानी ने उसका पता लगाया।''

सुधा के पास कितने कण्ठ हो गये हैं। एक से रानीमाल की कविता पंक्तियाँ गा रही है, एक से भाईजान को 'पर्वतों के पेड़ों पर' गाकर सुना रही है...एक से ललद्यद का कभी कोई और कभी कोई वाख भी गा रही है...कभी 'दिल छुम ब्रमान घर गछ हा, कभी 'दमी दयूठुम दह नत्‌अ नार' कभी 'ततन हुन्द माज़ ला रेयोम वतन' और कभी 'डयूठुम तअ काँह ति पनने कने...' और कभी 'गोरन दोपनम कुतुय वचुन।'

इस समुद्र में कितनी अन्तरधाराएँ हैं, धाराएँ टकरा रही हैं। जितनी लहरें हैं, वह उतनी हो रही हैं। जितनी धाराएँ हैं वह उतनी हो रही हैं...हो रही हैं और समाप्त नहीं हो रही हैं। फैल रही हैं...जल की तरह...तरंगों की तरह...फैल रही हैं वाडवाग की तरह मगर समाप्त नहीं हो रहीं।

❑❑

बहुत देर से गाड़ी में सन्नाटा था। अचानक टूट गया। सामने बोर्ड लिखा दिखा

क्रीरी। क्रीरी में अठूर है। सुधा की मौसी का गाँव, वह नदी जो छोटी-सी उस गाँव में बह रही है अब भी, सुधा की मौसी की नदी के रूप में प्रसिद्ध है। मौसी की या, अठूर की छोटी-छोटी अद्भुत पहाड़ियाँ भी हैं, जहाँ बर्फ नहीं जमी रहती थी पर जिनके कम से कम एक-एक तरफ से फव्वारेनुमा प्रपात निकलते और उन्हीं से इस गाँव का पीने का पानी बनता। इन जलधाराओं के नीचे स्नान करने का आनन्द अलग था जो काकनी के गाँव में उपलब्ध नहीं था क्योंकि वहाँ इस प्रकार के पर्वत-शावक नहीं थे।

''वे फव्वारे भी शंकर की जटाओं की ही आपूर्ति रही होगी...'' सुधा ने सोचा। शंकर की जटाओं की आपूर्ति चल रही होगी...तभी तो मुश्ताक ने कहा था राउटर के दफ्तर में, 'हम सब शिव के पुजारी हैं...।' अगर ये पुजारी हैं...तो हे शंकर! हे महादेव! हम कौन हैं? हमें साफ-साफ क्यों नहीं बताया जाता कि हम हैं कौन...हम खुद को खुद ही पता नहीं क्या...क्या बताते और मानते हैं...पर तुम...प्रभु न मानते हो...न वैसा सुलूक करते हो...यह सब तुम हे...पार्वतीपति! क्या करते हो?' सुधा क्षण-भर सन्न-सी रही और फिर लुढ़कती गयी स्मृतियों की सीढ़ियों से पुनः... अठूर...? अठूर जहाँ फूला दीदी जन्मी थी... कबाइलियों के हमले के दिनों। कबाइलियों के हमले के वर्ष में जो जो बच्चा जन्मा था कबाइलियों के आने का जिम्मा उसी के सिर मढ़ा जाता है... 'ओ...तू सैंतालीस में पैदा हुआ/ हुई...अच्छा...इसका मतलब कबाइलियों को लाया तू/लायी तू।' सैंतालीस में भारत स्वतन्त्र भी हुआ था मगर उनकी बला से...वे क्या जाने...फिर वे बच्चे कहते... 'उस साल तो भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ है अँग्रेजों के चंगुल से, हम स्वतन्त्रता लाये हैं...कोई मामूली वर्ष नहीं है सन् सैंतालीस का वर्ष...।'

भुक्तभोगी कहते, 'हो गया होगा भारत अँग्रेजों के चंगुल से आजाद...हम तो चंगुल में ही थे चंगुल में ही रहे हैं...चंगुल में ही रहना होगा...कोई निस्तार नहीं...कोई मुक्ति नहीं...कोई नहीं...कहीं हमारा...।'

काकनी ने शोभाताई का बेटा गाशा को अठूर अपनी बेटी के पास दूध-सहित भेजा था, तब उसके लौटने पर काकनी को असीम प्रसन्नता मिली थी मानो कुछ असम्भव शुभ घटित हो गया हो। गाँव में सभी मकान उस समय धू-धू कर जल रहे थे। शोभाताई, भाईजान और शेष सभी सदस्य श्रीनगर भाग गये थे। गाशा खेतों की पगडण्डियों से होते-होते काकनी के पास पहुँचा था। राख में और कोयलों में बदल रहे मकानों की प्रचण्डता में उसे काकनी के भूगोलविहीन आँगन में उसी के घुटनों पर नींद आयी थी, क्योंकि वह गम, भूख और निरन्तर जीवन के भीषणतम भय में चलते रहने से बेहद थक गया था। उसी रात से काकनी भी गुडाकेश हो गयी थी।

❑❑

शहर में सुधा की माँ के पास प्रायः बल्कि पुनः-पुनः सबके कबाइली भीषण अनुभवों का पाठ हो चुका था। जिगरी यह पाठ कर चुकी थी। लसकाक तो असंख्य बार कर चुके थे, पर फिर भी उसे लगता रहा अन्त तक कि उसने अपनी असली पीड़ा किसी से कही ही नहीं...या कोई उसी की तरह उसकी पीड़ा को ग्रहण ही नहीं कर पाया। काकनी की गाथा तो विराट थी। मासटॉठी यानी सुधा की मौसी...या भट्टिनी की छोटी बहन कहें, ने भी अपने अलग अन्दाजे बयान में इस कयामत का जिक्र कई बार कर ही लिया था। हर एक का अनुभव अद्वितीय रूप से मारक था...अद्वितीय रूप से पृथक था।

गाशा जब गुणवती को दूध देने अठूर गया था, अठूर में पहले ही अफरा-तफरी मच चुकी थी। निरंजन पण्डित की बेटी पिट्टी का ब्याह चल रहा था। सुबह-सुबह दूल्हा भागता और डरा हुआ आया। दूल्हे के साथ सिर्फ एक जना था और एक पोटली में थी दूल्हे की पगड़ी और सफेद कुर्ता पाजामा तथा एक कोट। ताकि दुलहन के किसी पड़ोसी के यहाँ वह यह दूल्हे का वेश धारण करके दुलहन के साथ ब्रह्मविद्या का लग्न सम्पन्न कर दुलहन को प्राप्त कर फिर देखें कि आगे जीना है या मरना। दुलहन और लग्न की सामग्री भी जैसे-तैसे तैयार थी। पर हालात के बारे में इतनी खराब खबरें उन्हें तत्क्षण मिलीं कि अब लग्न सम्पन्न करने की भी मोहलत नहीं। सबने मिलकर एक निर्णय लिया कि दूल्हा बिना फेरे किये, दुलहन को ले जाए। दहेज बाद में हालात ठीक होने पर भेज दिया जाएगा। इस क्षण माना जाए कि फेरे हो गये। लग्न हो गया। हवन सामग्री को कुल्या में बहा दिया गया। दूल्हा चोडुर गाँव का था जहाँ के बारे में अफवाह थी कि कबाइली पहुँचने वाले हैं, इसलिए दूल्हा जैसे तैसे बिना एक क्षण गँवाये दुलहन को सादे वेश में ले जाकर चोडुर पहुँचे और वहाँ अपने परिवार के साथ तय करे कि आगे क्या करना है।

एक दिन मौसी जब शहर आयी थी तो बता रही थी कि, दूध की देगची अन्दर रख दी गयी और सब कुछ वहीं रखा गया। भीतर। मानो भीतर सुरक्षित हो और बाहर ही खतरा हो। अरे फिर भीतर से हम बाहर क्यों कर आते? मैं जच्चाघर से थी। ये बोले उठो और बच्ची को भी उठाओ। निकलना है गाँव-घर छोड़कर। बच्ची मात्र दो दिन की थी। कमजोर चुहिया जैसी। मुझे लगने लगा कि हम विशाल खड्ड में गिर रहे हैं और मरने-जीने में अन्तर मिट गया है। जीना भी मरने जैसा है और मरना भी जीने जैसा है। हम चलने लगे। चलते गये। मेरे भीतर चलने की हिम्मत न थी। मर्दों के चिन्ताओं से मुख सूखे थे। सबकी आशंका यही थी कि पता नहीं किस मोड़ पर कबाइलियों से मुलाकात होगी...किस क्षण अपना आखिरी क्षण होगा...या इस युवा देह का क्या होगा हे प्रभु। वे मर्दों को

एक कतार में खड़ा कर देंगे और स्त्रियों को बारामूला के कैम्प में अपने भोग के लिए ले जाएँगे। हर आगामी क्षण शंकाओं और आशंकाओं का पहाड़ था...आश्चर्य है कि ऐसे में अश्रु सूख चुके थे। इस सब पर रो नहीं पाते थे हम...बच्ची रो रही थी फकत। तूफान मचा रही थी...शायद यह प्रार्थनाएँ करती थी ईश्वर से। मैं इसके इतना अधिक रोने से खीझ रही थी, सोचती थी कि इसे पता नहीं कि इसे रोना चाहिए इस वक्त...क्या करने आयी है यह इस संसार में?...क्या है यहाँ भला?...मैं इसे स्तन क्या पिलाती। जब हम सोच रहे थे कि सबका अन्त होगा अभी-अभी, फिर इस के रोने का क्या अर्थ? इसे भी एक अन्त मिलना चाहिए।

मेरे मन में विचार जोर पकड़ रहा था कि क्यों न इसे एक छायादार चिनार के नीचे चुपचाप रख दूँ...प्रकृति के भरोसे। फिर इसका भाग्य। यह योजना मैंने इनसे भी कही...इन्होंने आँखें तरेरकर एक जबर्दस्त थप्पड़ मेरे गाल पर मारा और कहा...''तुम तो कसाई हो। माँ नहीं। मैं नहीं जानता था माँ का हृदय तुम्हारे पास नहीं और मेरे बच्चे की माँ हो गयी तुम...त्राहि त्राहि।''

''क्यों नहीं है माँ का हृदय। है न। तभी कह रही हूँ...हम समाप्त होने वाले हैं, तब इसको ईश्वर के हवाले रख दें। हो सकता है...यह बचे। मैं अपना अन्त देख सकती हूँ...इसका नहीं।''

''यह क्या सोच रही है तू। हम भाग किसलिए रहे हैं...जान बचे। इसीलिए न। कहते हैं हिन्दुस्तान की फौज आ चुकी है। हम बच जाएँगे। कदम तेज-तेज उठाओ। हो सकता है हमारी मुलाकात आगे हिन्दुस्तानी फौज के साथ हो।''

इस पर मैंने कदम तेज उठाये...पर कितने तेज उठते मेरे कदम। मैं सद्य:प्रसूता। बच्ची को मैंने चलते-चलते ही स्तन मुँह में दिया...पर कितना...न मेरे स्तनों में यथेष्ट दूध था, न कहीं रुककर इत्मीनान से उसे पिलाने की मोहलत ही थी। इनकी इस आशा पर मुझे हँसी आयी कि, 'रास्ते में भारतीय फौज से मुलाकात हो जाएगी...फिर यों...और यों होगा...मैं तो शत-प्रतिशत मान रही थी कि कबाइलियों से ही हो-न-हो मुलाकात होगी।'

''बच्ची फिर रोने लगी थी। मैंने उसकी रोने की फिक्र करना छोड़ दिया। मैं भी धीरे-धीरे इनके मन में बसी फौज को देखने की आशा के बारे में आशान्वित होने लगी। सारा धान काटा जा चुका था। खेत बहुतायत में नंगे थे। सब लोग देख रहे थे दूर दायीं तरफ के दूरस्थ गाँव को जो उस समय धू-धू धाँय...धाँय जल रहा था। इससे स्तब्धता, निराशा और रुदन की लहरें चल पड़ती थीं हवा में। अठूर के बायीं तरफ का गाँव मेरा मायका तो अब बस अपनी राख ठण्डी करने में लगा था ताकि लोग जमीन पर पाँव रखकर, खड़े होकर सोच पाएँ कि आखिर यह सब हुआ तो क्या हुआ। दायाँ-बायाँ सब अग्नि में स्वाहा...हुँ...फट् स्वाहा...वाह

वाह...आश्चर्य था मुझे...प्रश्न था मुझे कि ईश्वर...? क्या एक झूठ है...ईश्वर?

''स्त्रियाँ कराहने लगी थीं थकान के कारण। कुछ को तो ज्वर हो गया था। यम्बरज़ल की बहू को सात माह का गर्भ था...और उसे प्रसव-पीड़ा होने लगी थी।

''उसे एक पेड़ की छाया में लिटाया गया। उसका पति उसकी तीमारदारी करने लगा...पर कोई स्त्री उसके साथ रुकना नहीं चाहती थी। स्त्रियाँ खुदगर्ज होती हैं, उन्हें स्वयं स्त्रियों के लिए भी सहानुभूति नहीं होती...यह किस्सा एक दाग की तरह रह गया है स्त्रियों पर गाँव में। यम्बरज़ल स्वयं बहू के लिए दाई का काम कर रही थी और बड़बड़ा रही थी, मैंने सोचा था अभी सातवाँ माह है...पर...वह और यह...मानो इसमें भी बहू की ही गलती हो।

''अब लोग छोटे-छोटे झुण्डों में चलने लगे। वह जुलूस वाली शक्ल, अखण्ड शक्ल बिखर गयी। लोग बचने के लिए श्रम करने से भी टूटने लगे। बच्चे जार-जार रोने लगे थे। थक गये थे।

''हमें भी लगने लगा कि पीछे अठूर जल रहा होगा, लपटें उठ रही होंगी। पर अभी ऐसा कुछ नहीं दिख रहा था। न पीछे मुड़-मुड़कर देखने पर आग का ही निशान मिलता न धुएँ के लच्छे ही। दायें तरफ के गाँव से धुआँ उठ रहा था, बायें तरफ के गाँव से धुआँ उठ रहा था, आगे की पहाड़ी विषादमय चुप थी।...पीछे से किसी भी समय लपटें उठने की आशंका थी।

''कुछ लोग अब असहाय होकर चूर होकर रुक ही गये थे...क्योंकि विकल्प नहीं था। पर ये नहीं माने...मैंने काफी जद्दोजहद की थी कि मैं भी रुकूँ और थकान निकालूँ। बोले—'थको मत चलो...मैं जानता हूँ तुम चलने की हालत में नहीं हो...पर बाद में थकान निकालना।' मगर क्रीरी के पास पहुँचते ही मुझे चक्कर आने लगे। मैं बैठ गयी। बच्ची मेरी सास के पास थी। उसके बाद मुझे कुछ पता नहीं। ''जब मुझे होश आया, मेरे मुँह में पानी डाला जा रहा था। पास की कुल्या का कच्चा पानी मेरे पेट में उतर चुका था जबकि ऐसा बेहद मुजिर था...पर आपात् काल था...क्या करते भई।

''ये खुश थे। लोग खुश थे। स्त्रियाँ तो खुशी के मारे रो रही थीं। ग्रामवासी खुश थे। 'हिन्दुस्तान की फौज आ चुकी है...मैं झूठ नहीं बोल रहा था न। देखा...। तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा था...हे भगवान। तुमने मेरी इस जान-सी बच्ची की रक्षा की। सोचो अगर तुमने इसको रख दिया होता उस चिनार के नीचे...तो...हे प्रभु। वह देखो उधर। सात-सात फुट लम्बे पगड़ी पहने सरदार बन्दूकें लिये तैयार हैं कबाइलियों का स्वागत करने के लिए।' ये बोले और मैंने सचमुच देखा। सचमुच वहाँ कद्दावर सरदार थे। लगभग पाँच-पाँच का झुण्ड एक व्यूह-रचना के तरीके से बन्दूके तानें अपने बूटों की सख्त आवाजें पैदा करते हुए ग्राम के भीतर घुस

रहे थे।''

''ये कहाँ जा रहे हैं...कहीं यही कबाइली न हों...क्या पता?''

''मूर्ख...पढ़ी-लिखी होती एक-दो जमात ही तो ऐसा नहीं न बोलती। देख इनके कन्धों पर जो चिन्दी चिपकी है उस पर लिखा है भारत की फौज का जवान और यानी यह भारतीयों की माने कि भट्टों की रक्षा के लिए यहाँ आये हैं जो कि इस समय घोर संकट में फँसे हैं।''

''हाँ, इन्हें पढ़ना-लिखना आता है। मैट्रिक की है इन्होंने। स्त्रियों के भाग्य में पढ़ाई-लिखाई कहाँ। निरक्षरता हजार शंकाओं को जन्म देती है।''

''चलो चलो वापस टुरो,'' उनमें से एक लम्बा-कद्दावर सिक्ख हमारे नजदीक आकर बोला। दरअसल वे पाँचों हमारे साथ हमारे गाँव तक आ रहे थे।

''अजीब हिम्मत बँधी थी। अजीब शक्ति आयी थी पैरों में।

''ओह। शुक्र कहीं अगर मैंने इस बच्ची को पेड़ के नीचे छोड़ दिया होता तो वापसी पर इसके न मिलने पर मैं आजीवन रोती...अपने आप को कभी माफ नहीं कर पाती...जीवन ग्लानिमय हो उठता...। मैंने इनका हार्दिक धन्यवाद किया। नन्दबब का हार्दिक धन्यवाद किया...मुझे अनर्थ करने से इन्होंने बचाया। अरे बच्चों की माँ मैं हूँ और माँ का हृदय इन्होंने पाया है।'' मौसी दास्तान सुनने वालों की आँखें सुख के आँसुओं से डबडबा आयी थीं।

यम्बरज़ल की बहू से अब इत्मीनान से सब स्त्रियाँ हाल पूछने लगी थीं। उसे वापस अठूर ले जाने का इन्तज़ाम किया जा रहा था, इस कारण कुछ उसकी मदद के लिए अब उसके पास ही रुक गयीं। ताकि उसे भी अपने साथ ही वापस ले चलें। अब क्या चिन्ता थी...अब घर जाना था। यह अविश्वसनीय क्षण था...अविश्वसनीय मनोदशा भी थी। आज तक के अपने-अपने सबके जीवन का महान क्षण।

❑❑

मैं सोचने लगी थी कि 'मैं घर पहुँचकर खूब आराम करूँगी और बच्ची से प्यार। अपनी इस बच्ची से पैर पकड़-पकड़कर क्षमा याचना करूँगी और इतना रोऊँगी कि इसके पैर मेरे आँसुओं से धुल जाएँ।' मासटॉठी का किस्सा जारी था।

''रह-रहकर काकनी का ध्यान आता। न जाने किस हाल में होगी मेरी अकेली विधवा माँ। न जाने गाशा बेचारा कहाँ होगा। जीवित होगा या...। काश! मैंने उसे रोक लिया होता। यह सब सोचने की चेतना अब अवयवों में आयी थी। मतलब जीवन आया था। हम सब उन पाँचों सिक्खों को प्रेम की नजरों से देख रहे थे। स्त्रियाँ कहतीं ये हमारे भगवान हैं। अकेली लछकुज बेचारी लाठी घसीटते-

घसीटते थकती और रुकती। थकती और रुकती। उसको घोर प्रसन्नता थी कि सब बच गये हैं और घर वापस जा रहे हैं।

उन सिक्खों में एक बारामूला का सिक्ख था सरदार सतनाम सिंह। वह लछकुज का मन बहलाने लगा। भट्टिन्यदयदी टुरो टुरो...यानी रुको मत...चलती बनो...तब लछकुज ने भी दयाविभोर होकर कहा, 'सिक्का भाया। टुरान छस...।' और सब हँस पड़े थे। सबका मनोविनोद हुआ था। दायें-बायें आग की लपटें, कोयले और राख का साम्राज्य होने के बावजूद हवा के ताज़े झोंके पहाड़ियों से छनकर आने लगे थे।

"ओह यह घर वापसी। वह सुख। वह सुख महान था।"

❑❑

"लेकिन जब हम गाँव में वापस पहुँच गये तो मुसलमान पड़ोसियों ने भट्ट-मुहल्ले में लूट मचा रखी थी। अनाज की देगचियाँ उठा-उठाकर ले जा रहे थे। बिस्तरें और बर्तन लूट रहे थे। हमारे यहाँ आयी दूध की देगची हैवानों की तरह पी रहे थे और बिखेर रहे थे! और खाली देगची को ले जाने लगे थे।

"कश्मीरी गर्म-चादरों का अम्बार ज़ैना अपने सिर पर लादे जल्द-अज-जल्द घर पहुँचाने की फिराक में थी। हर घर में दो-दो, तीन-तीन लुटेरे घुसकर असमंजस में कभी यह चीज उठाकर भागना चाहते, कभी उस चीज को पटक उससे बढ़िया किसी दूसरी चीज को पकड़ उसे लेकर भागते। कभी कुछ खाने की चीजें खाते...कभी कुछ पी लेते...गरज वे पागल हो गये थे। हम एक तरह के पागल, वे दूसरी तरह के पागल।"

"रसोईघरों के मसाले तक लूट रहे थे वे। और हमारे साथ कई कद्दावर बन्दूकधारी वर्दीधारी सरदारों को देखकर उन पर गाज गिरी। फिर एक नये सिरे से अफरा तफरी मची थी जो कि उनमें मची थी अब। लूट का सामान सिरों और हाथों से छूट रहा था। भट्ट सब हतप्रभ थे और अपना-अपना सामान पहचान रहे थे।"

"शम्भूनाथ पण्डित। जो गाँव का सदर था, फौज के एक सरदार से बोला, 'लोग, सरदार जी! देखा कितने गिरे हुए हैं?'

"उसने बन्दूक तानने का उपक्रम किया कि रसूलडार, जो शम्भूनाथ की भाभी का सन्दूक सिर पर लादे जा रहा था, ने सन्दूक को जल्दी से नीचे गिरा दिया और हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा कि वह सन्दूक वापस घर में अपनी जगह पहुँचाएगा। इस पर शम्भूनाथ बोला, 'रुकिए सरदार जी! रसूलडार माफी माँग रहा है...कोई बात नहीं यह कह रहा है सन्दूक वापस अपनी जगह पर पहुँचा देगा।'

इसके बाद सब जो भी जो कोई भी सामान ले जा रहे थे, उसे वहीं छोड़कर जहाँ से रास्ता मिला वहीं से भागने लगे। आश्चर्य है कि बच्चे भी माल-असबाब लूटने आये थे और सिर पर चीजें लादकर ले जा रहे थे। इस पर उनका दिमाग देखिए—बोले, हम तो अपने पण्डित भाइयों के माल-असबाब की चीजें अपने घर इसलिए ले जा रहे थे, ताकि जब वे आएँ तो हम इनको इनका माल लौटाएँ। क्योंकि कबाइली आज की शाम इस गाँव में आ रहे हैं, तब वे ही ये माल लूटते और घर को जलाकर माल को राख में बदलते।'

'' 'दफा हो जाओ। दास्तान हमें मत सुनाओ। शुक्र करो छोड़ दिया। ले जाओ अपने इन लुटेरों को। एहसान फरामोशो।'

''पाँच सरदार शम्भूनाथ पण्डित उर्फ भट्टों की जुबान बनकर आये थे।

''उसके बाद सालों तक मुसलमान कसमें खा-खाकर हमें विश्वास दिलाते रहे थे कि उन्होंने वास्तव में हमारे मालो-असबाब की रक्षा की थी। पर जब कुछ कीमती सामान के बारे में उनसे पूछा गया था तो वे कतराते। कहते...उन्होंने नहीं लिया...फिर दूसरे से पूछते वह भी यही उत्तर देता...तीसरा भी यही उत्तर देता। कई भट्टों ने उनके घरों में अपनी गुम हुई चीजें बाद में पहचानीं और चुप रहे... क्योंकि तब तक पाँच सरदार भी अपनी-अपनी बैरकों में लौटे थे। इसलिए भट्टों के साथ उसका अपना एकाकी विवेक और एकांगी...एकतरफा सहिष्णुता ही थी।

''इसीलिए प्राय: कहते हैं न कि 'पण्डित बड़े बुद्धिमान होते हैं। हाँ जो उन्हें लूट की छूट दें...अपना मालो-असबाब पहचान कर भी उनसे लौटाने के लिए जिरह न करें, जो पहले ही मानकर चलें कि वह माल उसका है पर वह किसी भी तरह इतना ताकतवर नहीं कि सिद्ध कर सकें कि वह असबाब उसका है। वह उसके लिए उसे चोर भी नहीं कहेगा। माल के अपना होने का कभी दावा भी नहीं करेगा क्योंकि उसके ऊपर मुसलमान के बहुसंख्यत्व और आतंकी रूप का भूत बैठ चुका है।' मासटॉठी जो कुशाग्र बुद्धि महिला थी, कह रही थी और आगे भी कि—'जब सब तथाकथित रूप से सामान्य हो गया और जीवन अपनी रफ्तार में आने लगा। साम्प्रदायिक सौहार्द की ऊपर की परत फिर से जमने लगी तो गाँव के बड़े-बड़ों ने हमारे ही गाँव में बैठक की और सुझाव रखा गया कि क्यों न मुसलमान मुहल्ले के बड़े-बुज़ुर्गों को बताया जाए कि हम आपस में बैठकर एक समझौता करें कि जो-जो चीजें उनके पास हैं, जो उस दिन लूटी गयी थीं, वे सब असालत से वापस उनके घरों में लायी जाएँ जिन-जिनकी वे थीं।'

''जब ऐसा हुआ तो बैठक के अगले दिन बुज़ुर्गों को ताक पर रखकर जवान लाठियाँ लेकर हमारे गाँव में घुस आये और चेतावनी दी—'भट्टो! गाँव में रहना है तो चुपचाप रहो। कौन-सा सामान माँगते हो...ज़रा हमसे बात करो...आओ हमारे

घरों में अपनी बेटियों को भेजो उनके साथ तुम्हारा सामान भी हम भेजेंगे...दल्लो।'

"उसके बाद गाँव में चुप्पी छा गयी थी। सब सहम गये। एक-दूसरे की ही भर्त्सना सब करने लगे—किसने कहा था यह बैठक करने को? क्यों मरते हो सामान के लिए तुम इतना? पाँच सिक्ख और सुनहरी स्याही में लिखे कागज क्या देखे कि आप अपने आपको हिन्दुस्तान में समझने लगे...। कहाँ है आज फिर वह हिन्दुस्तान की फौज? जिन्दा रखने का ढंग जरा नये सिरे से सीखो। हिन्दुस्तान के नाम पर इतना इतराने की जरूरत नहीं। लूटे गये सामान के पीछे और मत मरवाओ सबको।

"आये हुए उन लठैतों में सबने अपने-अपने काश्तकारों को भी पहचाना था। हमें क्या मालूम था कि आगे शेख अब्दुल्ला की बदौलत पण्डितों को भूमि-सुधार कानून के तहत अपनी भूमि से भी हाथ धोना पड़ेगा।

"अरे ये लोग हमारी खिलाफत के मामले में एक हैं...हमें लूटने और हमें कूटने के मामले में एक हैं लेकिन जिस क्षण इन्हें इस बात का अहसास हो कि हमारे साथ पाँच ताकतवर बन्दूकधारी हिन्दुस्तानी फौजी हैं, ये अपनी कमजोरी तुरन्त भाँपेंगे। आपके सामने ऐसे गिड़गिड़ाएँगे...कि दया आएगी...इन्हें हमारी दयालुता पर, अहिंसक मन पर भी शत-प्रतिशत आस्था है। माने कि यह हमें अन्दर बाहर से अच्छी तरह जानते हैं और तदनुसार अपनी व्यूह रचना या रण-नीति क्षणांश में पलटते हैं। अपनी जुबान बदलते हैं, हाव-भाव बदलते हैं... महान नाटककार हैं ये..." मासटॉठी ने बोलने के बाद हल्का-सा विराम लिया था...और बोली थी, "हमने फटाफट जमीन को सेबों के बागों में बदला था ताकि काश्तकार अपना कब्जा न जमा सके। पर कुछ लोग ऐसा नहीं कर पाये क्योंकि इसके लिए भी पैसे की दरकार थी। इसलिए ऐसे लोगों की जमीन काश्तकारों के पास चली गयी।

"अरे भई सरकार इनकी है। पाँचों उँगलियाँ घी में और सर कड़ाई में है। अगर हमारे गाँधी महात्मा को महात्माई ही करनी थी तो राजनीति क्या करनी थी। राजनेता महात्माई भी करने लगा तो न्याय नहीं कर सकता। महात्माई महात्माओं के साथ ही बरती जा सकती है न कि आम लोगों के साथ...विशेषकर दुरात्माओं के साथ। और क्या किया उस नेहरू के बच्चे ने हमारे लिए...महात्मा और वह दुरात्माओं को महात्मा बनाने चला है...अरे चल चल हम जानते हैं इनकी हड्डियाँ...इनकी आँतें। त्रेठ पड़े ऐसे महात्माओं पर। दुनिया ऐसे नेहरुओं को भले ही पूजती हो...पर हम हमारा पूरा गाँव तो थूकता था...।" मासटॉठी उस दिन पूरे राजनीतिक तेवर में थी।

फूला टॉठी के साथ जीरो जरब का खेल अपनी-अपनी कॉपियों पर खेल

रही थी। सुधा मौसी के शब्दों से खासी उद्वेलित हो रही थी...मौसी के कहे हुए वृत्तान्त के साथ-ही-साथ उसके भीतर एक चित्र-शृंखला बन गयी थी। बीभत्स और करुण-चित्र शृंखला। चलायमान और स्थिर चित्र-शृंखला। वैश्विक स्तर की त्रासद चित्र-शृंखला। जबकि वह बहुत छोटी थी...मगर वह समझ रही थी। मासटॉठी का पेट फूला हुआ था और सिर्फ दो ही दिन बाद सुधा को मालूम हुआ कि दरअसल उसमें बबली थी। उसी को जन्म देने वह शहर अपनी बहन भट्टिनी के पास आयी थी और नर्सिंग होम में दाखिल हुई थी।

बबली को बबली नाम सुधा ने ही दिया था। सुबह-सुबह जब मासटॉठी का पति रात-भर नर्सिंग होम में रहने के बाद आया था तो आँगन में काँगड़ी की राख झाड़ रहा था। बड़ी बेटी फूला दौड़ते हुए पिता के पास आँगन में आकर पूछ बैठी थी, "क्या हुआ? बाबूजी क्या हुआ?"

"तेरी बहन।"

यह सुनते ही सुधा की माँ आँगन में आ धमकी थी जो कि खासी उदास थी और फूला के झूम उठने से नाराज हो उठी थी।

"इतनी खुश क्यों हो? अपने पीछे भाई लाती...नहीं ला सकती थी क्या? बेटी हुई है वह भी दूसरी...हे भगवान! हमारे लिए बेटा नहीं तेरे पास?"

फूला बुझ गयी थी। सुधा को वे शब्द शब्दशः याद हैं। यह पुत्र-प्रेम। हे भगवान! सुधा ने देखा था कि फूला का चेहरा उतर गया था और नर्सिंग होम चाय ले जाने के लिए थर्मस आदि ढूँढ़ने लगी थी।

दो दिनों बाद जब मासटॉठी घर आयी थी तो बेहद खुश लग रही थी। सुधा ने कहा था, हाय कितनी...छोटी-सी...सुन्दर...नन्ही... गोरी...गोल-मटोल गुड़िया...मासटाठी इसका नाम बबली रखेंगे। किसी को कोई आपत्ति नहीं थी। खुशी से उसका नाम बबली रखा गया।

'फूला? बबली ? मासटॉठी?'

'कहा हैं ये सब इस समय?'

बबली एक सहृदय, सहज ही मानव सेवा में निष्णात, एक उदात्त बेटी, बहू, माता, बहन आजकल कितनी दूर पूना में रह रही है...फूला दिल्ली में...मासटॉठी अपने बूढ़े पति के साथ जम्मू में, गोल-गुजराल में, एक कैम्प में...।

❑❑

'ओह! कितना याद कर रहा होगा यह गाँव उन्हें। कौन रह रहा होगा उनके विशाल घर में? कौन सेब काट रहा होगा उनके बागों के? कौन पी रहा होगा आँगन से बह रही कुल्या का जल?'

'समय की कोख से उसी तरह समय जन्म लेता है जैसे मनुष्य की कोख से मनुष्य ही जन्म लेता है'—उसने सोचा।

'कितने हमशक्ल होते हैं समय के कुछ खण्ड और विद्वान कहते हैं।...अजी इतिहास खुद को दोहराता है। क्यों दोहराता है? क्या यह हमारी भूल नहीं। हम भूल जाते हैं। भूलना सच्चाई से भागना है। हम भूल जाते हैं खुश रहने के लिए...।' सोच रही थी सुधा और यह भी कि—

'वे मगर नहीं भूल जाते। वे मग्न नहीं होते। वे सचेत रहते हैं।

'क्या उन्होंने सोचा होगा कि ये निकल गये थे तो क्रीरी से वापस क्यों आ गये। क्या उन्होंने सोचा कि उनकी युद्धनीति में कहीं कोई कमी रह गयी थी जो उन्हें दोहरानी नहीं चाहिए। कि अब ऐसी नीति बनानी है कि क्रीरी से क्या जहन्नुम से भी भट्ट वापस न आ जाएँ।

'क्या मासटॉठी सोच रही होगी कि उस दिन वे क्रीरी से वापस क्यों गये थे अठूर। क्या इसीलिए? इस भयंकर ढंग से भागने के लिए ही। सोच रही होगी वह कि वापस पहुँचकर वे अपने को पूरा विजेता मान रहे थे।

'क्या बात है एक पूरा देश उनके पीछे है। कश्मीरी पण्डित हिन्दुस्तान के लाडले बच्चे हैं। इसलिए...इसलिए डर काहे का?

❑❑

मगर अब उस रात जब मस्जिदों से आवाज बुलन्द हुई—नाले तखबीर अल्लाहो अकबर पाकिस्तान जिन्दाबाद! ऐ काफिरो...ऐ जालिमो! कश्मीर हमारा छोड़ दो। यहाँ क्या चलेगा, निजामे मुस्तफा। ये आवाजें पूरे कश्मीर में गूँज उठीं। वे हाथ जिन्होंने अपना एक एकीकृत इस्तेमाल किया एक विशाल, एक भयावह खटखटाहट के लिए। पण्डितों के द्वार इस तरह खटखटाने के लिए कि कन्याकुमारी में बैठे लोगों तक भी आवाज पहुँचे—'दल्लो! दरवाजे खोलो। देखो तुम्हारे दामाद आये हैं। मरने के लिए तैयार हो जाओ। नहीं तो हमारी तहरीक में शमूलियत करो।

'प्रभु! प्रभु!' मासटॉठी कितनी रोयी थी उस रात!

'खटखटाना और शब्दावली दोनों इतने एकता में पगे थे कि ऊपर घर में उन्होंने सोचा कि घर उनकी चपेट में है। वे दरवाजा न भी खोलें तो भी क्या फर्क पड़ता है। वे तो तोड़ देंगे दरवाजा और ऊपर आएँगे...अन्दर आएँगे...मार डालेंगे।

'मस्जिदों में रात-भर क्या-क्या गाने लगे थे। न जाने कहाँ बनाये गये थे और कहाँ गाये गये थे ये गाने। आस-पास के गाँव की मस्जिदों से भी इसी प्रकार के गाने बज रहे थे। यही कैसेट बज रहे थे चारों तरफ और आवाज ब्रह्माण्ड-भेदी हो रही थी। हाय! वह कालरात्रि।

'हम उस दिन निकले थे, फिर इसीलिए वापस आये थे क्या? क्या 'इसीलिए?' अब हिन्दुस्तान की फौज कहाँ है? कोई पाँच सिक्ख आज नजर नहीं आते कहीं भी...। जरूर सोचा होगा मासटॉठी ने।'

'अब कोई पर्चे नहीं फहरा रहा था कि 'डरो मत, हम आ रहे हैं'—हिन्दुस्तान की फौज। अब हिन्दुस्तान की फौज भी घबरायी है...या दिल्ली के हुक्मरान पाकिस्तानपरस्त हैं...मुसलमानपरस्त हैं...नेहरू से भी गये-बीते हैं...हाँ...सही वक्त चुना है...अबकी बार हमलावर ने...।' सोचा कई संकटग्रस्तों ने।

'अब इस समय में, इस आधुनिक युग में इन्होंने इतना विजेता किया है स्वयं को कि मुफ्ती सैय्यद, पक्का पाकिस्तानी, भारत विरोधी, मगर भारत का गृहमन्त्री है। वी. पी. सिंह के शासन में। वी.पी. सिंह जिसे संवेदनशील और पेचीदा बातों की समझ नहीं। जो मुसलमानों के प्रणय-प्रदर्शन के लिए मरता हुआ व्यक्ति है।'

'आश्चर्य की बात है कि हमारी माताओं में भी यह समझ है गहराई से है, मगर दिल्ली के शासकों में नहीं।'

'मासटॉठी आजकल अपने बीमार पति की तीमारदारी में लगी है। बार-बार उठते-बैठते, खाते-पीते घर को, गाँव को याद करती है। उस दिन को कोसती है जब क्रीरी से वे वापस अठूर गये थे।'

प्राय: फूला का पति कहता, हमें मुसलमानों की मानसिकता का पता है पर हिन्दुस्तान का हमें कुछ पता नहीं था। बिना जाने हम दिल दे बैठे हैं...हिन्दुस्तान...हिन्दुस्तान...भारत माता की जय...।

जन्तर-मन्तर पर फोटोग्राफरों ने भूख-हड़ताल पर बैठे लोगों से कहा, 'कुछ बोलिए...हाथ ऊपर उठाइए...ताकि लगे कि आप विरोध कर रहे हैं।'

''तो भूख-हड़तालियों ने गले फाड़-फाड़ कर कहा, 'भारत माता की जय। भारत माता की जय'...'अरे उल्लू के पट्ठो! विरोध करो, विरोध।'

या फिर औरतों को सिखाया गया था, 'हम बोलेंगे हम क्या चाहते...तो तुम बताना अपना हक।'

पर जब जुलूस चल पड़ा और बोले कि हम क्या माँगते तो वे बोलीं, 'आज़ादी' और...फिर खी खी खी खी हँस पड़ी थी अपनी भूल पर।

पत्रकार आये—

''आप निकले क्यों? निकलना नहीं न चाहिए था। भागना नहीं था आपको। लड़कर दिखाना चाहिए था आपको।''

''क्या आप जानते हैं हमारी परिस्थितियाँ क्या थीं। कैसे क्या करते हम? भारत सरकार ने रूबिया सैय्यद-दुख्तर मुफ्ती सैय्यद-गृहमन्त्री-भारत सरकार की एवज में चार खूँखार आतंकवादियों को छोड़ा। जिन्होंने दसेक वायुसेना के सैनिकों

को कबाइली ढंग से मारा। एक अट्ठाईस निरीह, निरपराध, निरस्त्र कश्मीरी पण्डितों का जघन्य हत्यारा, एक ने एक पण्डित दम्पती को बर्बर ढंग से मारा। पहले पत्नी को पति को बेड़ियाँ पहनाकर पति के सामने ही सामूहिक बलात्कार किया, फिर पत्नी के सामने पति को मारा, अन्त में पत्नी के जिस्म के कई टुकड़े कर दिये। एक आतंकी उनमें ऐसा था जिसने एक पण्डित युवक को मारा जो कि दूरसंचार का निरीह ऑपरेटर था बेचारा। आज पासा अच्छी तरह से पलटा है। महात्मा की महात्माई मुसलमानों के लिए रंग लायी है। भारत सरकार बुरी तरह मुसलमानपरस्त और हिन्दू-विरोधी हो गयी है।'' यह सब फूला के पति ने शाम को कश्मीर भवन में दिन की गतिविधियों के बारे में सुधा से कहा था। दिल्ली का मुख्य शरणार्थी शिविर वही था। और उस पर तुर्रा यह कि कुछ भट्ट बोल रहे थे... ''अरे उनके खिलाफ मत कहो कुछ भी...आखिर वापस लौटना है...दे मार...बहन...स्साला...अभी भी कुछ होश नहीं आया है...खाके सियाह पर बैठा है...अरे सब कुछ छोड़ आया है...इतनी कीमत दी है...तो कम-से-कम आत्मा की आवाज के अनुरूप तो बात कर...कुछ आत्मसम्मान से काम ले...थू हु हु हु।'' फूला का पति क्रुद्ध, भावुक। आत्मसम्मानी।

❑❑

सन्नाटे का एक पूरा कालखण्ड व्याप्त रहा। कोई कुछ नहीं बोला था। इज़ा शायद झपकियाँ ले रही थी, जबकि हुर्रत तो गहरी नींद सोयी थी। अचानक गुलशनआरा और सुमोना के बीच बातचीत की आवाजों ने गाड़ी का वातावरण बदला। सुधा ने जरा-सी अपने बैठने की शैली बदली और अलग आँखों से दाहिने, बायें नजर डाली। क्रीरी कब का जा चुका था। उसका दिल एक बड़ी-सी और जान निकालने वाली धड़कन में धड़का।

'तो लालड़ आ रहा है।'

'और संग्राम भी आ रहा है...।'

'मैं नन्दबब के करीब हूँ।'

'क्या वे सब वही होंगे...।'

'हो सकता है वहाँ काकनी हो...।'

'परमेश्वरी हो...।'

'प्रभावती हो...।'

'तितरी हो...।'

'बिन्दरी हो...।'

'किश्नी हो...।'

'बिन्दु हो...।'

'भाईजान हो...शोभी हो...गाशा हो...।'

'गायें हों...।'

'हो सकता है लोग चार बजे की शीरचाय और चावलों के आटे की रोटी का आनन्द ले रहे हों।'

''क्या पता बिन्दु और अन्य सभी बालाएँ वितस्ता में नहा रही हों, उसको आर-पार कर रही हों...तोबा-तोबा क्या तैराक लड़कियाँ हैं...एक ही साँस में वितस्ता को पार कर लेती हैं और फिर वापस भी आ जाती हैं...कि तट पर देखने वाला ठगा-सा देखता ही रह जाता है...अगर कभी श्रीकृष्ण वहाँ से गुजरा तो नहीं चुरा पाएगा उनके वस्त्र तक...इतनी चुस्त हैं वे गोपियाँ।

अव्वल दर्जे की घुड़सवार काकनी। कितनी-कितनी विभूतियाँ हैं संग्राम में। कहीं व्यास आये तो एक नया ही विभूति-योग कलमबन्द न करें। बस वही एक है मानो जो सदियों से वहाँ से भागी है...अब वह किस मुँह से जाएगी नन्दबब...काकनी के पास, वितस्ता के तट...भाईजान के पास...किस मुँह से किस मुँह से करेगी सामना संग्राम को मुड़ रहे मोड़ का?

हाँ वहाँ उस दिन जब धू...धू...और टास-पटास कर जल चुका था गाँव और फिर बुझ गया था और लोग लौट आये थे। तो काकनी ने बागडोर सँभाली थी व्यवस्था की। समाज-व्यवस्था की। न्याय-निर्णय की।

बारामूला के कैम्प से वापस आ गयी थीं स्त्रियाँ। स्त्रियाँ अपने ही समाज और पतियों से भयभीत थीं। सब-की-सब अपने मन से कह रही थीं विश्वसनीयता के संवाद मानो उनपर उनका अपना ही दूसरा मन सन्देह कर रहा हो और वे जोरदार शब्दशक्ति का प्रयोग कर समझा रही हों, ''बन्धु मैं पवित्र हूँ। अग्निपरीक्षा लो चाहो तो। देखो सीता की तरह बेदाग न निकली तो। अरे शेरवानी ने हमारे लिए अवतार लिया था। वह हमारे कृष्ण साबित हुए। लोगो! मानना चाहिए तुम्हें। वह कीलोंजड़ित तख्त पर हमारे लिए लोटे। कबाइली उसी में व्यस्त रहे। उसने कहा 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद।' एक और यातना की मार फिर कहा 'हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद' जब एक लम्बा और भद्दा, पैरों में मेखों जड़ी जूतियाँ पहना कबाइली बोला था—'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहो। एक मौका और देता हूँ। ऐ काफिर। मज़हब के गद्दार। सँभल जाओ। तोबा करो। नहीं तो मौत के घाट उतार लूँगा। मुझे तो उसी से जन्नत नसीब होगी और तमाम गुनाह भी मुआफ होंगे। मगर देख, मैं तेरी फिक्र कर रहा हूँ। आखिर है तो तू भी मेरा हमदीन...मेरा मुसलमान भाई...बदल जाओ वर्ना पूरे कायनात में ताकयामत तुम्हें दोजखों से कभी निजात मयस्सर नहीं होगी।''

मगर मक़बूल शेरवानी अपनी मातृभूमि का सपूत साबित हुआ। उसने अपनी

माँ के दूध का ऋण चुकाया और बोला, ''हिन्दुस्तान जिन्दाबाद।''

देर तक जद्दोजहद में लगे रहे कबाइली उसके साथ अगर अन्त में हार गये और शेरवानी को मार गये। शेरवानी इस भवसागर से पार गये और उधर से हिन्दुस्तान की फौज आ गयी। कैम्प की स्त्रियाँ मुक्त हुईं। कैम्प समाप्त हुआ। स्त्रियाँ लौट आयीं। मगर एक अनिश्चय के, भय के साथ, एक सन्देह के साथ!

स्त्रियाँ लौट आयीं। काकनी ने अब देखा कि लगभग-लगभग सभी गाँव के सदस्य सही-सलामत हैं! सिर्फ एक लछकुज थी जो वृद्धा थी, इस बीच सिधार गयी। तब लछकुज का बाकायदा श्राद्ध हुआ जबकि उसका दाह-संस्कार बिना किसी धार्मिक मन्त्रोच्चार और अनुष्ठान के बिना ही दयूलुन गाँव में हुआ था जबकि वह अपनी दो बहुओं के साथ बारामूला कैम्प जा रही थी। पीछे से उन्हें दो-तीन कबाइली उसी तरह हाँक रहे थे जैसे मवेशियों को हाँकते हुए ज़िबहखाने में ले जाया जाता है। बीच-बीच में वे सुन्दर स्त्रियों के अंगों के साथ छेड़ते...या उनको यातना देते।

❑❑

काकनी ने घोषणा की—''सब लोग स्नान आदि करके, मन को मन के संकल्प से ही शुद्ध करके, नन्दबब के सामने मस्तक नवा के, तहर बना के, बाँट के, पक्षियों को खिला के नया जीवन आरम्भ करेंगे।''

बैठक में तय हुआ कि सब मिलकर कच्ची ईंटें बनाएँगे तब जब वे सूखेंगी तो उनसे अपनी-अपनी झोंपड़ी बनाएँगे। उसमें रहना शुरू करने के बाद फिर इत्मीनान से सब विचार करेंगे कि, किसकी क्या जरूरत है, किसकी क्या हैसियत है और तदनुसार आगे बढ़ेंगे। हो सकता है लोगो, इस वक्त सरकार भी हमारी कुछ मदद करे।

''मुझे तो लगता है कि हिन्दुस्तान की सरकार से मदद आनी चाहिए।'' गाशा को इस घटना ने काफी गम्भीर और प्रौढ़ बनाया था और वह चिन्तनशील हो उठा था।

''क्या पता? कहाँ है हिन्दुस्तान की सरकार? कब उसको पता लगेगा हमारा? क्यों वह खबर लेगी हमारी। अगर फौज समय पर भेजी होती तो हम इस कदर तबाह न हुए होते...देखते रहिए...क्या सरकार और कौन सरकार। ये आशाएँ मत रखिए। अभी सर्दियाँ हैं। बितानी पड़ेंगी जैसे-तैसे...जौ...वौ खाकर...आगामी वसन्त में देखिए।...बन्धुओ! मेहनत करनी पड़ेगी...बहुत...बहुत मेहनत!'' गाशा ने खड़े होकर लोगों को सम्बोधित किया था। इससे उसका हमसीन द्वारिकानाथ राज़दान को भी जोश आया। खड़ा हुआ। बोला, ''जरूर हमने पाप किये थे। जरूर

हमने नन्दबब को रुष्ट किया, वर्ना हमारी रक्षा नहीं होती क्या?''

''काफी रक्षा हुई...काफी...इतने में भी नन्दबब के शुक्रगुजार रहिए।'' यह अरुन्धती की आवाज थी जो कि कैम्प से अन्य स्त्रियों के साथ वापस लौट आयी थी। इस पर बहुत से लोगों ने लम्बी-लम्बी आहें भरीं और सन्नाटा छा गया। मानो मौन विरोध प्रकट कर रहे हों और कुछ स्त्रियाँ रो पड़ीं। रो रही स्त्रियों को कोहनियाँ मार-मारकर कुछ कद्रे बड़ी स्त्रियाँ आपत्ति कर रही थीं, कि ''वे रोएँ नहीं। नहीं तो उल्टा उनकी पाकदामनी पर मर्दों या स्त्रियों को शक होगा जबकि इसमें उनका कोई दोष नहीं।

''यह बैठक इस अहद के साथ समाप्त हुई थी कि नन्दबब का अस्थापन खूब अच्छा बनाना है। वहाँ इमारत बनानी है। हवन कुण्ड बनाना है। नन्दबब को एक नियमित आय हो इसके लिए उसके नाम कुछ अलग खेत मखसूस करने हैं। सबसे बड़ी बात कि हर मंगलवार को अनिवार्य रूप से कीर्तन करना है और आगामी ज्येष्ठ अमावस को हवन करना है। इस मुफलिसी में, गरीबी में यह सम्भव है। हम यथासम्भव करेंगे।

''अभी तो खाने-पीने के लाले पड़े हैं? अनाज जो घड़ों में भरा था, लोपनों में भरा था सब जल गया और लूटा गया...एक दाना नहीं बचा है। सबके लोपन मैंने देखा तोड़े गये हैं।'' द्वारिकानाथ बोला था।

''नहीं लूट तो ज्यादा कर ही नहीं पाये। बल्कि लूट बिल्कुल ही नहीं ले पाये वे। मैं जो आधे रास्ते से लौट आयी न। मगर आग में एक-एक दाना स्वाहा हो गया। मेरे आने के बाद मुसलमान जो गाँव में लूटने की चीजों को प्राथमिकता देने के लिए इधर-उधर किंकर्तव्यविमूढ़ बिखर गये थे, बाद में भाग ही खड़े हुए थे। मगर कबाइलियों ने एक-एक घर फूँका। घास की छत से ही शुरू किया जलाना। घास की छत यही तो मुसीबत है! आगे से हमें घास की नहीं मिट्टी की छतें बनानी चाहिए।'' काकनी ने कहा था।

''मुझे देखो। मैंने अपना कपड़ों का गट्ठर और कुछ चीजें उपलों में छिपाये थे, वही सबसे पहले और सबसे अच्छी तरह जल गया। उसमें सोने की बालियाँ थीं जरूर वह भी पानी बनकर बह गया होगा...'विनाशकाले विपरीत बुद्धि...' अब आगे ईश्वर हम पर कृपा करें, दया करें। आखिर हमें अपने मातृभूमि प्रेम और स्वधर्म की विपरीत परिस्थितियों में रक्षा करने का पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए।'' पुनः काकनी ने ही बताया था।

''आप सच कहती हैं, काकनी। सुना है कुपवाड़ा में कई लोगों ने अपने को आगे किया...ज़नों-बच्च-मर्द-कि आओ। हमारे मुसलमान भाइयो। हमें अपने धर्म में दीक्षित करो। हमें इस्लाम की दीक्षा दो। हमें कुबूल है मुसलमान होना।

क्योंकि अगर जीना है तो इस्लाम कुबूल करने में ही बुद्धिमानी है। कुछ नहीं रखा इस हिन्दू धर्म में और हम समझ गये हैं कि इस्लाम दुनिया का सबसे ऊँचा धर्म है। 'नाले तखबीर अल्ला हो अकबर।' और स्त्री पुरुष त्राहि-त्राहि कर उठे थे।...हे प्रभु! हे सारिका...हे माँ राज्ञी...। त्राहि माम्। त्राहि माम्।''

''लेकिन आगे की कथा आपको पता नहीं। वह सुनिए। आप समझ रहे हैं कि उन्होंने इस्लाम कुबूल किया और छुट्टी। माने कि जान छूटी। माल बचा। असबाब बचा। ऐसा कुछ नहीं। कुछ भी नहीं बचा। कुछ भी नहीं।'' पुष्करनाथ, जिसने इस हकीकी किस्से को सुनाने की पहल की थी, भयावह त्रासद अन्त की तरफ इस कथा को ले गया।

सुनने वाले हतप्रभ। मुँह खुले के खुले रह गये। कुछ ने अपने-अपने मस्तकों पर जोर-जोर से चोटें की। कुछ स्त्रियों ने अपने-अपने सीने कूटे।

''कबाइलियों ने उनसे कहा, स्थानीयों की मदद से!—शाबाश! शाबाश भट्टो! यह हुई न बात। तो फिर ऐसा करो। बछड़ा मारो। या चितकबरी गाय काटो। बाजवान लगाओ। तुम्हारे कलमा पढ़ने का जश्न मनाया जाना चाहिए। अपने-अपने, अपने बच्चों, अपनी बीबियों, बहू-बेटियों के नाम नये सिरे से रख लो। यह रस्म जल्दी अंजाम दो। शादी के लायक बेटियों के निकाह भी अभी करने होंगे। हम आपको बताएँगे कि ये निकाह किसका किसके साथ होगा... तब यह जश्न और रस्म पूरी होगी।'' करुण गाथा हृदय विदारक बनती जा रही थी।

''भट्टों ने माना। वे बताये गये वचनों को सत्य कर दिखाना चाहते थे क्योंकि एवज में उन्हें जिन्दगी मिलती।

''वाजवान बना। भट्टों ने भी खाया। कलमा पढ़ा। कोई गुलाम डार बना, कोई गुलाम नबी बना, कोई गुलाम कादिर बना। मगर गुलाम के बिना किसी का नाम नहीं रखा गया।

''कोई जमीला बनी, कोई अशमी बनी, कोई परवीना, कोई आयशा, कोई शकीला, कोई महमूदा...।

''दावत हो चुकने पर उन्हें बताया गया कि उन्हें वे कुँआरी लड़कियाँ कबाइलियों से ब्याहनी हैं।

''अब वे विरोध नहीं कर सकते थे। विरोध क्या करते। ब्याह क्या था। सीधे भयावह और दिलदोज बलात्कार था। यहाँ तक कि एक-दो वर्ष की बच्ची को भी बख्शा नहीं गया और बलात्कार की प्रक्रिया में ही वह ठण्डी हो गयी। बलात्कार का काण्ड पूरा हो चुकने के बाद मर्दों को एक कतार में खड़ा किया गया...और तड़ तड़ तड़ तड़ गोलियों से ढेर कर दिया। स्त्रियों का बलात्कार पुरुषों के सामने हुआ था। उन्होंने मना किया था। विरोध किया था। कि यह वे क्या कर रहे थे।

यह तो गैर-इस्लामी है...। उनके विरोध को दर्ज किया गया। बलात्कार से स्त्रियों और लड़कियों को क्षत-विक्षत किया गया। अलग-अलग कतार में जब उनको खड़ा करके किसी ने कहा, यह क्या कर रहे हो? हमने तो इस्लाम कुबूल कर लिया है।''

''क्या कुबूल कर लिया...सिर अपना कुबूल किया। फिर तुम हमें अपनी औरतों से शादी करने पर रोकते नहीं। इससे हमें तुम्हारे ऊपर शक होता है। हम तुम पर विश्वास नहीं कर सकते। क्या पता कल तुम फिर से भट्ट बन जाओ...जब हम चले जाएँगे...।'' और मार दिया उन्होंने एक-एक को। पूरा गाँव भट्टों से साफ किया।

काकनी ने एक लम्बी चीख सरीखी आह निकाली।

सबके सब एक भयावहता से, कठोरतम मृत्यु की विभीषिका के साक्षात्कार से गुजरे। सब टूट चुके थे यह सुनकर। पुष्करनाथ यह गाथा इसलिए जानते थे क्योंकि वह वहाँ अध्यापक थे। प्राइमरी स्कूल के अध्यापक।

''लेकिन उन्हें अपने धर्म-परिवर्तन का आह्वान इस तरह नहीं करना चाहिए था।''

पुष्करनाथ ने तुरन्त कहा, ''हमें यह नहीं बताना है कि किसे, कहाँ, क्या करना चाहिए मैं कहता हूँ...क्या हुआ?''

''चलो ईश्वर का बहुत-बहुत धन्यवाद कि उन्हें अन्त में यातना से मुक्ति मिली...खासकर स्त्रियों को।'' कुछ स्त्रियों का यही ख्याल था। सारी की सारी स्त्रियाँ रो पड़ी थीं। इस दास्तान को सुनकर और कुपवाड़ा में अपनी-अपनी रिश्तेदारी को याद करने लगी थीं, पता नहीं कहीं उनके ही रिश्तेदार न हों...पता नहीं।

❑❑

सुधा को भी पता नहीं कि वह कब से रो रही है। आँसुओं ने उसके बालों को भिगोया है। उसकी गर्दन को भिगोया है...यह कौन रोया है? कब रोया है? कोई आवाज नहीं हुई है उसके रोने की। कितना पानी?

समन्दर समन्दर...?

कितना पानी...?

इतना पानी...!

इतना पानी...?

मेरे पास भी इतना पानी। वितस्ता भी विस्थापन कर चुकी है।

यह जम्मू में एक विचारणीय बात थी कि वितस्ता ने अपनी परम्परा तोड़ी

है। वितस्ता की परम्परा थी कि कुछ भी हो चाहे...कितना भी सूखा पड़े चाहे, पर वह समुद्र की तरह अपनी मर्यादा में रहती है। मानो समुद्र की सहोदरा हो। समुद्र से कई सौ गुण अधिक रखती हुई। मीठे जल की वाहिनी, भरपूर जल की वाहिनी, सूखे में भी हरी-भरी रहने वाली...शीतल छायादार...अपने उदर में कितनी ही सुन्दर और स्वादिष्ट मछलियों को वहन करनेवाली। और कोई सोच भी नहीं सकता था कि वितस्ता सूख जाएगी। अब अभी-अभी इसी क्षण वह बताना चाहती है भाईजान से काकनी से...''कि अब देखिए न शंकर की जटाओं का जल मेरी आँखों से बह रहा है...लाओ घड़े अपने-अपने और पानी भरो...। गंगा जल है...।''

❑❑

एकदम उसकी हिचकियाँ बँध गयीं। एक तिराहा आया। तीन तीर समझा रहे हैं कि एक तीर बारामूला जा रहा है, एक तीर संग्राम गाँव जा रहा है और एक तीर सोपोर जा रहा है...जहाँ से एक लघु तीर फिर दाहिने से लालड़ गाँव की तरफ जा रहा है। ओफ्फ! सुधा क्या देख रही है...क्या देख रही है सुधा।

'माँ मैं संग्राम के करीब हूँ। नन्दबब की परिक्रमा कर रही हूँ। माँ! मैं लालड़ के पास से गुजर रही हूँ।' उस पर एकालाप का एक दौरा पड़ा मानो।

लालड़ गाँव में उस ज्येष्ठ अमावस का उसका भाई रात भर रहा था जब वह मेले में खो गया था। दरअसल वह नन्हा-सा लड़का अपनी मासी का पीछा तब तक करता रहा जब तक कि ताँगा सोपोर की तरफ न मुड़ा और वह बीच राह में खो गया। उसकी मासी की नजर उस पर अन्त तक न पड़ी। मासटॉठी अठूर जा रही थी ताँगे में। अपने इष्टदेव नन्दबब के यहाँ हाजिरी लगाने के बाद। सुधा का भाई बीच रास्ते में फूट-फूट कर रोने लगा। तब एक और परिवार ताँगे पर बैठा वहाँ से गुजरा। उन्होंने देखा कि किसी का बच्चा खो गया है। ताँगे से उतरकर उस परिवार के मुखिया ने पूछा, ''कौन हो तुम? रो क्यों रहे हो? यहाँ से कहाँ जा रहे हो, किसके यहाँ जाना है उसे।'' वह सज्जन समझ गये कि बच्चा मेले में खो गया है।

''मेरी मौसी अठूर में रहती है...मैं अठूर जाना चाहता था। मैं उनके ताँगे के पीछे-पीछे दौड़ रहा था...।''

''बड़ी विचित्र है तुम्हारी मौसी। उसने देखा नहीं?''

''नहीं देखा। दरअसल मैं शैतानी से आया था। किसी की इजाजत से नहीं...मैं शहर में रहता हूँ...गाशा...मेरा चाचा है...।''

''तो कोई बात नहीं। तुम इस समय हमारे साथ आओ। सुबह तुम्हें सुरक्षित रूप से या संग्राम भेजेंगे...या अठूर। तुम्हें तो संग्राम में सब ढूँढ़ रहे होंगे। गाशा

का असली नाम क्या है...?''

''गाशा।''

''नहीं असली नाम?''

''गाशा ही है असली नाम।'' तब वह सज्जन चुप रहा। समझ गया बच्चा नहीं जानता कि क्या है उसका असली नाम। बच्चा चुपचाप उनके पास रह गया। रात आँखों-आँखों में ही कटी, सोच-सोचकर कि शहर में उसकी माँ नहीं जानती कि फिलहाल उसका बेटा मेले में खो गया है। नानी यानी काकनी तो बचेगी नहीं।

अबके सुधा की माँ ने शहर से सुधा और उसके भाई को ही मेले में भेजा था खुद नहीं आयी थी, पर यहाँ देखो उसके लाडले ने क्या गुल खिलाये।

सुधा की नानी सारी रात पागलों की तरह सड़क पर लोटती रही। नन्दबब से प्रार्थनाएँ करती रही...विचित्र-विचित्र शब्दों में।

गाशा काकनी को मनाता रहा, सान्त्वनाएँ देता रहा।

''काकनी चिन्ता नहीं करो। वह कहीं नहीं गया। अठूर गया होगा। सुबह मैं उसे लेकर आऊँगा।''

काकनी को सान्त्वनाएँ देने भाईजान आये थे, शोभी आयी थी। भाईजान की दो बेटियाँ आयी थीं—राधा और तुलसी। पर काकनी ने कहा था, ''नहीं, मैं उसे लेकर ही अन्दर वट्टू में जाऊँगी अब...नहीं तो नहीं जाऊँगी कभी वट्टू में, मुझे मजबूर मत करो। मत करो मुझे परेशान भगवान के लिए। छोड़ दो मुझे। तड़पने दो मुझे। मैं इसी लायक हूँ। मैं अपने बच्चे का ध्यान नहीं रख सकी।

''हाय क्या मुँह दिखाऊँगी मैं अपनी बेटी को, भट्टिनी को। पूरण को। जिनकी जान उनके नन्हे बेटे में ही रहती है।'' काकनी पर मानो व्यग्रता का दौरा पड़ता रह-रहकर और वह सड़क की धूल पर लोट-लोट जाती। उसे क्या हो गया था। क्या तीव्र दु:ख में माया के छलावे और छायाएँ मिटती हैं? क्या तीव्र वेदना में माया की माया मिटती है? शायद।''

सुधा गवाह है। केवल सुधा गवाह है। जो तड़पी थी सारी रात काकनी का तड़पना देखकर। भाईजान के घर में व्याप्त भयावह चिन्ता को देखकर और सोचकर कि माँ शहर में निश्चिन्त होकर पिता की बगल में सोयी होगी। पता नहीं क्या सपने देख रही होगी माँ इस समय...नींद में!

❑❑

—ॐ नन्दिरुद्राय नमो नम:।

—ॐ नन्दिकेश्वराय नमो नम:।

—ॐ श्रीशंकराय नमो नम:।

पौ फटने की तैयारी थी। गाशा मन्त्रोच्चार कर रहा था। फिर-फिर मन्त्रोच्चार कर रहा था। गाँव की कोयल का और कोयल की बहू बेटियों का गाना शुरू हुआ था।

—गुगूस्गू।
—हे दोस्त तू।
—माजिलोयनम
—काजि वट सॉत्य
—मासि लोयनम
—घास तुलि सॉत्य
—बेन्य लोयनम
—किन्य कानि सॉत्य
—गुगूस्गू
—हे दोस्त तू...
—गुगूस्गू! हे दोस्त (तू कहाँ है)
—माँ ने मारा सिलवट्टे से
—मासी ने मारा (झूठ-मूठ) घास के तृण से
—बहन ने मारा महीन तीली से...और सुधा मन-ही-मन कोयल के गाने का अनुशीलन कर रही है...आलोचना कर रही है उसके शब्दों का...कि मासी ने यों ही मारा...झूठमूठ...कितनी प्यार करनेवाली होती है मासी। जिस मासी के पीछे उसका भाई गया और पता नहीं कहाँ खो गया। इसलिए मासी का जिक्र कर-कर के कोयल सुधा की आत्मा का छेदन कर रही है। अद्‌भुत गायन कर रही है कोयल।

सुधा मानो कहती है, "अभी मेरी वेदना बढ़ रही है तेरे गान से। भगवान के लिए कोयल...अभी कुछ मौन रहो। तुम्हें नन्दबब की कसम। कोयल! मैं जानती हूँ कि तू जानती है कि मेरा भाई ठीक-ठाक है, सही-सलामत है। पर मुझे नहीं न मालूम। देख मेरी नानी का हाल। देख इस घर का हाल। देख गाँव का हाल और देख कोयल सबसे बड़ी बात कि शहर में माँ को कुछ भी नहीं पता। तू चुप हो कुछ देर मेरी कोयल रानी। भाई आएगा तो खूब गाएँगे...झूमेंगे...नाचेंगे...।"

मन्त्र गाते हुए गाशा आ रहा था। उसने माथे पर नन्दबब की मिट्टी का तिलक लगाया था। वह सीधे अपने कमरे में गया और रस्सी पर से पहले ही बेल्टसमेत पतलून उतारी और पहनने लगा। उसने इस प्रक्रिया में देखा कि सुधा मर्मान्तक उदासी से भरी आँखों से उसे देख रही थी।

"दिद्दा तुम?" गाशा ने कमीज की जेब से छोटी-सी कंघी निकालकर बालों पर फेरते हुए कहा।

"तुम परेशान मत हो बेटा। क्या तुम भी सारी रात नहीं सोयी? मैं सारी रात काकनी के साथ सड़क पर ही लेटा रहा। क्या करता। सुबह का इन्तजार करना था ही।" सुधा फूट-फूटकर रोने लगी।

गाशा ने सँभाला, "रोते नहीं बेटा। रोना अशुभ होता है। मुझे पता है न कि वह ठीक होगा और अभी वह मेरे साथ आएगा।"

गाशा ने अपनी जावा मोटर साइकिल स्टार्ट की... फट् फट् फट् फट्...मानो बस जीवन को आरम्भ मिल गया हो...एक शुभारम्भ।

दस बजे जब दूर से गाँव में फट् फट् फट् फट् की आवाज आने लगी, सारे गाँव के कान खड़े हो गये। सुधा के रोंगटे फिर एक बार खड़े हो गये। काकनी ने आखिरी साँसों की तरह साँसें लेनी शुरू कीं और नन्दबब से लेन-देन—पता नहीं गाशा ने क्या किया होगा...उसे अपने साथ लाया होगा...या...पर देखो मोटर साइकिल की फट-फट की धाक ही बता रही है, गाँव के लोग सोच रहे थे एक साथ।

"वह आ गया। गाशाजी उसे ले आया है।" प्रभावती का कुकू अपनी निकर एक हाथ से पकड़े और दूसरे हाथ से अपनी बह रही नाक पोंछते हुए बता रहा था। "मैंने उसे काव-मुहल्ले में देखा। गाशाजी ने वहाँ मोटर साइकिल रोकी। हकीम साहब से कुछ जरूरी बातें कर रहे हैं...अभी आएँगे।"....खबर पूरी की कुकू ने।

आँगन में जावा मोटर साइकिल रुक गयी। गाशा ने उसे अपने सामने बिठाया था। वह बड़े ठाठ से मोटर साइकिल से उतर गया था, मानो वी.आई.पी. हो।

गाँव में खुशी का मौसम छा गया था।

काकनी अपने धरने को समाप्त घोषित कर चुकी थी और उठी थी। नन्दबब से उसका सौदा सही रहा था। अपनी लूंग्य के छोर से बिच्छू घास के एक विशाल झंखाड़ में से एक गुच्छा काटा और आगे बढ़ी।

सुधा देखना चाहती थी कि काकनी कैसे लौटेगी जीवन में वापस। यह दिलचस्प होगा। वह काकनी के अगल-बगल चल रही थी और पूछने लगी, "इसका क्या करोगी काकनी?"

कुछ नहीं। तू चुप रह। तुझे भी लगाऊँगी और आइन्दा तुम्हें कभी नहीं बुलाऊँगी संग्राम।" सुधा समझ गयी कि बिच्छू घास उसके भाई के लिए काटी जा रही है।

अब वह अपने वट्टू में घुस गयी। तौलिये में बिच्छू घास का गुच्छा तैयार रखा। अभी गाशा सुधा के भाई को लेकर आएगा।

काकनी इस बीच अपने कपड़े देखने लगी ताकि नहाने के बाद पहन ले।

एक बँधा-बँधाया तरंग पेटी में से धीरे-धीरे निकालने लगी।

❑❑

गाशा का हाथ पकड़े बिट्टू आ गया। पीछे-पीछे प्रभावती का कुकू और शोभी थी। बिट्टू पलकें झुकाये हुए था। शर्मिन्दगी थी, ऐसा लग रहा था।

"चलो काकनी के चरण छू लो।" गाशा ने आज्ञा की।

"नहीं।" उसने इशारे से ही इनकार किया।

काकनी ने तुरन्त बिच्छू घास का गुच्छा तौलिये से पकड़कर उठाया और उसे लगाने का उपक्रम करने लगी। वह गाशा का हाथ छुड़ा के दूर हट गया।

"यह क्या कर रही हो सतीद्यदी।" शोभी ने साधिकार टोका।

"गाशा, इसने मेरा खून पिया। यह मासी के पीछे-पीछे किसकी आज्ञा से गया था? अच्छा किया जो इसकी मासी ने इसकी तरफ देखा भी नहीं।" शायद काकनी के कपोलों पर सुख का अमृत गिर रहा था।

गाशा ने बिच्छू घास का गुच्छा उठाकर वट्टू के रोशनदान से दूर एक बिच्छू घास के ही कुंज में फेंक दिया।

"यह अठूर नहीं गया था। मैं सीधे क्रीरी की तरफ दौड़ रहा था कि एक सज्जन लालड़ की सड़क के किनारे इसका हाथ पकड़े खड़ा दिखा। मैंने सोचा हो न हो यह हमारा बिट्टू है, पर दूर से कुछ तय न कर पाया। मैंने मोटर साइकिल धीमी की। अरे बिट्टू ही तो है। एकदम। सचमुच।"

मैं पास आ गया। यह मुझे देखकर खुशी से उछल गया और मेरे स्कूटर पर बैठ गया और रोने लगा..."गाशाजी...गाशा...गाशा...ऊँ ऊँ ऊँ...। रो पड़ा।"

"तू कहाँ गया था?"

"मुझे क्या पता था कि मासटॉठी मुझे नहीं देखेगी।"

"अरे वह लालड़ का महादेव था काकनी।"

"महादेव-लालड़ी? अपना रिश्तेदार।"

"एकदम। पर उसे पता नहीं चला था कि यह किनका बच्चा है। इसने मेरा असली नाम भी वहाँ गाशा ही बताया...मुझे देखकर वह चौंक गया—अरे ब्रजनाथ जी। तुम। क्या यह आपका बच्चा है...मुझे क्या पता। मैं इससे पूछ रहा था पर जो कुछ इसने बताया मेरे पल्ले नहीं पड़ा कुछ। अब मैं उठकर इसे सुबह-सुबह अठूर जा रहा था और श्रीनगर की गाड़ी का इन्तजार कर रहा था कि हम उसमें बैठकर क्रीरी में उतरकर फिर ताँगे से अठूर जाएँ कि इतने में आप दिखाई दिये। रातभर यह सोया नहीं। नहीं कुछ खाया-पिया। हम सब घर में परेशान रहे। सोचते रहे कि जिनका यह है, वे कैसे छटपटा रहे होंगे रातभर इसकी चिन्ता में! खैर

अब आप दिखे...।''

''मैंने उसका धन्यवाद किया और वापस मोटर साइकिल मोड़ने लगा। पर महादेव ने माना नहीं। कहा कि अब वह हमें शीरचाय और चावल की रोटी खिलाये बिना जाने नहीं देगा। हम रुक गये। चाय पी। मैं सोच रहा था कि तुम लोग यहाँ चिन्ता कर रहे हो ही तो चलो एक घण्टा और सही। अभी हम सारे सुख को लेकर गाँव वापस आ ही तो रहे हैं।''

काकनी भरसक रो पड़ी। गाशा को जोर से अपने हृदय से लगाया। गाशा और उसकी अजीब साझेदारी थी।

''बेटा अब इन दोनों को शहर छोड़ आ।''

''क्यों?''

''बस मुझे डर लगने लगा है। पहुँच जाएँगे अपनी माँ के पास। मैं मुक्त हो जाऊँगी। किसी पराये के बच्चों की जिम्मेदारी लेने लायक न मेरी हिम्मत है न किस्मत।''

❑❑

शाम को गाशा की जावा मोटर साइकिल पर बैठकर दोनों बच्चे सुधा और बिट्टू वापस शहर आये। भट्टिनी सुनकर नन्दबब का धन्यवाद करते-करते मानो कर्तव्यमुक्त न हो पा रही हो और शाम को गाशा को भोजन कराते हुए बोली, ''गाशाजी, आप ही साक्षात् नन्दबब हो। सचमुच स्वयं नन्दबब हो आप। मैं सच कहती हूँ...जानती हूँ...हाय मेरी बूढ़ी बेचारी विधवा अकेली माँ। हे प्रभु! मैं निश्चिन्त थी यहाँ। मनुष्य को कभी भी निर्भीक और मस्त नहीं रहना चाहिए। हर क्षण तुम्हारी शरण में रहना चाहिए। मेरे नन्दबब।''

उस रात भट्टिनी ने खास रोगनजोश और कलिया बनाया था। सोचल और मशरूम बनाये थे। बहुत स्वादिष्ट बना था सब कुछ गाशा के लिए मानो श्रद्धा से नन्दबब का भोग लगाना हो। अतः श्रद्धा-प्रेम-भक्ति में कोई कोताही न हो।

सुधा लिहाफ में दुबकी कल की रात याद कर रही थी। काकनी के जीवन में कितनी ही ऐसी भयावह रातें आयी हैं, पर अन्त भला सो भला।

काश। हर दुःख की परिणति सुख ही होती हो। शायद होती भी है, पर समझने की कोताही।

क्या जिन्दगी थी? क्या मसालों की गन्ध थी? क्या दहकते चूल्हे थे। क्या भोजन पकाते बर्तन थे? कबाइलियों के बाद जीवन अपनी धाक के साथ शुरू हुआ था और अनथक चल रहा था। मस्त। शायद विस्मृति का वही एक भयावह कारण था।

सुधा को याद आ रहा है, ''हमें कभी मस्त नहीं हो जाना चाहिए...कभी नहीं...सदा निर्भीक नहीं रहना चाहिए...नन्दबब की शरण में सदा रहना चाहिए'' उस दिन माँ ने कहा था।

'माँ आज लालड़ भी खोया है, संग्राम भी,...यह जमीन...यह आसमान भी...हम भी।...यह जमीन हमारी...यह आसमान हमारा...आहा हा...यह है प्रीत भरा...गीत भरा...गाँव हमारा...यह जमीन हमारी...यह आसमान...हमारा...आहा हा...देखो ना...ज़मीन भी है यहीं...आसमान भी...है यहाँ ही...फिर हम ही कहाँ है...आखिर खो क्या गया है माँ...।' सुधा पर एकालाप का जबरदस्त दौरा पड़ गया। 'क्या कुछ भी नहीं है हमारा? हमारे पास क्या प्रमाण है...क्या सबूत है कि यह सहस्राब्दियों से था हमारा देश।'

'जबकि हुर्रत के पास है। फरहत के पास है। इज़ाबेला के पास है। इन सबके पास है।'

'अभी शाम को ये घर जाएँगी। कल इन दुकानों से साग खरीदेंगी। नदरू खरीदेंगी...देचगी में डाल कर पकाएँगी...खाएँगी ...आसमान को देखेंगी...ज़मीन पर चलेंगी।'

सुधा चाहती है कि वह भी साग और नदरू खरीदे और घर जाकर भगोने में पकाए। खाए। खिलाए। पर वहाँ की किसी दुकान से कुछ नहीं खरीद सकती वह। किस देगची में, किस चूल्हे पर उसे पकाएगी वह। कहाँ खाएगी...किसके साथ। सुधा का सान्निध्य खो गया है...यहाँ तक कि निर्जीव चीजें भी उसके लिए सप्राण हो उठीं। वह सब्जियों का सब्जार, गन्ध, देगचियों की कालिख, चूल्हे में जलती हुई लकड़ियाँ, मुँह में डालते हुए कौर, पता नहीं क्या-क्या...हास्यास्पद...मारक पुरातत्त्व की तरह याद कर रही है मानो सुधा स्वयं पुरातत्त्व की एक विशाल आगार हो गयी हो।...'बन्धुओ, अगर मुझे जलाओगे...तुम एक बहुत विशाल पुरातत्त्व भण्डार जलाओगे। तुम अनमोल वस्तुओं का खजाना जलाओगे...मुझे नहीं।'

'जलाना...बिल्कुल नहीं...और मैं मरूँगी भी नहीं लोगो।'

ये सुधा के भीतरी विलाप कभी सुधा को भीषण वितृष्णा से भी भर देते हैं। इतना बोझ उसे कभी-कभी काफी बोझिल और उबाऊ बना देता है कि वह सब कुछ झाड़कर हल्का हो जाना चाहती है।

❑❑

जीप इस तिराहे पर रोक ली गयी थी। पता नहीं क्यों। नहीं नहीं इसलिए कि सुमोना को तस्वीरें खींचनी थीं। कोयल गा रही थी...अभी दोपहर के समय।

'गुगूस्नू हा दोस्त तू (सुन)।' किस दोस्त को सुना रही है तू ऐ कोयल

यही गान सदियों से...या आदि से? कौन है यह तेरा बेवफा दोस्त?'' पूछा सुधा ने आज कोयल से और फिर बोली, ''उफ् स्त्रियों में भी एक सार्वभौम बीमारी है कि 'जो ही बेवफा निकले उसी को तुम अपनी वफा बख्शो। यह भी खूब रही कोयल। लेकिन अभी तुम मुझे दिल्ली में भी मिली थी जब यूक्लिपटस और आम के पेड़ों पर बैठकर तू गा रही थी यही गान—गुगूस्तू! हा दोस्त तू...सुन! मैं ठिठक गयी थी भई।'

'बोलो कैसी हो बहन? कैसी हो मेरी मैं तुम। कोई नहीं समझता यहाँ तुम्हारी भाषा...पर अच्छा है तुम्हारा साहस के साथ गाना—गुगूस्तू। हा दोस्त तू (सुन)।'

''तुमको मैंने उस दिन पूछा था कि क्यों आयीं तुम इधर? तुमने कहा था, सुधा जिसे छोड़कर आयी हो स्वर्ग की संज्ञा देकर, वह स्वर्ग नहीं। इस माया का खेल यह भी है। ईश्वर का व्यसन यह भी है कि स्वर्ग को खून से रँगा जाए और जहन्नुम कहलाया जाए और मरु को इतना शीतल किया जाए...भयमुक्त कि भयभीत लोग झपकियाँ लें, उसमें सहमे लोग अपना भय और थकान निकालने के लिए निर्भय जहाँ-तहाँ बैठ जाएँ, लोट जाएँ और धीरे-धीरे मरु स्वर्ग बन जाए। सच! हाँ तभी तो चली आयी इधर तुम्हारे पास दिल्ली।''

''तो तुम मेरे पीछे-पीछे ही क्यों चली आयी हो यहाँ...क्या तुम भी सुधा हो। सुधा कोयल। शायद तुम गा रही हो पर्वतों के पेड़ों पर...पर अभी शाम का बसेरा नहीं...पतझड़ का सवेरा और दोपहर है...और तुम तो पहले ही मुक्त हो...कोई सुमोना तुम्हारे साथ नहीं या कोई इज़ा या गुलशन या हुर्रत। देखो तुम गा रही हो और मैं रो भी नहीं सकती। कभी-कभी लगता है कि मेरा रोना ये लोग अपना गायन या सफलता न समझें। समझते होंगे। मन के भीतरी मन में समझते होंगे।''

❑❑

कोयल उस दिन भी खूब-खूब गा रही थी, जन्तर-मन्तर के पेड़ों पर, जब अभी-अभी बेघर हुए लोगों ने तीसरी बार एक विशाल जुलूस लाल किला से शुरू किया था और जन्तर-मन्तर पर समाप्त किया था।

फोटोग्राफरों की भीड़ लगी थी। पत्रकारों की भीड़ लगी थी। फोटोग्राफर कुछ ज्यादा ही पगलाये थे।

'जन्तर-मन्तर पर सबने भाषण किया था। ऐरों-गैरों ने भी। हमारी परम्परा किसी नेता के न होने की थी/ है। हमारी परम्परा सबके नेता होने की है/थी।' सुधा के आत्मालाप की एक नयी खेप शुरू हुई।

अगले दिन अखबार रैली के चित्रों से भरे पड़े थे। सम्पादकीयों से। खबरों से।

ये लोग सलीकेदार हैं। कदाचित् इतने सभ्य समाज की रैली दिल्ली की सड़कों ने प्रथम बार देखी है। वे अपना हक माँग रहे थे। अपने अधिकार माँग रहे थे।

उनकी स्त्रियाँ बेहद सुन्दर हैं। वे लोग बेहद मीठा बोलते हैं। हाँ अपनी मातृभूमि से अभी चन्द दिनों के अलगाव से ही भावुक थे, दु:खी थे। बेहद भावुक। कि क्रोध की जगह उनकी आँखों में बार-बार आँसू आ रहे थे। नौजवान कद्रे कुछ गर्म खून रखते हैं। मगर बुजुर्ग बिल्कुल आवेशहीन, शान्त संयत। एक बुजुर्ग से बात की तो वह बोले, ''हम दाँतों के बीच जीभ की तरह रहते थे।''

''सहिष्णु सिर्फ हम थे। सिर्फ हम।

''सहिष्णुता एक रणनीति होती है, कोई बड़प्पन शायद नहीं और हमें सिर्फ यही रणनीति अपनानी पड़ी और सफलता से अपनायी लेकिन उन्हें हमारा यह रणनीति सफलता से अपनाना भी रास नहीं आया, पसन्द नहीं आया।

''हिन्दुस्तान कहता है, मानता है और मनवाता है कि कश्मीर में दोतरफा सहिष्णुता है...पर ऐसा कतई नहीं था। यह एकतरफा सहिष्णुता तथा तदनुसार एकतरफा धर्म-निरपेक्षता थी। हमारी कमाई भी वे ही लूटते थे। किसी को नहीं पता कि यह साम्प्रदायिक सौहार्द, जिसकी शेष देश में मिसाल दी जाती थी, इसके लिए हम हर पल कितनी कीमत अदा करते थे। अपनी बुद्धि से। मगर उन्होंने बुद्धि को भी बन्दूक से परास्त किया। बर्बरता, पाशविकता से। सहिष्णुता को भी उन्होंने नहीं सहा...कमाल किया।''

एक अखबार ने लिखा था, ''वे इतना कुछ होने के बावजूद वहाँ की बहुसंख्या के खिलाफ कुछ नहीं बोलते। एक शब्द भी नहीं। वे कहते हैं—हम धर्मान्ध तब भी नहीं हुए...देखिए।''

कुछ सदस्यों ने अपने चित्र खींचने की इजाज़त नहीं दी। बोले, ''वे वहाँ देखेंगे। उन्हें गुस्सा आएगा। आखिर हमें वापस जाना है। हम शेष भारत का यह भयंकर तापमान नहीं झेल सकते। हम मर जाएँगे। इसलिए हम उनको नाराज नहीं कर सकते। कृपया हमारे चित्र न खींचें। यदि खींचें भी तो कृपया उन्हें अपने पत्रों में मत छापिए। हमारा सोचिए। देखिए हम इसलिए भाग आये हैं कि राजा की सरकार को हालात की गम्भीरता का कुछ अन्दाज हो और वह वहाँ पर हालात ठीक करने की आभियान्त्रिकी जोरों से शुरू कर दें, ताकि हम अपने घरों को शान्तिपूर्वक वापस जाएँ और भयरहित जीवन वहाँ जी सकें। हमें दिल्ली या अन्य शहरों में रहने का शौक नहीं। मगर भारत सरकार को कश्मीर के हालात को असली

जाविए से समझने की जरा भी तमीज नहीं...उन्हें रुबैया सैय्यद को नहीं छोड़ना चाहिए था। यह भारत के इतिहास में वैसी ही भूल है जैसी कि अंग्रेजों के लिए भारत का प्रवेश-द्वार खोलना। गृहमन्त्री की एक अदना-सी बेटी के लिए एक कौम तबाह हुई। लाखों पण्डित बेघर हुए...बर्बाद हुए...बेघरी की कितनी ही दुःख की परतें हैं, क्या यह सरकार जानती है? क्या रुबैया सैय्यद इस देश पर न्योछावर नहीं हो सकती? जबकि उसका (गद्दार सिद्ध हो चुका) बाप गद्दी पर बैठा राज्य कर रहा है। वाह रे...हिन्दुस्तान! तेरी...ऐसी की तैसी...।''

—वे गाते! 'ऐ काफिरो! ऐ ज़ालिमो। कश्मीर हमारा छोड़ दो।'

'हम क्या चाहते—आजादी।'

'आज़ादी का मतलब क्या, लाइलाएइलल्ला''

'असि छु बनावुन पाकिस्तान, भटव रोस तअ बटन्यव सान।'

यानी हमें पाकिस्तान में विलय चाहिए, मगर मयभट्टिनियों के और बगैर भट्टों के।

सुधा के सामने ही यह साक्षात्कार बलजी नाथ नाम के एक अधेड़ व्यक्ति ने कश्मीर भवन के अहाते में 'जनसत्ता' को दिया था। बगल में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का पत्रकार भी एक-एक बात दोहरा रहा था और अगले दिन ये सारी बातें तरतीब से इन दोनों पत्रों में आयी थीं।

—सम्पादकीय थे...सच्चाई को रोल और गोल करते हुए किन्तु कुछ सच्चाई से भरे भी। अलग-अलग अखबारों की अलग-अलग राष्ट्र के प्रति नीयत को दर्शाते हुए जो कि सिर्फ कश्मीरी भट्ट ही समझते हैं/थे। न कि देश के सभी नागरिक। एक खबर थी, कश्मीरी पण्डितों पर राजनीति करते भाजपाई। जाहिर है कि यह काँग्रेसोन्मुख अखबार में प्रकाशित काँग्रेस के पेट का दर्द था। वाह वाह एक खबर थी, कश्मीरी पण्डित शरणार्थियों को मुहरे बना रहे उन्नीस सौ सैंतालीस में कश्मीर छोड़कर आये कश्मीरी पण्डित।

दुःख है कि परतों पर परतें चढ़ाता जा रहा है अनथक। एक समस्या के निराकरण की कोशिश में जन्म लेती हैं हजारों समस्याएँ।

''अरे यह क्या? यह किसने छपवाया। ऐसा नहीं करना चाहिए था। नहीं नहीं, यह शोभा नहीं देता...कतई ज़ेब नहीं देता यह। देखो जब वे लोग यह पढ़ेंगे तो खुश हो उठेंगे। हमें आपस में संगठित रहना चाहिए।'' समिति का एक वरिष्ठ सदस्य शरणार्थियों को सम्बोधित करता है।

और यह सुधा को क्या हो गया है? अपनी भीतरी तरंगों से कहाँ से कहाँ फेंकी जा रही है, तूफान में एक छोटी-सी नियन्त्रणविहीन नाव की तरह। तोबा।

❑❑

सुमोना चित्र ले चुकी थी और खुद को सीट में ठीक से बिठा रही थी...।

''चलिए गुलामा जी'' सुनकर ध्यान टूटा था सुधा का और कोई मानो कहता है, ''सुधा तुम्हें क्या हो गया है। इतनी परास्त? उदास आलापों से तुम्हारा निरन्तर पीछा हो रहा है। उदास गीतों में तुम भीग-भीग और डूब जाती हो प्रायः। प्रायः चाहती हो तुम कि कुछ परतें तो हटायी जा सकें। मगर हटा नहीं पाती हो...बल्कि और और चढ़ती जा रही हैं उल्टे।''

''क्यों? क्योंकि आगे जो आएगा वह संग्राम गाँव है। संग्राम हाँ। यानी कि तुम्हारा गाँव।''

सुधा का गाँव, जिसकी उस सड़क पर उस रात धूल में लोटती रही थी काकनी...और सुधा सोचने लगी कि उसी सड़क से आयी होगी काकनी दुलहन बनकर वहाँ। उसी सड़क पर अपनी मेखें जड़ी जूतियाँ पहने आये कबाइली और काकनी ने देखा कि उन्होंने धूल भी गाँव की धुएँ में तब्दील की। उसी सड़क से तुम भी चल पड़ी होगी न उस दिन बारामूला के कैम्प की तरफ जबकि तुम नन्दबब की दया से आधे रास्ते से ही लौट आयी थी।

''नन्दबब की दया? कैसी यह दया काकनी? यह सब पर होती तो कितना अच्छा होता। सब पर होनी चाहिए थी न। है न। पर तुम अक्सर कहती...ऐसे ईश-निन्दा नहीं करते दिद्दा ओ। नन्दबब की कृपा सब पर थी। सभी पर हाँ। गाँव का नुकसान हुआ पर सब सदस्य ठीक-ठीक बने रहें। अब स्त्रियों का क्या करें। स्त्री-देह ही विचित्र है न? इसलिए वह बात काटो। उसमें नन्दबब भी कुछ नहीं कर सकते।''

''काकनी! क्या नन्दबब की कोई पत्नी है? अगर है तो क्या है उसका नाम? कौन है?''

''है न। क्यों नहीं है। क्या तुम्हें लगता है कि ईश्वर से लेकर पत्थर के नीचे के कीड़े तक कोई स्त्रीविहीन रह सकता है—कोई नहीं दिद्दा। नन्दबब की पत्नी है न मंगला...मंगला...कितना मधुर नाम है...मंगला सहिताय...नन्दिकेश्वराय नमो नमः।''

''अच्छा यह गुरु-मन्त्र है?''

''हाँ है न...मेरी सास ने दिया है। वह परमहंस हो गयी थी। एकादशी के दिन। कुछ घण्टे पूर्व अपने आसन्न-अवसान का एलान किया। कहा जगह लीप दो।...दूब बिछाओ...दीप जलाओ...मैं जा रही हूँ।''

तोबा तोबा सत्ययुग। संग्राम में कभी सत्ययुग भी रहा है। यह सत्य है।

❑❑

''अब वहाँ क्या है? क्या होगा सुमोना? मुझे जाने दो न अपने गाँव। बस दो क्षण। मुझे नन्दबब का लोल आया है। सुमोना, मैं यहाँ तक आयी और उस तक पहुँचे बिना ही लौट गयी...वह कितना क्षुब्ध होगा। सुमोना...ओ सुमोना।''

वह फिर आँसुओं में भीग उठी। पिछले दिनों कश्मीर में जब सुधा का भाई था तो सुधा ने पूछा था, ''कैसे सह लेते हो भैया। अपना वहाँ होना। यह तो अविश्वसनीय है।''

''अरे दिद्दा! तुम विश्वास नहीं करोगी कि मैं संग्राम गया था। नन्दबब! मगर दुःखी होकर लौटा। केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस बल के वहाँ होने के बावजूद वहाँ कुछ भी सुरक्षित नहीं। पीछे ईदगाह की वह दीवार तोड़ कर ईदगाह का इलाका मन्दिर के साथ मिलाया गया है। यह सब जमाते इस्लामी की शह पर हुआ है। सोपोर में जमाते इस्लामी का जोर है न, वह प्रभाव संग्राम में भी वैसा ही है। इस तरह मन्दिर की हदबन्दी का निशान मिटाया है उन्होंने। नन्दबब वाले वितस्ता घाट से वे बेरोक मछलियाँ पकड़ते हैं और शिकारे चलाते हैं। पार श्मशान की भूमि पर भी बोर्ड लगाया गया है, प्रापर्टी अहलेइस्लाम।''

''वाह। वाह। यों ही लूट है जी।''

''अब तुम भी अजीब हो। लूट तो है ही। कौन रोक सकता है उन्हें भला। पहले एक-आध मुर्दा जला ही करता था श्मशान में, पर देखो न श्मशान भूमियाँ भी सुनसान और उदास हो उठीं।''

''पुलिसबल फिर क्यों है वहाँ?''

''अपनी ड्यूटी कर रही है।''

''तो वे भी उन जमाते इस्लामी के आतंकवादियों से डरते हैं, चुप हैं... ?''

''क्या करेंगे...बिला वजह भी वे लोग उन्हें मानवाधिकारों की अदालतों में घसीटते हैं...इसलिए करेंगे क्या। लोग विरोध करते...पर लोग वहाँ हैं नहीं। विरोध कौन करेगा।''

''नन्दबब का बाग?''

''बाग ढूँढ़ो तुम। भट्टों के बाग कहीं नहीं, तुम नन्दबब के बाग की खबर पूछती हो। अरे धर्म बचता है धार्मिकों से। ईश्वर बचता है भक्तों से। जब तुम नहीं तो हम नहीं।''

''कमाल है भैया। तुम्हें कैसा लगा सब कुछ?''

''बहुत खराब। बहुत-बहुत खराब। बस टूटे हुए दिल के साथ लौट आया श्रीनगर। रात-भर नींद नहीं आयी। रोया...रोता रहा...क्या...क्या याद आया, सोया तो सपने भी भयावह, उल्टे-सीधे, बेसिर-पैर। सुबह-सुबह इंस्पेक्टर इक़बाल से कह दिया, ''मैं जरा जम्मू जाता हूँ दो दिनों के लिए बच्चों के पास। और

आया...यहाँ पहुँचते ही साँस में साँस आयी-सी महसूस हुई।''

❑❑

''क्या मेरी साँस निकल ही जाएगी वहाँ? सुमोना मैं कुछ नहीं बोलूँगी। कुछ भी नहीं। सिर्फ देखूँगी। देखूँगी वह सड़क। क्या पता कौन-कौन योद्धा चले होंगे उन सड़कों पर या क्या पता कौन-कौन योद्धा...गुजरे होंगे उन सड़कों से। ठीक उसी सड़क से जिस पर काकनी ने रात काटी थी अभी-अभी...आधुनिक युग में...अभी कल की ही बात है...।''

''दामन में थी बहार—अभी कल की बात है सुमोना। रंगीन था अपना प्यार—अभी कल ही की बात है।''

''संग्राम आ चुका। आ चुका। तैयार हो जाओ सुधा...आँखें बड़ी-बड़ी करो और देख लो। क्या-क्या देखना है, देख लो। रोना बन्द कर दो और देख लो।''

''हे मेरे नन्दबब मैं! मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकती। कुछ भी नहीं। शायद हमारा ईश्वर और हम आपस में विरही हैं। एक-दूसरे के कभी भी काम नहीं आते। नन्दबब ओ नन्दबब! ओ इज़ा! ओ हुर्रत! ओ गुलशन। देखो देखो देखो देखो तो यह रास्ता जाता है नन्दबबुन। ठीक यही रास्ता। इस ब्रह्माण्ड का एकमात्र मुक्ति-पथ। तुम सब क्या जानो...ओ...ओ...।''

''पानी पियो सुधा...संयत हो जाओ। हम समझती हैं तुम्हारा दुःख।'' इज़ा बोल रही थी। सुधा को पूरी तरह से अपने हृदय से लगाते हुए। सीने से सटाये हुए। उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए। इज़ा को मानो उस पीड़ा का गहन इल्म हो कि जब होती है तो शरीर का रोम-रोम उड़ता है,...फड़कता है...बुरी तरह से दुःखता है...मानो एक-एक रोम एक-एक स्वतन्त्र शरीर हो उठा हो।

''पानी पी लो सुधा...इस तरह मर जाओगी...गुलामा गाड़ी रोकिए...सुमोना गाड़ी रोको।'' और झटके से गाड़ी रुक गयी। इज़ा ने गाड़ी का दरवाजा खोला।

''उतर जाओ सुधा। उतरो। ठीक से देखो।'' इज़ा फिर बोली।

सुधा भूमि पर लोट गयी। जहाँ से वह सदियों पुरानी कुल्या बहती थी। वह कुल्या के पानी और रेत के साथ प्रायः तब तक खेलती रहती थी जब तक कि उसका पिता गाड़ी का इन्तजार करता और गाड़ी आने पर वह दोनों हाथों से उसे गोदी में उठाकर गाड़ी में कूद पड़ता और सीट पर उसे गोदी में चिपकाये रहता शहर के बस-अड्डे में पहुँचने तक। सुधा पापा की गोद में मीठी-मीठी नींद करती और मीठी-मीठी बातें भी सारे सफर के दौरान।

'पापा कैसे कूदते थे—बस में। सुधा को गोद में उठाकर' । उसे याद आया

युवक था तब उसका पिता बेहद युवा और बलिष्ठ बाँहों वाला।

❑❑

सुधा प्रणाम की मुद्रा में है।

सुधा अद्वितीय आँसुओं का स्नान कर रही है।

सुधा अपने पिता के साथ शहर जाने वाली बस का इन्तजार कर रही है...तब तब बहती हुई कुल्या में हाथ डाल कर अद्वितीय और चिरपरिचित शीतलता का अनुभव कर रही है।

सुधा...नन्दबब से कह रही है, "देखो कितनी पास तक आयी हूँ...पर कितनी दूर हूँ। कैसा विरह है। तुम तो सर्वशक्तिमान हो। तो? कि...कि...मेरा मतलब है आओ फिर मेरे पास ही यहाँ...यहीं...।"

सुधा गाड़ी में बैठ गयी। उसे लगा कि खालिदा गाड़ी में बैठी उस पर हँस रही है। पर धीमे धीमे। मन्द...मन्द...। मानो खालिदा अपनी किसी सखी से कह रही हो—"क्या हालत हुई इन भट्टों...भट्टिनियों बेचारों की भी...।"

"नहीं...नहीं ऐसा तो इज़ा कहेगी...।"

"खालिदा कहेगी, देखो अव्वल तो भाग गये भट्ट। अब रोते हैं। नाटक करते हैं रोने का। अरे इतना ही प्यार था अपने गाँव-घर से, वतन से तो भागे क्यों? इतना डर गये! मर जाते यहीं!

❑❑

सुधा ने खूब पानी पिया। संग्राम पीछे छूट गया था वितस्ता के ऊपर का वह पुल आ गया था जिसे पार करते ही भाईजान की सबसे छोटी बेटी जया का घर आता है। घर क्या है हवेली है। सुधा ने सोचा, 'क्या वह हवेली वीरान होगी? सुनसान होगी? निर्जन होगी? या किसी मुसलमान ने उस पर कब्जा जमाया होगा?'

'इज़ा...सुमोना...गुलशन...खालिदा यह सारा नगर...सारा सूबा मेरा है। सड़क...सड़क...गली...गली...इंच...इंच...मेरा है...।' उसका दावा था धारा प्रवाह

सोपोर पार करते ही एक चौराहे पर जीप रुक गयी। जीप में कुछ क्षणों के बाद दो दढ़ियल बुजुर्ग मुसलमान चढ़ गये। सुमोना से उनकी खास दुआ सलाम हुई, तब जीप चल दी।

चलती हुई जीप में सुमोना ने उनका परिचय दिया—'यह हैं जिनाब मीर दिलावर। सोपोर के एक रिटायर्ड नायब तहसीलदार। और यह हैं, जिनाब सुल्तान मुहम्मद डार। यहाँ के पॉलिटेक्निकल कॉलेज के रिटायर्ड प्रिंसिपल।'

उनके ये पदनाम सुनकर सुधा कुछ चौंक-सी गयी। इस हिसाब से इन लोगों

का लिबास एकदम बेमेल था। वे तो बेहद धार्मिक पहनावे में थे, जिससे उनको देखकर हल्की-सी दहशत भी पैदा हो रही थी। पर सुमोना से उनका परिचय पूर्व का है।

सुमोना ने उनको उन सब स्त्रियों का परिचय दिया किन्तु सुधा का परिचय देने में उसे समय लगा क्योंकि दिलावर और सुल्तान उसे देखकर चकित हो उठे और उन्हें उसका होना अविश्वसनीय लगा। शायद उसकी उपस्थिति उनको असुविधाप्रद लगी...।

"अरे। यह अच्छा है। आप जैसी साहसी महिला नहीं देखी। देखिए न सुमोना जी का साहस। लेकिन आप का भी साहस कुछ कम नहीं...आप कश्मीर में यहाँ कहाँ रहती थीं?"

"कहाँ? कहिए कि कहाँ नहीं रहती थी। छोड़िए। किस-किस जगह का जिक्र करूँ। थक जाऊँगी बोलकर और आप...आप भी खैर थक जाओगे सुनकर। मैं पूरे कश्मीर में रहती थी।"

सुनकर सबके मुख-मण्डल महीन-विकृत होते हुए लगे सुधा को, और आगे दिलावर साहब बोले—

"हाँ सो तो हर कश्मीरी है। यह नज़्म हुई। मगर हक़ीकत में आप कहाँ रहते थे?"

"दिलावर साहब हक़ीकत में मैं यहाँ पूरे के पूरे कश्मीर में फैली थी और गरीबुलवतनी में मैं ज्यादा ही फैल गयी...जैसे पानी पर गिरा तेल फैलता और अपने वृत्त बढ़ाता जाता है।" दोनों बुजुर्ग लोग चुप हुए और अपने चेहरे पर हल्की नक्काशी करते हुए सामान्य होने की कोशिश में लग गये।

"नहीं सुधा? दिलावर साहब पूछना चाहते हैं कि आप कहाँ रहती थीं कश्मीर में...बाकी वह बात तो समझ में आती है कि तुम पूरे कश्मीर की बेटी हो।"

सुमोना ने अपना बौद्धिक और शरारतपूर्ण दख्लअन्दोज किया।

दिलावर और सुल्तान में कुछ खुसुर-फुसुर शुरू हुई। सुधा समझ गयी कि बात उनके हलक के नीचे नहीं उतरी। हजम होनी तो दूर।

और सुधा के गले के नीचे नहीं उतरी सुमोना की कही हुई सरल शब्दों में उनको जिज्ञासा की व्याख्या। पर वह चुप रही।

"जी मैं संग्राम की भी हूँ...फिर शहर की भी हूँ...अब क्या बताऊँ...खैर छोड़िए...दिलावर साहब। आप कृपया बताइए कि हन्दवारा में, जहाँ के आप हैं, कोई पण्डित रहता है क्या?" कुछ क्षण बाद सुधा ने कहा।

"जी नहीं। पूरा खाली हुआ हन्दवारा।" उसने निर्दय ध्वनि में उत्तर दिया।

और कुछ क्षण रुककर फिर बोला, ''वहाँ कोई पण्डित नहीं। खाली मकान।''

''सिर्फ खाली मकान?''

''जी...और क्या?''

''ओ ऽ ऽ। हन्दवारा में हमारी लगभग पूरे के पूरे गाँव में रिश्तेदारी थी...ओफ़्ओ...अच्छा।''

''आपको कैसा लगता है दिलावर साहब?''

''अब लगना क्या...कैसा? यही होना था। हो गया। वैसे उन्हें निकलना नहीं चाहिए था...देखिए...उनसे पूछिएगा...हमने उन्हें नहीं कहा निकलने को। बिल्कुल नहीं। पर वे गये। हम क्या कर सकते हैं।'' दिलावर ने फिर एक निर्मम उत्तर दिया।

सुधा चुप थी और सुमोना नाराज-सी। उसे सुधा का दिलावर साहब के साथ कश्मीरी पण्डितों के साथ निष्कासन सम्बन्धी ये प्रश्न बेहद असुविधाजनक लग रहे थे। सुधा को इसकी भनक लग गयी मानो सुमोना उससे आँखें तरेरकर कह रही हो, 'ओ सुधा! तुम अपनी औकात में कभी नहीं रहती। बार-बार अपनी औकात से बाहर आती हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि श्री दिलावर और श्री सुल्तान से मेरे कितने संवेदनशील रिश्ते हैं और तुम उनसे नाजायज सवाल पूछ कर दरार डालने की कोशिश करती हो।'

''नाजायज?''

''हाँ...हाँ...नाजायज।''

''दिलावर साहब! आप चाहें तो उनको वापस बुलाने की पहल कर सकते हैं। उनकी वापसी के लिए पहल कर सकते हैं...वैसा माहौल बना सकते हैं।'' सुधा ने फिर सुमोना के जले पर नमक छिड़का।

''नहीं। देखिए बहिनजी! हम क्या कर सकते हैं। या मैं क्या कर सकता हूँ। हम कुछ नहीं कर सकते हैं। कुछ भी नहीं। उन्हें आना हो तो आना चाहिए। उन्हें हिम्मत करनी है। हम उनके लिए अब कुछ नहीं कर सकते।'' दो टूक जवाब था दिलावर का। साथ में बैठा सुलतान मुहम्मद आँखें गड़ा-गड़ाकर सुधा को देख रहा था मानो कह रहा हो कि, 'ऐ दालभट्टिनी! चुप रह। चली गयी यहाँ से तो क्या लेने आयी है यहाँ? बताओ क्या? अब अगर चलो मानो सैर-सपाटा करने ही आयी हो, या कोई और मकसद है तुम्हारे इस दौरे का तो भी चुपचाप रह। सहमी रह। डरी रह। अपनी वापसी की बातें इस अन्दाज से मत कर। चुप रह। अपना अन्दाज बदल। सोच कि जान बची तो लाखों पाये।'

''वैसे पण्डित लोग अब वापस नहीं आना चाहते हैं...।'' कुछ क्षणों के विराम के बाद दिलावर बोला। अपने विचारों का एक नवीन अध्याय आरम्भ किया। सुधा की विचारधारा के जो एकदम उलट था।

"किसने कहा आपसे?" सुधा ने पूछा।

"मैं पिछली सर्दियों में अपने सेबों के ट्रक लेकर दिल्ली गया था तो शामलाल पण्डित के यहाँ शालीमार बाग गया। वहाँ लगभग एक हफ्ता रहा। उन्होंने मुझे दिल्ली में अपने यहाँ ठहरने के लिए मजबूर किया। इस बीच बातें हुईं। वे तो खुश हैं अब बेहद खुश। वे कह रहे थे, अच्छा हुआ कि हम वहाँ से निकल आये। पूरी दुनिया उनके लिए अब खुल गयी। उन्होंने वहाँ अब सब्जी का व्यापार शुरू किया है।"

"उनके बागों का क्या हुआ?"

"मैं! मैं उनके बागों का हिस्सा उन्हें देता हूँ बराबर।"

"कब तक देते रहेंगे आप, अगर आप देते ही हैं सचमुच।"

"अब देखिए...यह तो...क्या बताऊँ... ?"

"सुधा यह बेतुका सवाल है।" सुमोना के सिर के ऊपर से अब पानी गया। उससे रहा न गया और उसने सुधा को ऐसे प्रश्न करने के लिए टोक ही दिया। दरअसल सुमोना की नीति ही है कि ऐसे दिलावरों, सुल्तान मुहम्मदों, गुलशनआराओं, खालिदाओं से बातें बड़े ही तमीज और सलीके से की जाएँ, ताकि उन्हें एक मामूली खरोंच भी न लगे। बड़ी ही नजाकत का इस्तेमाल करते हुए। ताकि हम भारतीयों की तरफ से उनके पापों की पर्दापोशी में कोई कंजूसी न हो। क्योंकि उन्हें भारतीय बनाना है। मुख्यधारा में ले आना है और बहाना है...। हाँ...मार...मार के भारतीय बनाना है...। सुधा का भीतरी एकालाप था।

सुधा का मन हुआ कि सुमोना से कहे कि, 'सुमोना! बिना इनका मनोविज्ञान जाने, भीतरी नीयत जाने, क्या तुम इन लोगों पर तजुर्बे करने चली हो। इनकी संवेदनशीलता का खयाल रखती हो। दूसरे बलि पर चढ़े समुदाय की संवेदनशीलता को दाँव पर चढ़ाकर। वाह सुमोना...तेरा समाजशास्त्र। सड़ा हुआ समाजशास्त्र।' पर यह एकालाप ही रहा।

❑❑

"लीजिए यह रास्ता ट्कर को भी जाता है।" सुमोना को सूचना दी दिलावर साहब ने।

ट्कर, ट्कर, ट्कर, ट्कर... असंख्य प्रतिध्वनियों की लहरें, प्रतिध्वनियों का तूफान उठा सुधा के भीतर।

'ट्कर? यह स्थल प्रसिद्ध है आध्यात्मिकता के लिए। यहाँ राज्ञी का वास है...पार्वती का एक और नाम...राज्ञी...ट्कर सिद्धि-स्थल है।' और सुधा स्मृति-विह्वल हो उठी। उसे लगा मानो उसकी माँ चौके में काम करते-करते उसकी

बुआ जिगरी के साथ बहुत बातें कर रही हैं। पार्वती की, राज्ञी की, अपने रिश्तेदारों की। उनके यहाँ हो रहे या होने वाले धार्मिक उत्सवों की बातें कर रही हैं। चूल्हे में लकड़ियाँ चटक रही हैं। उस पर दो हँडियाँ उबल रही हैं। एक में सुगन्धित चावल और दूसरे में सुगन्धित साग या सुगन्धित मांस...रोगनजोश या कलिया...क्योंकि जिगरी आयी हैं। आज दिन-भर इतिहास के कितने ही पन्ने पलटे जाएँगे। उन पर कई कोणों से दृष्टियाँ डाली जाएँगी। वर्तमान का भी जिक्र होगा और भविष्य का भी अन्दाज लगाया जाएगा। जितने पात्रों का जिक्र होगा उनका वह जिक्र उस पात्र को कबाइली हमले के अग्नि कुण्ड से भी गुजारेगा। तब वह नया बन चुका होगा। टअ्कर का जिक्र बार-बार आता है। आएगा। यहाँ सुधा की बुआ ब्याही गयी थी।

टअ्कर सुधा की बुआ की राजधानी। मन का गाँव और घर। शिक्षित और सुन्दर भट्टों और भट्टिनियों का प्रकृति-सम्पन्न गाँव।

इस शिद्दत से भीतर-भीतर लबरेज़ होने के बावजूद सुधा देख रही है बाहर-बाहर भी। उसकी बुआ टअ्कर में माँ बनी है, सास बनी है, दादी बनी है और नानी बनते-बनते विधवा बनी और फिर एक शरणार्थी बनी। उसे लगा जैसे उसकी बुआ अचानक महारानी से नौकरानी बनी है। जम्मू के एक कैम्प में वह मधुमेह की, विस्मृति की, मानसिक रोगों की, चिड़चिड़ापन की, हड्डियों के रोग की शिकार हो गयी है। प्राय: बेटों से लड़ती है, ''तुम मुझे ले आये हो खींचकर यहाँ। मुझे कौन मारता वहाँ। मुझ बुढ़िया से उन्हें क्या मिलता? मैं रहती वहीं। रहने देते मुझे वहीं। हे मेरे गुरुदेव! मैं कहाँ चली आयी। रेगिस्तान में। मुझे उठा ले यहाँ से। अपने पास बुला ले। या हालात ठीक कर दे...।'' और जिगरी रो-रो कर बेटों को भी रुलाती है। सताती है। वे भी चिढ़कर कहते हैं, ''इसको पता ही नहीं, अन्दाज ही नहीं कि हम क्या संघर्ष कर रहे हैं? कितना संघर्ष कर रहे हैं।''

''क्या कहते हैं बीबीसी वाले।'' जिगरी हर सुबह और हर शाम को पूछती है। जब से लोग शरणार्थी होकर जहाँ-तहाँ बिखर गये हैं, तब से बीबीसी सुनने का रोग लग गया है लोगों में, खासकर बुजुर्गों में! सब बुजुर्ग कहते हैं, ''बीबीसी कच्चा चिट्ठा पेश करता है जबकि आकाशवाणी खबरें दबाता है।'' और जिगरी को आशा है कि किसी दिन बीबीसी से घोषणा होगी, ''कश्मीर में शान्ति लौट आयी है।''

''आतंक की आखिर उम्र ही कितनी होती है। परसों ही बनजी कह रहा था कि किसी अखबार में लिखा था कि आतंकवादी ज्यादा-से-ज्यादा छ: मास तक जीवित रह सकता है। इधर तो अब कई ऐसे छ: माह बीत गये। अगर कितने भी आतंकवादी होंगे, अब तक एक-एक कर सब मर चुके होंगे। अब तो जाने

के लिए हालात बन चुके होंगे।'' जिगरी ने हालात का अपने ही साथ विश्लेषण किया था।

❑❑

खबरें प्रसारित हो रही थीं। बनजी ने उँगली के इशारे से माँ को समझाया था कि फिलहाल वह चुप रहे। पूरी खबर सुनने दे। फिर पूरी खबर वह उसे सुनाएगा।

प्राय: ऐसे इशारे देखकर जिगरी अपने बेटे बनजी से रूठ भी जाती है। उसे लगता है कि बेटे में उसके लिए इतना भी आदर नहीं। उसकी चिन्ता, जिज्ञासा और घर के बिछोह को वह कुछ भी नहीं समझता। फिर जिगरी कम-से-कम चौबीस घण्टे या अधिक-से-अधिक अड़तालीस घण्टे तक रूठी रहती है। बनजी के मनाने में देरी करने या जिगरी के धैर्य के टूट जाने पर यह बात निर्भर करती है।

फिर बनजी कहता है, ''कोई खबर नहीं है हमारे लौटने की। आतंकवादी कौन है माँ। हमारे पड़ोसी ही आतंकवादी हैं। बाहर का आतंकवादी सिर्फ पहल करने के लिए आया था, बाकी काम तो भीतर के आतंकवादी ने ही किया है...और वह न खत्म होने वाला है। बाहर से मेहमान आतंकवादी ने आकर आग लगायी...फिर बाकी तैयार लकड़ियाँ चटक-चटक जल उठीं। क्या हमें निकाल बाहर करने वाला पड़ोसी चाहेगा कि हम वापस लौट आएँ। हन्दवारा, कुपवाड़ा में टअ्कर में खूँखार आतंकवादी हैं माँ। खूँखार आतंकवादी। वह गाजी बाबा वहीं रहता है। जैसे कोई राजा रहता है। सरकार को सब खबर है...यहाँ तक कि भारत सरकार को भी सब खबर है, मगर राज्य की आतंकवादी सरकार हाथ नहीं लगाने दे रही है गाजी बाबा को। गाजी बाबा को वे पूजते हैं...नित फरमाइशी मांस, मदिरा और पसन्द की स्त्री उसे मयस्सर रखते हैं। यही उनका ईमान, धर्म और नैतिकता हो गयी है...तुम इन्तजार करो कि खबर आएगी बीबीसी से...कि भट्टो! भट्टिनियो! आओ। बाइज्जत लौट आओ अपने वतन...यहाँ आतंकवादियों का अन्त हो गया।...यह सब नहीं होने की सम्भावना माँ। दूर-दूर तक नहीं।''

''सरकार में आतंकवादियों को...गाजी बाबा को कौन है जो नहीं पकड़ना चाहता?'' जिगरी ने ऐसे पूछा मानो कह रही हो कि जरा बेटा उसका नाम बता दो। मैं उसकी ऐसी की तैसी करके रख दूँगी। नहीं तो मेरा भी नाम गौरी रैणा नहीं।

''कौन नहीं चाहता। फारूक अब्दुल्ला नहीं चाहता। वह एक आवाज निकालकर जय हिन्द करता है और दूसरी आवाज में, कश्मीर में, नाले तखबीर अल्लाहो अकबर करता है। दोनों आवाजें अलग-अलग और साफ-साफ रखने

की पूरी-पूरी कोशिश करता है। सफल कोशिश करता है कि दोनों आवाजें आपस में नहीं टकराती हैं। इतनी सफाई से वह भारत के हुक्मरानों को उल्लू बनाता है, भारत की जनता को उल्लू बनाता है कि नफासत से कश्मीर में लोग कहते हैं कि आखिर शेर का बेटा है। जानता है। राजनीति करता है। जानता है इसलिए केन्द्र सरकार की आँखों में मिर्च पाउडर, वह भी कश्मीरी कैसे डालें, ताकि हकीकत तक, उसके या उनके असली मन तक वे पहुँच ही न पाये। वैसे भी वे निठल्ले और वोटों के मारे हैं। कौन-सी उनको कश्मीर की चिन्ता है, फिक्र है। वे आतंकवाद जारी रखें...और केन्द्र उनको पैसे के थैले भेजता रहे...ताकि वे कहें कि लीजिए भारत में कश्मीर का विलय अन्तिम है...कश्मीर भारत का अटूट अंग है...। मान लो ऐसा न हो। उन्हें असल बात पता हो पर पैसे की कुछ तो बन्दरबाँट होगी ही। कुछ तो तकसीम होगा ही। है कि नहीं। और जब यह महान नाटककार दिल्ली में कहता है—जय हिन्द। गद्‌गद होते हैं हिन्दू। गद्‌गद होते हैं भारत के गद्दीदार। सोचते हैं चलो झूठ ही सही। गद्‌गद होते हैं सब-के-सब। समझते हैं कि फारूक अब्दुल्ला क्या बला का हिन्दुस्तानी मुसलमान है। हूबे वतन।''

''वादी का मुसलमान समझता है, फारूक अब्दुल्ला ने भारत को मूर्ख बनाने के लिए जय हिन्द कहा। लेकिन भारत सरकार और भारतीय नहीं समझते कि वास्तव में यह क्या महानाटक चल रहा है। इस सारी दास्तान की इस दो-धारी तलवार का हमें पता है। सिर्फ हमें। सिर्फ भट्टों को। इसलिए मीडिया वाले भी हमें नहीं बोलने देते। कहते हैं, छोड़िए...छोड़िए...आप तो देश को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकने को तैयार हैं।'' बनजी ने विस्तार से जिगरी को समझाया था ताकि वह उस दुःखद इन्तजार से निजात पाए।

❑❑

सुधा को याद आया कि जिगरी घर से ज्यादा अपने गुरु स्वर्गीय भट्टबब के आश्रम में जाने को आतुर थी। उद्यत थी, उत्सुक थी। प्रायः उस आश्रम के हवन-प्रकोष्ठ को याद करती। हे भगवान! हे गुरुदेव! उसकी रक्षा करना। ऐसा न हो कि उस कुण्ड को मैला किया गया हो। उनका पवित्रीकरण में प्रथम कदम यही होता है कि ये सभी चीजें अपवित्र करो। जैसे सुधा ने एक बार हनुमान मन्दिर जाने पर देखा था कि उस पंचमुखी पत्थर की मूर्ति पर जितना भी जल चढ़ता है, वह वितस्ता में एक खड्ड के बरास्ते गिरता है।

उस दिन मंगलवार था। वह टॉठी के साथ हनुमान मन्दिर गयी थी। टॉठी हनुमान जी की भक्त थी। टॉठी हनुमान चालीसा इत्यादि पढ़ रही थी। तब तक

सुधा अपनी जिज्ञासा शान्त करने लगी कि देखें इतनी ऊँचाई से यह जल प्रणाली में से होते हुए कैसे गिरता है वितस्ता में। नीचे कई ढोंगे हैं जिनमें हॉजी रहते हैं।

सुधा का दिल भयावह ढंग से धक् से रह गया बाहर झाँककर। मन एक विचित्र ग्लानि, आक्रोश और असहायता बोध से भर उठा। मन में प्रश्न आये कई। 'यह क्या? क्या यह सिर्फ मैंने देखा? क्या इस पर किसी की नजर ही नहीं पड़ी है अभी तक? हे प्रभु! त्राहि माम्। हे प्रभु उन पर गाज क्यों नहीं गिरती अभी, इसी दम? वे नेस्तनाबूद क्यों नहीं होते अभी? इसी क्षण। ऐसा हो रहा है और दुनिया कितनी शान्ति से चल रही है। हे राम! हे हनुमान! अगर इनके अल्लाह के सन्दर्भ में किसी ने कोई कटाक्ष भी किया हो तो ये उसकी उसी दम जान न ले या जान न दे। पर...पर यह मैंने यह क्या देखा टॉठी?...हे प्रभु यह सब।' सुधा की छटपटाहट थी।

वह पंचमुखी हनुमान की परिक्रमा की जगह आयी। वहीं पर टॉठी हनुमान चालीसा सहित सभी पाठ करती। जो उसे कण्ठस्थ भी थे, और उस तरफ दीवार पर संगमरमर के पत्थर पर भी उत्कीर्ण। जिससे पाठ विशुद्ध और सम्पूर्ण हो।

उसने देखा कि टॉठी करमाला जप रही है। उसका धैर्य टूट रहा है। वह अधीर हो रही है। मन हो रहा था कि चीखें, चिल्लाएँ...शोर मचाएँ।

''ओ मन्दिर के बाबाओ! मठाधीशो! क्या तुमने नहीं देखा यह जो मैंने देखा? क्या देखकर आपसे रहा गया (चुप) क्या देखना आपसे सहा गया? क्या कोई गाज नहीं गिरेगी निकट-भविष्य में। ओ कापुरुषो! क्या सचमुच तुमने नहीं देखा? पर वह तो सम्भव नहीं है। जब मैंने खेल-खेल में यह देखा तो तुमने क्यों नहीं देखा? ओ...ओ...। हनुमत् बलबीरा। चलाओ ऐसा तीरा। ये जो भी राक्षस ऐसा करते हैं इन पर लगे गम्भीरा...और बरसाओ ऐसा नीरा कि स्वच्छ साफ हो उठे वितस्ता का यह तीरा। ओ...ओ...टॉठी! उठो इस समाधि से...तुम हनुमान की भक्त हो। उठो। कि तुम्हें बताऊँ कि हमारे ईश्वर पर संकट आन पड़ा है...हमारे ईश्वर पर संकट आन पड़ा है...मतलब हम पर बारहा आन पड़ा है।''

''कौन है यह मुसलमानों का खुदा? कहाँ है? कह दूँ मैं उससे कि ऐ खुदा। तनिक समझा अपने इन अकीदतमन्दों को। क्या यही हैं तेरे बन्दों की नेक करतूतें?''

❑❑

टॉठी अभी भी आँखें नहीं खोल रही है। सुधा को लगा कि वह मानो आज हद ही कर रही है, ''कैसे कहूँ टॉठी से कि उठो! कभी मन से उसका ध्यान करने

से ज्यादा हाथों और बाहरी तरीकों से भी ईश्वर की रक्षा करने की जरूरत आन पड़ती है। पिछले छः सौ सालों से हमारा ईश्वर पिछड़ रहा है। पिछड़ता जा रहा है। उफ्...हे मेरे ईश्वर। लेकिन तुम नहीं घबराना। बिल्कुल नहीं घबराना। मैं हूँ न। तुम्हारी हनुमान। हनुमान जी...मैं तुम्हारी सेवक हनुमान।'' सुधा के मन का आक्रोश एक शक्ति, जोश और संकल्प में बदल रहा है।

सुधा का धैर्य टूट रहा था। काश! उसके साथ दीप्ति भी होती। अगर टॉठी को वह अचानक हिलाकर अपने ध्यान से लौटने को मजबूर करेगी तो फिर टॉठी बहुत गुस्सा हो उठेगी। उसने एक तरकीब की। वह टॉठी के पास गयी और उसकी जाँघ पर हल्के स्पर्श के साथ उसकी बगल से सटकर बैठ गयी मानो वह सहज ही यह मान ले कि उसकी छोटी बहन, नन्ही बहन घर जाने को लालायित है।

टॉठी ने आँखें खोलीं। शायद उसका पाठ या ध्यान भी पूरा हो उठा था। वह शायद अतिरिक्त क्षण ईश्वर के ध्यान में आज लगा रही थी।

''...हाँ...हाँ...चलते हैं...चलो...चलो उठो...।'' सुधा के स्पर्श का उत्तर टॉठी ने देते हुए उठने का उपक्रम किया।

''अरे नहीं टॉठी। बात सुनो। इधर आओ। त्रेठ पड़ी है। इन हाजियों पर। एकदम त्रेठ पड़ी है इन पर। अब त्रेठ पड़ेगी देखना।''

''क्यों क्या हो गया।'' टॉठी घबरा उठी। और हतप्रभता की स्थिति में भी आ गयी। क्या बात है जबकि मन्दिर में सब कुछ सामान्य है। शान्त है। दैनन्दिन की भाँति है। कहीं कोई हड़बड़ी नहीं है। लोग आ रहे हैं। हनुमान जी की परिक्रमा कर रहे हैं। चरणामृत पीकर और प्रसाद प्राप्त कर जा रहे हैं। कुछ लोग दीवार पर संगमरमर पर उत्कीर्ण 'हनुमान चालीसा' या 'को नहि जानत है जग में कपि संकट-मोचन नाम तिहारो...।' पढ़ रहा है। कोई सस्वर गा रहा है। फिर दिद्दा को क्या हो गया है, सोच रही है टॉठी। दिद्दा उसे बड़ी बेबसी और बेकली से उस मूर्ति वाले परिसर में ले गयी जहाँ जल चढ़ाये जाने की पूरी व्यवस्था है।

''देखो।'' खिड़की से अपना आधा जिस्म बाहर निकालकर सुधा ने टॉठी को भी वैसे करके देखने को कहा।

''क्या? क्या?'' उसने हैरानी से पूछा। क्योंकि वह चकित स्थिति में थी कि सुधा आखिर उसे दिखाना क्या चाहती है।

''देखती नहीं हो। वह देखो...ठीक से देखो...वह नीचे।''

कुछ क्षणों के बाद टॉठी ने अपनी छाती पर धौल मार ली, ''हे हनुमानजी! हे प्रभु!''

नीचे एकदम उसी सीध में एक खड्ड-सा बनाया गया था। वितस्ता के

तट पर जिसकी सीध में ईश्वर पर चढ़ाया जल प्रणाली के माध्यम से बहकर नीचे बहता पहले खड्ड में फिर खड्ड के बरास्ते वितस्ता में गिरता। इस खड्ड में इन ढोंगों में, हाउसबोटों में रह रहे हॉजी मुसलमान हगते और प्रणाली में गिर रहे जल से हगने के बाद अपने जिस्म पर लगा पाखाना साफ करते। उस क्षण वहाँ एक भयावह, विकराल काया का हॉजी हग रहा था।

''हे प्रभु! हे प्रभु! त्राहि! त्राहि!'' टॉठी ने कहा और उस मर्द को ऐसा करते हुए न सहकर सुधा से कहा, ''अन्दर आओ...चलो! यह हमारी किस्मत है। कोई गाज गिरनी होगी इन पर। त्रेठ पड़ेगी इन अधकटों पर। पता नहीं जो दूसरे के धर्म की पवित्रता भंग करता है वह धार्मिक कैसे कहलाता है अपने धर्म में भी। चलो...चलो...हे प्रभु! हे भगवान...चलो...देर हो गयी।'' लेकिन सुधा फिर एक बार देखने को बाध्य-सी हो उठी। अब वह मर्द हट चुका था और उस कुण्ड में पाखाना ही पाखाना दिखाई दे रहा था। ऊपर से बेफिक्र और बेपरवाह भक्त ईश्वर पर जल चढ़ा रहे थे बदस्तूर।

''ओफ्फो...! यह तो आत्मा को छेद रहा है सुधा। प्रभु...प्रभु...।''

''टॉठी तुम प्रभु...प्रभु और त्राहि...त्राहि कर रही हो...इससे क्या होगा? हमारी यही आदत है—त्राहि-त्राहि करेंगे। राम...राम करेंगे। शिव...शिव करेंगे। त्राहि...त्राहि करने वाले...मैंने प्राय: देखे हैं...अजहद किस्म के बेबस होते हैं।''

''शिव...शिव भी करो पर हाथों से भी कुछ करो न। भोजन भोजन करने से भोजन न मिलता है, न पकता है, न पेट में पहुँचता है। चलो यहाँ के उस बाबाजी से बात करेंगे, जो अँग्रेजी के बड़े-बड़े अखबार पढ़ता रहता है।''

''क्या उसको बताएँ? मोटे बाबाजी को?''

''तो क्या? और क्या? वही तो यहाँ के अनुरक्षण का जिम्मेदार हैं।''

''क्यों न मैं उस भट्ट को भी बता दूँ कि वह भी तो इसको देखकर अपना रद्दे अमल दें और इसके निराकरण के लिए कुछ करें...बाबा जी से बात करें...।''

''कुछ करो टॉठी। हम ऐसे ही नहीं जाएँगे यहाँ से। बिना कुछ किये।''

टॉठी तेज कदमों से चलकर उस भट्ट की तरफ बढ़ने लगी जो नजरों से तो बहती हुई वितस्ता को निहार रहा था पर ध्यान से वह सामने खड़ी एक स्त्री से बातें कर रहा था। टॉठी को अपनी तरफ आती हुई देख उसका देखना और बातें करने का वेग अचानक रुक गया। उसको लगा कि यह युवती उसकी तरफ किसी विशेष प्रयोजन से चली आ रही है, जिसे न तो वह जानता है और न ही उसने उसे कहीं देखा है। उसने स्त्री से बातें करना एकाएक रोका और प्रश्नाकुल दृष्टि से उत्सुक हो उठा कि आ रही युवती के प्रश्न का स्वागत कर सके।

''जी...?''

"जी मुझे आपसे कुछ गम्भीर बात करनी है।"

"हाँ...हाँ...।"

"आप जरा वहाँ से नीचे झाँकिए...ज़रा जाकर पहले झाँकिए तो...आप भी देखिए जाकर कि पंचमुखी मूर्ति वाले परिसर की खिड़की से कि नीचे जहाँ से ईश्वर पर चढ़ाया जल निर्माल्य बनकर हमारे हिसाब से वितस्ता में जाता है...लेकिन देखिए तो वास्तव में वह जाता कहाँ है...वह वहाँ से...आप देख आइए कृपा करके पहले...।"

अनिच्छा से पुरुष पहले चल पड़ा फिर धीरे-धीरे उसके पीछे स्त्री भी हो ली। टॉठी बहुत कर्मण्य मन से प्रतीक्षा कर रही है कि वह पुरुष देखे और फिर टॉठी देखें कि उस पुरुष पर क्या बीतती है।

थोड़ी ही देर में स्त्री पुरुष लौट आये। पुरुष निर्विकार और सहज था। स्त्री असामान्य थी और मुँह से हॉजियों को अपशब्द और अभिशाप बोल रही थी। मुँह पर क्षोभ का वर्ण था।

"त्रेठ पड़े इनको। इनका नाश हो। हे हनुमानजी! आप इतने बलवान होकर इन पापियों का क्षय नहीं करते हैं।"

"हनुमानजी क्या करेंगे। यह चीज हमें करनी है। यहाँ क्या खुदा हगने आता है। खुदा को मानने वाले हगते हैं और खुदा का प्रचार करते हैं।"

"यही सोच रहा हूँ कि करूँ तो क्या करूँ।"

"मेरे खयाल से आप इस मोटे बाबाजी से बात क्यों न करें...।"

"मोटा बाबाजी भी क्या कुछ कर सकने की स्थिति में है?"

"देखिए, हम उसकी तरफ से क्यों सोचें। हमें क्या पता है कि वह क्या-क्या कर सकते हैं। वह सब उन पर और श्री हनुमान जी पर छोड़िए न।"

"चलिए। चलिए। मुझे कोई हर्ज नहीं। चलिए आप भी। मिलकर बोलते हैं।"

❑❑

सुधा को याद आया पिछले जुम्मा के दिन मस्जिद में वाजख्वानी में मुल्ला कह रहा था कि ऐ ईमानवालो! एक दिन सारी दुनिया में ईमान कायम होगा। क्या ईमान माने इस्लाम? गैर इस्लाम माने बेईमान या काफिर?

लेकिन भट्ट कहते हैं—'ए भट्टो भाड़ में जाने दो ईश्वर-वीश्वर। अपना जो दम, जो दिन निकलता है, निकालो चुपचाप। आँख मूँद कर। धर्म-वर्म कुछ नहीं होता। यहाँ तक कि समुदाय, समाज भी कुछ नहीं होता है...कोई भी ऐसी चीज नहीं होती है...क्योंकि हम जो भी हैं...बचे-खुचे हैं। इसलिए चुपचाप जी लो।

ये जहर के घूँट पी लो...हम इस जहर से नहीं मरेंगे।''

वे उस तरफ के आश्रम की सीढ़ियाँ चढ़ गये। मोटा बाबाजी कोई धार्मिक पुस्तक मोटी-सी ऐनक पहने बाँच रहा था। उसका ध्यान भंग हो गया।

''हाँ, आइए...आइए''—वे स्वागत में बोले। खासकर टॉठी को देखकर। क्योंकि बाबाजी को पता था कि वह नित्य दर्शनार्थी थी।

''स्वामी जी। हम आपके पास एक विशेष प्रार्थना को लेकर आये हैं। बड़े दुःख की बात है।''

''हाँ, बताइए।''

''इन्होंने मुझे बताया कि मैं जरा नीचे झाकूँ तो देखा कि पंचमुखी मूर्ति का निर्माल्य जहाँ गिरता है, वह सीधे-सीधे वितस्ता में नहीं गिरता बल्कि किनारे पर बना एक कुण्ड है उसमें गिरता है, जहाँ किश्ती वाले और हाउस बोट वाले हगते हैं और निर्माल्य से मल धोते हैं। यह बहुत भयावह है। हृदय-विदारक है। इससे तो प्रलय हो जाएगी—बाबाजी। क्या आपको ज्ञान है?''

बाबाजी तनिक भी विचलित नहीं हुए। कुछ ठहरकर बोले, मानो बोलने से पूर्व आवश्यक चिन्तन किया हो।

''हाँ ऽ ऽ ऽ...यह तो पुरानी बात है। हमने यह कुण्ड ढहवाया था और एक पाइप लगवाया था ताकि उससे सीधे वितस्ता के अन्दर निर्माल्य का जल गिरने की व्यवस्था हो। मगर अगले दिन हमने देखा कि रातोंरात इन लोगों ने पाइप तोड़ दी और नये कुण्ड का निर्माण किया और अगले पूरे दिन ये लोग एक हुजूम बनाकर वहाँ जमा रहे ताकि कोई विरोध करने की हिम्मत न करे।

''फिर मैंने यहाँ के कुछ बुजुर्गों से मुलाकात की और उन्हें समझाया कि देखिए यह कैसी धार्मिकता है या धर्मप्रचार है कि आप दूसरे के धर्म की आस्था को अपवित्र करो। दूषित करो। उन्होंने कहा, 'नहीं-नहीं इस्लाम यह कतई नहीं कहता। हम हाउसबोट और ढोंगों वाले हॉजियों को समझाएँगे कि वे ऐसा न करें। वे इनके पास गये और फिर हमारे पास आये कि देखिए ये लोग कुछ मानते नहीं। हम कुछ नहीं कर सकते। हमें खेद है।'

''लेकिन पाइप अगर हमने सीधे पानी के अन्दर रखी थी तो...''

''तो क्या? ये कुफ्र का पानी था। नापाक पानी था। इसकी छींटें हाउसबोटों पर आती हैं। हमारा धर्म बिगड़ता है। आप किसी दूसरी तरफ यह पानी ले जाइए।''

''पर हम कहाँ ले जाएँगे? आखिर जाना तो निर्माल्य को नदी में ही है।''

''हमने फिर से पाइप दीवार से सटा-सटाकर लगवाया और दूसरी तरफ पानी के अन्दर उसका मुँह रखा ताकि छींटे बिल्कुल न आए। पर उसे भी इन लोगों ने निषिद्ध माना और कहा कि यह कुफ्र है। हराम है। हम इससे अपवित्र होते

हैं।

"अब यह कथा है। उस वक्त तो यह लोग मुझे मारने भी आये थे। मैं दो महीनों के लिए ऋषिकेश गया था अपने गुरुभाई के पास। यहाँ कुछ लोगों ने मुझे सूचना दी थी। आपको पता है न मैं पिछले हफ्ते ही आया।" बाबा जी बोले।

"हाँ...हाँ...अच्छा...अच्छा। आप इसी सिलसिले में यहाँ से गये थे। अरे बहुत दुखद है। बहुत ही दुखद है। तो क्या कोई उपाय नहीं है स्वामी जी?" टॉठी ने पूछा।

"अब आप भी उपाय ढूँढ़िए। मैं भी सोचता हूँ। ईश्वर ही कुछ उपाय करें।"

"वैसे देखिए मैंने कुछ पण्डितों को कहा था कि आप जाकर सरकार से कहिए। अच्छी तरह यह बात बयान कीजिए! विरोध दर्ज कीजिए। एक शिष्टमण्डल मुख्यमन्त्री के पास ले जाइए।"

"वह शिष्टमण्डल लौट आया और बताया कि स्वामी जी—यह जहर पीना ही पड़ेगा। सरकार ने कहा कि वे हॉजियों से पंगा नहीं ले सकते इस बात पर। तमाम मुसलमान उनके खिलाफ और नाराज हो जाएँगे। वे उनके खिलाफ हिन्दू परस्त होने के इल्जाम में नारे लगाएँगे। इसलिए बेहतर है कि चुपचाप वह नाली ही बन्द कर दें यानी पंचमुखी मूर्ति पर जल चढ़ाना बन्द कर दें। सिर्फ हनुमान जी की सूखी अर्चना करें। क्या करें। सरकार लाचार है।"

"तो यह है व्यथा-कथा। अब आप ही उपाय बताइए?"

"तो पण्डितों को जुलूस निकालने चाहिए।"

"हाँ, पर निकालेगा कौन? निकलेगा कौन? मेरा मन करता है कि मैं ऋषिकेश लौट जाऊँ और कभी न आऊँ। काफी सन्त्रास झेल रहा हूँ मैं यहाँ। मगर मन्दिर को ऐसे छोड़कर जा भी नहीं न सकता हूँ। कोई ऐसा मिले कि यहाँ की जिम्मेदारी ले! मैं उसको सौंप दूँ और जाऊँ।"

❑❑

प्रलय हो ही गयी। विश्व ने देखा कि प्रलय हो गयी। वितस्ता रक्ताभ और विषाक्त हो गयी। पण्डित कहाँ-कहाँ फिंक गये। निराधार। निराहार। निर्मूल। निर्मूल हो गये। जिगरी भी निमूर्ल हो गयी। जिसे बार-बार यही चिन्ता सताती है कि टअ्कर में उसके गुरु के हवन कुण्ड और छोटे से मन्दिर को मलिन न किया गया हो।

"वाह जिगरी। तुम भी...अरे। हम वहाँ थे और पंचमुखी मूर्ति के निर्माल्य की वह दुर्दशा देखकर जी रहे थे रोज। आज ये लोग यहाँ कुछ भी करें तो क्या होता है, हम यहाँ हैं भी नहीं। जब हम सामने मय-मस्तिष्क और हाथों-पैरों के होते भी अकर्मण्य थे, या कुछ करने में असमर्थ। फिर हम मय हाथ-पैर के हैं

ही नहीं जहाँ...वहाँ की इस प्रलय-काल में चिन्ता? धन्य हो जिगरी तुम। धन्य है तुम्हारी चिन्ता जिगरी। चिन्ता में क्या चिन्तन बसा होता है? चिन्तन किसी मन्त्र का काम करता है क्या?''

ओ ऽ ऽ जिगरी! जब हम आये थे और शेष हिन्दुस्तान में पैर रखे थे...तो खबर सुनी थी जून में कि हनुमान मन्दिर के उस मोटे बाबा जी का कत्ल किया गया और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उसके अंग एक बोरी में डाले गये और बाहर हरि सिंह हाई स्ट्रीट की सड़क के किनारे वह बोरी रखी गयी जो सुबह बी.एस.एफ. के जवानों ने देखी और बाबा जी की शिनाख्त की। यह खबर भट्टों के शरणार्थी कैम्पों में आग की तरह फैली थी। सुधा अपने एकालाप में जिगरी को सम्बोधित कर रही थी। और अब वह टॉठी को सम्बोधित कर रही है—

''लो मोटे बाबा जी को भी मोक्ष मिल गया। मिल गया न टॉठी?''

''हाँ।'' टॉठी रो रही थी इतना कि रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गयी थीं। टॉठी चुप ही नहीं हो पा रही। उसका पति भी उसे सान्त्वना दे रहा है। काफी समय बाद टॉठी कुछ बोलने की स्थिति में आयी थी।

''ओ...असली धातु का था वह मोटा बाबा जी। जो उसे वहाँ कोई जिम्मेदारी लेने वाला नहीं मिला, तो इसने भी शरीर ही वहीं दिया, और मुक्ति पायी। मैं अपने लोगों को समझ भी नहीं पायी कभी। कोई विरोध नहीं किया कभी वहाँ। अब यहाँ आये हैं...रोटी के लाले पड़े हैं तो जुलूस भी निकाले हैं, विरोध भी कर रहे हैं, नारे भी लगा रहे हैं...क्या रोटी ही हमारा ईश्वर है दिद्दा?''

''हाँ, एक खत्म हुई जात का ईश्वर मात्र रोटी में ही सिमट जाता है। बाकी सब कुछ बन्द और खत्म। रोटी ही मोक्ष। रोटी ही धर्म, अर्थ, काम, अन्य सम्भाव्यता...रोटी सब कुछ...यानी कि भात ही।'' कहा था सुधा ने।

❑❑

''ओह! ओह! ओह, ओह आह हो हो...उ.फ़! ओह!''

''ये घर? सुमोना ये घर। ये सुराखजदा घर। मगर ऐसे मानो जख्मी मनुष्य हों। देखो तो, सुनो तो, इनकी कराहें। ये दागे दिल-दागे-जिगर...ये भट्टों के घर। सुधा का एकालाप नये सिरे से है...ये हन्दवारा है। ये सड़क से ही शुरू हो रहे हैं भट्टों के घर।'' सुधा ने फिर अपना आलाप जारी रखा। और फिर चुप हो गयी अचानक।

वह देख रही है टूटी खिड़कियाँ। उल्टे छत। तहस-नहस कमरे। इतने जीवन्त मानो उन कमरों ने अपनी ईंटों की दरारों में, मिट्टी के छेदों में सुरक्षित रखी हैं अपने भीतर रहने वालों की साँसें। साँसों की धुक...धुक्...धुक् आवाजों को

वहन करते हुए ये खँडहर-प्रवृत्त घर। ये अभी-अभी के टूटे घर। किसे कहेगी सुधा उससे कितनी बातें करते हैं ये मकान। यहाँ तक भी कहते हैं कि-'सुधा, तुम यहाँ किनसे मिलने आयी हो? हम मकान नहीं है, जीवित-जीव हैं। जब से वे गये...वे क्या भागे...उनके प्राण हममें अटक गये...हम सप्राण हो उठे हैं। तभी तो इतने नाजुक हो उठे हैं कि बस कहीं से कोई आवाज आयी तो हम काँप उठे। तुमको यह राज पता नहीं। किसी को यह राज पता नहीं। किसी को नहीं पता। हम बेजुबान हैं...पर फिर हम तुम तक वह रसायन फेंकते हैं, वह प्रेम-रसायन...तुम समझोगी? जरूर समझोगी तुम हमको। हमसे भी मिलो सुधा।'

'सुमोना, गाड़ी रोको जरा। रुकना चाहिए। यहाँ से आगे बढ़ने का मेरा मन नहीं इस तरह। रुको सुमोना गाड़ी से उतर जाओ। उतर जाओ सब लोग। सब-के-सब हुर्रत...गुलशन...खालिदा...सब रुको। हो सकता है यह घर मेरी मासटॉठी की उस बेटी का हो जिसका नाम फूला है। जो कबाइलियों के हमले के दिनों जन्मी थी और जिसको दो दिन की लेकर मासटॉठी घर-बार छोड़कर अठूर से क्रीरी की तरफ कबाइलियों से बचने के लिए भाग रही थी। तब एक चिनार के नीचे सोचने लगी थी कि क्यों न इस वृक्ष की छाया में छोड़कर अपनी महायात्रा पर चल पड़ूँ। मगर पति ने डाँटा था...माँ हो या कसाई? उसी फूला का विवाह भौतिकी के विद्वान महाराज कृष्ण से हुआ और वह आज दिल्ली में है...वह चिनार अब एक घर हो गया है। माँ ने त्यागा नहीं मगर मातृभूमि ने त्यागा। माँ की तरह यह लाचार मकान। उनके प्रेम और प्रताड़ों का गवाह। चश्मदीद गवाह। नवागन्तुकों के स्वागत में तेज हृदय धड़कता हुआ यह घर और इसके अगल-बगल में इतने घर।'

'सुमोना, चित्र लो न इन घरों का। इन टूटे घरों का तुम्हें चित्र लेना चाहिए क्या तुम्हें नहीं लगता? देखो न इतने मजबूत मकानों के छतों के ऐन बीच में कैसे बड़े-बड़े छेद हैं जहाँ से दृश्यमान है साक्षात्-सीधा आकाश-पुरुष। उफ् । ओह सुमोना।' एक मौन वार्तालाप था सुधा का और फिर बोल पड़ी, "दिलावर साहब! आप पर क्या बीतती है इन घरों को देखकर?"

"हाँ, दुःख होता है। अब हम क्या कर सकते हैं। वैसे भट्टों को उसी समय निकलना चाहिए था जब पाकिस्तानी कबाइली आये थे...देखिए हिन्दुस्तान के हाथ में कभी नहीं रहेगा यह कश्मीर।" दिलावर ने वापस तीर मारा।

"वह बात दीगर है दिलावर साहब! मगर यह तो सीधे-सीधे इन्सानी रिश्तों और इंसानियत से तअल्लुक रखती बात है।" सुधा ने भी संयत व्याख्या करनी चाही।

"सो तो है...मगर अब हम भी क्या करें। हमें भी आदत पड़ गयी है इनको

देखने की। कहा न...यह तो मालूम ही था कि एक-न-एक दिन आपको यहाँ से भागना पड़ेगा। पता था...आज नहीं तो कल यह होना ही था।''

सुधा ने यह सुनकर चुप रहना श्रेष्ठ समझा और संवाद को दिलावर के बदले सुमोना की तरफ लाया, ''सुमोना! क्या तुम इन मकानों के चित्र लोगी?'' कहते हुए सुधा सोच रही है कि उसने कितने भारी खतरे उठाये। वह जानती है कि सुमोना इन मकानों के चित्र लेने के लिए गाड़ी से नहीं उतरेगी...न इनके चित्र लेगी...न ही इन्हें गौर से देखेगी...क्योंकि वह सुधा को छोड़कर अन्य सभी गाड़ी में बैठे सदस्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता में जरा भी कहीं खरोंच नहीं आने देगी। वह उन्हें आपादमस्तक प्रसन्न रखेगी। यह तो सुधा की एकाकी चिल्लाहट है कि गुलामा की बाँहों ने, पैरों ने गाड़ी रोकी। चला ही नहीं पाया गुलामा गाड़ी को आगे। महीन मनुष्यता के तन्तु से बँधा है कहीं गुलामा...जो सुधा को दिख गया है। उसे सुधा के हिस्से की पीड़ा में से बराबर हिस्सेदारी मिलती है। चुपचाप। नीरव। किन्तु उसके गाड़ी रोकने के साथ सुमोना की हामी नहीं है, क्योंकि सुमोना अब कुछ ज्यादा ही 'अच्छी बच्ची' कीटाणु ग्रस्त हो उठी है। हुर्रत, गुलशन, इज़ा इत्यादि को वह जितना जता सकती थी जता ही दिया था अपना अच्छापन उसने परन्तु अब ये दो सज्जन हैं सुमोना के सामने। बहुत बड़े इम्तहान से गुजर रही है सुमोना। वह भी पुरुष हैं उसके सामने...उसके इम्तहान लेने वाले। प्रभावशाली पुरुष। जनसम्पर्क के धनी पुरुष। पुरुष अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पुरुष सुमोना को विविध स्थलों पर वार्ताओं के माध्यम से सर्वाधिक पहुँचाने वाले सिद्ध होंगे। सुमोना को इनके नुक्ते निगाह से कितना ज्यादा संवेदनशील होने की आवश्यकता है। सुधा यह नजाकत समझती है। सुमोना मलंगई नहीं कर सकती। सुमोना साफगो और निष्पक्ष नहीं हो सकती है। सुमोना गाड़ी से उतरकर किसी भी गणित से इन एतराज भरे घरों के चित्र नहीं ले सकती है। ये बेजुबान घर। इन घरों के चित्र लेना तक उसे कल को साम्प्रदायिक के रूप में रूपायित कर सकते हैं। हिन्दू वर्जित हैं। बुद्धिजीवी समाज में कश्मीरी पण्डित वर्जित हैं। भारत भी कैसा देश है...खैर सुमोना गाड़ी से नीचे नहीं उतरेगी...चित्र नहीं लेगी। दिलावर और सुलतान मुहम्मद को खासकर नाराज नहीं करेगी। इज़ा, हुर्रत, अतहर, खालिदा को वह विशेषकर नाराज नहीं करेगी। इसलिए आराम से सुधा के हृदय में एक और छेद कर देगी जैसे कि उस मकान में हैं।''

सुधा जानती है कि सुमोना उन सबके साथ मिलकर हँसना चाहती है कि एक 'पागल औरत' है उनके साथ। होनी भी चाहिए, एक अदद, क्या फर्क पड़ता है। जैसे कह रही हो कि 'मैं तो तुम्हारी इस तथाकथित पीड़ा की खिलाफत में प्रतिबद्ध हूँ। तुम लहूलुहान हो। इनके इन घरों से। छेद-दार घरों से, मुड़े हुए

घरों से, वीरान, सुनसान घरों से, टूटे हुए घरों से, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। गुलामा गाड़ी धीमी क्यों की? चलो न। आखिर इन मुअतबरों ने हमारे साथ चलने का हमको गौरव दिया है...इन्हें देर हो जाएगी...रोजों के दिन हैं...चलो गाड़ी का एक्सिलरेटर दबाओ भई। बाकी सब नाजरूरी है...गौण है...।' सुधा का एकालाप था।

'सुधा आती बार मैं चित्र लूँगी। अभी तुम यह सब बचपना कर रही हो। चलने दो गाड़ी। आखिर हमें दूर गाँव पहुँचना है। लगभग पाकिस्तान की सरहद को छूना है, और लौट भी आना। गुलामा गाड़ी जरा तेज चलाओ।'

और हुआ वही जो सुधा ने सोचा था। क्या वह व्यावहारिक नहीं बन पा रही है? क्या वह अपने दर्द को भुला नहीं पा रही है? क्या वह अपने लिए अपमानों को चुन रही है? और उसमें यानी सुधा में कौन ऐसा है जो विराजमान नहीं? तमाम भट्ट समुदाय सबको अपमान समझ नहीं आ रहे, पर सुधा को आ रहे हैं।

गाड़ी में बैठी-बैठी वह अपमान से जल रही है। शायद सुमोना भी किसी संघर्ष से गुजरी होने से कहीं किसी कँपकँपी की शिकार है। वह एक बैग में कुछ खोजने का-सा नाटक कर रही है और नाटक करके गाड़ी में बैठी शेष स्त्रियों को दिखा रही है। या सुधा को समझा रही है कि सुमोना जिस तरह चीजों को समझती है, इस यात्रा में उसे भी चीजों को समझना या समझने का नाटक करना चाहिए। सच सिर्फ अबोध बोलते हैं। पीड़ा होने पर सिर्फ अबोध रो पड़ते हैं, समझदार और प्रौढ़ लोग पीड़ा को दबाकर दिखाते हैं दुनिया को कि वे प्रसन्न हैं और सुखी लोगों के साथ शामिल होते हैं।

सुमोना चुप है। सब उसे कनखियों से देख रहे हैं, यहाँ तक कि गुलामा भी।

दिलावर ने गला हल्के से खँखार लिया मानो बहुत सारी कटुता निगलकर वह गला साफ कर रहा हो या सुमोना के माध्यम से बहुत कुछ बोल चुकने पर सुखी, सानन्द हो और इत्मीनान के घूँट पी रहा हो।

और सुधा? सुधा का पूछिए मत। वह अपने भीतर के अँटे पड़े तहखाने को साफ कर कुछ जगह निकाल उसमें इस अपमान और पीड़ा-दर्शन, इन छेददार मकान और उन मकानों से उसका रहस्यमय-सशब्द साक्षात्कार अभिलिखित करने की कोशिश कर रही है।

तिलमिलाहट घुल रही थी मगर मिट नहीं रही थी शिद्दत अपमान की! तुम क्या जानो मेरे हमवतन दुश्मनो! कि मेरे भीतर क्या-क्या है। मैं कुल-आलम का ध्यान अपनी ओर खींचूँगी एक दिन। यह सुमोना की बच्ची दंग रह जाएगी।

दिलावर और सुलतान तुम दंग रह जाओगे। तुम सब सन्निपात-ग्रस्त हो उठोगे। ठहरो तहाने दो मुझे मेरे भीतर यह अपमान की खेप। ठीक है गुलामा गाड़ी का एक्सिलरेटर दबाओ।

❑❑

एकाएक गाड़ी एक अजीब मंजर पर पहुँची। यहाँ एक आबशार है। मजे की बात यह है कि इस आबशार का कोई पुल नहीं। जैसे था तब जब काकनी का घोड़ा इस आबशार को पार करता था। सुधा और काकनी का घोड़ा कछू से संग्राम पहुँचता था।

समय ने समय को ही किसी सुदूर के समय-छोर से गूँथ दिया है, माला बना दी है...सुमोना क्या जाने। उसकी आँख वाह। उसका कैमरा...।

"ओह फरहद...अरे...हाऊ वण्डरफुल...रोकिए। गाड़ी रोकिए। जल्दी से। व्हाट ए ब्यूटी। फरहद...आयी रियली फील प्राउड दैट आई बिलांग टु दिस प्लेस। मुझे फख्र होता है कश्मीरी होने में...कि मैं कश्मीरी हूँ...।"

गाड़ी रुक गयी थी। सुमोना अपने बालों को झटकते हुए कैमरा ठीक करते हुए अपनी आँख के ऐन सीध में रखते हुए नीचे उतरी। उसके लटके-झटके और उसकी अदाओं में बला का नकलीपन और नखरीलापन था, गुलामा के चपटे-चेहरे पर दुःखपूर्ण विस्मय था। वह गाड़ी की ड्राइवर सीट पर ही बना रहा। सुधा भी अपनी सीट से एक सेंटीमीटर भी नहीं हिली। आँखें मूँदे रही। न सौन्दर्य देख रही थी न सौन्दर्य से अभिभूत हुई, न ही उस नखरीली, नकली बुद्धिजीवी समुदाय की अजीबोगरीब जानवर को देखने को लालायित ही।

❑❑

काकनी ने अपनी लूंग्य खोलकर उसको अपने पीछे सटकर बाँध दिया। घोड़ेवाला गूजर काकनी की काफी इज्जत कर रहा है और पैदल जा रहा है घोड़े की दायीं तरफ। घोड़े की लगाम काकनी के हाथों में है। उसे घोड़े की समझ है। घुड़सवारी की समझ है। अपनी बेटी की बेटी दिद्दा को अपने पीछे लूंग्य से बाँधकर यह महारानी घोड़े को जो हुक्म देती है, घोड़ा वही करता है। काकनी घोड़े की भाषा एवं लिपि बखूबी जानती है। घोड़ा काकनी को जानता है। पहाड़। ठीक इसी पहाड़ से वह आयी थी और कितने ही ऐसे आबशारों को घोड़े ने घुटनों-घुटनों पानी में डूबकर पार किया था। किस लोक में कहाँ जा रही थी सुधा अपनी नानी के साथ? क्या वह इसी लोक में था। क्या वह इसी जन्म में था? क्या वह सच था? अरे उन आबशारों को घोड़े की पीठ पर पार करने की रहस्यमयता सुमोना क्या जाने।

तिस पर घोड़े वाले गूजर की गैर अँग्रेजी भाषा में काकनी के संवाद।

'मारना नहीं घोड़े को काना।' 'ओ ओफ ओ...सुधा ओ...सुधा तुम्हें घोड़े वाले गूजर का यह सोच में डालने वाला नाम भी याद आया...कभी नहीं भूला न...।' सुधा ने सुधा से कहा।

''सुमोना! मैं पिछले असंख्य जन्मों से इन आशबारों को पार करती रही हूँ...पार्वती-सरीखी नानी के साथ...अच्चै-श्रवाओं पर ...।

''इन टूटे घरों का चित्र न लेने वाली...यहाँ आश्चर्य और हतप्रभता में अँग्रेजी में कश्मीरी अस्मिता झाड़ने वाली तुम! तुम कौन हो? कोई नहीं हो तुम? कोई भी नहीं हो तुम...।

''तुम...हा हा हा...हा...सुमोना यह आबशार...यह सारा आश्चर्य मेरा विस्तार है। गाड़ी में बैठो। यह पागलपन और दिखावा मत करो...यह तुम्हारा पागल शोध...आक् थू। गुलामा गाड़ी चलाओ। हमें दूर गाँव जाना है और वापस भी आना है। हम पिकनिक पर नहीं निकले।''

लेकिन हृदय-विदारक मौन में कोई नहीं सुनता उसका यह अमुखर हृदय-विदारक शोर। गाड़ी में गुलामा और उसके होने के बावजूद युगान्तरकारी सन्नाटा है। दूरस्थ से कभी सुमोना की खी-खी कभी फरहद की खा-खा और कुछ अस्पष्ट अँग्रेजी शब्द सुनाई देते हैं।

गुलामा और सुधा अब फोटो खिंचना एकटक देख रहे हैं। सुमोना दिलावर साहब को सुलतान साहब के साथ आबशार के दूसरे छोर पर सटकर खड़ा होने को कहती है। वे बहुत सुखी हैं। आनन्द आबशार की तरह उनके चेहरों से होते हुए बहकर निकल रहा हो जैसे और पता नहीं आगे कहाँ, किस रसायन में बदल रहा है।

उनकी फोटो खींची गयी। अब इन दोनों की फोटो अलग-अलग भी खींची गयीं।

अब सुमोना खजाना पहाड़ के दामन की बगल-बगल बह रहे इस आबशार की फोटो ले रही है। उसके किनारे पर फरहत, इज़ा और हुर्रत इत्यादि को खड़ी कर। कोई नहीं कहता 'सुधा तुम भी आओ।' कोई भी नहीं कहता। सब शामिल हैं उसके खिलाफ एक दुरभिसन्धि में। सुमोना और अन्य वे सब। अर्थात् दोनों। भारत और पाक। दोनों। एक जिससे वह बेइन्तहा प्यार करती है एकतरफा। एक जिससे वह अपने समुदाय के साथ संक्रमण की तरह जी रही है...यातना की तरह उसके अस्तित्व को जी रही है।

''आपको मालूम है इस खजाना पहाड़ के पीछे आजाद कश्मीर है यानी पाकिस्तान का एक सूबा।'' गुलामा ने गाड़ी में बैठे सन्नाटा तोड़ा।

"अच्छा इसके पीछे आजाद कश्मीर है? ओहो! अच्छा। क्या आजाद कश्मीर पाकिस्तान के चंगुल से आजाद है गुलामा जी?"

"नहीं, आजाद कैसे है? वहाँ पाकिस्तान की तरफ से गवर्नर नियुक्त किया जाता है...जिसे शायद पहले वजीरे आजम कहते थे। आजाद माने भारत के चंगुल से आजाद है।"

"हूँ हूँ। ठीक। तो इसका जवाब है गुलामा जी बस ठीक इस पहाड़ के पीछे ही वे प्रशिक्षण कैम्प हैं, जिनमें आतंकवादी युद्ध-कौशल सिखाया जाता है, बेहद कच्ची उम्र के युवकों को।"

"जी हाँ। फिर वे लोग एक फर्लांग में यहाँ आ धमकते हैं और अपनी कार्रवाइयाँ शुरू करते हैं और उसके बाद अधिकतम छः माह की अवधि के अन्दर ही अन्दर हर आतंकवादी बेचारा मारा जाता है। यही अधिकतम सीमा है जीवन की। हर हथियार उठाने वाले आतंकवादी के जीवन की।" गुलामा खुलकर बोल रहा था।

सुधा सोचने लगी कि हो न हो गुलामा की चिन्तन रेखा नितान्त भिन्न है। शायद गुलामा दो देशों की सीमा रेखाओं की पृष्ठभूमि में मनुष्य की मूर्खताओं का गहन विश्वासी है। उसे आतंकवादी की अधिकतम उम्र मालूम है और किसी भी स्थिति में वह उसे आतंकवादी ही कहता है न कि शहीद या जेहादी।

"पाकिस्तान यह क्या कर रहा है गुलामा जी?"

"कश्मीर की सुन्दरता और खुशहाली तबाह। नयी पीढ़ियों का अन्त और कुछ नहीं। कुछ भी नहीं। मगर इस पर सोचता कोई नहीं। जो सोचता है उसे बात सही ढंग से समझ नहीं आती। खुदा की कसम सुधा जी अगर आतंकवाद न आया होता आज पता नहीं कश्मीर ने कितनी तरक्की कर ली होती। कश्मीर किस कदर तरक्की की राह पर था, है न, आपको भी पता है कि यहाँ से आपके जाने के समय यहाँ तरक्की उरोज पर थी। थी न...?"

"थी...थी...जरूर थी...मगर...मगर क्या कहूँ। आप जैसे मुसलमान भी कम हैं न...बेहद कम, यही तो दुःख की बात है। या हो सकता है आप मुझसे अकेले में ये बातें कर रहे हैं। मेरा दिल रखने के लिए। ये बातें सबमें करना वर्जित हो। है न? ऐसा भी है। आप आपस में खुलकर कब बातें करेंगे? मेरा मतलब है ऐसी इन्सानियत भरी, सीधी, सच्ची दो टूक बातें। जिनसे आपके ही बच्चे बेवक्त और एक खराब मौत मरने से बचे। है न जरूरत आपके अपने बीच आपस में हकीकत का दूध-का-दूध पानी-का-पानी करने की।"

"हाँ है न। मैं आपसे इत्तफ़ाक़ करता हूँ। मगर डर है। हमें दोतरफा डर है। अगर उनका तरफ लेंगे तो हिन्दुस्तान की फौज का डर है अगर हिन्दुस्तान

का तरफ लेंगे तो वे यानी जेहादी हमें खत्म करेंगे। हम करें तो क्या।''

''देखिए यह दोचित्ता समाप्त करना इन्सान के अपने हाथ में है। आप इसे उनकी तरफ या इनकी तरफ, हिन्दुस्तान की तरफ या पाकिस्तान की तरफ क्यों कहते हैं। आप अपनी तरफ होइए। अपने हक की तरफ होइए। अपनी जिन्दगी की तरफ होइए। इन मासूमों को मरने से बचाइए, जो इस पहाड़ के ठीक उस पार से इस पार आते हैं, महज मरने के लिए। है न? क्या मैं ठीक कहती हूँ। क्या आपको पाकिस्तान चाहिए गुलामा जी?''

''नहीं...नहीं...पाकिस्तान किसी को नहीं चाहिए...सब पाकिस्तान से घृणा करते हैं...।''

''फिर... ?''

''फिर पता नहीं क्या चाहिए इन्हें। कौन हैं जिन्हें कुछ चाहिए। मुझे तो अमन चाहिए। अमन शान्ति...शान्ति। सिर्फ शान्ति। और इंशाअल्लाह शान्ति हो जाए। अब बहुत हुआ। बहुत मर चुके...।''

''मगर शान्ति कैसी? कौन शान्ति? किसे कहते हैं आप शान्ति?...देखिए आप ही सब चाहने वालों में नहीं रहे न। हमें उस तरफ निकाल बाहर कर आप शान्ति चाहते हैं? हैं न? पर शान्ति तब तक कैसे होगी जब तक हम न लौट आएँगे? है न? क्या आपको ऐसा नहीं लगता?''

''और क्या? मैं तो चाहता हूँ कि आप लोग वापस आएँ। खूब सारे टूरिस्ट आएँ। फिल्मी लोग आएँ। खूब चहल-पहल रहे। इस आबशार को जेहादी या आतंकवादी पार न करें बल्कि फिल्मों की नायिकाएँ या नायक इनके इधर-उधर कूदें। झूमें। गायें। इस खजाना पहाड़ के दामन में...। इसके एक-एक संग अश्मी पत्थर के साये में वे प्यार के बोल गाये। साज बजे मुम्बई में आवाज आए कश्मीर से। सुमोना जी को यही शोध करना चाहिए। मैं फिर एक साल में दो और टैक्सियाँ न खरीदूँ तो मेरा नाम गुलामा नहीं।''

''हो...हो...गुलामा जी। दिल खिल गया मेरा। अब मुझे विश्वास हो रहा है, आप अमन चाहते हैं, मगर...उफ एक बड़ी सी 'मगर' साथ में जुड़ती है। एक जानी-बूझी बेईमानी ने तुम्हारे दिलो-दिमाग पर कब्जा जमाया है। न आप पाकिस्तान चाहते हैं, न आप भारत चाहते हैं, आप चाहते क्या हैं... ?''

''हम...हम आजादी बकौल पब्लिक के चाहते हैं। मगर सुधाजी विश्वास कीजिए, मैं वह भी नहीं चाहता...मैं तो मजे में था...यों भी।''

''वह तो व्यक्तिगत रूप से सब कहते हैं। मगर आजादी का राग सब अलापते हैं। पाकिस्तान जिन्दाबाद भी सब करते हैं। समझ में नहीं आता कुछ। इस धुँधलके में जीना आपकी आदत हो गयी है और आपको यह रास भी आया

है। शायद आप इसको हर तरफ से भुना सकते हैं, भुनाते हैं...इसीलिए। वर्ना वास्तव में आपको कुछ नहीं चाहिए।''

''भुनाते हैं... ?''

''तो क्या। भारत सरकार आपको पैकेज भेजती है कि कृपा करके रुपयों की यह थैली लो और मार-काट बन्द करो। पाकिस्तान हवाला के हवाले से भेजता है कि ला इलाही यह मार-काट बन्द न करो। इसी से हमारा वजूद बनता है। अरब देशों से पैसा आता है कि इस्लाम फैलाओ...इस्लाम का नाम रोशन करो। जेहाद करो। काफिरों को भगाओ। उनको मारो...या दोजख में भेजो...और...और...।''

सुधा को पता नहीं क्या हो गया था। गुलामा ठण्डे दिमाग से सुन रहा था और निर्विकार था। आबशार के किनारे-किनारे जाकर एक खास झाड़ी की बगल में एक खास अन्दाज से आबशार को निहारकर आबशार और खजाना पर्वत को अपने कैमरे में कैद कर रही थी सुमोना। बाकी जन देख रहे थे और सुमोना का इन्तजार कर रहे थे। गाड़ी के पास प्रच्छन्न और स्वर्णाभ सूर्य का फैलाव था। इस स्वर्णाभ को पहने खजाना पर्वत का भव्य और वाचाल-सा व्यक्तित्व था। रुदन-सा गाता हुआ मानो आबशार के मुख से। जो कि उसके दामन-दामन निकलता सूर्य की किरणों से खेल रहा था। सन्नाटा था। गुलामा और सुधा की तेजाब-भरी बातें थीं। मौन और कुछ-कुछ स्थितप्रज्ञ गुलामा था। बाहर का सब कुछ जीवन्त घूम रहा सुधा के अन्दर था।

❑❑

हँसते खिलखिलाते हुए सुमोना अपने दल के साथ लौट रही थी। गाड़ी से कुछ गजों की दूरी पर से मर्दाना आवाजें आ रही थीं। वहाँ दिलावर और सुलतान साहब एक-दूसरे से बातें कर रहे शेष स्त्रियों की प्रतीक्षा में खड़े थे।

गुलामा मौन रहा और सुधा भी। पर सुधा के अन्तिम शब्दों ने सुधा को तीक्ष्ण-दृष्टि होने का इच्छुक किया। शायद मैंने कुछ अधिक-ही कटु बातें कीं। वह स्वयं से बोली। और गुलामा का चेहरा बारीकी से पढ़ने लगी। कुछ नहीं पता चलता था उसके चेहरे से। कुछ भी नहीं। कुछ भी नहीं लिखता हो गुलामा इस अपने वर्क पर। उसका चेहरा चपटा और कुछ अपवाद-स्वरूप काला है। पर गाड़ी में उसकी निरन्तर चुप्पी ने उसे सुन्दर कर दिया था। रहस्यमय कर दिया था। ''मौनं चास्मि गुह्यानाम्।'' मौन से वह गोपनीय और परम रहस्य हो उठा था। सुधा ने उसे ठीक-ठाक सीमा तक यह जता दिया कि गुलामा में पात्रता है। उसका सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता या उसको समझना सरल नहीं है। सुधा उसे देखकर देखना चाहती है कि वह उसकी बातों से कहीं तिलमिला रहा

है? उसे लग रहा है नहीं। लेकिन कभी वह सोचती है कि वह अपना आहत मन छिपा रहा है। या क्या पता सुधा की साफगोई को मान्यता दे रहा हो, कुछ भी हो सकता है और आगे की बातचीत और गुलामा के उसके प्रति रवैये से सब पता चल सकता है।

❑❑

सब लोग गाड़ी में बैठ गये। आबशार में से गाड़ी ऐसे निकली जैसे नाव किनारे लगती है। अब एक अलग गाँव का मार्ग शुरू हुआ। मील-पत्थर पर लिखा था—त्रहगाम! 10 किलोमीटर। राष्ट्रीय राज्य मार्ग संगठन! भारत। पर यह पूर्ण रूप में नहीं, संक्षिप्त रूप में लिखा है। लिखने वाला संस्थान है—बीकन।

धूप बहुत शरद-प्रवृत्त और शिशिरोन्मुख है। दूर की चोटियों के बर्फ से मानो टकराकर हवा के वृत्त उनकी गाड़ी में घुसकर उनसे आलिंगनबद्ध हो रहे हैं। कभी सुधा से कह रहे हैं...ज़रा हमसे कसकर लिपट जाओ, कभी कहते हैं कि अपना अंग-प्रत्यंग ढको। हम मनचली हवाएँ हैं। निष्ठुर। आजकल कुछ ज्यादा ही निष्ठुर। सूखी बर्फ छूकर आयी। संवेदनशून्य। ''सूखी बर्फ! सूखी बर्फ? हुँ हुँ...सूखी बर्फ...क्या कहा सूखी बर्फ?'' सुधा के कितने ही टुकड़े मानो वातावरण में पंचतत्त्वों पर तैरते हैं और एक शब्द पर तैरते हैं। किसी स्मृति की खोज में कोई गहरी जमीन खोजते हैं। उसके देखते-देखते शब्दों के शरीर के भीतर उसकी स्मृतियों की आत्मा पुरातत्त्व की मूल्यवान धरोहर हो उठी हे प्रभु! प्रभु हे...हे...नन्दबब। कौन कहा करता था, 'सूखी बर्फ।'

''माँ कहती थी हाँ।''

''पापा कहते थे।''

''सब कहते थे हाँ।''

''कहते थे सूखी सर्दी है...। सूखी-सूखी बर्फ गिरी थी प्रातः में...मैं तभी रुक गयी...।''

''भला बर्फ भी सूखी हुआ करती थी? बर्फ सूखी हुआ करती है क्या? इस दलील को मैं समझूँगी हुर्रत। इस वाक्यांश को मैं समझूँगी इज़ा। ओ...सुमोना। तुम्हें क्या पता क्या होती है सूखी बर्फ की नीयत और सूखी सर्दी का पैमाना। मैं जानती हूँ...और तब भी मेरे पास कोई प्रमाण नहीं कि मैं ही वह सब हूँ। यह धूप। यह आबशार।...यह स्वर्णाभ...यह मनचली और यह 'सूखी बर्फ' को किसी दृष्टि-परे की चोटी से छूकर आयी निष्ठुर और पागल हवा।''

''और यह खजाना पहाड़? अरे ये पत्थर मेरे जन्म-जन्मान्तरों की हड्डियाँ हैं...।''

"हाँ है न? हाँ हाँ है न। तुम्हें कैसे समझाऊँ हुर्रत। ओ गुलामा जी। ऐसा होता है। मनुष्य की हड्डियाँ कालान्तर में बहुत कीमती पत्थर होते हैं। फिर शताब्दियों के बाद आने वाले उसी के पूर्वज उन पत्थरों के घर बनाते हैं। मैं पूर्वज हूँ तुम्हारी...तुम ओ गाड़ी में बैठे। तुम सब। तुम सब सुनो न...और मेरी अस्थियों का यह खजाना-पर्वत तुम्हें समर्पित।"

मगर जब सुधा को धीमे-धीमे अपने ही भीतर होश आता है तो उसे अपने पागलपन के 'गवाह' अपने पर ही सन्देह होता है, "किसी ने देखा तो नहीं उसे इस कदर छटपटाते हुए?" पिछली बार की कॉन्फ्रेन्स में सुधा ने टेबुल ठोककर कहा था, बुद्धिमान स्त्रियो! स्त्रियों के अमन-चैन की बहाली में भागीदारी की चर्चा करने वाली तुम ओ स्त्रियो! इसका मार्ग बनाने वाली ओ स्त्रियो! क्या तुम जानती हो कि इस पूरे कश्मीर सूबे में कितनी पागल स्त्रियाँ दिखीं मुझे कल। जब मैं तुलमुल जा रही थी। खासकर गान्धर-बल के पास मुझे एक पगली दिखी। अँग्रेजी ढंग से बाल कटी। जीन्स पहनी। एक अखरोट के पेड़ के नीचे सुस्ता रही और कुछ गहराई से सोच रही पगली। एक अलग पगली थी वह। सुमोना होती तो कैमरा में उसकी तस्वीर कैद भी करती। मगर मैंने उसे दिल में कैद किया...आँखों के कैमरे से। मैंने उसे दिल में कैद किया। दिमाग में कैद किया। आत्मा में कैद किया। मन किया कि उससे पूछूँ कि तुम कौन हो?"

मुझे डर लगा कि वह वापस मुझे अँग्रेजी में जवाब देगी, "मेरा नाम सुधा है...तुमसे मतलब...कृपया अपना काम करो...नहीं तो पत्थर मार-मारकर तुम्हें संगसार कर दूँगी, दफा हो जाओ।"

"मुझे क्यों लगा डॉ. मीनाक्षी कि मैं ही थी वह।"

डॉ. मीनाक्षी की आँखें सजल हो उठी थीं और आँखों का जल खुश्क करने के बाद बोली थी, सब स्त्रियों से मुखातिब होकर, "मुझे लगता है ऐसी कवि-हृदय को हमारे बीच होना चाहिए। अच्छा लगता है कवि जैसे उद्गार सुनना।"

अजीब बात थी। उस दिन सुधा बहुत देर तक हतप्रभ रही थी। अगर स्त्रियों की दशा का जिक्र हो रहा था तो सुधा ने अपनी एक सूक्ष्म दृष्टि बतायी थी और मीनाक्षी ने उसे एक कवि-अनुभव कहकर उड़ाया था और पृष्ठ बन्द किया था। "वाह री बुद्धिमान स्त्रियो! चलो खैर" बेहद आहत रही कई दिनों तक इस सबसे सुधा। अब भी उसे रह-रहकर वह अलग पगली याद आती है। और भीतर-भीतर वह खोज करती है, अटकलों से, अन्दाजों से कि कौन रही होगी वह।

क्या इतनी जल्दी पगलियों का व्यक्तित्व समाप्त होता है, सामान्य मनुष्यों की फेहरिस्त में से। आखिर खोज करके पता चल सकता है, पता किया जा सकता है कि कौन थी वह, या वे सब-की-सब कौन थीं। आतंकवाद की उपज थीं?

हाँ! पता नहीं उनके शरीरों को कहाँ कहाँ कैसे-कैसे अपमानित और जलील किया गया होगा और वे समाप्त हो गयी होंगी। वे तब भी शरीर हैं...वे सब की सब शरीर हैं, सबकी सब वे शरीर ही थीं।

रह-रहकर लगता है सुधा को कि वह उस पगली में विलय हो रही है, या वह, या वह पगली उसमें विलय हो रही है। उसे खुद समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों होता है और यह सब क्या हो रहा है। कभी-कभी किसी संक्रमण के क्षण में वह एक लम्बी साँस खींचकर सोचती है, 'शुक्र है उसने, उस दिन उससे नाम नहीं पूछा। वर्ना वह जरूर उत्तर देती, क्यों पूछ रही हो मेरा नाम। क्या करोगी मेरा नाम जानकर। लो जान लो कि मैं सुधा हूँ। सुधा और कुछ?...अब...तब वह फिर बोलती—सुनो क्या तुम्हें पता है कि मैं अपने घर से निकाली गयी हूँ...फिर अपने देश से भी निकाली गयी हूँ। यानी घर से...घर से...कश्मीर से...मैं...मैं निकाली गयी हूँ और रास्ता ढूँढ़ रही हूँ वापसी का...क्या...क्या तुम एक काम करोगी...एक सवाब का काम...कि बताओगी मुझे मेरे घर का रास्ता... क्या तुम्हें मालूम है मेरे घर का रास्ता किधर से है...?' तब सुधा की क्या हालत होती? सुधा खुद इसका अन्दाज नहीं लगा सकती।

यह लय-विलय तीव्र हो उठता है। तीव्रतम हो उठा है अब यह इस क्षण। उसके भीतर अभिलेख हुई स्मृति शब्दातीत हो चुकी। 'सूखी बर्फ' से वह पहुँच गयी है कहाँ उस सुधा नामक पगली के पास जो गान्दरबल के एक अखरोट-वृक्ष की छाया में पूरी दुनिया पर व्यंग्य कर रही है।

इन हवाओं की छुअन से पहुँची है वह सहस्राब्दियों पूर्व जब खजाना पर्वत की नींव उसने अपने सर्वप्रथम जन्म के शरीर की हड्डियों से रखी थी।

मीनाक्षी कहती है, 'ऐसे कवि' और बस। कितनी गहरी साजिश है मीनाक्षी की यह।

केवल वह। केवल वह ही जानती है कि वह किस कद्र अस्तित्ववान है।

❑❑

उस दिन सुधा का होनेवाला पति अपने साथ पश्मीने का दुशाला लाया था। सुधा उसकी प्रतीक्षा अपने घर से लगभग पाँच सौ मीटर दूर सचिवालय के गेट के सामने कर रही थी। सुधा को प्रतीक्षा ज्यादा नहीं करनी पड़ी थी। दूर से ही उसे दिखाई दिया कि उसका होने वाला पति आ रहा है। एक आनन्दातिरेक की मुस्कान में डूबा हाथ में एक थैला लिये, जिसमें उसने बाद में देखा कि एक दुशाला रखा था और सुधा को खासी हैरत हुई थी।

"यह क्यों लाये हो आप?" सुधा ने पूछा था।

''हम आज लोक-भवन जा रहे हैं। हो सकता है हमें वहाँ ठण्ड लगे। इसीलिए लाया हूँ।''

सुधा हँस दी थी। एक अलग हँसी। जिससे मानो कह रही हो कि जाने दो यह बहाना। सूरज तो खूब खिला है।...फिर इस दुशाले में क्या कार्यक्रम है... ?

''हँस क्यों रही हो। गयी हो कभी लोक-भवन... ?''

''नहीं।''

''फिर हँसो मत। तुम्हें पता नहीं कुछ कि वह कुछ अधिक ही ठण्डी जगह है।''

वे बस में बैठे थे। अनन्तनाग तक। बस में बैठे हुए वे दोनों विचित्र रूमानी संसार में अपने डैने फैलाये हुए थे, उड़ रहे थे।

''लोग शादी से पहले डलझील में अक्सर नौका-विहार करते हैं। निशात जाते हैं, शालीमार जाते हैं, चश्माशाही जाते हैं, हारवन जाते हैं, परीमहल और जबरवन जाते हैं। मगर हम ? हम कुछ दूसरी ही दुनिया की सैर नहीं कर रहे क्या ? कर रहे हैं न ?''

''कुछ नहीं तो लोग सिनेमा जाते हैं, फिर रात को ऑटोरिक्शा में घर जाते हुए अपनी होने वाली बीवी को चूमते हैं...और बस शादी के दिन का इन्तजार करते हैं।''

''मैं तुम्हें लोक-भवन ले जा रहा हूँ...ठीक...न...आज मुझे देर तक नींद ही नहीं आयी...फिर तुम्हारे लिए दो कविताएँ लिखीं...और भी कुछ लिखा...पता नहीं...क्या-क्या...लिखा...और तुमसे मिलने तक समय व्यतीत किया।''

''हूँ...दिखाओ...तो... ।''

''दिखाऊँगा। साथ नहीं लाया हूँ। डायरी में पढ़ाऊँगा...बहुत कार्यक्रम है जो तुम्हारे साथ करने हैं।''

''अच्छा जी... ।'' कहते हुए सुधा एकबारगी हँस दी हल्की व्रीड़ा के साथ जिसके समानान्तर उसको अपने भीतर सुखद और प्रेमिल भविष्य का अद्‌भुत रोमांचकारी अनुभव का भास-सा हुआ। और सुधा के होने वाले पति ने सुधा का हाथ अपनी हथेली में लेकर आनन्द का एक लम्बा निःश्वास छोड़ा था। एक अन्तराल के बाद वह बोला था, ''जानती हो लोकभवन—जहाँ मैं तुम्हें ले जा रहा हूँ, कैसा स्थान है ? प्रकृति-सम्पन्न। प्रकृति-उन्मुख। दुःखपूर्ण। सुखमय। रहस्य-गुम्फित! और चोर की निगाहों के बीचोंबीच।''

''मतलब ?'' सुधा की समझ में यह पहेली नहीं आयी।

''अद्‌भुत सौन्दर्य से परिपूर्ण। विचित्र और स्मृतियों के किसी पाताल में ले जाती हुई। आनन्द के आकाश में उड़ा ले जाने को उद्यत। इतिहास-मय। और

शत्रु के आँख की किरकिरी।''

''क्या मतलब? शत्रु कौन?''

''बताऊँगा। तुम पहले पहुँचकर देख तो लो।''

❑❑

बस के आधे घण्टे के सफर के भीतर-भीतर ही सूर्य वसन्ताभ्रों में खो गया और मेघ गहराये। जब वे अनन्तनाग बस-अड्डे पर उतर गये तो धाराधार वर्षा होने लगी। ऐसी पागल मस्तानी बारिश कि किसी को भी न छोड़े। कहीं भी बरसने और कुछ भी भिगोने को आतुर वर्षा। एक छप्पर के नीचे सुधा को खड़ी कर उसका पति ताँगा देखने गया। सुधा ऊहापोह में थी। भीग गयी थी और उसका मन था सीधे श्रीनगर की बस में बैठकर वापस जाओ और घर में काँगड़ी लेकर गर्माहट करो। मार्च की यह शीतभरी बारिश। मगर होने वाले पति का साथ। पुरुष के साथ का पूर्णत्व-बोध। वह ताँगा लेकर आया।

''चलो बैठो।''

''यहाँ से लोकभवन तक ताँगे का रास्ता है?''

''हाँ, है न। तुम बैठो।''

''लेकिन मैं भीग गयी हूँ।''

''सूख जाओगी। तुम बैठो। मैं दुशाला तभी तो लाया हूँ।''

''तुम अन्तर्यामी हो भई। मान गये।''

''मानना ही चाहिए तुमको। अभी पहुँचो लोक भवन—नया लोक दिख जाएगा तुम्हें।''

सुधा का पति तब सुधा के प्रेम में लबरेज था। आपादमस्तक। सुधा संयत थी। एक बार दो मील की दूरी का विरह भी न झेल सकने पर उसे पति का लिखा हुआ पत्र मिला था—'सुधा! बताओ तो जब आदमी शेविंग क्रीम की जगह टूथ पेस्ट मलता हो और शेव करते-करते शीशे में खुद को देखते हुए जरा भी खुद को न देखता हो। किसी और ही को देखता हो, और उससे बहुत बातें करता हो। लोकातीत और अहंकारविहीन बातें। सुधा! इसे मैं प्रेम कहता हूँ। पता नहीं तुम क्या कहोगी।'

सुधा खूब हँस दी थी। खूब-खूब। और एक तृप्ति से भर गयी थी और एक लापरवाही से भी शायद। सुधा शायद सोच रही होगी कि उसका पति हमेशा उससे इसी शिद्दत से प्यार करता रहेगा और वह हमेशा मुक्त रहेगी। पर हुआ यों कि शेविंग क्रीम और टूथ पेस्ट के संक्रमण का हमला उस पर भी हुआ। दो मील का विरह इतना बड़ा ज्वालामुखी हुआ, और वह सब हुआ कि सुधा का भावानुभव

संसार कम्पित हो उठा। उससे उद्दाम और तीव्र प्यार करने वाला व्यक्ति हठीला हो उठा और ब्रह्मचर्य में सुधा को तपाकर राख करने के लिए उद्दत हो उठा...खुद भी हुआ या नहीं...सुधा कहती है कि ईश्वर जाने।

❑❑

वे दोनों ताँगे पर सवार हुए। सुधा काँप रही थी ठण्ड से।

उसके होने वाले पति ने उसको दुशाले से ढँक लिया और अपने साथ सटकर बिठा लिया।

'अरे। उसका पति इतना उष्ण है। इतनी ऊष्मा है उसके पास। इतना जीवन्त। जीवनपूर्ण है उसका होने वाला पति। सम्भाव्य भविष्य में आनन्द देने की हर प्रतिज्ञा से सम्पन्न है। कितनी गर्माहट है उसके पास। मगर।'

"क्या तुम्हें पता था वर्षा का कार्यक्रम। सूर्य का कार्यक्रम और तदनुसार बनाया तुमने भी अपना कार्यक्रम क्या?"

"हाँ सुधा। मनुष्य का प्रकृति के सूचना केन्द्रों के साथ प्रत्यक्ष तादात्म्य स्थापित हो सकता है। शर्त है कि क्या आप उन सूचनाओं की भाषा का कूट खोल सकते हो। मुझे एक क्षणांश में लगा था कि बारिश होगी और दुशाला अपने साथ लेकर जाना चाहिए।"

"इतने मत चढ़ो भई। या आपने सोचा था कि दुशाला लपेटकर, ताँगे पर बिठाकर मुझे अपने हृदय के नज़दीक ला सकोगे।"

"सुधा...ओ सुधा!...मैं तुमसे प्यार करता हूँ।"

"हाँ, मैं भी करती हूँ...बहुत।" स्थितप्रज्ञता का पाखण्ड करते हुए सुधा वापस बोली थी। मानो जनमों तक उसी स्थितप्रज्ञता का व्यवहार करती रहेगी और अविचलित रहेगी। सुधा ने देखा ताँगेवाला उनमें दिलचस्पी ले रहा था और रह-रह कर उनकी ओर देख रहा था।

"ताँगेवाला देख रहा है प्रभु।" सुधा ने कहा।

"तुम ताँगेवाले को क्यों देख रही हो? सवारी का आनन्द लो। इस अभ्र भरे आकाश और भीगी धरती को देखो।" प्रभु यानी सुधा के होने वाले पति ने कहा।

वे लोकभवन की ओर जा रहे हैं। दायें-बायें प्रकृति उत्कट रूप में है। वसन्त अपने शिखर पर पहुँचने की राह खोज रहा है। जिस प्रकार सुधा और प्रभु का विवाह केवल एक मास बाद है, उसी प्रकार मानो धरती और आकाश का विवाह चरमोत्कर्ष के वसन्त के ठीक एक मास बाद है। सफेदों की कोंपलें अपने मन को तसल्ली बख़्शने के लिए सिर उठाकर देखी जा सकती हैं। वसन्त की तसदीक करने के लिए सुधा प्राय: यम्बरज़लों को खोजती क्योंकि शीत लहरें मार्च में भी

ऐसी बहतीं कि सन्देह होता कि क्या वसन्त आएगा ही।

❑❑

वर्षा में भीगे काँधों वे दोनों घुटनों तक डूबी धरती को देख रहे हैं। कुछ क्षण मौन हैं। ताँगे वाले को आभास हो उठा कि उन्हें सन्देह हुआ कि वह उनको देख रहा है अतः उसने सख्ती से मुँह उधर करके ताँगा चलाना शुरू किया।

"इसका कोई कुसूर नहीं। इसको ऐसी जोड़ियों के ताँगे में बैठने का अनुभव नहीं, जैसे कि झीलडल के शिकारा वालों को है।"

"फिर तो यह पता नहीं क्या-क्या अटकलें लगा रहा होगा हमारे बारे में। तुम्हारे बारे में खासकर। सोच सकता है कि मैं किसी की बीवी या बेटी होकर तुम्हारे साथ आवारागर्दी कर रही हूँ। या यह भी सोच सकता है कि तुमने किसी की बेटी पर झपट्टा मारा है। क्यों?"

"हाँ, गाँव की दुनिया अलग है न। शहर के झूठे प्रेम की दुनिया से अलग।"

"तो आप सच्चे प्रेम वाले हो...?" उसने चिकोटी ली।

"हूँ न...हूँ...?"

"ओ ऽ ऽ ऽ...अच्छा।"

सच्चा प्रेम? गुत्थी कभी अन्त तक नहीं सुलझती, दोनों धीरे-धीरे जान गये थे।

"देख रही हो सुधा यह जादुई-सौन्दर्य?"

"ओ ऽ ऽ ऽ...तो क्या?"

"मगर हर सौन्दर्य के साथ पता नहीं क्यों बड़ी-बड़ी त्रासदियाँ जुड़ी होती हैं। संसार के सभी महाकाव्य त्रासदियों के महाकाव्य हैं और सौन्दर्य के महाकाव्य हैं। त्रासदी और सौन्दर्य आपस में एक साथ कदम उठाते हैं...बढ़ाते हैं।"

"सच...सच प्रभु! तुम सच कह रहे हो। जैसे महाभारत देखो...रामायण देखो... ओडिसी या इलियड देखो।"

"अरे ग्रीक ट्रेजेडीस देखो। महासौन्दर्य और महासन्त्रास...साथ...साथ। अगल-बगल।"

लोकभवन में घुसते ही सुधा को विभ्रम-सा हुआ। एक आश्चर्यलोक में मानो प्रभु ने उसे उतारा हो।

"यह देखो। यह जो...पहाड़ी का दाहिना दामन है न सुधा...इसे कजीमाजी की चोटी यानी गूँगी अम्मा की चोटी कहते हैं और सुधा वह इन कौओं को यहाँ अन्न के दाने खिलाया करती थी।" कहते ही सुधा ने देखा कौओं का एक विशाल झुण्ड उड़कर उस चोटी से दूर आकाश के अदृश्य में खो गया, मानो प्रभु को

उन्होंने अपना परिचय सुधा को देते हुए सुना हो और कुछ देर बाद जब वे उसी दामन के नीचे की चोटी पर बैठे थे तो सब-के-सब कौए वापस आकर कजीमाजी की चोटी पर बैठ गये।

सुधा को फिर विभ्रम हुआ। लगा मानो ये कजीमाजी के शिष्य, अनुगामी या बच्चे आकर चोटी पर ऐसे निढाल हो उठे, मानो थके माँदे भिक्षु, या विद्यार्थी या बच्चे आकर अपनी माँ के अगल-बगल लोट-लोट जाते हों। एक तान-भरे काँव-काँव का उद्घोष किया उन्होंने। मानो सुधा और प्रभु का स्वागत कर रहे हों।

"तुम कजीमाजी के बारे में क्या जानते हो प्रभु?"

"कुछ नहीं, इतना ही कि वह थी। यहीं रहती थी। तपस्विनी थी। एकाकी थी, गूँगी थी और इन कौओं का उसे सान्निध्य था।"

"फिर?"

"फिर क्या। अन्तर्धान हो गयी होगी या परमहंस हो गयी होगी या पंचतत्त्वों में विलीन हो गयी होगी।"

"लेकिन कब?"

"सुदूर अतीत में नहीं बस दूर-अतीत की बात हो...पर हाँ...कहते हैं वह जीवित है और दिखाई नहीं देती।"

"और इसके अतिरिक्त?"

"इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।"

"ओ प्रभु! मैं भी कैसी पागल हूँ। इसके अतिरिक्त जानने की आवश्यकता भी क्या है।...बस...बस...यही तो मूलतत्त्व है। क्या तुम्हें इन कौओं के हाव-भाव से नहीं लगता कि इन्हें वह दिखती है। ये उड़ते हैं और उसी के पास वापस आते हैं। हो सकता है हमें ही वह और उसका इन्हें पालना नहीं दिख रहा क्योंकि प्रकृति का नियम भंग हो जाएगा और इन शिष्यों, विद्यार्थियों, भिक्षुओं की एकता और समत्व भंग हो जाएगा, कजीमाजी का एकत्व भंग हो जाएगा। उल्लास भंग हो जाएगा। शायद इसीलिए आस्था होती है किन्तु दिखती नहीं है। है न प्रभु।"

"सुधा, मैं तुमसे प्यार करता हूँ। बहुत-बहुत।"

"प्रभु, मैं भी। मैं तुम्हारे देखने से भी प्यार करती हूँ...बहुत प्रभु बहुत। आओ कजीमाजी से आशीर्वाद माँगें।"

"किसलिए?"

"किसलिए क्या? अपने लिए। आखिर हम विवाह-सूत्र में बँध रहे हैं प्रभु।"

"सो तो बँधेंगे सुधा...मगर ये जनाना आशीर्वाद मत माँगो। माँगों कि हमारा

यह आस्था-केन्द्र पवित्र रहे। सुरक्षित रहे। हमारे मानस उल्लसित और बुद्धि विकसित रहे और किसी की भी हमलावर नीयत से परे रहें। इन हमारे मूलों पर कुदृष्टि रखनेवालों को ईश्वर सन्मति दें।''

एक मौन क्षणांश के लिए दोनों में रहा। जब सुधा को अहसास हुआ कि क्षणांश भी कितनी लम्बी और अकाट्य कालावधि होती है। उसे पता था कि प्रभु को ही आगे बोलना है यदि किसी को बोलना ही है। और वह बोलेगा। शायद वह सूत्र ढूँढ़ रहा हो।

''सुधा 'लोक-पुण्य' एक विशाल भवन था। काफी विराट। नीलमत पुराण में इसका जिक्र मिलता है, यहाँ भव्य नाग था और कट्टर-पन्थियों ने हमले कर करके इसे अपने तहत कर लिया। ले-देकर यह बचा सुधा। बस यह छोटा-सा नाग। यह बायीं तरफ का कुछ मरलों का आँगन और यह पवित्र पाषाण और कजीमाजी की दायें दामन की चोटी। मुझे लगता है कभी-कभी कि इस स्थल की सुरक्षा के निमित्त जितने भी भट्ट आज तक बलि हुए, वही हैं ये कौए। देखो न इनका अपने इस भूभाग पर अधिकार देखते ही बनता है। वे लोग यह सब नष्ट करना चाहते हैं। सब कुछ। पर हम उनसे लोहा लेना चाहते हैं...मैं उनसे लोहा लेना चाहता हूँ सुधा। दो वर्ष पूर्व यहाँ एक और हमला हुआ।

''यहाँ कुछ नित्य दर्शनार्थी आते थे, जिन्होंने असुरक्षा को भाँपकर यह कर्म बन्द कर दिया क्योंकि उनमें से एक को मुसलमानों ने बोटी-बोटी काटकर मार डाला। बड़ी दहशत फैली। श्रीनगर से भी कुछ धर्म-सम्मत भट्ट इधर आकर डटे रहे। यहाँ हवन करना चाहा जो कि नहीं करने दिया गया। पर हुआ यह कि इतनी-सी बची-खुची जमीन पर यह दीवार खड़ी कर दी गयी।''

''लेकिन इस दीवार से क्या बनेगा? यहाँ किसी को होना भी चाहिए। क्या गाँव में कोई पण्डित नहीं है?''

''नहीं के बराबर। लोकभवन का परिसर, तत्त्वावधान उनकी आँख को खटका है। हमले होते रहे हैं। लोग तंग आकर यहाँ से पलायन भी कर चुके हैं।''

''मगर उन्हें लड़ना चाहिए इस अत्याचार के खिलाफ।''

''कैसे लड़ेंगे? किस हथियार से लड़ेंगे? किसके साथ से, सहायता से लड़ेंगे सुधा?''

''क्यों। अगर कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं तो भी भारत सरकार की मदद से...मूलाधिकार के हथियार से। प्रभु और आपस की एकाग्रता से।''

''भट्टों के पास ये सब कुछ नहीं है। सब कुछ का ज्ञान होकर भी वे सब कुछ छोड़ देते हैं। सुधा! आक्रमणकर्ता चतुर है। बर्बर है। भयानक बर्बर। और

तो और भारत की सेक्युलरवादी धारा में वे सबसे पहले स्वयं को बहा देना चाहते हैं और परिणामस्वरूप डूबते हैं। उन्हें यह समझ में नहीं आता कि शेष भारत से उनकी हकीकत, उनका सच बेहद भिन्न है!

''सुधा उन्हें अपना सच कहना ही नहीं आता है। हमेशा डरते हैं कि उन्हें ही कट्टरपन्थी न माना जाए। हिन्दुओं में एक बीमारी फैली है अपने ईश्वर का विरोध करो। ईश-निन्दा करो और प्रगतिवादी कहलाओ। मुसलमानों से हमदर्दी करो और साम्यवादी कहलाओ। जिस हिन्दू ने अपने मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार जीवन जिया...मुसलमान उसे कट्टरपन्थी कहेंगे। उन्हें कहना आता है सुधा। हमें कहना ही नहीं आता है...उन्हें झूठ बखूबी कहना आता है और हमें सच नहीं कहने आते है़...लगता है हो न हो कजीमाजी का कोई शाप भट्टों को लगा है।''

''प्रभु! ओ प्रभु! मैं तुमसे बेहद प्रभावित हूँ...तुम कितना अच्छा बोलते हो प्रभु! तुम कितना अच्छा बोल सकते हो। तुम कितना सही सोचते हो। तुम बोलोगे। तुम्हें कुछ करना होगा। भट्टों के लिए प्रभु! मेरी आत्मा कहती है...प्रभु मेरी आत्मा कहती है।''

वे दोनों उस पत्थर पर बैठ गये जो सिंहासन-सरीखा था। दुशाला उन्होंने तहाकर लिफाफे में वापस रख दिया था। धूप की स्वर्णाभा चोटी पर पीले कालीन की तरह बिछ गयी थी और लोकभवन के उस परिसर में भी। जहाँ लोकोत्तर नीरवता थी। जहाँ रहस्यमय मूल नाद के सिवा कुछ भी नहीं सुना जा सकता था सिवा उन कौवों के अवान्तर काँव-काँव के, जो वे बहुत ही रहस्यमय ढंग से जब करते तो एक साथ ही करते, मानो पण्डितों का एक दल मन्त्रोच्चार कर रहा हो।

❏❏

प्रभु ने यहाँ लाकर सुधा को एक अनन्य लोक में पहुँचा दिया था। वह भीतर तक उद्वेलित थी। उसके भीतर के रणक्षेत्र में निरीह युद्ध चल रहे थे।

विस्तार से फैली बेबसी थी। अस्तित्व की बेबसी थी और पहले ही हार में निर्णीत युद्ध लड़े जा रहे थे। पर इतने विराट क्षोभ के बाद सुधा को लग रहा था कि प्रभु जिसे इतने त्रासों का पता है, उससे उद्वेलित है, शायद कुछ करे, कुछ कर सके।

वे दोनों सिंहासन पर बैठे कुछ क्षण मौन थे। सुधा के मन में कोई सुदूर स्वप्न चल रहा था और प्रभु में सुधा के सान्निध्य का उत्तप्त राग फैल रहा था। प्रभु ने अपना कोट उतारकर सुधा के कन्धों पर रख दिया और वापस उसकी बगल में बैठ गया।

''आपने कोट मेरे कन्धों पर क्यों रख दिया। अब तो ऊष्मा है। सूर्य की

किरणें निर्विघ्न चमक रही हैं, वातावरण में एक सुमधुर गर्माहट फैली है प्रभु!''

दरअसल उसने सुधा को अपने साथ बाँध-सा दिया था और सुधा झेंप गयी थी।

''सुधा! क्या तुमने कभी प्यार किया है?''

''हाँ प्रभु।''

''हे भगवान!'' एक महीन-सी चीख प्रभु के मुख से निकली और तिरोहित हो गयी। मगर दरअसल यह चीख सुधा के जीवन में सदा-सदा बजती रही...एक प्राकृतिक टेपरिकार्डर पर। और उसके प्रति सुधा का रद्देअमल भी मूलत: एक ही रहते हुए भी विभिन्न रंगों में ढलते रहे। कुछ क्षणों का मौन दोनों के बीच में फिर बना रहा। सुधा अपने भीतर एक हल्कापन महसूस कर रही थी। ऐसा कि मानो वह अचानक ली गयी किसी परीक्षा में उत्तीर्ण हो उठी हो। इस परीक्षा का उत्तर देने का क्षण ही स्वयं में परिणाम था। परिणाम स्वयं में कुछ नहीं होता। कुछ भी नहीं होता। सुधा का एक मूल-विश्वास था।

सुधा प्रभु के हृदय की धक-धक महसूस कर रही थी। सुधा इसको झेलने के लिए प्रभु को कोई भी मदद मुहैया करने को तैयार थी। बस प्रभु माँगे। वह मदद किसी भी प्रकार की हो, सुधा देगी। पर प्रभु भयावह ढंग से मौन है। भीतर से अशान्त है और चुप है।

''प्रभु, ओ प्रभु! कुछ तो बोलो। बोलिए तो मेरे प्रभु कुछ...क्यों?'' लेकिन सुधा बोलती है अपने गले के नीचे के ब्रह्माण्ड में। आवाज बन्द हो गयी है उसकी। बहुत देर तक प्रभु सुधा के दोनों हाथों को अपने दोनों हाथों की मुट्ठियों में कसकर पकड़े रहा, मान लो कोई पीड़ा सह रहा हो, और उससे सहने की आधी ताकत माँग रहा हो और स्वयं से बातें कर रहा हो। फिर धीरे-धीरे उसके कन्धे पर अपने विशाल बालों वाला मस्तक रखकर पूछने लगा, ''किससे?''

''एक पुरुष से प्रभु?''

''हाँ, पुरुष ही होगा। मगर कौन था वह सुधा?''

''जानकर क्या करोगे प्रभु? एक बेहद अच्छा पुरुष था। विवाह के योग्य नहीं...सिर्फ प्रेम के योग्य था। आप विवाह और प्रेम दोनों के योग्य हो प्रभु। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ...अब।''

''हाँ-हाँ सुधा। चलो उठो उस नाग सरोवर का एक चक्कर लगाएँ।''

सुधा उठ खड़ी हुई। प्रभु ने उसका एक हाथ कसकर पकड़ रखा था।

सच कितना अवदनीय होता है। सच तलवार सरीखा...विषमय होता है। सुधा मन में सोच रही है। मगर उसे मन में एक अद्वितीय खुशी है कि वह प्रभु से सच बोल पायी है। इसके परिणाम के तमाम खतरों को उठाने के लिए तैयार

होकर। कहीं प्रभु ऐसा न सोचे कि उसने इस बात को कहने के परिणामों पर गौर नहीं किया या सुधा यह नहीं जानती कि रिवायत यही है कि सच नहीं बोला जाए। खासकर यह सच। यह सच कोई नहीं बोलता। खासकर स्त्री। स्त्री को एक प्रारूप पता होना चाहिए उत्तर का कि...''नहीं। प्रभु तुमसे पूर्व मैं किसी से प्यार नहीं करती। मैं तुमसे ही प्यार करती हूँ...करती रहूँगी...।''

वे नाग के गिर्द चक्कर लगा रहे हैं। परिक्रमा कर रहे हैं। नाग में बेहद खूबसूरत और अद्वितीय मछलियाँ हैं। विशाल आकारों की। बेहद सुन्दर डील-डौल की स्वर्गिक, स्वर्णिम मछलियाँ।

एक विशालतम-सी लगती मछली बेहद खूबसूरत ढंग से जरा ऊपर आकर पारदर्शी पानी में मोड़ मुड़कर दाहिने के गोलार्द्ध में तैरने लगी। कई रंगों की।

''ओह हो...देखो देखो प्रभु। जैसे एक विशाल हवाई जहाज आसमान में अपना कोण बदलकर उड़ गया। क्या अदा थी इस मछली की? है न प्रभु?''

''हाँ...हाँ।''

'कितना सुन्दर...प्रभु कितना सुन्दर है तुम्हारा देखना। तुमने मुझे प्रकृति का यह अनुपम स्थल दिखाया। जिसकी अपनी एक दु:खमय गाथा। शायद जीवन और प्रकृति में सौन्दर्य और दु:ख साथ-साथ रहते होंगे। है न प्रभु?' सुधा ने प्रभु से नहीं स्वयं से कहा था।

धीरे-धीरे अपना मस्तक उठाकर प्रभु की ओर देखने की जुर्रत करनी चाही सुधा ने। बहुत देर से सुधा की ऐसी आकांक्षा थी। ठीक उसी क्षण से जिस क्षण से उसने कहा था—'हाँ।'

वह बस कल्पना कर रही थी प्रभु के भीतर बाहर की। मगर प्रभु ने समूचे द्वन्द्व के बावजूद अपने हाथों में उसके हाथों को अधिक कसकर पकड़े रखा था। उसके कन्धे पर अपना सिर कुछ ज्यादा ही लापरवाही से टिका दिया था, मानो कह दिया हो तमाम विरोधों के बावजूद सुधा! मैं तुमसे अभिन्न हूँ। तुमसे प्यार करता हूँ। लेकिन मैं आहत हूँ। मैं दु:खी हूँ। मैं किसी भी सामान्य पुरुष की तरह ही यह सब सुनने का दम नहीं रखता। मैं तुम्हें एक सामान्य स्त्री के रूप में ही चाहता हूँ। जिसने यदि विवाह पूर्व प्रेम किया हो तो उसका इकरार होने वाले पति के समक्ष न करे। सामान्य स्त्री की तरह उसे छिपाने की कलावन्त हो। वही तुम्हें होना चाहिए था सुधा! पर तुम कुछ-कुछ 'तुम-सी' निकल रही हो। एकदम 'तुम'। अलग विश्वास और अलग विचार रखने वाली।

''कौन था वह सुधा?''...कुछ अन्तराल के बाद प्रभु ने फिर पूछा था। इस बीच सुधा देख चुकी थी कि प्रभु के चेहरे की वह असमंजस की लालिमा ढलने को थी। उतार पर थी। प्रभु स्वयं को सहज बना रहा था। सामान्य बना रहा था।

प्रभु सुधा से प्रेम और ईर्ष्या के द्वन्द्व में फँस चुका था।

"मैंने कहा न प्रभु! एक बड़ा ही नेक आदमी। बेहद नेक आदमी। मगर भगवान के लिए घबराओ मत। मैं मर्यादाओं में रहने की अन्त:शिक्षा से सम्पन्न हूँ प्रभु! हो सकता है प्रभु शायद कि मैंने सीमाओं का खयाल न किया होता पर वह बेहद नेक आदमी था न। उसने भी हर बार मर्यादाओं का इंगित ध्यान में रखा। प्रेम और प्रेम के बाद उसका सूक्ष्मतन्तु पूजना, यह दु:खद प्रक्रिया सिखायी। देह न आर थी न पार थी मगर आत्मा पार लग गयी। तुम चिन्तित क्यों हो? मैं भी जानती हूँ कि तुमने भी प्रेम किया है, जो कि जनपद की प्रसिद्ध गाथा थी, मगर मैं परेशान नहीं हूँ। तुम क्यों हो उठे? क्योंकि मैं स्त्री हूँ?"

"नहीं...नहीं सुधा!"

"नहीं तुम हो गये। सोच लो क्यों और मुझे कारण बताओ। कारण स्वयं से पूछो। स्वयं से दो टूक बात करो प्रभु।"

"हाँ, हो उठा। मगर बहुत ज्यादा नहीं।"

"फिर सामान्य हो जाओ प्रभु! अपने द्वन्द्व का निराकरण करो। विश्लेषण करो और नया निर्णय लो।"

"क्या कह रही हो सुधा?"

"मैं ठीक कह रही हूँ। मैं पूरे होशो-हवास में थी जब बता रही थी तुम्हारे इस दकियानूस प्रश्न का उत्तर मुझे तमाम खतरों का आभास था। मैं तुम्हें आहत नहीं करना चाहती थी। मैंने सोचा था तुम अलग और उदात्त पुरुष हो। प्रभु तुम हो...मगर।"

प्रभु ने कोट अपने कन्धों पर ले लिया और सुधा को वापस उस सिंहासन-सरीखे पत्थर पर बिठाने के लिए ले गया। अब वह सिर्फ हँस रहा था। बेतहाशा और खुलकर हँस रहा था मानो सुधा को अपना निर्णय सुना रहा हो।

"मुझे ट्रेजेडीज़ बहुत पसन्द हैं सुधा बहुत...अधिक...पता नहीं क्यों?"

"प्रभु संसार का हर महान क्षण ट्रेजेडी से ही बना है। हर महान पात्र, हर महान घटना, हर महान ज्ञान ट्रेजेडी से ही निकला है प्रभु। इसीलिए...इसीलिए शायद...।"

"हाँ शायद! सुधा।"

सुधा इसके बाद चुप रही। भीतर से प्रभु के पिछले कुछ समय के संकट से क्षुब्ध हो उठी थी। अन्तिम वाक्य कहते-कहते वह चाहती थी कि वह प्रभु से कहे कि, 'प्रभु इसमें क्या खास है। आखिर संसार में ट्रेजेडीज से ही तो इतिहास और संस्कृति बनी है...यहाँ तक कि स्वयं समय भी ट्रेजेडीज से ही बना है।

'और प्रेम और मृत्यु एक जैसी होती है। एक ही जैसी शिद्दत से लैस।

इतनी कि भेद ही समझ में न आए। कुछ क्षणों के लिए व्यक्ति भूल जाए कि वह है कौन, कहाँ, जीवित या मृत, आनन्द में या आनन्दातीत अवस्था में। ये दोनों तुरीय हैं।...वेदना युक्त तुरीय...अतीव वेदना युक्त...आदि...आदि' पता नहीं क्या-क्या सोच रही है सुधा। फिर एक मौन व्याप्त है। सुधा को समझ में नहीं आता कि वह ब्रह्माण्ड के किस हिस्से में है। पृथ्वी के किस कोने में है। किसके साथ है। कौन है यह प्रभु। क्या बातें कर रहे हैं वे। क्या हो रहा है उसे। वे तो अपनी जातीय बातें कर रहे थे और उसकी बृहद ट्रेजेडी में डूबे थे। पता नहीं क्यों सूझा प्रभु को यह प्रश्न कि क्या सुधा ने उसके साथ होने के पूर्व किसी से प्रेम किया है। क्या परोक्ष में प्रभु की यही मुख्य चिन्ता थी जबकि सुधा के लिए हमेशा यह गौण रहा कि प्रभु की जो प्रेमिका थी वह क्यों थी और क्यों नहीं कर सका प्रभु उससे विवाह। सुधा के मन में अपने क्षुण्ण होते समुदाय की त्रासदी का आलम आच्छादित है। वह मन-ही-मन प्रभु के प्रति धन्यवादरत है। प्रभु, तुम्हारा धन्यवाद! तुमने मुझे इतनी बड़ी चिन्ता का सूत्र दिया। इतना बड़ा ज्ञान कि मैं कब से अब तक की कितनी भर रह गयी हूँ। प्रभु! मैं अपने मृत और मृतप्राय लोगों में फैल रही हूँ। प्रभु! मैं कुछ कर क्यों नहीं पा रही हूँ? अपने ही लिए। तुम जैसे कर सकते हो करो...हमें करना चाहिए। इससे पहले कि वे आकर हमें पूरी तरह से समाप्त करें, हमें बचना चाहिए। हमें बचाना चाहिए स्वयं को।

प्रभु मौन है और सुधा में यह धाराप्रवाह चेतना है आवेगमय। एक अदृश्य तेज तरंग की तरह। एक झुलस की तरह। परन्तु प्रभु मौन हैं। प्रभु क्यों मौन हैं?

"आप इस तरह चुप क्यों हैं? मैंने आपको आहत किया? हाँ जरूर आहत किया। हमें सच नहीं बोलना चाहिए और कहा जाता है कि 'सदा सच बोलो'। है न?" कहते हुए सुधा अल्हड़ और लापरवाह बच्चों की तरह हँस दी।

इस हँसी के फव्वारे ने प्रभु को लुभा दिया। सच्चाई के विरोध में खड़े मानो उसे सुधा ने रँगे हाथों भी पकड़ा। प्रभु, अचानक खड़ा होकर सुधा से इतना सटकर लिपट गया कि सुधा चीखने लगी। उसका दम घुट-सा गया प्रभु द्वारा बिखराये इतने सुख से।

❑❑

"चलो अब चलते हैं।" सुधा ने प्रभु से कहा। कजीमाजी वाली चोटी पर बादल आकर सुस्ताने लगे थे। सूरज आच्छादित-सा होने लगा था उनसे। वातावरण में विचित्र और शताब्दियों पुरानी उदासी घिर आयी थी जैसे सुधा को शताब्दियों पुराने बिताये दिन की मारक महक वातावरण में से सूँघने को मिली हो और वह यहाँ

से चलने के लिए मचल उठी हो। उसे लगने लगा था, कि प्रभु को उस कदर उससे लिपटना नहीं चाहिए था। प्रभु के मन में इन सदियों पुराने बादलों की तरह ही उसे कुछ घुमड़ता हुआ-सा लगने लगा और प्रभु उसे उसका नहीं सिर्फ प्रभु लगने लगा। मात्र प्रभु। एक तगड़े व्यक्तित्व का स्वामी वैयक्तिक पुरुष।

"चलिए अब चलते हैं...लगता है जोरों की वर्षा होगी, और हम उस वर्षा में फँस जाएँगे। हम इस गाँव में अकेले हैं। कहाँ जाएँगे? मुझे डर लग रहा है। माँ कहती है तुम्हें शाम होने से पहले वापस पहुँचना चाहिए सुधा।"

सुधा माँ की मूर्ति से आपूरित है और हर स्थल पर माँ से मुखातिब होकर कहती है, "हाँ माँ, मैं शाम होने से पहले वापस पहुँच जाऊँगी। मैं शादी से पहले कोई गलत काम नहीं करूँगी...जैसे कि तुम डर रही हो...डरो मत। मेरी अच्छी माँ।

"अरे गलत काम? अरे...रे...रे...। मतलब गलत काम शादी के बाद ही किये जा सकते हैं...हाँ शादी गलत काम है जिसके बाद गलत काम ही होते हैं और स्त्रियों को सावधान रहना है...पहले भी। बाद में भी। है न...?"

लेकिन सुधा किससे पूछ रही है। आज उसने प्रभु के मुख से विचित्र प्रश्न सुना। उसने भी अपारम्परिक और विचित्र जवाब दिया। उसने कभी नहीं सोचा था कि प्रभु इस तरह का प्रश्न पूछेगा।

"नहीं-नहीं वह एक अलग पुरुष...बिल्कुल अलग पुरुष है... ।" सुधा आजकल सबसे कहती फिरती है।

अब सुधा अपने ही साथ प्रभु के बारे में दिये गये इस वक्तव्य का शुद्धिपत्र जारी करने की सोच रही है, नहीं ऐसा कुछ नहीं—'प्रभु वास्तव में एक अच्छा पुरुष है। अलग पुरुष नहीं—सुधा।'

❑❑

उन्होंने नाग की एक और परिक्रमा की। सुधा ने सामने पहाड़ की चोटी की तरफ देखा और लगा कि मानो सारे कौए उनकी ओर ही मन्त्रमुग्ध होकर देख रहे हैं।

बाहर ताँगेवाला ताँगे की पिछली सीट पर पसरकर सो गया था। प्रभु ने जगाया। "हे भाया। चलिए अब चलते हैं।"

ताँगेवाला एकदम उठ गया और अगली सीट पर हो लिया।

"बैठिए...बैठिए...बाबूजी।"

"सुधा, हमें खाने का कुछ सामान साथ में रखना चाहिए था।"

"हाँ, मुझे भी भूख लगी है प्रभु।"

"चलो मार्तण्ड यहाँ से नजदीक है। वहाँ खाने के लिए बहुत कुछ मिलेगा। कुछ नहीं तो मैं अपने एक दोस्त के घर में घुसूँगा और वे हमारे लिए कुछ पकाएँगे।"

''क्यों उन बेचारों को परेशान करोगे? हम खा लेंगे बाजार में कुछ?''

''ठीक है, किसी ढाबे में खाएँगे?''

रास्ता तय हो रहा था कि उनके ताँगेवाले से मार्तण्ड से आ रहे एक ताँगेवाले ने अपना ताँगा रोककर कहा, ''सुना है श्रीनगर में फसाद उठा है। कर्फ्यू भी लगा है। अनन्तनाग में हड़ताल होनेवाली है।''

वे चौंक गये। सुधा डर गयी।

''क्यों? क्यों भई ताँगेवाले? कारण?'' प्रभु ने दखल दिया।

''पता नहीं। कारण का पता नहीं चल रहा। कहते हैं इस्लाम के खिलाफ कुछ लिखा गया है। अँग्रेजों ने लिखा है।''

सुधा और प्रभु को ले जा रहा ताँगेवाला धीरे-धीरे अपने घोड़े को आगे बढ़ने की आज्ञा दे रहा था...और कुछ क्षणों में उसने गति भी पकड़ ली।

''आपने कुछ खाया बाबूजी? मुझे लगता है आपके साथ कुछ भी नहीं था।''

''नहीं, कुछ भी नहीं। मटन में खाएँगे। आपने भी कुछ नहीं खाया होगा?''

''क्या आप मटन के हैं?''

''नहीं, हैं तो श्रीनगर के, पर मटन जाना है। आपका घर कहाँ है?''

''मटन के पहले तीन मील पर एक गाँव है गौतमनाग। वहाँ का हूँ। मैं घर पहुँचकर खाऊँगा। पर आप?''

''मटन में मिलेगा कुछ।''

''आप क्यों न मेरे घर चलें। बखुदा अगर आपको एतराज न हो तो चलिए, वहीं पर कुछ खाएँगे। अगर सच में हड़ताल है, आप भूखे रहेंगे और पता नहीं श्रीनगर वापस जा भी पाएँगे या नहीं।''

''नहीं। मटन में मेरा दोस्त रहता है, वहीं जाऊँगा। आप चिन्ता न करें। आपकी बहुत मेहरबानी।''

''पता नहीं बाबूजी क्यों इस्लाम के खिलाफ लिखते हैं, ये अँग्रेज। क्या मिलता है इन्हें ऐसा करके। देखिए खामख्वाह कारोबार बन्द होता है, हड़ताल होती है, लोगों की रोजी-रोटी पर असर पड़ता है।''

''तो आपका खून नहीं खौलता...आपको क्रोध नहीं आया यह सुनकर?''

''बाबूजी! क्रोध क्या आना। दुनिया में गधई ज्यादा है खुदाई कम। वर्ना खुदा की आप निन्दा करो...क्या फर्क पड़ता है उसे। वह खुदा है...खुदा ही रहेगा। मगर इन्सानों को देखिए। मैं कहता हूँ दुनिया में इतने धर्म ही नहीं होने चाहिए थे...अगर इन्सान को दुनिया में चैन से रहना है...। खैर क्या आपकी शादी होनेवाली है... ?''

''लगता है यह कोई ताँगेवाला कम्युनिस्ट है...हिन्दुस्तानी या कश्मीरी

नहीं...है न प्रभु दिलचस्प। यह यह भी समझ गया...कि हम सगाई-शुदा हैं...है न प्रभु...।'' सुधा ने कहा।

प्रभु ने सुधा का हाथ दबाकर उसे हाँ कहा ताकि वह जबान से ताँगेवाले से निर्विघ्न बातें करता रह सके।

''मगर आप लोग तो अपने धर्म के प्रति बहुत जागरूक और तुरन्त प्रतिक्रिया करने वाले हैं।''

''हैं न हैं...मगर मैं उन उल्लू के पट्ठों में नहीं हूँ जो हिंसा, हड़तालें और बकबक या भड़भड़ करें और कहें लो जी हमारा ही धर्म ऊँचा है। भई सब धर्म ऊँचे हैं। क्या आपके धर्म से भी कोई धर्म ऊँचा और पुराना है। मैं तो मानता हूँ कि कोई नहीं।''

''आपका नाम क्या है भाई?''

''खादिम डार।''

''काफी मानीदार है नाम आपका। आप ठीक समझे हैं खादिम भाई! यह मेरी होनेवाली बीवी है और मैं इसे दिखाने लाया हूँ लोकभवन।''

''आप सच कहते हैं बाबूजी? बिल्कुल सच। देखिए अँग्रेजों ने किताब में लिखा है इंग्लिस्तान में, पर यहाँ पता नहीं किस मन्दिर की शामत आयी है, किस पण्डित की शामत आयी है, या न जाने किस-किस की शामत आयी है, कुछ मालूम नहीं। बताइए अगर पाप किसी ने किया, दण्ड इन बेचारों को क्यों दे रहे हो, जिन्होंने कुछ नहीं किया। यह तो किसी धर्म में नहीं लिखा है।''

''आपकी दृष्टि तो सचमुच साफ है। आप बहुत कुछ जानते हैं खादिम। पर आप उनसे यह बात नहीं कहते, उन्हें नहीं समझाते आप क्या?''

''नहीं, उन्हें कोई भी नहीं समझा सकता। उन्हें भी पता है जो कुछ मुझे पता है। उन्हें पता है कि दूसरे धर्म का आदर करना चाहिए...लेकिन असलियत यह है कि वे पण्डितों से जलते हैं, इसलिए उन्हें मारते हैं, दुःखी करते हैं, सताते हैं, त्रस्त करते हैं, चिढ़ाते हैं। पर उन्हें जो इस तरह दो टूक कहेगा उसे वे मार डालेंगे। मैं मरना नहीं चाहता। मेरे बीवी-बच्चे हैं।''

''मैं कभी तुम्हारे पास आऊँगा खादिम। तुम्हारे गाँव। तुम बहुत विरले इन्सान हो। मुझे तुमसे बहुत बातें करनी हैं। तुम मुझे अपना पूरा पता दो...अच्छी तरह से।''

खादिम ने अपना पता लिखकर कागज पकड़ाया और कहा, ''आइए आज ही। रात को वहीं रुकेंगे। मेरे पास मामूली मगर बड़ा घर है।''

''वह तो तुम्हारे दिलो-दिमाग से ही पता चला मगर आज किसी भी सूरत में श्रीनगर वापस पहुँचना ही है।''

"पर कैसे पहुँचोगे अगर अनन्तनाग में बसों की हड़ताल हुई तो?"

"ईश्वर कुछ इन्तजाम करेगा ही खादिम। मेरे साथ है न यह मेरी होने वाली बीवी। इसके लिए तो श्रीनगर वापस पहुँचना ही है। इसे शाम को अपने माँ-बाप के पास पहुँचा ही देना है।"

"हाँ...हाँ...बिल्कुल...बिल्कुल।"

खादिम ने जोशो खरोश से प्रभु की इस योजना की दाद दी।

❑❑

वे मार्तण्ड पहुँच गये। वे ताँगेवाले खादिम से स्नेहपूर्वक विदा हुए। ऐसे कि मानो खादिम को अर्से से जानते हों। खादिम अपने गाँव की तरफ मुड़ने से पहले बहुत हर्षयुक्त-मुख-मुद्रा से बोला, "बाबूजी! फिर जरूर आना...मैं राह देखूँगा...मैं कुछ बहुत जरूरी बातें आपसे कहूँगा...बहुत ही नायाब बातें।"

"हाँ...हाँ...।" और घोड़ा तरबच-तरबच कर धूल उड़ाने लगा।

वे दोनों चकित-से खड़े रहे। विस्मय की पराकाष्ठा पर। मानो उनसे किसी ने पहेली कहकर कहा हो, "बूझो तो जानूँ।"

वे कुछ देर तक खड़े रहे। दोनों भूल गये कि उन्हें कहाँ जाना है। दोनों भूल गये कि उन्हें खाने का कुछ सामान जुटाना है, कि उन्हें बहुत भूख लगी है। दोनों जम गये ताँगे वाले की बातों में, जिनमें...जिनमें कोई गूढ़तम रहस्य था। वे ठगे-के-ठगे रह गये थे। कुछ क्षण और चाहिए उन्हें सामान्य होने के लिए...निर्णय लेने के लिए कि उन्हें अगला काम क्या करना है। श्रीनगर वापस जाना है। मटन जाना है। प्रभु को दोस्त के घर जाना है। या खाना खाना है अथवा उन्हें सारे-के-सारे कार्य रद्द कर सीधे खादिम के पते पर खादिम के गाँव जाना है। "कोई था वह। वह खादिम नहीं था। वह कोई अलौकिक सारथि था...सुधा। मुझे पूरा यकीन है और मुझे लगा है कि मुझे बहुत शीघ्र खादिम के गाँव जाकर खादिम से मिलना है।"

सुधा और प्रभु खादिम के गोली की तरह हवा में घुल जाने से विस्मित थे और ढूँढ़ रहे थे अपने ही भीतर कि सर्वप्रथम क्या करना है। क्या श्रीनगर लौटना है या किसी दोस्त के यहाँ जाना है या कोई चाय की दुकान ढूँढ़कर पहले कुछ पेट-पूजा करनी है।

अनजाने में ही दोनों ने स्वयं को नागों के समीप पाया और वे मन्त्रमुग्ध मछलियों को देखने लगे। सदियों की सहस्रों मछलियाँ मस्त तैर रही हैं संसार के सबसे मीठे जल में। सबसे शीतल जल में। मनोरम। पास में पुजारी था जिसने प्रभु से प्यार से बात की। विचित्र मुस्कान के साथ। तो प्रभु ने पूछा, "श्रीनगर में कुछ

झगड़ा हुआ है?''

''मुझे कुछ पता नहीं।''

और सुधा देख रही है यह सूर्य का जीर्ण मन्दिर। आधा ठीक। आधा खँडहर और अचानक बोल उठी, ''यह भी मूर्खता है प्रभु! सूर्य का मन्दिर बनाना। भला जिसे घर में पलभर भी बैठने की फुर्सत न हो, उसके लिए क्या घर बनाना? कहाँ है सूर्य के पास समय? वह तो अपनी किरणों से समूची धरती को ही मन्दिर में बदल देता है।''

''ओ सुधा! सच कहती हो तुम। मगर इन पत्थरों पर कारीगरी तो देखो।''

''कौन रहे होंगे वे प्रभु...कौन रहे होंगे। सूर्य उनके आभारी रहे होंगे। सूर्य की उनपर अपार कृपा रही होगी...या हो सकता है प्रभु। वे सब सूर्य की किरणें ही मनुष्य-रूप में अवतरित हो गयी हों, फिर, फिर से वहीं वापस विलीन हो गयी हों। है न...?''

''लगता है सुधा, सूर्य की कृपा तुम पर है...तुम सूर्य पर काव्य कर रही हो...।''

''मगर प्रभु! इन्होंने मार्तण्ड मन्दिर को भी क्यों तोड़ा। सूर्य से इनका क्या वैर...वह तो इन पर भी बिना भेदभाव के चमकता है...फिर...क्यों? मुझे क्षोभ होता है। समझ में कुछ नहीं आता।''

''सूर्य से नहीं है वैर। सूर्योपासकों से वैर है सुधा। हमसे वैर है...द्वेष है...ईर्ष्या है। मजहब फैलाने का बहाना इनके दूषित मनोविकारों को शह देता है, तभी तो हर युग में मन्दिर टूटते रहते हैं, और कुछ मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ना समय को तोड़ने जैसा रहा है जैसाकि सिकन्दर बुतशिकन का यह और कश्मीर के अनेक देवस्थल तोड़ना। बिना किसी खौफो-लिहाज के। और आश्चर्य यह है सुधा कि उसी का बेटा बड़शाह बाद में साम्प्रदायिक सौहार्द का उन्नायक माना जाने लगा। सिकन्दर बुतशिकन के निकाले गये सारे भट्ट उसने वापस घाटी में बुलाये...और उनको कमोबेश अधिकार भी दिये...जिससे भट्ट गद्गद हो उठे। भट्ट में मुसलमान के जरा-सा नर्म-पन्थी पाकर गद्गद होने की बीमारी तभी से लगी है...क्यों हम भी हुए न अभी-अभी खादिम से मिलकर...क्यों सुधा। हुए न? कुछ क्षण हम सबकुछ भूल गये उससे मिलकर...हक्का-बक्का हो गये। खुशी से सवालिया हो गये...। दरअसल इन्हें हमसे प्यार भी है। वैर भी है।''

''प्यार भी है...।''

''हाँ...एक द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध। उनके भीतर द्वन्द्व है भयानक। सिर्फ वैर ही नहीं करते बनता है, इनसे प्यार भी करना ही पड़ता है। खादिम से अभी-अभी तुम क्या समझीं...।''

''कुछ नहीं प्रभु! तुम क्या समझे?''

''मैं जो समझा वह यही कि वह मूलत: धर्मान्तरित कश्मीरी पण्डित है। उसे उसका सजीव भान है। तीव्र स्मृति है। इसलिए उसके भीतरी तन्तु अभी शेष बचे हैं...सर्वधर्म समभाव के बीजों सहित बचे हैं। तभी खादिम से मिलना होगा। जरूरी। क्या पता वह हाल ही में हुई लोकभवन के अपवित्रीकरण की घटना का जिक्र मुझसे करे, या धर्मान्धों के खिलाफ कुछ भड़ास उसके भीतर हो। कुछ भी हो सकता है।''

''मगर तुम जानकर क्या करोगे? दु:खी हो जाओगे और...छोड़ो।''

''मैं करूँगा कुछ नहीं। मगर जानना जरूरी है...हो सकता है कुछ किया ही जा सके...है न?''

❑❑

वे दोनों पुजारी के कमरे में गये और पुजारी के सामने बैठ गये। ताकि वह उनके माथे पर तिलक लगा सकें और कलाई पर मौली बाँध सकें। पुजारी भीतरी कमरे में चला गया था। क्षणभर बाद जब आया तो दोनों को देखकर प्रसन्न हो उठा और आकर अपने आसन पर विराजमान हो गया। वह फिर प्रभु के साथ एक दिलकश मुस्कान मुस्कराकर वापस उठ गया और दरवाजे से आवाज लगायी ''बबली! ओ बबली! जरा दो कप कहवा बना दे बेटा।''

''आपने कहवा किसके लिए बनवाया?'' प्रभु ने पूछा।

''आपके लिए।''

''आपको कैसे लगा कि हम भूखे हैं।''

''सूर्य भगवान ने मुझे बताया।'' कहते हुए वह हँस दिया, ''आपको कुछ याद नहीं मगर मैं आपको पहचान गया। आप प्रभुं है न? प्रभुभट्ट। सोपोर के रहने वाले?''

''हाँ-हाँ...आप कैसे जान गये...हाँ मुझे भी बड़ी देर से लग रहा था कि मैंने आपको कहीं देखा है...ओ...अच्छा...क्या हम लोकभवन के हवन में मिले थे...क्या मैं ठीक कह रहा हूँ।''

''हाँ...बिल्कुल...अब आपके चित्त में आ रही है स्मृति। आप तो सक्रिय थे उस हवन में।''

''और शायद आप चन्द्र-तारक के काम का निर्वाह कर रहे थे। थे न?''

''हाँ, मैंने कहा न कि अब आपको याद आ रहा है।''

''मैं उन दिनों बारहवीं में पढ़ रहा था। समाज में, समुदाय में सचमुच सक्रिय था। अब नौकरी करता हूँ। तब से ठीक आठ वर्ष बीत गये। ओह हो ऽ ऽ किन

हालात में हुआ था वह हवन। क्या आपको मालूम है?''

''क्या बात करते हो प्रभु? एक पूरा जत्था तो मटन के निवासियों का गया था वहाँ।''

''हाँ मैं सुदूर सोपोर से भी एक पूरा जत्था लाया था। क्या जान हथेली पर थी...थी न...?''

''बस पूछिए मत...। लीजिए कहवा और कुलचे खाइए। आप भूखे हैं...। आज फिर कोई त्रेठ पड़ी है...श्रीनगर में हड़ताल है। मैंने रेडियो लगाया था पर खबरों में अभी कुछ नहीं बताया गया...यह आपके साथ कौन हैं?''

''हमारी अगले माह में शादी होनेवाली है...अब आप भी शादी में आइए। मैं इसे लोकभवन ले गया था और यह वहाँ परेशान हो उठी। बहुत उद्विग्न हो उठी और देखिए यह कुसमय के संयोग आज श्रीनगर की हड़ताल से एक और कड़ी जुड़ गयी इसमें। हमने ताँगा किया था और वह ताँगेवाला भी विचित्र निकला। वह इन हुल्लड़बाजों की घटाटोप निन्दा कर रहा था और कह रहा था कि अँग्रेजों ने कोई पुस्तक इस्लाम के खिलाफ प्रकाशित की है तभी व्यापक हड़ताल हुई है।''

''कौन था ताँगेवाला...पण्डितों के साथ ये लोग रूप-रंग बदलते हैं।''

''मगर मुझे वैसा नहीं लगा। मुझे लगा कि वह व्यक्ति सच्चा था।''

''कहाँ का था?''

''गौतमनाग का था। नाम है खादिम।''

''ओ...अच्छा खादिम...खादिम डार। वह तो जाना-माना है इस इलाके में। उसे एक दिन इन लोगों ने मक़बूल शेरवानी की तरह कीलों-जड़े तख्त पर या सूली पर नहीं चढ़ाया तो मेरा नाम नहीं...ये लोग बस उसे देख रहे हैं और मौका देख रहे हैं। मगर वह भी अपने रास्ते से टस-से-मस नहीं हिलता।''

''आप मोतीलाल जी हैं न?''

''हाँ, अब आपको मेरा नाम भी याद आया। शुक्र है भगवान का।''

''हाँ, मैं आपसे बातें भी कर रहा था और इस बीच मन-ही-मन याद दिला रहा था खुद को कि आपका क्या नाम है...और अचानक मुझे याद पड़ गया...। अरे...तोबा...तोबा...क्या था वह हवन...हे सूर्य देव! तुम जानते हो...या हम...सुधा वह एक भयावह युद्ध था...और उस युद्ध की विजय का प्रतिफल है...अगर वह छोटा-सा स्थल जो लोकभवन में तुमने देखा, बचा पाये। हम अपनी हार को ही विजय कह रहे हैं...वैसे हम थोड़ा-थोड़ा हारते जा रहे हैं। सब कुछ। पर हम अन्त तक कुछ-न-कुछ बचाने की अथक कोशिश भी करते रहेंगे। जरूर हम बीज रूप में कुछ-न-कुछ बचा पाये शायद। देखा...मोतीलाल जी खादिम को भी जानते

हैं...था न वह सही व्यक्ति। हमसे भी बदतर।

"सुधा यह एक अकथनीय गाथा है। लोकभवन अस्थापन लगभग पचास कनाल जमीन पर फैला था और कहते हैं कि यह बहुत प्राचीन परिसर था, जिसमें कई इमारतें थीं, ढहाई जाती रही हैं...धीरे..धीरे...।

"और आठ वर्ष पूर्व एक तूफान उठ खड़ा हुआ। आज भट्टों को कुछ मालूम ही नहीं। तुम तो खैर छोटी रही होगी। मगर भट्टों ने आपस में कोई सूचना-सूत्र भी नहीं रखा है कि हर बात से ठीक-समय पर सूचित रहे, हर घटना से अवगत रहे। हर हमले की सबको जानकारी रहे।

"मुसलमानों ने खूब एका किया। साधमाल्युन की तरह—एक दढ़ियल दरवेश खूब पोशाक आदि पहनकर सैकड़ों की संख्या में जुलूस निकालकर एक बग्गी में बैठ गया। पीछे से नारे लगा रहे थे लोग। नाले तखबीर अल्लाहो अकबर। अल्लाहो अकबर। वहाँ का पुजारी था उन दिनों ब्रजनाथ शाह। बहुत भक्त आदमी। लेकिन साहसी भी। संकट की पूर्वसूचना उसे मिली थी। किसी मुसलमान ने ही दी थी। एक दिन पूर्व कि अगले सारे गाँव के और आस-पास के गाँवों से भी लोग आएँगे। एक मौलवी दरवेश आएगा और लोकभवन पर इस्लाम का कब्जा होगा। उसने ब्रजनाथ शाह से यह बात इस गरज से कही थी कि उसकी जान को खतरा है, अत: वह खुद को बचाये और बेहतर हो यदि भाग ही जाए। मगर ब्रजनाथ शाह की नींद उड़ गयी थी। उसने ठीक सोचा कि अब समय नहीं है कि वह दूर-दूर रह रहे पण्डितों को सूचित करे और तब उसे विश्वास भी नहीं कि भट्ट आएँगे और तीर्थ को बचा पाएँगे। नाहक का खून-खराबा भी हो। इसलिए उसे कहीं नहीं जाना। उसे एक तरकीब सूझी और उसने रातों-रात मन्दिर के भण्डारघर में रखा सारा सिन्दूर अपने जिस्म पर पोता और एक लँगोट पहन लिया। हुलिया ऐसा बनाया कि कोई न पहचान सके कि वह वास्तव में ब्रजनाथ है। हाथ में एक विशाल डण्डा लिया और जुलूस के आने की प्रतीक्षा गाँव के प्रवेशद्वार पर करने लगा।

"भीड़ भयंकर रूप में आ रही थी। ब्रजनाथ ने कहा कि भट्टों को जुटाना और उनके द्वारा इसके खिलाफ लड़ना तो एक रणनीति के अन्तर्गत ही किया जा सकता है, क्योंकि सबसे बड़ी विडम्बना है कि शासन भी इनके साथ ही होता है।

"सो 'हर हर महादेव', 'हर हर महादेव' की गूँज गुंजायमान करते-करते ब्रजनाथ साक्षात् हुनमान की मूर्ति हो उठे और सड़क पर चक्कर काटने लगे।

"जुलूस आया। नारों की आवाजें धीमी पड़ने लगीं। गले सूखने लगे। दरवेश ने अपना हाथ उठाकर भीड़ से कहा, 'वापस।' और भीड़ वापस आ गयी।

''ब्रजनाथ ने फिर एक दिन मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते...मेरे घर आकर मुझे सब कुछ बताया और कहा कि, ''मुझे आप जैसे विद्यार्थी चाहिए, जो एक रणनीति के अन्तर्गत ऐसा कुछ करे कि हम यह तीर्थ-स्थल अब बचा-खुचा, बचा पाएँ। क्या आप समझते हैं कि उन्होंने आखिरकार यह नहीं समझा कि वह सिन्दूरपुता हनुमान वास्तव में कौन था? उन्हें पता है। उस मौलवी दरवेश को पता है। पर उसने रणनीति से काम लिया। हमला बिना किसी क्षति के स्थगित किया, ताकि अगली बार वह इस तरह से किसी के नाटक करने की गुंजाइश भी न छोड़े और सीधे और निर्विघ्न रूप से तीर्थ को मसल दे। वे मुझे अब मार डालेंगे...मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मगर इससे पहले कि वे मेरी हत्या करें, आपको ऐसी कार्यवाही करनी है कि हमारा तीर्थ-स्थल बचे। बस। इस पर आप सोचिए।' ''

❑❑

''तो तय हुआ कि हम एक हवन करेंगे। बहुत शीघ्र। लोगों को बहुत संख्या में सभी गाँवों से यहाँ हवन में सम्मिलित होने के लिए बुलाएँगे, शासन को भी सूचित करेंगे और शासन को यहाँ की सुरक्षा का भी जिम्मा सौंपेंगे।''

''और तब माधवानन्द ने खूब मेहनत की। कहाँ हैं माधवानन्द जी आजकल मोतीलाल जी?''

''सोपोर के ऋषिपीर मन्दिर में ही रहते हैं ज्यादातर। मुझे भी बड़े अर्से से नहीं मिले।

''खैर सोपोर के लोगों ने बहुत काम किया। उस दिन माइक-वाइक लगवाया हमने और माइक पर बहुत लोग खुलकर बोले और उस दिन के जुलूस और उस दरवेश का भी जिक्र हुआ जिसके तहत तीर्थ को जबरिया हथियाने की साजिश हुई थी। हमने गाड़ियाँ मुहैया कीं जिससे लगभग सभी भट्ट दूर-दूर के गाँवों से इधर आ गये। हमने दिल्ली के शासन को तार भेजा कि तीर्थ पर कट्टरपन्थियों द्वारा अपवित्रीकरण का खतरा मँडरा रहा है। केन्द्र सरकार की सूचना के लिए ताकि इस पर वे कुछ कदम उठाएँ।

''इन्दिरा गाँधी ने तुरन्त राज्य सरकार को लिखा कि तुरन्त मामले की जाँच की जाए। तब तक तथाकथित शिष्टमण्डल भी यहाँ सरकार का प्रतिनिधि बनकर आया और उसके बाद चुपचाप एक दिन समाचार आया कि पण्डित ब्रजनाथ शाह को मन्दिर के बाहर मृत पाया गया। गाँव के लोग उनके अन्तिम संस्कार में गये थे। उसके बाद से वहाँ कोई पुजारी नहीं गया। किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ती आज तक कि वहाँ का पुजारी होने का प्रभार सँभालें। मन्दिर एकदम पुजारीविहीन है...मतलब कि मनुष्यविहीन है। लेकिन ठीक-ठाक ही है। और तो और दीवार

बन्दी भी हुई है। अब तुम बता सकती हो कि यह सब कैसे हुआ और तब से अब तक कोई हमला मन्दिर पर नहीं हुआ। यह सब शासन का 'आगे मत बढ़ो' का संकेत था। जब मामला दिल्ली से होते हुए राज्य सरकार तक पहुँच गया। शासन के 'आगे बढ़ो' के बगैर आततायी भी कुछ नहीं कर सकते हैं। सार यही है।''

''तो आप इन सब बातों की खबर दिल्ली क्यों नहीं भेजते?''

''दिल्ली तो ठीक है। दिल्ली भी राज्य सरकार को ही कहती है। सवाल है कि दिल्ली को संकटों की समझ है भी या नहीं। कश्मीरी मुसलमान जितना ऐश्वर्य हिन्दुस्तान में भोग रहा है, उतना दुनिया के किसी कोने में नहीं। देखा न बेचारे ब्रजनाथ जिसने अपने जीवन पर कोयले की लकीर खींच ली थी...अन्ततः मारा गया। फिर भी ये लोग पण्डितों पर इतना अधिक हाथ साफ नहीं कर पाते हैं, क्योंकि इनमें खादिम जैसे लोग भी बहुत बचे हैं, जो इन्हें रोकते हैं! खैर! यह थी कथा जिसमें मेरी और मोतीलाल जी की साझेदारी रही है।'' प्रभु ने कहा।

❑❑

प्रभु ने एक नया ही अन्तरिक्ष, एक खूनी अन्तरिक्ष खोला था सुधा के समक्ष और सुधा का हृदय पीड़ा निमग्न था।

''सुधा, हम लोग उनके जरा-सी आँख दिखाने से ही मर जाते हैं। हम उनकी तरह बेतहाशा पैदा नहीं होते, हम बेतहाशा उनके द्वारा मारे गये हैं, हम बेतहाशा मर नहीं सकते। कतई नहीं सुधा। यही कारण है कि हम चुपचाप वैयक्तिक जीवन जी रहे हैं। एक-दूसरे तक को भी पता दिये बिना। अपने स्वयं के भीतर भी मानो स्वयं से ही डरे। बेहद डरे। बेहद जीवन-लोभी। मरने और मरने-देने की वकालत हम नहीं कर सकते हैं। हम बहुत मारे जा चुके हैं। धर्म-परिवर्तन के माध्यम से। मृत्यु के माध्यम से। हम हारे हैं...बेबस हैं...हमारे खून में ही अब हार का बहुत बड़ा स्वीकार है। तिस पर हम उस कुसमय के शिकार है जहाँ वोट का शासन है और वोट में उसी की विजय है जिसका संगठन है, जिसकी संख्या है। हम संगठन से डरते हैं। हम शत्रु की अधीनता स्वीकार करते हैं, हृदय से स्वीकार करते हैं, मगर आपसी संगठन की बात यदि सोचें तो एक-दूसरे से स्वयं को श्रेष्ठ समझने की लीचड़ बीमारी से ग्रस जाते हैं। हम एक-दूसरे की ईर्ष्या में विगलित हो उठते हैं, इसलिए संगठन टूटते हैं। हमारा मन बीमार मन हो उठा है। क्षुब्ध मन। दुःखी और पराजित मन है हमारा। गुलाम मन है...अब खैर...।''

और एकाएक प्रभु हाँफ-सा उठा मानो बोझिल और कटु-शब्दों के अर्थों

का भयावह बोझ ढोते हुए निढाल हो उठा हो। पूरे समुदाय की बेबसी और बेध्यानी ने उसे चिन्ता के महासागर में फेंक दिया हो। एक विस्तृत मौन कमरे में साकार-सा हो उठा।

❑❑

बाहर भरी दोपहरी की सुमधुर धूप का स्वर्णिम सौन्दर्य फैला हुआ था। वे तीनों वर्तमान, भूत और भविष्य के विकराल संक्रमण में मानो जकड़े गये थे और अपने-अपने जोर लड़ाकर स्वयं को मुक्त करने का प्रयत्न कर रहे थे।

''अब आप हमारे साथ भोजन में सम्मिलित होंगे। भोजन पका है।''

''नहीं। नहीं। अब चलना चाहिए। आखिर श्रीनगर वापस पहुँचना है हमें।''

''नहीं। मगर भोजन किये बगैर मैं नहीं जाने दे सकता। आज तुम आये हो प्रभु, इस मेरी बेटी को साथ लेकर। हमने हाक पकाया है प्रभुजी।''

उनसे इसके आगे ना नू की औपचारिकता भी नहीं निभायी गयी। ताजा गोरस और हाक और पुदीने की चटनी के साथ भात खाकर उनके हौसले बुलन्द हो गये। उनमें सोचने की ताकत आयी और उन्हें लगा कि वे अब अपने समुदाय के लिए कोई भी युद्ध सफलता से लड़ सकते हैं।

❑❑

वह एक यादगार सैर थी सुधा की प्रभु के साथ। सुधा, जिसे रह-रहकर याद आती इस प्रकरण की और द्वन्द्वमय भी हो उठती और प्रभु के सान्निध्य के कारण जीवित भी हो उठती। प्रभु के लम्बे बिछोह में भी मानो बिछोह कुछ पलों को समाप्त होता और वह प्रभु से मन-ही-मन बहुत बतियाती, 'प्रभु यह भी भूमिका की तरह था, तुम्हारा मुझे ऐसे स्थलों की विवाहपूर्व सैर कराना और सन्त्रास के इतिवृत्त, जिसके तुम अनन्य वेत्ता हो, के कुछ आवश्यक अध्याय मुझे बताना, दिखाना। तुम कितने अच्छे हो प्रभु। तुमसे मैं अब भी प्यार करती हूँ...मैं तुमसे सदा ही प्यार करती हूँ...'

सुधा प्रभु के प्रति कोमल हो उठती है। उसके तमाम अपराधों के प्रति क्षमा से भर जाती है। ईश्वर से यातनाप्रद स्मृतियों के खिलाफ विस्मृति माँगती है, मगर द्वन्द्व उतना ही बढ़ता है और क्षमाहीनता भी उतनी ही बढ़ती है। प्रभु की मनुष्यता विरोधी गुणात्मकता का कुछ ज्यादा ही आकलन सुधा के भीतर सहज ही शुरू हो जाता है। बिछोह का दु:ख और द्वन्द्व उतना ही बढ़ता है। दर्शन की सहायता से स्वयं को सुखी करने की हास्यास्पद कोशिशों के खिलाफ भी सुधा के भीतर एक और व्यक्तित्व तेजी से उभरता है। अपनी मातृभूमि की इस रफ्ता-रफ्ता

विदीर्णता को लेकर सुधा सोचती है कि वह क्या करे। स्वयं को कहीं भी, किसी भी तरह झोंक दे, कि हर तरफ जो उसके समुदाय के प्रति, उसकी मातृभूमि के इतिवृत्त के प्रति जो अज्ञानता फैली है...उसे दूर करे। किसी भी तरह...कोई मार्ग खोजे...। उस समर्थ शब्दावली का निर्माण करे या उस शब्दावली के सम्यक् अर्थों को निकालने का हौसला पैदा करके विश्व-समुदाय में बता दे अपनी पीड़ाओं और नर-संहार को और तदनुसार क्षुण्ण होते जाने के चिह्नों को चिह्नित करे। और इस तरह वह सब जो पटरी से उतर गया है जीवन में वह सब पटरी पर लाए।

...फिर उसे प्रभु एक ही...एकमात्र आशा दिखने लगा। 'हाँ!' सुधा सोचती है कि, 'प्रभु उस शब्दावली से वाकिफ है...मगर प्रभु अकेला है। यहाँ तक कि सुधा भी उसके साथ नहीं जो उसके मानते प्रभु के बाद दूसरी व्यक्ति है, जो धरती के सीने में कैद पीड़ा की तीव्रता को सर्वाधिक समझती है।'

❑❑

सुधा को क्या हो गया था? ऐसे झूल रही थी दो समयों के पर्वतशृंगों के बीच, मानो एक झूला दोनों में डालकर कभी इधर और कभी उधर के शृंग पर पहुँच रही हो, या जोजीला के दर्रे में से बहुत सारा बोझ लेकर जा रही हो...शिव के दर्शन के लिए।

वह आ गयी थी इस शृंग पर। यह कठोर अत्युत्तुंग शृंग। पता नहीं उसे क्यों लगता है कि जितनी अधिक कठोरता है उतनी ही अधिक तीव्रता है और उससे कई गुणा अधिक उपलब्धि है इस अतीत में। इस उसके अतीत में या फिर अतीत के भी अतीत में। कितना अनातीत रह गया है उसका सम्पूर्ण अतीत। कितना उलाहनों से भरा, व्यंग्य से भरा, और विडम्बना से भरा अतीत।

'शायद सबका होता है।' उसने क्षणांश में सोचा....'ओह फिर उस दिन प्रभु बता रहा था अपने रहस्यवादी जीवन की दास्तानें। जब ऋषिपीर मन्दिर में वह रामानन्द से मिला था और फिर कई बड़े फकीरों से मिलता रहा, और उनके करीब रहकर उनका सन्देश-वाहक बना। हाँ, प्रभु के अनुभवों में विराट और रहस्यमय सौन्दर्य है...और उसी प्रभु को क्या हो गया। उस बड़े विराट-मन के स्वामी को, प्रभु को किसने पथभ्रष्ट किया...?' सुधा ने निःश्वास छोड़ा। लम्बा-सा। भारी-सा।

"और सुधा रामानन्द ने मेरा इन्तजार कर लिया मन्दिर में और फिर मुझे बड़ी शिद्दत से मिला,—सुनिए! क्या आपका नाम फलाँ अक्षर से शुरू होता है और फलाँ अक्षर पर समाप्त होता है...।"

"अरे...हाँ...हाँ...बिल्कुल...मगर क्यों?"

"बस...बस मुझे मिल गया जिसे मैं ढूँढ़ रहा था।" मतलब ? एक अनिश्चय भरे विभ्रम में पड़कर प्रभु ने पूछा।

"देखिए मैं दूर...मद्रास से आया हूँ आपको ढूँढ़ने। पूर्वजन्म से ढूँढ़ रहा हूँ...प्रिय प्रभु जरा जोर से मिलो..." और रामानन्द आँसुओं में भीग उठा था...। यह प्रभु ने कहा था और सुधा मन ही मन प्रश्न कर रही थी किसी दूसरे प्रभु से कि,—सच कहो प्रभु...मनगढ़न्त कह रहे हो या सच ?...पर जो भी हो...दिलचस्प है...अब देखकर सोचती हूँ...अगर झूठ था वह सब तो भी सच के बहुत अधिक निकट था। अगर सत्य था तो अद्‌भुत था और पौराणिक कथा। जीवन और जीवन की रहस्यमयता के बीच एक सुरंग की भाँति था।

"क्या सच था ऐसा...सच था क्या... ?"

फिर एक विविध-अर्थपूरित हँसी के साथ सुधा अपने भीतर विराजमान प्रभु से पूछती है...'बोलो प्रभु क्या यह सच है ? क्या यह भी सच था कि फिर रामानन्द एक लम्बी तान छेड़कर गाने लगा था—

"आमि पन-सदरस नावि छस लमान
कति बोजि दय म्योन म्यति दियि तार
आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न-श्रमान
ज़ुव छम भ्रमान घर-गछ़हा।"
(कच्चे धागे से खे रही हूँ नाव
करुणावश प्रभु लगा दें मुझे पार,
कच्चे सकोरे में जज़्ब होता ज्यों,
जल त्यों उठा है घर जाने को,
मेरा मन मचल...।")

और रामानन्द रोता है। जार-जार रोता है...अन्तहीन रोता है...प्रभु को गले से लगाकर...ललवाख तमिल में अनुवाद कर फिर-फिर गाता है...।

❑❑

यह बात प्रभु मुक्ति मोर्चे के उच्चस्तरीय सदस्यों के सामने भी दोहराता है...और सुधा सोचती है...कि क्या यदि यह सब सच भी हो तो भी विश्वसनीय लगेगा ? विशेषकर उन सबको जिनके सामने घर वापसी के आन्दोलन का सन्दर्भ लेकर प्रभु यह सब बखान कर रहा है...'क्योंकि कोई सबूत नहीं है इस समय प्रभु के पास। स्वयं रामानन्द ही हो...तो...मुक्ति मोर्चे के सब सदस्य बाद में हँसे होंगे...' सुधा ने सोचा। परन्तु रामानन्द की इस कथा को लेकर सुधा में बड़ी जबर्दस्त जिज्ञासा

है और वह मुक्ति मोर्चे के उस दिन की अनौपचारिक बैठक के बाद शाम को प्रभु से पूछती है...''प्रभु तुमने दिलचस्प बात सुनायी रामानन्द के बारे में मगर मुझे बताइए यह पूरी गाथा...फिर क्या हुआ था?'' और प्रभु ने किस्सा पूरा कर लिया। सुधा को पूर्ण हो रहे किस्से को सच मानने की ठाननी पड़ी, मगर मिलन का तौर-तरीका ठीक श्रेण्ययुग की तरह था जब मनुष्य का सीधा-सीधा संचार अन्तरलोकीय रहा था...न कि अन्तरराष्ट्रीय...यानी पूर्वजन्म का बिछड़ा प्रभु रामानन्द को कश्मीर के सोपोर जनपद के ऋषिपीर मन्दिर में शताब्दियों पश्चात् मिला।

...आह क्या रोमांचकारी अनुभव। रामानन्द! वह भी ललद्यद का वह वाख गाते हुए जो निष्कासन के बाद हर कश्मीरी भट्ट की आत्मा का वाख हो गया...नसों और धमनियों में गूँजती धुन हो गया। उसका अन्तर्निनाद हो गया। वह उसका तमिल भाषा में गायन कर रहा है। प्रभु को गा-गाकर सुना रहा है...जार-जार रो रहा है, आँखों से सिन्धु बहा रहा है...आह यह अविश्वसनीय होकर भी ग्राह्य है। यह जानबूझकर विश्वसनीय बनाने की किसी की भी चेष्टा के उद्भव में कारक की तरह है...यह अद्भुत है प्रभु...अद्भुत...और प्रभु यह उन मुक्ति मोर्चे के लोगों के लिए हास्यास्पद और निरर्थक भी है...पर तुम नहीं जानते...तुम नहीं जानते प्रभु...ओह...हो!' सुधा का अन्तर्मन बोल रहा है।

❑❑

रामानन्द उस दिन प्रभु के साथ ही उसके सोपोर के घर में आया। दिनभर उनमें खूब बौद्धिक और दार्शनिक बहसें और विमर्श हुए थे। रामानन्द की दबंगई और तेज में प्रभु की बात कहीं दबती है। प्रभु भी कुछ कम टक्कर का नहीं। रामानन्द एक भीषण अध्येता है...प्रभु एक विद्यार्थी और कनिष्ठ, कुशाग्र जिज्ञासु...और प्रभु भीतर-भीतर कुढ़ता है। उसने बाबाजी को घर में रखा है। वह वहाँ खाता है, पीता है, सोता है, चर्चाएँ एवं शास्त्रार्थ करता है। लोकोत्तर और जन्मातीत कथाएँ प्रभु को सुनाकर उसके भीतर प्रायः किसी रहस्यलोक का निर्माण करता है...शायद वह प्रभु को गढ़ता है...पर प्रभु कहीं चमत्कृत होता है और कहीं इस सबमें खोकर कुढ़ता है...उसके भीतर रामानन्द के लिए एक अस्वीकार उत्पन्न होता है...और परिणामस्वरूप वह द्वन्द्वग्रस्त है। शाम को भोजन के बाद जब वे कमरे में आते हैं तो दोनों में दो टूक बातें हो जाती हैं।

''रामानन्द! मैं तुम्हारे साथ एकदम सहमत नहीं।'' प्रभु ने कहा।

''मुझे तुम्हारी सहमति चाहिए भी नहीं प्रिय प्रभु।'' रामानन्द ने उसकी कुढ़न को बढ़ाया।

''...आप और मैं...मुझे लगता है हमें अलग होकर अपने-अपने रास्ते मापने

चाहिए...पिछले कई दिनों से मैं आप के साथ किसी भी बिन्दु पर सहमत नहीं हो पा रहा हूँ...स्वामी रामानन्द।'' प्रभु ने कहा था।

''प्रिय प्रभु...तो मैं जा रहा हूँ...चाहो तो अभी जाऊँ...इसी क्षण...बोलो।''

''नहीं रामानन्द! रात बहुत हो गयी है...सुबह होते ही निकल जाना... ।''

''ठीक है।'' कहकर एक अजीब-सी चमक रामानन्द के चेहरे पर आ गयी थी जो प्रभु ने देख ली और अचम्भे का अनुभव किया था। उसे अपनी आशाओं के विपरीत लगा था रामानन्द का चेहरा। उसकी हर रहस्यमयता पर उसे जैसे विश्वास का एक रंग फैलते हुए दिखने लगा था। कमरे में एक बोलता हुआ मौन तैरने लगा।

''प्रभु ओ...प्रभु...मैं सुबह जा रहा हूँ...बोलो...कुछ बात करो...मुझसे कुछ माँगो... ? प्रभु...जाने से पहले।''

''माँगूँ... ? कुछ माँगूँ... ?'' उसकी आवाज में सुखपूर्ण आश्चर्य की पूर्ण आपूर्ति थी।

''लेकिन क्या माँगूँ... ?'' प्रभु ने कहा ''रामानन्द...स्वामी रामानन्द...क्या माँगूँ?'' कमरे में फिर मौन छा गया।

''माँगो...प्रभु कुछ माँगते क्यों नहीं हो... ।'' इस छोटी-सी समयावधि में प्रभु ने यथेष्ट चिन्तन कर डाला था, माँगने के सन्दर्भों में। प्राय: कथाएँ सुनी थीं उसने कि फिर फलाँ से ईश्वर ने प्रसन्न होकर कहा, ''माँगो वत्स...वर माँगो...क्या है तुम्हारी इच्छा...इस क्षण माँगो... ।'' या दशरथ अपनी रानी कैकेयी से कहते हों, ''माँगो मेरी परमप्रिय रानी...क्या वर दूँ तुम्हें...माँगो... । और कैकेयी अपने लिए दोनों वर भविष्यनिधि में रखकर कहती है...समय आने पर माँगूँगी महाराज।''

मगर इस समय प्रभु अपनी दबंगई के दीक्षान्त समारोह में बैठा है। समय नहीं है कहीं भी उसके पास। रामानन्द को सदा के लिए जाना है।

अधिकांश प्रशिक्षण उसे रामानन्द से ही मिला है और कुछ तो प्रभु स्वयं भी गर्वित व्यक्ति हैं। अपने स्वयं के ज्ञान से नितान्त दूर अहंकार को अहंकार की तरह न देख सकने की एक सहज विडम्बना से लैस।

''रामानन्द! मेरी उत्कट इच्छा है तुम्हें कोट-पैण्ट पहने हुए देखने की। वह खूँटी पर मेरा कोट-पैण्ट टँगा है। उसे पहनो और मुझे दिखा दो कि कैसे लगोगे तुम।''

''अच्छा?...यही माँगोगे तुम... ?'' किंचित् आश्चर्य के साथ रामानन्द ने कहा।

''हाँ...यही...बस।''

"तो आँखें बन्द करो तब तक जब तक कि मैं खोलने के लिए न बता दूँ।"

"ठीक...।"

रामानन्द को इस प्रकार की माँग से प्रभु की तरफ से कई उत्तर मिल गये थे...कई-कई उत्तर मिल गये थे...जिनमें एक यह भी रहा हो...'कि रामानन्द के बच्चे। मैं कोट-पैण्ट पहनकर भी तुम जैसा हूँ...और तुम यह बाबाजी वाला वेश धारण करके भी मुझ जैसे हो। क्या दोगे मुझे तुम...और तुम क्या समझते हो कि मैं तुम्हारे इतने सम्मोहन और भ्रम में पड़ गया कि तुमसे वर माँगने लगूँ और तुम्हें वर देने वाला मानने लगूँ...जा बे...बच्चे...।'

"आँखें खोलो प्रभु।" रामानन्द ने कहा और प्रभु ने देखा। और फिर कुछ नहीं था सिवा प्रभु को रामानन्द का उत्कट विरह और रामानन्द को प्रभु से मिलने की उत्कट आस...।

❑❑

प्रभु सुना रहा था। सुधा सुन रही थी सुधा में दोनों की यह असह्य पीड़ा अवतरित हो रही है। उसे बेचैनी हो रही है...क्या उस बिछोह का अच्छा अन्त न हुआ कभी?

"आजकल कहाँ है रामानन्द...?"

एक सीधा सवाल प्रभु से सुधा ने पूछा।

"होगा कहीं...क्या पता? चेन्नई में ही कहीं...या फिर कहीं और...किसी अन्य प्रदेश में...क्या जाने कहाँ होगा...कहीं कुछ पता नहीं चला...।"

"लेकिन तब कहाँ गया था सुबह-सुबह निकलकर...?" सुधा को लग रहा था कि इस दुखान्त की कोई कड़ी अभी बची है।

"मैं जब जागा, रामानन्द जा चुका था...सुबह सुबह निकलकर। मैं...जैसे एक महाशून्य में डूब गया था। वह इस तरह चला गया था मानो वह पृथ्वी से सीधे किसी अन्य लोक में चला गया हो और मुझे अब इस जन्म में नहीं मिलेगा...कभी नहीं...कभी भी नहीं। घर में अन्य किसी सदस्य को भी पता ही नहीं चला था कि वह कब गया था और किस द्वार से? कोई भनक भी नहीं मिली किसी को भी उसके जाने की।

"तुरन्त मैं उद्विग्न हो उठा। मुझे लगने लगा कि अभी-अभी कल रात तक मैं स्वयं ईश्वर के साथ था...और मैंने खुद-ही-खुद को उससे वंचित किया। उसकी कदर न की। उसको जाने को कहा। उसे दुःखी किया...मैं कितना बड़ा अपात्र था...कि ईश्वर मेरे ही पास आया...मुझे उसकी बातें पचीं नहीं। उसे तिरस्कृत किया और घर से निकाल दिया।"

सुधा का हृदय वेदना से भर उठा। सुधा ने खुद प्रभु को कितनी बार खोया और पाने के लिए प्रार्थनाएँ करती रही...और पाकर फिर खोने के सभी सामान किये...अरे...प्रभु...! तुम! ऐसे दुःखभरे क्षण...जीवन, सुधा की संवेदना के निकट हैं...रहे हैं।

"और एक दिन सुधा! तुम यकीन नहीं करोगी कि क्या हुआ। रामानन्द का पोस्टकार्ड आया...ट्कर से। वह ट्कर गया था और वहाँ राज्ञी के मन्दिर में रहने लगा था। तपस्या आरम्भ की थी।"

"पोस्टकार्ड में क्या लिखा था प्रभु... ?" सुधा पोस्टकार्ड पर अंकित शब्दों को पढ़ने के लिए मर रही थी। क्योंकि वह जी उठी थी यह जानकर कि रामानन्द ने पोस्टकार्ड लिखा था और वह दूर नहीं बस ट्कर में तपस्यारत था। मानो प्रभु के विरह में। वह जानती हो मानो कि वास्तविक तपस्याएँ विप्रलम्भ शृंगार में ही की जाती हैं। मानो वह रामानन्द का वह पोस्टकार्ड स्वयं अपने हाथों में लेकर चूमती जा रही हो और अश्रु-पूरित आँखों से बार-बार पढ़ रही हो...और मानो वे शब्द सृष्टि की तमाम भाषाओं, लिपियों के आदि-अन्तमय हों।

"कि तुम पोस्टकार्ड के मिलते ही फौरन ट्कर आश्रम में चले आओ।"

—तुम्हारा ही रामानन्द।

"ओह...अच्छा...।" सुधा का हृदय काफी तेज-तेज धड़क रहा है और वह परमेश्वर को रहस्यों के भीतर से रहस्य की तरह देखते हुए...मानो रहस्यमय ढंग से धन्यवाद दे रही है कि रामानन्द का पोस्टकार्ड ठीक-ठाक प्रभु को मिल गया...कहीं बीच में ही खो नहीं गया...और मानो रामानन्द से उसे गहरा प्यार और फिर गहरा बिछोह हो गया हो और इस बिछोह के महासागर में से उसे यह पोस्टकार्ड नामक तिनका मिल गया हो।

"और मैं अविलम्ब अपने कपड़े ढूँढ़ने लगा। सोचने लगा कि काश! मैं उड़ सकता और उड़कर रामानन्द के पास पहुँच जाता।"

सुधा ने राहत की साँस ली। उसे लगा कि वही हो रहा है जो होना चाहिए...बिल्कुल सही-सही हो रहा है...। मिलन की घड़ी आ चुकी है। अब प्रभु को रामानन्द से मिलने से कोई ताकत, कोई विषय-विकार नहीं रोक सकता...मानो प्रभु में अपना विलय कर वह गति से उड़ना चाहती हो...रामानन्द से मिलने के लिए...।

"मैं चल पड़ा, ट्कर की बस ली। आश्रम पहुँच गया। देखा आश्रम पहले के दिनों से कहीं अधिक साफ-सुथरा और वैकुण्ठी-वैभव-सम्पन्न-सा था। दूर से देखा आँगन की दूब पर कोई बाबा जी नंगे पाँव चहलकदमी कर रहा था। शायद रामानन्द ही हो।

❑❑

"रामानन्द ही था। परम प्रसन्न होकर वह आगे आये और मुझे हृदय से लगाया। मैं झुकने लगा था पर उसने झुकने नहीं दिया। और हम कुटिया के भीतर आ गये।"

"मैं जानता था कि तुम आ गये हो। बस से उतर रहे हो...तब मैं बाहर आँगन में आ गया... ।" कहते हुए रामानन्द ने अपने छोटे से किचन में रखे हीटर पर एक बेहद छोटी-सी पतीली चढ़ायी...और स्विच खोलकर बोलने लगा, "कहवा पियोगे न? या शीरचाय पीनी है... ? तुम उसी के दीवाने हो न... ?" उसको सुनते हुए प्रभु विचारमग्न था मगर।

कि रामानन्द क्यों ऐसा बोला कि वह जान गया था उसका बस से उतरना क्या वह उसे जताना चाहता है कि वह कालद्रष्टा है...अन्तर्यामी है...किन्तु एक प्रभु ही है जिसके पास दृष्टि नहीं।...समझ में नहीं आता...प्रभु अपने दो मनों से त्रस्त और द्वन्द्वग्रस्त है इस समय। एक मन जो दौड़कर आ गया है रामानन्द के पास...जो रामानन्द की पुन:प्राप्ति के आनन्द से परिपूर्ण है और दूसरा मन जो शंकाएँ करता है...नि:बुद्धि के प्रश्न करता है...गर्व करता है...तर्क करता है बुद्धि के साथ मिलकर। प्रभु चोट खाता है इससे।

रामानन्द का किचन बहुत ही सुन्दर और शास्त्रीय ढंग से लीपा गया है। कुछ बर्तन, छोटे-छोटे बहुत ही साफ मँजे हुए, सुखाये हुए करीने से सजे हैं। एक छोटी-सी पत्थर की ओखली इलायची, लौंग, दालचीनी कूटने के लिए एक कोने में रखी हुई है। दो काँसे के प्याले हैं और रामानन्द स्वयं काँसे के खोस में ही चाय पीता है।

रामानन्द ने प्रभु से पूछा कि वह कैसे और कहाँ विराजना अच्छा समझता है। भीतर कुटिया में या बाहर प्रकृति के निकट...दूब पर...कि वह इस बीच यदि चाहे तो जल ग्रहण करें ताकि उसके बाद वह चाय ले सकें क्योंकि प्रभु ने कहवे की सहमति दी थी।

चीजें बदल गयी थीं। अन्तराल ने अन्तर पैदा किया था। वह सहजता, वह नैकट्य और वह अपनत्व अपने आप ही मानो वाष्पीकृत होकर आकाशगामी हो चुका था...गायब हो चुका था। रामानन्द ने प्रभु को मानो प्रश्नों और शंकाओं के उद्‌भव के साथ रँगे हाथों पकड़ा था। प्रभु को उसकी तीखी वेदना और शर्मिन्दगी दोनों थी। रामानन्द मानो अपने मौन को गूढ़ रहस्य में बदलता जा रहा था और अपने कालदर्शी एवं अन्तर्यामी होने पर अमिट मुहर डाल रहा था। प्रभु को अपना कायल और उसके बाद अपने प्रेम में घायल करने की समीचीन प्रक्रिया में था '...मौनं चास्मि गुह्यानाम्।' प्रभु ने अपने मन को कहा...अपने मन को, द्वित्व भरे मन को...पढ़कर सुनाया और एक शंका उसके भीतर उठी...कहीं यह रामानन्द

का बौद्धिक रणकौशल तो नहीं...वर्ना उसी ने पत्र लिखा...मैं तो विरह झेल ही रहा था...।

प्रभु अपने मन-शिकारी का शिकार है। मौन और चीजों की सौम्य उठापटक की ध्वनि वातावरण में बरकरार है। बाहर कुछ चिड़ियाँ बारम्बार चहकती हुई पता नहीं किससे क्या वार्तालाप करने में व्यस्त हैं। प्रभु बैठा है। वेगिल...विरही और प्रेमिल मन से और सहसा बाहर के घने चिनार पर एक साथ दो कोयल गा उठी हैं...वही गान...वही तान...गुगू...स्गू...हे दोस्त तू...।

रामानन्द ने एक खोस में कहवा डाला जिसमें उसने इससे पूर्व इलायची, अखरोट और बादाम की एक-एक गिरी, एक लौंग, एक काली मिर्च कूट कर डाली थी। चाय खोस में डाली जा रही है यह हवा के माध्यम से बह रही सुगन्ध से भी भासित हो रहा है।

प्रभु को खोस परोसकर और एक प्लेट में एक कुलचा परोसकर रामानन्द बोला, ''प्रभु, तुम आराम से चाय का आनन्द लो...मेरे गुरुजी भी आज आने वाले हैं, और वे गाँव पहुँच चुके हैं...मैं उनका स्वागत करने जा रहा हूँ।''

''क्या आप...चाय... ?''

आधा ही सुनकर रामानन्द ने उत्तर दिया, ''नहीं मैं गुरुजी के साथ ही लूँगा...मतलब उनके लेने के बाद। तुम चाय पी लो प्रभु...तुम चिन्ता मत करो।''

प्रभु मानो मन-ही-मन बुझ-सा गया हो जैसे। जो उसके भीतर मिलन की गर्माहट थी, उसका तापमान कभी धीरे-धीरे और कभी शीघ्रता के साथ गिर रहा था...शायद इसी के साथ प्रभु सामान्य भी हो रहा था और अपने दूसरे मन की तीव्र-तिक्त-विषाक्त शंकाओं के साथ एकाकी भी पड़ता जा रहा था।

रामानन्द के गुरुजी पधारे और रामानन्द ने दण्डवत् प्रणाम किया, एकदम साष्टांग और प्रभु भी साष्टांग प्रणाम में बिछ गया।

गुरुजी ने मौन आशीर्वाद दिया और एक भव्य चाल चलकर भीतर आकर आसन पर विराज गये। दोनों गुरु-शिष्य में तमिल भाषा में कुछ बातचीत हुई और उसके बाद रामानन्द ने अँग्रेजी में प्रभु का परिचय अपने गुरुजी को दिया।

''यह प्रभु है। प्रभु भट्ट। मेरा जन्मों का मित्र। एक जन्म का गुरुभाई भी।''

गुरुजी एक सौम्य मुस्कान में मुस्कराये और उन दोनों के बीच फिर तमिल में बातचीत शुरू हुई। प्रभु इस सबका साक्षी है। प्रभु को रामानन्द बदला-बदला लग रहा है।

भोजन के बाद रामानन्द ने प्रभु से कहा कि, ''तुम बिस्तर पर लेट सकते हो...वह रही तुम्हारी शैया...तुम थके भी हो...मैं गुरुजी के साथ रातभर रहूँगा...तुम नींद का आनन्द लो।''

कुटिया के दूसरे कमरे में प्रभु सोने की कोशिश कर रहा है, प्राय: रामानन्द से दूरी की कुण्ठा का अनुभव कर रहा है...उससे पुराने तर्ज पर शास्त्रार्थ करने के लिए उसका मन मचल रहा है। उसे इस मिलन और पोस्टकार्ड के शब्दों के अर्थों में फेर लग रहा है।

पोस्टकार्ड पाकर उसे लगा था कि रामानन्द का विरह उसी के विरह की तरह उत्कट है...गलाकाटू है, पर उसे वह संयत लग रहा है यहाँ, निर्लिप्त लग रहा है।

'क्या यह मोह को तोड़ने का पहला और अन्तिम पाठ है... ?' प्रभु ने सोचते हुए जब नींद नहीं आ रही थी तो बाहर जाने की चेष्टा की थी। हरी-हरी दूब ओस से बहुत गीली हो उठी थी। तारकनभ प्रच्छन्न था और दूर-दूर तक खुला और फैला था।...शायद नवमी हो उस रात उसने सोचा और देखा उस चन्द्राभा में एक-दो अभ्र खण्ड हिमालय के किसी एक शृंग से अठखेलियाँ कर रहे थे। शायद लुका-छुपी खेल रहे थे जैसे खेल रहा था रामानन्द प्रभु के साथ...कभी-कभी बच्चों के साथ मानो दौड़ रहा हो यह शृंग।

सेब के कई वृक्ष फलों से लदे थे। पक रहे फलों से क्योंकि निष्पत्ति की सुगन्ध वातावरण में भरी हुई थी। हवा में सुगन्ध से ही यह भी पता चल रहा था कि विशाल अखरोटों का वृक्ष गिरीदार अखरोटों से अँटा पड़ा है। कितने ही अखरोट हवा के झोंकों से नीचे गिरे थे।

❑❑

एक खास दूरी पर बस्ती थी। भट्टों की बस्ती। माता के मन्दिर में ज्योति ज्योतिर्मयी थी। 'रामानन्द कुछ अधिक ही तेजोमय हो उठा है जैसे...' प्रभु के मन की ऊहापोह थी।

'रामानन्द कुछ अधिक ही संकल्पशील हो उठा है...।' प्रभु फिर स्वयं से कह रहा है।

'रामानन्द ने मुझे क्यों बुलाया?' स्वयं से प्रश्न किया प्रभु ने।

'लगता नहीं था क्या पोस्टकार्ड से कि मानो वह बहुत उत्कण्ठित है मुझसे मिलने के लिए, विरह में मुझसे कुछ अधिक ही जल रहा है?' फिर उसने स्वयं से प्रश्न पूछे।

'लेकिन वह कुछ बोल तो रहा नहीं।'

'उफ् यह रात कैसे कटेगी?' प्रभु का मानो अब सूर्य की प्रतीक्षा में प्रलाप था।

'सुबह सवेरे मैं इसी रूप में, इसी गम्भीरता के साथ और मौन को साथ

लेकर वापस सोपोर जाना चाहूँगा। अब रामानन्द बात करेगा भी नहीं। वह गुरु जी के साथ व्यस्त है...क्या वह मुझे बता रहा है मेरी औकात?' रामानन्द से हुए इस सूक्ष्म हत्तक का एहसास वह खुद को ही समझा रहा था।

उसके बाद रामानन्द की एक संयत, आवेग-विहीन याद प्रभु के पास बनी रही थी। वह उस स्मृति को विवेक के पटल पर दूसरे कोण से फैला रहा था...यह सुधा ने समझा था। वह इस स्मृति को अपनी पत्नी में, अपने बच्चों में बीज की तरह बोता था।

❑❑

उसके बाद प्रभु कभी ट्कर नहीं गया और न कभी रामानन्द से ही मिला।

रामानन्द ज्ञानसम्पन्न था। पक्का सारस्वत था। विमर्श में तत्त्वों की गहराई तक जाता था और व्याख्यानों में बुद्धि प्रधान रहता था। मगर उस दिन राजेन्द्र पार्क पर अचानक माधवानन्द को देखकर प्रभु को सुखद आश्चर्य हो उठा था। उसका मन गुप्त रूप से तब से बराबर हर क्षण, हर स्थल पर रामानन्द को ढूँढ़ रहा है। उस दिन माधवानन्द को देखकर उसकी यह आशा और ढूँढ कुछ ज्यादा ही आशा के घोल में सन उठी।

''ओ...माधवा...तुम यहाँ? अरे तुम भी हमारी तरह विस्थापित हो गये हो...चेन्नई नहीं गये?''

''गया था...छः महीने रहा...मगर कुछ चैन नहीं मिला और वापस ही आ गया।'' प्रभु से भरसक गले मिलकर वह बोला था...वह उसे अपने आलिंगन से मुक्त ही नहीं कर रहा था...बहुत देर तक...और प्रभु ने देखा कि उसकी आँखें नम थीं...'वाह रे...संन्यासियो! दूर दक्षिण से आकर किस प्रेमपाश और मोह में फँसते हो उत्तर पहुँचकर...यह ज्ञान काहे का...मोहपाश तोड़ो...मुक्ति होगी...क्यों विपरीत चलो तो सहज है...क्या वही मुक्ति है...मोक्ष है... ?' अन्तर्मन में सोचते हुए प्रभु ने फिर अपने अन्तर्मन से ही कहा, 'हाँ ऐसे ही किसी दिन मैं रामानन्द को भी प्राप्त करूँगा।'

''मैं चेन्नई में छः माह तक इधर-उधर घूमता रहा। मैं अपने लोगों की याद को सह नहीं सका। मैं दिन-रात यही सोचता रहता कि क्या हुआ होगा किसका...कहाँ मिला होगा ठिकाना किसको इस महाविपदा के कारण भागने पर जम्मू में...चलो न प्रभु! मुझे एक ठण्डा पिलाओ। उस दुकान पर तुमसे सारी बातें बताऊँगा। मैं आशापूर्ण था कि जम्मू शहर पहुँचकर मैं कहीं न कहीं अपने लोगों का सूत्र प्राप्त कर ही लूँगा...और वही हुआ भी...।''

प्रभु ने देखा कि माधवानन्द कश्मीर से बाहर आकर कुछ ज्यादा ही कश्मीरी

हो उठा था। अपने अनुभवों को पूरी तीव्रता से कह रहा था।

"मैं गीता-भवन गया। वहाँ पता करते-करते पता लग गया कि पुष्कर और अवतार पुरखू कैम्प के टेण्ट नम्बर बाईस और तेईस में रहते थे। वहाँ मुझे निधान ने पहुँचाया जो गीता भवन में मिला था...और उसके बाद मैं एक-एक से मिला और हद यह कि मेरा भी यहाँ पंजीकरण हो गया। माधवानन्द...सुपुत्र नन्दबब। हाँ हो गया न...हाँ...।"

"माधवा, तुम फिर संन्यासी कहाँ रहे...सब संन्यासी मोह में पड़ते हैं...मोहपाश में...इसी तरह।" और उस दिन माधवानन्द ने प्रभु के घर में आकर उसके साथ ही भोजन किया था...प्रभु के तबेल में आकर...क्योंकि प्रभु के आते-आते जम्मू में कहीं किराये का कमरा नहीं मिल रहा था तो एक सरदार के यहाँ तबेल मिला...जो उसने अपनी भैंसें बाहर रखकर, लीप-पोतकर रिहाइश के योग्य बना दिया। उस दिन माधवा और प्रभु ने आपस में ढेर सारी बातें की थीं, माधवानन्द ने बताया कि "मैं प्रभु इस जन्म में अब इस मन को बाँध नहीं सका। मैं अब अगले जन्म में इसे जमकर, सख्ती से बाँधूँगा...इस जन्म में इसे छुट्टा घूमने दो अब...।"

प्रभु ठठाकर हँस पड़ा था और पूछा था, "रामानन्द का कुछ पता तो नहीं चला...?"

"नहीं। सुना है ऋषिकेश में है वह अब। लेकिन ये पाठ उसने कई बार बदले थे। कभी कहा था कि नर्मदा नदी के तट पर है वह...तपस्या कर रहा...और यह भी कि कुछ लोगों का कहना है कि वहीं ट्कर में ही है वह अब भी।"

माधवानन्द भाव-भरा और कार्यकर्ता था। यदि यज्ञ कराना हो तो उससे कहो, माधवा यज्ञ करना है...तो वह बोलता किसी भी सामने से आ रहे परिचित से—निकालो पाँच रुपये..., अगर वह व्यक्ति कहता कि इस समय जेब में कुछ नहीं है कुछ देर बाद दूँगा तो माधवा छूटते ही कहता, यज्ञ नहीं हो सकता...विघ्न है...। मगर सामने वाला कहता ये रहे पाँच रुपये...यज्ञ करो फौरन तो माधवा कहता, ये समझ लो कि यज्ञ निर्विघ्न हो गया और हो भी जाता यज्ञ सम्पन्न। वह यज्ञ के लिए फिर सारी कार्यवाही अपने कन्धों पर लेता और सम्पन्न होने तक एक पाँव पर मुस्तैद डटा रहता। रामानन्द की तरह उसमें बौद्धिक और रहस्यवादी ताम-झाम नहीं था। काम करता और मस्त घूमता-फिरता और मण्डलियों-कीर्तनों में झूम-झूम कर तालियाँ और मृदंग बजाता।

❑❑

सुधा को इन बातों का रेशा-रेशा स्मृति के पट पर सजीव घूम रहा दिख रहा

है... माधव, जिसने लोकभवन का यज्ञ भी कराया था...शुक्र है कि जम्मू में शरणार्थी कैम्पों में 'अपने लोगों' के सम्पर्क में है मगर हो सकता है कि रामानन्द यहाँ हो... यहाँ ही...इसी ट्कर में...पिछले पन्द्रह वर्षों से सतत समाधिस्थ हो यहीं... ।

और ट्कर? उसका ट्कर। उसकी सुगन्धों और धार्मिक-दार्शनिक अनुबन्धों का ट्कर। पता नहीं उसे क्यों लग रहा है कि ट्कर रामानन्दमय हो...और वह यह जानने की उत्कण्ठा रोक नहीं पायी।

वह जो अभी-अभी लम्बी दास्तान की वर्कें उसके भीतर उलट-पलट उठीं...उससे वह कितनी आन्दोलित हो उठी...सिर्फ उसे ज्ञान है...उसका।

'क्यों न दिलावर मीर से ही पूछें? क्या हर्ज है...' उसने तय किया।

'नहीं...नहीं। शायद ठीक नहीं रहेगा। और पता नहीं वह सुमोना से भीतर-ही-भीतर त्रस्त क्यों है... ? उसे सुमोना बर्बर-सी लगने लगी...कहीं भी उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाने के लिए मुस्तैद कबाइली की तरह। कहीं अगर सब को यह पूछना असह्य लगा तो ?...वे सोचेंगे...कि आखिर तुम्हें तमीज है कुछ कि कैसे चला करते हैं कश्मीरी मुसलमानों के साथ। लाडलों के साथ। नाराज मुसलमानों के साथ। बिगड़े मुसलमानों के साथ...जिन्हें दुनिया सदियों से मना रही है...पर वे कहते हैं कि—देखिए...लिखा गया है कि ऐ मुसलमीन!...कभी नहीं मानना... ।'

'या हो सकता है कि वे उसे यहीं पर औकात दिखा दें। ढेर कर दें। दिलावर ने अपनी पट्टू की चादर में एक अति परिष्कृत जरा भी शोर न करने वाली बन्दूक रखी हो...क्या पता एक बन्दूक इज़ा के पास भी हो...एक हुर्रत और एक...एक सुमोना के पास भी। कि लो...हमारी प्यारी...समझदार...धर्मनिरपेक्ष, हमें दुलारने वाली बहन...तुम आत्मरक्षा के लिए यह छोटी-सी बन्दूक रख लो। यह शोर नहीं करती। बल्कि जो शोर करता है उसे ढेर करती है चुपचाप। इसे चलाना...बहुत आसान है...यह देखो...यह बटन दबाना...और...बस। तुम इस संसार की सबसे सही और महान इन्सान हो...हम पर, हमारे अनुकूल...या सच के अनुकूल शोध कर रही हो। ईमानवालों के मानवाधिकारों की बखूबी खबर लेने वाली...और खबर रखने वाली हो तुम...तुम हमें अज़ीज़ हो...तुम्हारी जान काफी कीमती है...तुम्हारा मान काफी कीमती है...अतः यह रख लो पास...यह अत्यन्त जरूरी है... ।'

तब अगर मैं कहूँगी, 'दिलावर जी। ट्कर में राज्ञी माता का मन्दिर है...उसका क्या हाल है... ? क्या वह सुरक्षित है... ? ठीक-ठाक है क्या वह? वहाँ का नाग पवित्र है क्या? जिसमें माँ राज्ञी ने श्रीलंका से आते-आते यात्रा के दौरान कुछ समय विश्राम किया था।'

'हाँ हाँ...मैं पूछूँगी। मैं पूछ ही लूँगी...भले ही सब अपनी-अपनी बन्दूकें

निकालकर मुझे मार ही क्यों न डालें...।' सुधा के भीतर का नाटक इच्छा के निष्कर्ष तक पहुँच गया।

पता नहीं कितना बढ़ गया था सुधा की इच्छा का तापमान कि वह इच्छा की उत्कण्ठा में जल उठी और पूछ बैठी, "दिलावर साहब! यहाँ ट्कर में देवी माँ का मन्दिर है...कैसी हालत है उसकी...कुछ मालूम होगा आपको...क्यों?"

"देवी माँ का मन्दिर... ?" एक गोलीनुमा सवाल वापस दाग दिया दिलावर ने...।

"हँ...हँ...क्या...हाँ देवी माँ का। माँ राज्ञी का जो अन्ततः तुलमुल में विराजमान हैं...स्थापित हैं...उसी राज्ञी का मन्दिर है न यहाँ...अरे आप उसके अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं...यह तो घबराहट की बात है...क्या आपको कुछ मालूम नहीं... ?"

"नहीं तो। यहाँ तो किसी राज्ञी का मन्दिर-वन्दिर नहीं...किसने कहा यहाँ तो माँ दिद्दा की जाय-नमाज है...।"

"हँ...कौन माँ दिद्दा?"

"अरे वही। जो पहले भट्टिनी...माने पण्डितानी थी और बाद में इस्लाम की कायल हो गयी और इस्लाम धर्म अपनाया...और फिर ऊँचे दर्जे की मुसलमान आरिफा हो गयी।"

बड़ी सूक्ष्म बन्दूक थी दिलावर के पास...।

'बोलो अब ओ दिद्दा।...कुछ तो बोलो भई। बोलती क्यों बन्द हो गयी दिलावर की बातों से तुम्हारी। इसने तुम्हारी राज्ञी माँ और मन्दिर और तुमको बड़ी आसानी और निर्भीकता के साथ नकारा। यह कहता है कि यहाँ क्या था तुम्हारा...क्या है तुम्हारा? तुम कौन ओ भट्टिनी...माने पण्डितानी जो हैं...हम हैं...जो थे...हम थे...हम होंगे। तुम ढूँढ़ो अपने रामानन्द को...और मानो कि वह यहीं पर तपस्यारत है, तबसे...ठीक तभी से जब से गुरुजी के समीप उस रात हुए थे और चुपचाप प्रभु सुबह-सुबह सोपोर चला गया था और उसके बाद शहर आ गया था...।'

'यह दिद्दा कौन है... ?'

'दिद्दा तो मैं हूँ...।'

'क्या दिलावर को पता है कि मैं ही दिद्दा हूँ।'

'क्या उसने बड़े ही तरीके से मुझे भी मुसलमान कर दिया...उसने यह बेजोड़ बन्दूक कहाँ से लायी है। कहाँ से पायी है?'

सुधा अपने भीतर सन्न थी। चुप थी बाहर। पराजित थी। सुमोना सुधा को देख-देखकर मानो बार-बार कह रही थी कि ऐ सुधा की बच्ची। चुप रह और

अपनी बेइज़्ज़ती मत करा। अब दे जवाब दिलावर मीर को।

''इसकी क्या कथा है दिलावर साहब?''

सुमोना ने एक पत्रकार के रूप में आकर दिलावर से प्रश्न पूछा...मानो सुधा के अन्दर खुब गयी पराजय को सुदृढ़ कर रही हो और दिलावर ने अभी-अभी जो कुछ नकारा उसकी प्रामाणिकता पर प्रकाश डाल रही हो या उसकी प्रामाणिकता पर सुधा के मन का सन्देह भाँपकर उसे मिटाने की कोशिश कर रही हो। स्वयं तो उसे उस सब पर अपने मतानुसार या लक्ष्यानुसार सन्देह करना ही नहीं था।

'तेरी...वह है...हरामखोर कहीं की...डरी हुई दीन-ईमान बगैर कहीं की...उस पर भी भट्टिनी...थू...' एक नैसर्गिक प्रतिक्रिया थी सुधा के भीतर की। मानो सुधा अभी अपने दोनों कान बन्द करेगी...कुछ नहीं सुनेगी...कुछ नहीं सुनना है उसे जो कुछ दिलावर मीर कहता है...कुछ नहीं...मानो प्रभु से चीख-चीखकर कहेगी...'प्रभु! प्रभु के लिए कुछ करो प्रभु। देखो तो उनका मनगढ़न्त झूठ जड़ें पकड़ रहा है। हमें जड़हीन कर रहा है...कुछ तो बोलो अन्तरराष्ट्रीय पैरोकारों से...दुनिया की रक्षा का बीड़ा उठाने वाले अलमबरदारों से...कहो तो कुछ। बोलो न...यह झूठ तोड़ो...वह झूठ जिसमें यह वर्णसंकर सरीखी सुमोना भी भागीदार है। उठो, प्रभु कुछ बोलो। क्या हमारे साथ 'शक्ति' नहीं, 'राज्ञी' नहीं? क्या वह समुदाय दिद्दा होकर मुसलमान हो गयी? पाँच वक्त पश्चिम दिशा में नमाज पढ़ने वाली...क्या हमारे साथ कोई नहीं... ?' फिर वह चीत्कार कर उठी, ''इसकी कथा यों तो मुझे पता नहीं मगर ऊपर-ऊपर से जितना कुछ मैंने सुना है वह यही है कि दिद्दा कश्मीर की महारानी थी और जब उसने इस्लाम के बारे में जाना तब इस्लाम की तालीम और उसूलों की कायल हो गयी और इस्लाम कुबूल किया। अब उसे यहाँ बड़े अदब से दिद्दा माँ कहकर पुकारते हैं।''

'यह तेरी माँ की थी साले दिलावर...कमीने धर्मान्ध कहीं के...यह कोई कथा थी... ? यह तो सामने बैठे किसी भी कश्मीरी पण्डित को अपमानित करने के लिए कोई भी बड़ी आसानी से गढ़ सकता है...कहीं के... ।'

❑❑

''दिद्दा की कथा से तो राजतरंगिणी भरी पड़ी है दिलावर साहब...यह सब तो वहाँ नहीं लिखा...आप यह क्या कह रहे हैं...किस दिद्दा माँ की कथा है यह?'' सुधा ने अपनी आपत्ति दर्ज की और उसके ऐसा दर्ज करते ही सुमोना फटी-फटी आँखों से उसे मानो घूरने लगी।

''हम राजतरंगिणी की बात नहीं कर रहे सुधा...धैर्य से जरा सुनो तो...दिलावर साहब जो कुछ कह रहे हैं...यों ही थोड़े न कह रहे हैं...सच इसमें

भी होगा ही कुछ... ? तुम इस तरह विरोध क्यों करती हो... ? ऐसा रद्देअमल क्यों होता है तुम्हारा ?'' सुमोना ने पता नहीं किस अधिकार का इस्तेमाल कर इस तरह से आज्ञा और रौब का स्वर निकाला।

''सुमोना! जब तक मेरे कान झूठ सुनेंगे तब तक इसी तरह का रद्देअमल होगा मेरा...यहाँ तो माँ राज्ञी का परम पवित्र तीर्थ-स्थल है, किसी दिद्दा-विद्दा की जायनमाज नहीं...।''

''अच्छा...अच्छा चुप रहो अब...।''

सुमोना ने कुछ अतिरिक्त अधिकारों का अनधिकार इस्तेमाल करना शुरू किया।

''सुमोना आ आ आ आ...।'' सुधा में चण्डीत्व आने लगा और वह चीखी...कि सुमोना अब काँप उठी

लेकिन कुछ क्षणों में संयत हो उठी थी सुधा। जब उसने सुमोना के चेहरे का रंग एकदम उड़ते हुए देखा था और गाड़ी में बैठे अन्य जनों को भयावह रूप से प्रतिक्रिया-विहीन और चुप देखा था।

क्षणांश में उसके विवेक ने उसे इस क्षण विवेक न खोने का मशविरा दे दिया था। और वह भरसक बस रोने लगी।

'इन बातों में क्या रखा है...।' उसके किसी भीतरी गुरु ने उसके भीतर ही कहा।

'आज नहीं तो कल यह जायनमाज ही कहलाएगी।' फिर उस भीतर के गुरु ने उसे समझाया।

'यहाँ ऐसा होने से...ऐसा करने से इन्हें रोकने वाला है ही कौन...इसीलिए तो पहले हमारा सफाया किया गया...अब जायनमाजें और मस्जिदें धड़ाधड़ बन रही हैं...कहाँ-कहाँ रोक सकती हूँ मैं...।' उसने फिर स्वयं से कहा।

'अब मुझे सिर्फ प्रार्थनाएँ करनी हैं...प्रार्थनाएँ अपनी मातृभूमि के लिए...प्रार्थनाएँ ईश्वर से अपने ईश्वर के लिए भी...ओह हो कैसी विडम्बना है...।' वह भीतर-ही-भीतर मानो एक वेदना भरे अट्टहास से फट-सी गयी हो। अट्टहास का स्वर गगनभेदी था...मगर चुपचाप किसी का भेदन नहीं हुआ उससे। किसी ने नहीं सुना यह मौन विस्फोट। गाड़ी में तो विकराल सन्नाटा था...षड्यन्त्रकारी सन्नाटा।

❑❑

'गनीमत है कि ये उसे जायनमाज ही कहते हैं...यानी वहाँ पर प्रार्थना ही करते हैं...नहीं तो हनुमान जी के मन्दिर की तरह...ओ तोबा...तोबा...त्राहि भगवान। ये लोग वास्तव में गाँव के होकर कमोबेश हिन्दू देवी-देवताओं से भी डरते हैं। प्रकृति

के सान्निध्य में रहने से इनमें इस तरह की शक्तियों से भय लगता ही है अत: अपवित्र करने की बजाय...उसका अपने ढंग से धर्म-परिवर्तन करते हैं और उसके बाद उस स्थल पर स्वयं प्रार्थना करते हैं...क्योंकि इन्हें राज्ञी माँ के साक्षात् वहाँ होने पर भी गहरी आस्था है...मगर शहर के वे बेहूदे हॉजी...।'

'तो क्या मुझे मन-ही-मन धन्यवाद देना है इन्हें कि तुमने इस्लामीकरण किया पर अपवित्र नहीं...।'

'हूँ हूँ...मैं भी कैसी हूँ...मैं भी एक डरी हुई एक पराजित। वर्ना मातृपूजा इनके लिए कुफ्र है...मगर इस्लामीकरण करने के लिए ये लोग अन्दर ही अन्दर इस्लाम का संशोधन भी करते हैं, बगैर उसे कुफ्र घोषित किये। यह राजनीति है। फैलने की राजनीति। एक विचार के तहत फैलने की राजनीति। हावी होने की राजनीति...ओफ...।' सुधा इस लम्बे आत्मालाप से थककर चूर-सी हो गयी।

सुधा को एकाएक प्रभु की सुनाई वह कथा याद आयी जो एक दोपहर उसने 'शैवदर्शन और रहस्यवाद' जैसे विषय को पुष्टि देने के लिए कही थी। कश्मीर के सन्दर्भ में कि—

हरनाग में नाग के भीतर शिवलिंग विराजमान है...सुधा...। प्रभु सुधा को यह अनुभूत कथा सुना रहा है और सुधा अब स्वयं को सुना रही है फिर से...और क्यों सुना रही है...ताकि उसे...स्मृति रहे...उसके दिल का दर्द हयात रहे...वह इस मामले में किसी अवचेतन या अचेतन की शिकार न हो...उसे विस्मृति खा न जाए...ज़ख्म हरा रहे...चाहे कितना ही मारक दर्द क्यों न हो...और तब वह भरसक सुना रही है स्वयं को कथा...प्रभु की सुनाई...प्रभु की अनुभव कथा।

❑❑

''सुधा! एक दिन मैं और सोपोर का मेरा मित्र शिबन जी और उसका मित्र चाँद जी हरनाग गये। मुझे इस अलौकिक स्थल पर जाने की बहुत अधिक उत्कण्ठा थी। हमने नाग देखा। अलौकिक, अद्‌भुत, रहस्यमय। एक विशालतम चिनार की छाया में। हमने सोचा क्यों न स्नान का आनन्द लिया जाए।''

''चाँद जी चीख पड़ा, प्रभु ओ...देखो तो...इसमें शिवलिंग विराजमान है, मगर वह देखो वह टेढ़ा है।...मैंने देखा...मैं भी स्नान के लिए नाग में कूदा...और शिबन भी कूदा और तब हम पहले शिवलिंग को सीधा रखने लगे और जैसे-तैसे हमने उसे सीध में रख लिया और नहाकर ऊपर आये। कपड़े पहनने लगे। धूप मादक थी...धीमी धीमी...आहा...हा सुहानी चिनार की ओट से शिबन कपड़े पहनकर धूप में चला गया क्योंकि उसे ठण्ड लगने लगी थी और देखना चाहा कि हमारे सीधा रखने से शिवलिंग अब नाग में कैसा लग रहा है। वह चिल्लाया,

ओ प्रभु...अरे...आओ वह फिर से टेढ़ा हो गया है...शायद हमने उसे मजबूत ढंग से सीधा नहीं रखा था प्रभु। चलो चलो कूदो पानी में। उसे अच्छी तरह से टिका देंगे। उस दीवार की सीध में।

तब हम दूसरी बार कूदे। हम तीनों ने बड़ी मेहनत की अबकी बार और शिवलिंग को सीधा रख दिया। दीवार के साथ-साथ और हम तीनों आहिस्ता-आहिस्ता पानी से बाहर आये ताकि उसमें जोरदार तरंगें न उठें...पानी न हिले...ठीक एक नन्हे बच्चे को लिहाफ में सुलाने की तरह मानो हम आवाज किये बिना कमरे से बाहर आ रहे हों।

अब हम बेहद ठण्डे हो गये थे। बहुत सर्द। अब हम तेजी से धूप में सरक आये...खुद को गरमाने के लिए। मई का महीना था। धूप बस गुनगुनी थी। जब हम धूप में जरा-सा खुद को उष्ण कर वापस आ रहे थे तो देखा शिवलिंग फिर टेढ़ा था और अब के बिल्कुल दूसरी दिशा में पहुँच गया था। अरे...यह हम क्या देख रहे हैं?...यह क्या रहस्य है? हम तो बस पगला उठे आश्चर्य से। हम समझे कि हम यथोचित श्रद्धाभक्ति के साथ यह कार्य नहीं कर रहे हैं इसलिए हमने पहले शिवमन्त्र के कई जप किये और 'हे शिवजी...प्रसीद...प्रसीद...प्रभु' की प्रार्थना हृदय से की और फिर से पानी में कूद गये। मगर हमारे दिलोदिमाग पर इस रहस्यमयता का आवरण छाता जा रहा था।

अब हमने-जितने भी शिवलिंग के आसपास जितने भी पत्थर इत्यादि थे, वे सब भी रख दिये। इस तरह शिवलिंग को स्थापित किया। पूरी तरह सुदृढ़ कि प्रश्न ही नहीं उठता था फिर से उसके टेढ़ा होने का, जैसा कि दो बार हो गया था या जैसा हमने उसे प्रथम बार देखा था। इतना तगड़ा और मजबूत उसे स्थापित कर हम बाहर आये और अब हमें दृढ़ विश्वास था कि अब शिवलिंग जरा भी हिलेगा नहीं...हमने ऐसी कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी अब।

हमको अब जूड़ी जैसी लगने लगी थी। अब हम निश्चिन्त होकर ऊपर आये और कपड़े पहनकर भोजन करने लगे। भोजन किया। समय कम बच गया था। हम नाग पर अपने गिलासों सहित जल पीने के लिए आ गये और देखा कि अब के शिवलिंग अलग मुद्रा में थे। हमारी उस सुदृढ़ नींव से कहीं दूर, ठीक उससे विपरीत कोने में। हमें कँपकँपी होने लगी। हम उस रहस्यमयता से विचलित और भयभीत से होने लगे। अब न हमने पानी में ही उतरने की जुर्रत की और न ही शिवजी को सीध में फिर से रखने के बारे में सोचने की ही जुर्रत की। बस कई तीव्र और भयद प्रश्न हर एक के मन में थे।

हम अपने-अपने घर पहुँचे। अगले दिन चाँद जी को एक सौ चार बुखार हुआ। तीसरे दिन मैं बब के आश्रम में गया। वह तो मेरे साथ मित्रवत् थे...मुझे

खूब दुलराते थे। मैं प्राय: उनके आश्रम चाँद जी एवं शिबन जी के साथ ही जाता था...मगर आज अकेले देखकर बब बोले, ''बोलो, कैसे हो...तीन दिन कहाँ रहे? चाँद जी कहाँ हैं? शिबन जी कहाँ हैं?''

मुझे उनका यह पूछना अच्छा लगा था। दरअसल, मैं इसी प्रश्न के बाद का प्रश्न उनसे करने गया था आज जिज्ञासु बनकर। अत: मैं बोला—''बब! हम तीनों हरनाग गये थे।''

मुझे लगा वे महीन ढंग से चौंक उठे और फिर बोले, ''अच्छा?''

''हाँ...'' मानो उन्हें मेरी यह बात अविश्वसनीय लगी हो।

''क्यों?...क्या करने?''

''बस यों ही...नाग देखने...जल में स्नान करने...जल का स्वाद चखने...शिवजी के दर्शन करने।''

''देखा नाग... ?'' उन्होंने ऐसे पूछा कि मुझे लगा कि वह व्यंग्य कर रहे हैं...या जो वहाँ हमारे साथ हुआ था...उस सबकी जानकारी उन्हें हो...अत: हमें डाँट रहे हों।

''हाँ...देखा...।'' मैंने ये दो शब्द रुक-रुककर बोले।

''अच्छा...क्या देखा?'' यह कहते हुए उनपर एक मुस्कान आ गयी। तब मैंने यात्रा की कथा सुना दी। सारी की सारी। और यह भी कह दिया कि उसके बाद ही चाँद जी को जूड़ी लग गयी और बुखार हो गया तेज।

''बेवकूफो...तुम अगर गये थे वहाँ तो यह सब करने के लिए तुमसे किसने कहा था। मेरा मतलब है शिवलिंग को स्थापित, स्थिर रखना। बालक जानकर तुम पर कृपा की है शिवजी कृपालु ने...क्षमा कर दिया है तुम्हारा अपराध... नासमझो...पागलो...तुम्हें नहीं पता कि वे अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द रहते हैं...वह नृत्य करते हैं ही इज़ ए डांसिंग शिवा...यू शुड नो। चलो अब उन्होंने तुमको क्षमा कर ही दिया। अब तुम लोग नन्दबब की तहर करना और सुनो वहाँ हरनाग में एक हवन रचाने की व्यवस्था करना है प्रभु...जाओ बाल-बाल बच गये हो...शिवजी वहाँ नृत्यरत रहते हैं...जान लो।'' बोले।

''और हवन?'' सुधा ने पूछ लिया।

''हवन? हवन नहीं हुआ। बहुत दुरूह था सुधा वह काम। हरनाग में शिव स्वच्छन्द हैं। एक बड़ा-सा प्रांगण और नाग। बस इसके इतर वह अपने पास कुछ नहीं रखते। रहने ही नहीं देते। बेहद रहस्य भरा स्थल है। मगर हवन न होने का कारण वह नहीं था। कारण था मेरा अध्ययन में व्यस्त हो जाना। रोज सोपोर से श्रीनगर विश्वविद्यालय जाना और वहाँ से वापस लौटना। विश्वविद्यालयी जीवन का रंग चढ़ जाना। शायद कच्ची विचारधाराओं का कच्चा रंग भी चढ़ जाना। और

एक बात बताऊँ सुधाबब ने जब कहा था...जाओ वहाँ हवन कराओ तो मैं माधवानन्द को ढूँढ़ने लगा। उसे ऐसी व्यवस्थाएँ करने में परम आनन्द तो आता ही था और हर कहीं भी हवन होने में उसका मुख्य श्रम संयुक्त रहता था। अगले दिन अचानक मुझे सोपोर के बस अड्डे पर माधवा मिला। मैंने कहा, 'माधवा! हवन कराना है'।''

'कहाँ?' उसने पूछा।

'हरनाग में।' मैंने उत्तर दिया।

''मेरे साथ चाँदजी भी था। उसे उन्हीं दिनों बैंक में नौकरी मिली थी और पट्टन के 'स्टेट बैंक' में पहली पोस्टिंग हो गयी थी। इसलिए हम सुबह एक साथ बस में बैठते। वह पट्टन में उतर जाता, मैं श्रीनगर चला जाता। तो माधव ने चाँद जी से कहा, 'निकालो पचास रुपया।' चाँद जी ने कहा, 'नहीं हैं कल दूँगा।'

मैं जान गया कि हवन नहीं होगा। हो ही नहीं सकता।''

''माधव बोला, 'छोड़ो हवन नहीं हो सकता।' ''

''पर...पर...।'' सुधा कुछ बोलने लगी थी। और प्रभु जान गया था कि सुधा को क्या कहना है।

''हाँ सुधा वही तो बता रहा हूँ। पचास रुपये चाँद जी की जेब के पैसे मिला कर भी नहीं बनते थे। जो बनते थे वे यात्रा के लिए जरूरी थे। माधव को यह विचार था कि चाँद जी की नौकरी लग गयी है, इसलिए समस्या कोई नहीं। मगर चाँद जी को अभी पहली तनख्वाह भी नहीं मिली थी। माधव प्राय: पाँच या दस रुपये के लिए कहता था मगर उस समय उसने पचास की माँग की। मैंने कहा भी, 'माधवा तुझे क्या हुआ, तू तो सिर्फ पाँच रुपये माँगता था।'

''वक्त बदल गया है...भैया जी। और भैया को तो नौकरी भी लग गयी है अब।''

''अरे बुद्धू इसे अभी पहली तनख्वाह भी नहीं मिली।''

''पर अब मैं कुछ नहीं कर सकता। उसके बाद मैं भी विश्वविद्यालय की हरियाली, सौन्दर्य, विचारधाराओं के किताबी फरेब में रमता गया। विचार बदलने लगे। बदले हुए विचारों की महफिलों में लगने लगा कि मानो वे सतही विचार मेरी गहरी आस्थाएँ हो गयी हों...या हो रही हों। मैं सोचने लगा—क्यों मैं साधु सन्तों के बीच चिट्ठी रसानी करता हूँ। मुझे इन बौद्धिक और प्रभावशाली लोगों के बीच रहकर साम्यवाद का आन्दोलन चलाना चाहिए। युग की माँग है। युग का फैशन है। धर्म से ऊपर उठना। शैवों-शाक्तों में अपना गहरा विश्वास न रखना। मजदूरों और मेहनतकशों के बारे में बातें करना क्योंकि यही बातें हैं जो अखबारों में छपती हैं और जो अखबारों में छपता है, वह सच बन जाता है। और जो सच

होता है और अखबारों में नहीं छपता है, वह सच नहीं होता है। वास्तव में वही सच होकर भी अन्ततः वह सच न माने जाने की रिवायत में रमना ही हमारी पीढ़ी का कौल हो गया...क्योंकि हम अभी भीतर-बाहर से सब कुछ झेलते-भोगते हुए भी सोचते थे कि झेलो, भोगो मगर बोलो वही जो रिवायत है। अजीब द्वन्द्व है न यह सत्य का सुधा। अरे एक दिन पूरे सोपोर में खबर फैल गयी कि हरनाग सूख गया है और गाँव में जल का अकाल पड़ गया है। लोग पानी के लिए परेशान हैं।''

''ओह आपने हवन नहीं कराया था न?'' सुधा के मुख पर मानो उनकी ओर का घोर पश्चात्ताप-भाव आ गया।

''अरे वह बात नहीं थी।'' प्रभु ने कहा।

''आपको चाहिए था हरनाग के भट्टों पर ही यह जिम्मेदारी छोड़ देना कि हवन हो।'' सुधा बोली।

''हरनाग में पण्डित कहाँ रहते हैं? बहुत पहले भगा दिये गये हैं। उसके अगले गाँव बुमाई में हैं...पर मैं कुछ कर न पाया।''

''क्या हरनाग में कोई भट्ट नहीं?''

''नहीं।''

''लोकभवन की तरह...?''

''बिल्कुल।''

''ओ प्रभु...तभी तो...तो फिर कौन-सा पानी?''

''अरे उसी नाग का जल वहाँ के मुसलमान पीते थे...वह पीने का पानी था।'' सुधा को संग्राम का नाग याद आया जहाँ के जल के बारे काकनी ने कहा था कि 'शंकर की जटाओं' में से निकलता है। यहाँ तो शंकर स्वयं नृत्यरत विराजमान थे। शैवों को उन्होंने गाँव से खदेड़ा था, इस पर भी क्षमाशील वह उन्हें जल देते और नृत्य भी करते। वाह! सुधा ने अपना उद्‌गार अपने भीतर ही विलीन किया।

''नाग सूख गया था। क्योंकि उन्होंने वहाँ उसी नाग के तट पर बछड़े को ज़िबह किया था। एक चितकबरे बछड़े को। सारा रक्त नाग में गिरा था। बछड़े का मांस भी उन्होंने उसी नाग में धोया था...।'' प्रभु कहता जा रहा है और सुधा को कँपकँपी छूट रही है, जूड़ी लग रही है...लगभग चीखते हुए वह रो रही है...कि प्रभु प्रभु...बस चुप रहो...बस करो...। बस मुझसे सुना नहीं जाता...मैं साम्यवादी नहीं हूँ...बस करो...यह क्या-क्या होता था...यह क्या-क्या होता था...और तुमको सब कुछ मालूम था...प्रभु! सब कुछ तब भी...हे राम।''

''तो मैं क्या करता?''

''कुछ भी। शोर उठाते इस पर। इसे रोकते।''

"मैं...मैं अकेला सुधा?"

"हाँ, तुम आवाज उठाते...सब उठ खड़े हो जाते।"

"कोई नहीं उठता...कोई नहीं सुधा। तुम्हें पता होना चाहिए। एक जमात के रूप में हम कश्मीरी भट्ट कब के समाप्त हो चुके हैं...कब के। बहुत पहले के...तब के जब पण्डित नेहरू के दादा की पीढ़ी यहाँ से निकल चुकी थी...।" पण्डित स्वयं को एक जमात या समुदाय के रूप में दिखाने से कतराने लगा...लगातार हारने के कारण। हारते रहने के कारण। हमें उनका हिंसावाद, कुफ्रवाद और धर्मपरिवर्तनवाद बराबर अजगर की तरह लीलता गया सुधा। यानी जब मैं कानपुर गया एक बार तब एक साम्प्रदायिकता पर विवेचन की कोशिश करते हुए एक ब्राह्मण सुधानाथ मिश्र बोले—'भोजन और भोग इस धर्म का सर्वशक्तिमान तन्त्र है...आप सर्वाधिक स्वादिष्ट भोजन खाओ और किसी भी स्त्री को भोगो। कितनी भी स्त्रियों को भोगो...इस्लाम के इन-इन उसूलों के तहत।' कबाब ने मुझे मुसलमान बना दिया... किसी बाजारू शायर का यह हकीकी जुमला मशहूर है वहाँ। जो प्राय: मांसाहार के प्रसंग में उद्धृत होता है।"

"पर यहाँ ऐसी समस्या नहीं थी...हम तो शैव हैं...शाक्त हैं...मांसाहार हमारा प्राकृतिक आहार है...अध्यात्म में यह कहीं व्यवधान नहीं।"

"मगर वैष्णव जब स्वाद चखते हैं कबाब का...मनुष्य मूलत: मांसाहारी रहा है।"

"मगर धर्मपरिवर्तन का इससे क्या ताल्लुक है...?"

"है न...है...ज़बर्दस्त...। इनका भोगवाद लुब्ध करता है उन्हें...जो संयम नियम से उकता गये हों।"

"पर इस भोगवाद का भी अपना संयम नियम है...।"

"हाँ, है न...है...यही कि भोगवाद पर अटूट आस्था रखो और उस आस्था के नियमों पर अटूट आस्था रखो...और आस्था के औचित्य पर विचार मत करो। विचार यदि करो तो कुफ्र हो गया।"

"ओ...प्रभु...क्या हुआ उसके बाद? पानी कभी लौटा?"

"सुनो ना...यही तो विचित्र कथा है। वहाँ के मुअतबर मुसलमान सब बब के पास आये और बोले—'बब...कुछ कीजिए...हम मर जाएँगे...कुछ उपाय बताइए। हमारे बीच कुछ बेवकूफ मुसलमानों ने यह जलील और नीच काम किया। हमें बताइए क्या करें? हम तोबा करना चाहते हैं...हमें जो करना है आपके धर्म के अनुसार बताइए। शिवजी हम पर क्रुद्ध हो गये हैं।'

"इस पर बब मन्द-मन्द मुस्कराये और बोले—'अरे मुअतबरो! तब कहाँ थे तुम जब यह काण्ड उन्होंने किया। तुमने हमें गाँव से निकाला तो हमने सोचा

चलो कोई बात नहीं। तुम्हीं आबाद रहो हम जाते हैं। अब तुम्हीं उस नाग का पानी पीते थे। हम तो थे नहीं...कि तुम्हें जलन हुई थी। तुमसे यह भी नहीं सँभाला गया। तुम्हें जलन हुई स्वयं नाग से भी ईर्ष्या हुई। क्या लोग हो तुम भई?'

''खैर काफी भर्त्सना सुनने के बाद बब ने कुछ नुस्खे उन्हें बताये और बताया कि वहाँ सारे अहाते में पवित्रीकरण किया जाए। लेकिन वह काम हिन्दू स्वयंसेवक दूसरे गाँव से आकर स्वयं करेंगे...मुसलमान सिर्फ मदद जो भी उन्हें जरूरत हो, मुहैया करेंगे।

''तब जाकर चालीस दिनों के अनुष्ठान के बाद नाग में थोड़ा-थोड़ा जल लौटा। और उन्होंने भगवान शिव का शुक्राना पढ़ा...।

''हैं न शिव आशुतोष।''

''क्या पता कश्मीरी पण्डित भी शिव के इसी गुण के कारण भूल जाता हो अगले ही क्षण कि उसके साथ क्या हुआ...।''

''सुधा! क्या इतने लम्बे जीवन में कभी नेहरू को ख्याल नहीं आया होगा कि आखिर वह कश्मीरी पण्डित इलाहाबाद में क्यों है...या क्यों था...कश्मीर में क्यों नहीं हैं। क्या थीं वे बातें जिनके चलते उसे देशनिकाला मिला है...क्या थे वे कारण...कौन था वह गाँव...जहाँ उसके मूल...हैं...उसकी...धत छोड़ो।''

❑❑

जीप धीरे-धीरे आगे सरकती जा रही है और कुपवाड़ा के पुलिस थाने में रुकती है। सुमोना बड़ी ही पुलिस अफसराना चाल से या कमाण्डो चाल से जीप से धम्म से नीचे उतरती है। धूप खिली हुई है, इसलिए धूप चश्मा सलीके से आँखों पर रखती है। झटक रहे बालों को पीछे रखते हुए मानो उन बालों से कह रही हो...ऐ मेरे सुन्दर केशो! शान्ति से पीछे रहकर मुझे काम करने दो और आगे बढ़ती है। उसके साथ ही गुलशनआरा भी उतरती है, मानो पहले ही उन्हें निर्देश थे। और एक खास लय-बद्ध तेजी के साथ अन्दर घुसती है।

गाड़ी में सुधा, हुर्रत, इज़ा, गुलामा, दिलावर और सुल्तान मुहम्मद रह जाते हैं और रहता है भयावह सन्नाटा। कोई कुछ नहीं बोलता। सब भीतर गये हुओं का इन्तजार कर रहे हैं, अपने-अपने ढंग से। धूप निखरी है, पर अर्थहीन। बेहद शीतल। हवाएँ ऐसी चल रही हैं मानो सर्दी की तलवारें हों। पुलिस चौकी में खूब चहल-पहल है। लोग फिरनों के भीतर काँगड़ियाँ लिये इधर-उधर घूम रहे हैं। कुछ लोग पुलिस थाने के दरवाजे पर अवसाद-भरी प्रतीक्षा में हैं। उनमें कुछ उदास और मुरझायी चेहरों वाली युवा स्त्रियाँ भी हैं। शायद उन्हें अपने किसी प्रिय के छूटने की उम्मीद है, वह उनका बेटा भी हो सकता है और पति भी।

रोजादारी के दिन हैं। चारों तरफ आलम ऐसा है कि मानो हर एक मुसलमान रोजेदार हो।

सुधा को जोरों की भूख लगी है। सुधा को जोरों की यन्त्रणा महसूस हो रही है। सुधा का हृदय सुधा के शरीर को चीरकर बाहर निकलने को मचल रहा है।

ये लोग। ये कट्टरवाद के शिकार लोग। ये महिलाएँ। ये हसीन महिलाएँ। मैले-कुचैले फिरन पहने, मैली पूचें सिरों पर ओढ़े, समय के दुरूह अवसाद को ढोती हुई यहाँ सुस्ता रही हैं। किस असम्भव आशा में? किसी के वापस आने। मिलने की मारक उम्मीद में। उम्मीदें, आशाएँ, प्रतीक्षाएँ और अवसाद अम्बारों के अम्बार मिलते हैं हर प्रकार के युद्ध में स्त्रियों को सौगात में और स्त्रियों के पास जितने होते हैं आँसू, बहा लेती हैं उन्हें। जब आँसू समाप्त होते हैं तो स्त्रियाँ हृदय-विदारक ढंग से हँसती हैं, ऐसे कि फिर वही डायनें लगती हैं...अस्पृश्य और खौफनाक लगती हैं...पागल लगती हैं। पागल हो जाती हैं। तब थककर चूर सड़कों के मुहानों पर लेटकर धूप सेंकती हैं। कैसी धूप? यहाँ की ठण्ड-भरी धूप। ठण्ड से काट खाती धूप। फिर निर्भीक हो जाती हैं स्त्रियाँ। सिर्फ शरीर हो जाती हैं और पेट हो जाती हैं स्त्रियाँ। पता नहीं क्या-क्या सोच रही है सुधा कि 'स्त्री मिटने पर समाज मिटता है। उफ् यह युद्ध के दौरान का अपने किस्म का अलग युद्ध है।'

यहाँ जैसे हवा में तैर रहे हैं भट्टों के नाम। नाम-सुगन्ध आ रही है उसे... आकार घूम रहे हैं यहाँ की वायु में। दिख रहा है उसे। ऐसे नाम ध्वनियों और आकारों से अटी पड़ी इसी धरती के वे भट्ट जम्मू इत्यादि शहरों के राज्य दफ्तरों के चक्कर काटते हैं...कि देखिए...कोई सुनिए...हम आतंकवाद के निष्पाप शिकार हैं। राहत दे दो। एक टैण्ट दे दो ताकि हम बाल-बच्चों को उसके नीचे रखें...दे दो...कृपा करके...ताकि हम अपनी स्त्रियों की अस्मत बचा पाएँ...फलाँ...का पिता टुकड़े-टुकड़े किया गया...फिर मनाही की गयी...कि उस काफिर को कोई हाथ लगाएगा उसे भी वही हश्र देखना होगा...ओफ्फ...नाली के ऊपर एक के बेटे...पति और पिता को इसलिए एक चुप गोली से सरेआम...भीड़ भरे बाजार में बण्डल किया गया सिर्फ इसलिए कि काफिर था...हिन्दू था...हिन्दू नाम था उसका...इस तरह नाम इल्जाम हो गया।

"हाँ बेटी के साथ पहले बलात्कार हुआ, फिर शरीर के उसके टुकड़ों को वहीं ऐन पुल के नीचे ही कुपवाड़ा में गाड़ा गया। लड़की की वहाँ ड्यूटी लगी थी। उस्ताद हो गयी थी पढ़-लिख कर। मगर उस्ताद आतंकियों ने कहीं का नहीं छोड़ा...स्त्री...को...खासकर काफिर स्त्री को...ओऽऽ ऽऽऽ!" सुधा के भीतर एक विद्युत केन्द्र चल रहा है जिसकी तूफानी रौ में वह फँसती-सी जा रही है और

स्मृति में कौंधती है वह रिपोर्ट जो उसे स्मृति जाफरानी ने अपनी चाची के बकौल सुनायी थी। उसकी चाची एक नायाब चश्मदीद गवाह।

''कि वे दोनों मियाँ-बीबी वहीं शोपयान में ही हैं। गायनाकॉलजिस्ट हैं। चाची एक बार कुछ दिनों के लिए आयी थी छुट्टी। उसे आतंकवादियों से दस्तखत करानी पड़ी थी। जब गाँव से निकली, तलाशी ली गयी उसकी। जब लौट आयी तो तलाशी ली गयी। एक साथ दोनों यानी पति-पत्नी को शोपयान से बाहर आने की इजाजत नहीं। कहीं दोनों यहाँ से सब कुछ यहाँ ही छोड़कर न जाएँ। माने कि इरा चाची जाएगी तो पीछे पति में जान अटकी रहेगी वापस आएगी ही। पति को माने चाचा को तो जाने की इजाजत ही नहीं शोपयान के बाहर। तरह-तरह की तरकीबे लड़ा रहे हैं दोनों। दोनों पर सख्त पहरा है आतंकवादियों का स्थानीय लोगों के मार्फत। स्थानीय लोगों को उन दोनों की सख्त जरूरत है।''

''तब स्मृति जाफरानी ने गीली आँखों और भर्राये गले से कहा था, 'सुधा...शुक्र है इरा चाची के साथ मन, बुद्धि और जुबान अक्षुण्ण थी...जब कुछ दिनों की छुट्टी लेकर जम्मू आयी थी।'

''इरा ताई रोते हुए बोली थी, 'पूछो मत कि मैं वहाँ क्या देख रही हूँ। प्रलय...महा...महा...महा नरक...और इसके सिवा कुछ नहीं।'

''नदी में रोज एक से लेकर तीन तक गाँव से नवजात शिशु बहकर गुजरते हैं। क्योंकि कुछ स्त्रियों का गर्भपात असम्भव की स्थिति तक पहुँच चुका होता है...अत: जन्म देकर शिशु को नदी में बहा देते हैं। गर्भपात तो सैकड़ों होते रहते हैं। माता-पिता परदे में गर्भवती दुहिताओं को क्लिनिक में ले आते हैं। दुआ देते हैं...डॉक्टर साहब, खुदा तुम्हें वह दें, यह दें...क्या-क्या न दें...तुमने इज्जत रख ली, लड़की को आजाद किया। अगले कुछ महीनों में डॉक्टर देखता है कि वही माता-पिता उसी लड़की को गर्भपात के लिए फिर ले आते हैं...कि गर्भ फिर ठहर गया। 'उनका' नाश हो। फिर से 'उनका' पूरा झुण्ड आकर घर में ठहरा था। उनकी माँगों को ठुकराना तो मौत को दावत देना है...न...और उस लड़की की माँ जार-जार रो रही थी...लड़की जो पेट से थी...ठण्डी और पथरायी आँखों से देख रही थी। पिता सिर झुकाये हुए था।

''डॉक्टर को कई बार गुस्सा आता है, आप विरोध क्यों नहीं करते...इस ज़िनहकारी से तोबा क्यों नहीं करते...मुक्ति क्यों नहीं चाहते? आप गाँव में हथियार बन्द हो जाइए या फौज बुलाइए। ज्योंही उनका 'झुण्ड' आता है...त्योंही। भला यह कैसा जेहाद है...।''

''क्या सचमुच...क्या ऐसा कहा था डॉक्टर साहब ने...सच।'' स्मृति जाफरानी को विश्वास नहीं हुआ था और बलाघात के साथ चाची से पूछा था कि

कहीं वह डॉक्टर द्वारा ऐसा पूछे जाने की फन्तासी तो नहीं खेल रही...कहा स्मृति ने सुधा से...और यह भी कि चाची दरजवाब बोली, ''ओ स्मृति...हम भी बुरे फँसे हैं वहाँ...वे भी तो हमसे ज्यादा फँसे हैं न...इस आपसी रस्साकशी को जानते हुए डॉक्टर ने आगे क्या कहा वह सुनो—कि आप इस सबमें उनका साथ ही क्यों देते हैं। क्या इससे भी जन्नअत मिलती है? क्या यह भी सवाब कहलाता है...अगर हाँ तो फिर रोते ही क्यों हो...फिर इसका मतलब हुआ कि जेहाद करते हुए अपनी लड़कियों की अस्मत भी जेहादियों के हाथों लुटवाओ।''

''नहीं...नहीं डॉक्टर साहब। मगर अगर फौज को बुलाएँगे..तो फिर तो वे सिरे से ही मार डालेंगे...हम तो बुरे फँसे हैं...।''

''बुरे नहीं फँसे हो। क्या यह सब उस मौत से संगीन नहीं... ? मैं तो हैरान हूँ।''

''हाँ...हाँ मगर क्या करें?''

''कुछ तो करना पड़ेगा आपको। कुछ-न-कुछ तो चुनना ही पड़ेगा आपको। कोई चारा नहीं। कल यहाँ जम्मू से रमजान मीर आया था। कह रहा था कि जम्मू के अस्पतालों के अस्पताल भरे पड़े हैं गर्भवती लड़कियों से। जो यहाँ से चुपचाप माता-पिता या किसी विश्वास योग्य रिश्तेदार के साथ जम्मू जाकर गर्भपात कराना चाहती हैं। इसका सर्वे हुआ है। रिपोर्ट दुनिया-भर के अखबारों में आयी है। मैं उन्हें क्या बताऊँ यहाँ घरों के आँगनों में भी नवजात बच्चे दबाये जाते हैं, वितस्ता और गाँव की नदियों में बहकर जाते हैं...पाकिस्तान।''

''और फिर डॉ. ने देखा था कि उसके पास जो स्त्री अपनी दूसरी बार गर्भवती बेटी को लेकर क्लिनिक में खड़ी थी उसने रोने का नाटक बन्द किया। शायद उसमें क्रोध के बादल जमा हो रहे थे। तब डॉ. ने उसका इलाज किया। गर्भ चार माह का था। पर बच्चे को जन्म देना पड़ा। जरूर किसी अफगान का था। वह उसे पाल रही है।''

''हम बहुत दिनों तक डरे हुए थे। कि कहीं उसे ज्यादा बुरा न लगा हो और हमारी जिद्द न पाल रखी हो उन्होंने। पर अब कई महीने हो गये। अब पता नहीं किस दिन अगला गर्भ लेकर आएगी वह।

''इस तरह बेतहाशा भ्रूण-हत्याएँ हो रही हैं...नवजात शिशुओं की हत्याएँ हो रही हैं और बहुत सारे जन्म लेकर जारज समाज बना रहे हैं। आतंकवादी इस्लाम की आड़ में प्राण ले रहे हैं, भ्रूण रोप रहे हैं। विचित्र महानाटक चल रहा है प्रकृति का...ताण्डव...ताण्डव...महाताण्डव चल रहा है इसी जमीन पर।''

❑❑

सुधा फिर लौट आयी इस महाताण्डव की वर्तमान की कड़ी में जब बड़े से पुलिस थाने के द्वार से उसने सुमोना को अपना पूरा जबड़ा फैलाकर हँसते हुए तेज-तेज कदमों से जीप की तरफ आते हुए देखा। एक छलाँग की तर्ज पर जीप में कूदकर बैठ गयी। उसकी तर्ज की नकल सिर्फ गुलशनआरा ने की। अतहर बड़े-ही संयत अन्दाज में जीप में बैठ गयी।

''एस. एस. पी. साहब ने हमारे पीछे सुरक्षाकर्मियों की पूरी बस भेज दी है।'' सुमोना विजेता के अन्दाज में बोली।

सबने सुनकर जीप के पीछे देखा कि नीली और लाल रंग की रेखाओं से रेखित एक नयी बस जिसमें कुछ वर्दीधारी लोग बैठे थे धीरे-धीरे जीप के पीछे-पीछे चल रही थी। सुमोना ने सुधा को बस को पीछे से आते देखते हुए देखा और उसका अंग-विन्यास गर्व-युक्त हो उठा। जो कि सुधा ने कनखियों से भाँप लिया और अपने चेहरे को परिवर्तनहीन रखने की कोशिश के साथ फिर अपने आगे की सीध में मुड़ गयी।

''एस. एस. पी. साहब कह रहे थे कि असली खेल तो अब शुरू हो रहा है।'' सुमोना ने एक और जुमला बोला जबकि किसी ने कोई ऐसी जिज्ञासा नहीं की थी कि एस. एस. पी. साहब क्या बोल रहे थे...भविष्य के बारे में।

''और कह रहे थे कि आतंकवाद लगभग समाप्त हो रहा है...।'' फिर से सुमोना ने कहा।

सुधा भीतर-ही-भीतर आवेग का अनुभव करने लगी। प्रश्नों के आवेग का। दोनों बातों के सन्दर्भ को तय करना कठिन था हालाँकि दूसरी बात स्पष्ट थी कमोबेश।

'मगर खेल कैसा शुरू हो रहा है अब असली?' सुधा का मन हुआ कि वह यह प्रश्न पूछे। क्योंकि उसने आशा की थी कि तुरन्त कोई न कोई यह प्रश्न पूछेगा ही...पर किसी ने नहीं पूछा...अतः अब सुधा ने भी मौन का ही वरण किया।

''एस. एस. पी. साहब कह रहे थे कि गाजी बाबा यहीं रहता है, इधर त्रहगाम की पहाड़ियों में न कि वह आजाद कश्मीर भागा है, जैसा कि दूरदर्शन पर कुछ दिन पहले खबर आयी है।'' सुमोना ने पुलिस स्टेशन से जुटायी सनसनीखेज खबरों का थैला धीरे-धीरे एक-एक कर खोला। यह बात सुनते ही सुधा अच्छी तरह समझ गयी कि सुमोना इस आशय से ये सूचनात्मक (सनसनीखेज) समाचार फेंक रही है...ताकि कहीं से...विशेषकर सुधा की ओर से कोई उत्तेजक जिज्ञासा का उदय हो...और यह भी कि दर्ज किया जाए कि कितना कुछ कर सकती है वह उनके लिए। पूरी व्यवस्था में उसकी कितनी गहरी पैठ है और पैठ होने से उसकी गहरी पकड़ भी है व्यवस्थात्मक चीजों पर। सुधा ने चाहा

था पूछना कि 'क्या उन्हें गाजी बाबा के छिपने का ठिकाना भी पता है... ?' पर उसने पूछना रद्द किया। सोचकर कि सुमोना कहेगी '...हाँ...बिल्कुल...।' और बोलेगी उसे इसलिए गिरफ्तार नहीं किया जाएगा। क्योंकि उसके ये ये राजनीतिक एवं कूटनीतिक दुष्परिणाम होंगे...जो बहुत धुँधले और अग्राह्य होंगे। अस्पष्ट होंगे...सुधा के अतिरिक्त गाड़ी में अन्य सवारों के मन-मुताबिक होंगे उन्हें प्रसन्न करने वाले होंगे...आतंक को बढ़ावा देने वाले होंगे।

'वह यह सत्य बोल ही नहीं सकती 'हाँ' के बाद कि चूँकि पुलिस उससे मिली हुई है। लोग उससे मिले हुए हैं...तभी तो वह भट्टों के गाँव-का-गाँव समाप्त कर भीषण नरसंहार करने में सफल हुआ।'

❑❑

इतनी देर में सुधा को आशा थी कि गाजी बाबा की गिरफ्तारी की कामना की जिज्ञासा कोई अन्य करेगा। पर किसी ने नहीं की। सब मौन रहे। मानो यह एक बहुत सामान्य सूचना हो...और आमोखास लोग तक इस बात से बखूबी वाकिफ थे। उसको गिरफ्तार न किया जाए ऐसी तो उनकी कामना ही थी।

सुधा सोचने लगी कि अन्यों ने सोचा होगा कि सुधा जरूर आवेश में आएगी और कुछ पूछेगी इसलिए उसने कुछ न पूछकर उनकी आशाओं पर पानी फेरा। वे तो कहती हैं कि तमाम हिन्दुस्तान का दर्द सुधा के दिल में समाया है...और फिर रहा मुसलमानों का दर्द या उनकी विसंगत कामनाओं का दर्द। सारा का सारा सुमोना वहन करती है। इसलिए वह यों देखती है चीजों को जैसा कि बकौल उनके देखा जाना चाहिए।

'मुझे मेरा मन अब नहीं खोलना चाहिए।' सुधा ने खुद से कहा।

जीप आगे दौड़ रही है और उसके पीछे-पीछे आ रही है पुलिस की बस। सुधा ने बीच में सहसा अपने डेजिहोर को छू लिया।

'अब असली खेल शुरू होने वाला है। क्या है यह असली खेल?' सुधा ने स्वयं से ही यह प्रश्न पूछा।

'क्या आजादी मिलने की अन्तिम कोशिश या पाकिस्तान की पराजय की अन्तिम पारी? क्या है अन्तिम खेल?...जो भी हो। आतंकवाद समाप्त नहीं हो रहा।' उत्तर दिया उसने स्वयं को।

'बस में कुपवाड़ा के डी.एस.पी. साहब भी बैठे हैं।' सुमोना ने एक और वाक्य बोला। लेकिन ताहम सब चुप ही रहे। चुपचाप। और त्रहगाम से अगला गाँव शुरू हुआ।

❑❑

एक और आबशार आया। जीप उसमें से भी पार हो गयी। सामने दो पर्वतों के बीच में से दर्रा दिखाई दे रहा है। उसके बीच से झाँकता आकाश गहरा नीला और कुछ अभ्रखण्डों से लैस अत्यन्त मोहक लग रहा था। मानो एक महल की नीली...नक्काशीदार खिड़की हो। निर्विघ्न धूप इसमें चार चाँद लगा रही थी। शरद अपने अवसाद और आह्लाद दोनों पासों से फैला हुआ था...छोटी-छोटी पहाड़ियों से होता हुआ बड़े-बड़े हिमालयी पर्वत शृंगों तक। अभी-अभी मक्की की फसल काटी गयी है। ऐसा खेतों में रहे मूलों से पता लग रहा था। चिनार और अन्य पेड़ जितने भी पत्तोंमय थे...पीले या लालिमायुक्त पत्ते थे उनके...अतः दुनिया की यहाँ छटा ही दूसरी थी। एकदम भिन्न...मानो कोई तीसरा लोक हो।

यहीं एक चट्टान को साफ करके लिखा गया था...'चैम्पियन कम्प्यूटर्स।' यह सबने देखा। पर सुमोना ने जब देखा तो खिलखिलाकर हँस पड़ी। मानो किसी ऐसी चीज पर या स्थान पर अथवा व्यक्ति पर वह व्यंग्यबाण चला रही हो, जिसका पता उसको भी न था।

"कम्प्यूटर्स? यहाँ भी कम्प्यूटर पहुँचा है...अच्छा जी...।" सुमोना की यह बकवास सुधा को रसहीन लगी और अन्यों का इससे शायद मनोरंजन हुआ। या शायद अन्यों को सुमोना के अट्टहास में अपनी सहमति मिलानी लाजिमी थी।

गाँव शुरू हुआ था। जीप मानो एक टीले से दूसरे टीले पर छलाँग लगा रही हो। आगे दिखाई दिया कि एक छोटे से नाले को पार करते ही दाहिने से पहाड़ी के दामन में एक छोटी-सी सड़क शुरू होती है जो आगे बढ़ते हुए खुद पहाड़ी के शिखर तक दृश्य है, हो सकता है कि वह उसके आगे भी बढ़ रही हो। उस सड़क पर लोग दिखाई दे रहे थे, घूमते हुए। धूप सेंकते हुए। कुछ जगहों पर धूप में कुछ फिरनधारी और दाढ़ीवाले लोगों की टोलियाँ थीं...जो कि आपस में बतियाने में मसरूफ थे। धूप सारे गाँव के दारिद्र्य और उदासी को उज्ज्वल कर रही थी। हवा उसकी भरपूर महक गाँव के प्रवेशद्वार तक ले जा रही थी।

"यही गाँव हैं जहाँ हमें आज जाना है...?" सुधा ने हुर्रत से पूछा।

"हाँ।" हुर्रत ने उत्तर दिया।

"तो यहाँ समाप्त होता है सब...माने यह सरहद है...हद है...इसके आगे क्या है हुर्रत?"

"इसके आगे...कुछ नहीं...इस दर्रे को पार करो तो पाकिस्तान है।" हुर्रत ने समझदारी से जवाब दिया।

"तो बहुत आसान है...।"

"एक हिसाब से...।" हुर्रत ने फिर सावधानी और सच्चाई बरती।

"तो आतंकवाद का हिसाब-किताब...माने आमोदरफ्त इसी दर्रे से बखूबी

हुआ होगा?''

''हुआ होगा क्या? हुआ है। हो रहा है...इस गाँव में कोई मर्द नहीं बचा है। सिर्फ औरतें। बूढ़ी औरतें, जवान औरतें, अधेड़ औरतें, कुँवारी औरतें, छोटी लड़कियाँ...बीमार लड़कियाँ...बीमार औरतें। और बस कुछ भी नहीं।'' सुनते-सुनते सुधा के भीतर जैसे कोई अनियन्त्रणीय भूचाल उठ रहा है।

''इसका नाम हुर्रत...?'' मानो सुधा बड़ी मुश्किल से बोल पा रही हो।

''मीड़ापुर...?''

''मीड़ापुर...! ओह...अच्छा। ठीक।''

❑❑

जीप को देखते ही वहाँ खलबली-सी मच गयी। टोलियों में बैठे लोग अपने-अपने फिरन झाड़कर खड़े हुए और धीरे-धीरे आगे आने लगे।

''लेकिन ये कौन मर्द हैं हुर्रत...?'' सुधा ने पूछा।

''हम मीड़ापुर में नहीं हैं...हमीदपुर में हैं। मीड़ापुर तक सड़क नहीं। मीड़ापुर वह रहा। पर्वत की चोटी पर दिख रहे हैं न ये झोंपड़े। यही है मीड़ापुर। वहाँ कोई पुरुष नहीं बचा है किसी भी घर में।''

''मतलब...?''

''मतलब कि आतंकवाद में सब-के-सब मारे गये।''

''यानी...यानी कि आतंकवादी होकर न...?'' सुधा ने पूछा।

''अब क्या पता? कहते हैं कि भारतीय फौज ने चुन-चुन कर मार डाला एक एक को।''

''पर ऐसा क्यों करेगी भारतीय फौज? मैंने तो सुना कि इस गाँव का एक-एक पुरुष आतंकवादी हो गया...और जिस किसी ने भी आतंक फैलाने के लिए बन्दूक उठायी वह उसका शिकार स्वयं भी एक-न-एक दिन हुआ...यह तो निश्चित है।''

वास्तव में सुधा को मीड़ापुर के बारे में कुछ खास जानकारी नहीं थी...पर उसके जुगराफियाई हालात ऐसे थे कि उस गाँव का ऐसा हश्र क्यों हुआ, आसानी से समझा जा सकता था। सुधा को कुछ बैठकों में पता चला था कि यह पूरा गाँव आतंकवाद की भेंट चढ़ गया है। और वहाँ मर्द नाम का एक भी व्यक्ति नहीं बचा है। जो औरतें वहाँ शेष बची हैं, वे कैसे जीवनयापन कर रही हैं यह सबके लिए प्रश्न था। किसी को कुछ पता नहीं था कि क्या है उन स्त्रियों का जरिया आमद।

जीप ज्यों-त्यों आगे बढ़ती गयी। विचित्र चित्र खुलने लगे। सड़क के किनारों पर अपने ऊपर गन्दे, फटे, कुचैले शॉल ओढ़े। कुछ के पैरों में फंटे प्लास्टिक के

बूट और कुछ नंगे पैरों स्त्रियाँ सोयी थीं। पंक्तिबद्ध। एक से सटी दूसरी। जीप की आवाज सुनकर और वातावरण में मर्दों की आवाज का शोर सुनकर उन्होंने अपनी-अपनी निद्रा तोड़ी। पता नहीं वे सोयी थीं या यों ही मुँह छुपाकर लेटी थीं। पता नहीं वे सूर्य की किरणें अपने ऊपर लेकर उन्हें पी रही थीं और जीप में कुछ स्त्रियों को आना है...इसकी सूचना उन्हें होने के कारण 'उनका' तीव्र इन्तजार कर रही थीं।

वे अन्त तक जितनी भी थीं, सब-की-सब उठ खड़ी हुईं और कुछ हँस दीं। कुछ ने आपस में आँख मारी और देखने लगीं कि जीप कहाँ रुकती है। सबके इकट्ठा होने के बाद समझ में आया कि उनकी संख्या लगभग साठ-पैंसठ के करीब रही होगी।

❑❑

एक गूँगी महिला ने सुमोना के जीप से उतरते ही उस पर झपट्टा मारा और उसे कसकर अपने साथ सटा लिया। सुमोना संकट में फँस गयी। स्त्री बेहद गन्दी, मैली-कुचैली थी। बहुत दुर्गन्ध उसके शरीर से आ रही थी। उसके बालों से आ रही थी। लगता था मानो आतंकवाद की शुरुआत के बाद से उसने न कपड़े बदले हैं, न बाल बनाये हैं और न ही नहायी है। ठीक तब से ही वह इस सड़क के मुहाने पर सोती उठती जीप में आने वाले लोगों का इन्तजार कर रही है। उसमें सही व्यक्ति को पहचानकर उस पर आलिंगन के लिए झपट्टा मारकर उसको अपना पूरा परिचय देने का मानो उसे बहुत अभ्यास था। सुमोना ने जब उसको स्वयं से बड़ी-मुश्किल से अंगुल-भर दूर किया और हँसकर अभिवादन-सा किया तब एक क्षणांश में गूँगी औरत ने अपनी छातियों में हाथ डाला और झट से एक फोटो निकाली और सुमोना के हाथ में दी। फिर अपनी छातियों के निप्पल दबाने का इंगित करने लगी।

"कहती है बेटा है...जिसे इन छातियों का दूध पिलाया।"

फिर वह बन्दूक लेकर, मारकर, मरकर ढेर होने का अभिनय कर गयी। इस प्रकार वह अपनी हृदयविदारक कथा कह गयी और सुमोना के रँगे हुए रेशमी बालों पर हाथ फेरती रही। उसकी आँखें वह खौफनाक रेगिस्तान थीं कि जिनमें देखने का काफी साहस जुटाना पड़ता था देखनेवाले को।

"देखा...समझ गयी...देखा। कहती है कि बन्दूक की गोली से बेटे को मारा गया।" आमीना ने बड़ी-सी आवाज करके खासकर सुधा को सम्बोधित करते हुए कहा।

"हाँ...हाँ...हम आप सबकी बातें सुनेंगी। आप घबराइए नहीं...चलिए...

चलिए...।'' इस तरह एक पूरा जुलूस बन गया। और उसी तरफ चला गया जहाँ सुमोना कदम बढ़ा रही थी। सामने की पहाड़ की तलहटी पर एक घाटी-नुमा जगह है जहाँ एक प्राइमरी स्कूल दिख रहा है। उसी प्राइमरी स्कूल के सामने अहाता है जहाँ कुर्सियों का अर्धवृत्त उस तरफ मुँह किये है जहाँ से दिख रहा है कि सड़क से मीड़ापुर की तरफ हमीदपुर से होते हुए कौन आ रहा है। चार-पाँच लोग कुर्सियों पर बैठे हैं और कुछ कुर्सियाँ खाली हैं। जाहिर है कि उन पर बैठे लोग इधर-उधर घूमते हुए वास्तव में जीप में पधारी इन स्त्रियों के झुण्ड का इन्तजार सकौतुक कर रहे हैं।

घाटी के प्रारम्भिक बिन्दु पर खड़ा दिलावर मीर सुमोना को देख रहा है कि यहाँ, इधर इस नुक्ते पर आना है। यहाँ उसने लोगों के उससे मिलने का इन्तजाम कर रखा है। सभी स्त्रियाँ पीछे-पीछे आ रही थीं। गूँगी स्त्री को बाकी स्त्रियाँ पीछे-पीछे धकियाकर खुद आगे आकर सुमोना के सामने अपना दर्द प्रस्तुत करने की इच्छा रखते हुए, उससे कुछ राहत एवज में प्राप्त करने की आशा कर रही थीं। स्त्रियों में भयंकर धक्का-मुक्की और भयावह गाली-गलौज तक शुरू हुआ था। वास्तव में वे सब एक-दूसरे से असुरक्षित महसूस कर रही थीं और हर एक को भय यही था कि कोई स्त्री किसी स्त्री से आगे निकलकर अपना स्वार्थ न साधे और दूसरी को पीछे धकेलकर किसी किस्म के राहत से वंचित न कर दे।

दो-एक स्त्रियाँ अवसाद-युक्त चेहरे के साथ तटस्थ भाव से झुण्ड से जरा-सा दूर मगर अगल-बगल चल रही थीं। इन गालियों को समझने वालों के रोंगटे खड़े हो रहे थे।

❑❑

अब उन कुर्सियों की एक कुर्सी पर बैठा एक मुअतबर-सा व्यक्ति दिलावर मीर की बगल में खड़ा हो गया और ''आइए...आइए...आइए'' कहते हुए हाथ से कुर्सियों की तरफ रास्ता दिखाते हुए बोलने लगा, ''बैठिए...बैठिए...बैठिए...आपको देर हो गयी। औरतें बेचारी कब से आकर आपका इन्तजार कर रही हैं...ठीक सुबह के दस बजे से। अब चार बजने वाले हैं...'' और वह भी कुर्सियों की तरफ आने लगा।

उसका डीलडौल किसी खाते-पीते हाजी का-सा था और झट से अन्दाज लगाया जा सकता था कि इसके प्रभुत्व में ही मीड़ापुर की विधवाएँ जी रही होंगी। और सफेद दाढ़ीवाला वह हाजीनुमा व्यक्ति उस प्राइमरी स्कूल का हैडमास्टर भी था।

सुधा ने एक आश्चर्यजनक बात नोट की कि पीछे सुरक्षा के लिए आयी

हुई पुलिस की बस खासी दूरी पर रुक गयी थी और पुलिस-कर्मी उसी में बैठे रहे थे, नीचे नहीं आये। शायद यही उनके लिए निर्दिष्ट रहा होगा।

दल की सभी स्त्रियाँ सुमोना की ओर देख रही थीं और सुमोना दिलावर मीर को अपनी किंकर्तव्यविमूढ़ता व्यक्त करना चाहती थी।

मीड़ापुर की सभी विधवाएँ, यतीम बच्चियाँ देख रही थीं कि आये हुए स्त्रियों के दल को कसकर कैसे घेरे रखा जाए ताकि उनमें से कोई भी अपने लिए कुछ भी प्राप्त करने से वंचित न रह जाए। 'यह...भयावह दृश्य है...भयावह स्थिति है...हे प्रकृति... ।' सुधा का मौन चीत्कार था। ऐसे कितने ही दिलदोज आत्मालाप उसके हृदय से खून के फव्वारों की तरह फूट रहे थे।

''गनीमत है कि यह जगह ठण्डी है वर्ना अगर गर्म इलाका होता तो इनके शरीरों से क्या बास आ रही होती... ।'' इज़ा ने हौले से सुधा से कहा।

सुधा देख रही थी कि सुमोना बाल झटकाते हुए, धूप चश्मा सिर के ऊपर चढ़ाये हुए इधर-उधर देख रही थी मानो कोई निर्णय न ले पाने के दारुण संक्रमण से गुजर रही हो। होठ उसके कुछ शब्द बोलने की इच्छा से फड़फड़ा-से रहे थे। इसी बीच अमीना, गुलशनआरा, हुर्रत और इज़ा आदि ने अपने-अपने राइटिंग पैड्स खोलकर लिखने की तैयारी की ही थीं और एक आध तो कुर्सियों पर भी बैठ गयी थीं।

सबसे पहले अमीना ने कुर्सी पर बैठकर लिखना शुरू किया। पता नहीं क्या। सारी की सारी विधवाएँ उसके सामने ऐसे बैठ गयीं मानो अच्छी लड़कियों की क्लास हो। धीरे-धीरे वे बोलने लगीं अपनी-अपनी व्यथा...और उनका भीतरी तुमुल बाहर फैलने लगा।

''पन्द्रह हजार रुपये देकर मेरे खाविन्द को उकसाया गया। उसने बन्दूक पकड़ी। आतंकवादी बन गया। दो फौजियों और कुपवाड़ा के एक पण्डित को मार डाला। फिर खुद भी मर गया।'' खदीजा बोली और बोलते-बोलते अवान्तर रूप से हँसती भी रही। 'मर गया' कहते हुए उसने एक विरूप और कद्रे ऊँची आवाज करती हँसी निकाली। मानो कह रही हो कि देखो तो रोने की बात है...मगर रोये क्या अब...अब हँस ही देती हूँ...क्योंकि जो होना था, हो चुका है।

''मुझे क्या पता था कि उसने पन्द्रह हजार में अपनी जान का सौदा किया है। पन्द्रह हजार। हमारे लिए बहुत बड़ी रकम। हमने उन दिनों खाया...पिया...पेट भर...मौज किया...फिर पता चला कि उसने बन्दूक उठायी थी और एनकाउण्टर में मारा गया। लाश भी नहीं दी पुलिस ने। खुद दफनाया।''

''क्यों?''

''पुलिस की मर्ज़ी।''

"बच्चे हैं...?"

"हाँ...पाँच लड़कियाँ...।"

"पाँच लड़कियाँ...? शादी हो गयी किसी की...?"

"नहीं, किसी की नहीं...। खाने को कुछ नहीं है...शादी क्या करूँगी...किससे करूँगी। हमारी बेटियों से कोई भी रिश्ता करने को तैयार नहीं। ये रहीं मेरी तीन बेटियाँ यहीं हैं...।"

"अच्छा...बाकी दो कहाँ हैं...?"

"वे ऊपर अपने झोंपड़े में काम कर रही हैं...।"

"क्या काम?"

"यही कुछ मिल जाए तो चौका चूल्हा थोड़ी-सी मक्की की फसल हुई है।"

"फिर क्या करते हो...?"

"देते हैं कुछ दानी...अच्छे लोग...ये मास्टर जी...।" उसने उस सफेद दाढ़ी वाले हाजीनुमा हैडमास्टर की ओर इशारा किया...फिर बोली, "ये कुछ-न-कुछ व्यवस्था कर देते...हर किसी के लिए...फाके भी करने पड़ते हैं...।"

"सरकार कुछ राहत देती है?"

"नहीं, सरकार नहीं देती...अलबत्ता हिज़बुलमुजाहिदीन देती थी। मेरा घरवाला भी उसी गुट का आतंकवादी था। चूँकि वह उनके लिए शहीद हुआ...फिर वे पन्द्रह-पन्द्रह सौ महीना-भर के लिए देते थे...अब तीन साल से वह बन्द हुआ। कुछ भी नहीं देते वे लोग...कहते हैं वे लोग भी मारे गये जो ये पैसे देते थे। कुछ कहते हैं कि पाकिस्तान से पैसा आता ही नहीं अब। मैं दिल्ली भी गयी थी।"

"अच्छा दिल्ली भी गयी थी...?" अमीना ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"अच्छा दिल्ली में किसके पास गयी थीं?"

"गयी थी सोनिया गाँधी से मिलने। उसने पाँच सौ रुपये दिये और वापस भेजा। फिर वादा किया कि हमारे पास वह सिलाई की मशीनें भेजेंगी और सिलाई सिखाने के लिए मास्टरनी भी भेजेंगी। मगर तबसे डेढ़ साल बीत गया। न मशीनें ही आयीं, न मास्टरनी ही...।"

"तुम किसके साथ गयी थी...?"

"मैं उस मास्टर जी के साथ गयी थी। उन्होंने ही यह सवाब किया था। मगर कामयाबी कम ही मिली...।" खदीजा बोली थी। उसके पास रटे-रटाये तैयार उत्तर थे मानो वह वे सारी बातें बताने की अभ्यस्त हो गयी हो। और आतंकवादजन्य शब्दावली अब उसने घोल बनाकर पी ली हो। वह उन सबमें से थोड़ी-सी साफ-सुथरी मगर सुन्दर थी। जबर्दस्त धक्कामुक्की और उनकी आपसी ईर्ष्या के जागरण का क्षण आ गया। वे सब अपनी वैयक्तिक बातें ही आगन्तुक स्त्रियों को सुनाना

चाहती थीं। वे समूह में तबाह होकर वैयक्तिक में सुरक्षा पाने में विश्वास रखने लगी थीं। उन्हें लग रहा था कि जिसे बोलना आता है वही तकलीफों को ठीक से भुना पाएगा और जिसको बोलना नहीं आएगा, जो बोलने के लिए धक्कामुक्की या कुछ भी करके आगे नहीं आ पाएगी, जो इज़ा के उस पैड पर अपना नाम नहीं लिखवा पाएगी वह किसी भी राहत से वंचित हो जाएगी।

''आपको आतंकवादी संगठनों से कुछ राहत मिलती है... ?''

''मिलती थी, अब बन्द हो गयी।''

''कब से बन्द है ?''

''अब तीन साल हो गये...यह रही कॉपी। तीन वर्षों से इस पर किसी ने कोई राहत नहीं दी।''

गुलशनआरा ने कॉपी हाथ में ली। इस पर जे.के.एल.एफ. का चिह्न बना और खाने बने हैं। इन खानों में नाम, वल्दियत, रकम इत्यादि दर्ज है। अदायगी दर्ज है और बाकायदा पावती पर दस्तखत है। मगर अठानवे के बाद से कॉपी पर कुछ भी दर्ज नहीं।

''हाँ रखो।'' कॉपी देखकर गुलशनआरा लौटाती है।

''नहीं, आप कॉपी की बात दर्ज करो। उस मेम सोनिया साहब को भी बताओ, कॉपी दिखाओ।'' वह सुमोना के लिए बोल रही थी, जिसने धूप के चश्मे के रंग का शॉल सिर के ऊपर से ओढ़ लिया था और कुछ बालों की लटें तब भी उसके कपोलों पर लहरा रही थीं। गुलशनआरा के पास ही खड़ी सुधा ने भी देखा कि सुमोना पहाड़ के उस पार से इस पार स्त्रियों के पास आ-जा रही थी। तब सुधा और गुलशनआरा के बीच खड़ी होकर उसने कहा, ''इन स्त्रियों से मर्दों से दूर ले जाकर बात करनी चाहिए। लगता नहीं है क्या कि इन्हें समझाया गया है कि इन्हें क्या डायलॉग बोलने हैं ? इस मास्टर का, यानी हैडमास्टर का प्रभुत्व तो यहाँ साफ-साफ दिख ही रहा है। ये ही लोग इन्हें अपने घरों से नीचे हमीदपुर ले आये हैं, वर्ना मीड़ापुर, जहाँ हमें जाना है, जहाँ की ये हैं वास्तव में ऊपर हैं, हमें असल में वहाँ ही जाना चाहिए था।''

''तो क्यों हमने वैसा किया नहीं... ?'' सुधा ने पूछा।

''क्या करते... ? मैं इस बीहड़ जगह आने से डर रही थी, तभी तो दिलावर मीर और सुल्तान मुहम्मद से मुझे मिलना पड़ा, उन्हीं के पासपोर्ट के साथ हम यहाँ तक आ पाये। कुपवाड़ा का एस.एस.पी. यही तो बता रहा था और बहुत मना कर रहा था इस जगह पर आने के लिए।''

''तब हमें उन्हीं की शर्तें मानने के अलावा कोई चारा भी नहीं।''

''सो तो है...।'' कहते हुए सुधा देख रही थी कि सुमोना का चेहरा प्रभुत्व

और संकल्प के सन्दर्भ में कहीं ढीला होता जा रहा था और समझौतों पर उतरता जा रहा था।

"कमाल है...हम विधवाओं से मिलने आयी हैं पर यहाँ दूसरे गाँव के पुरुषों की भरमार है। इससे क्या समझती हो तुम?" हुर्रत बोली जो भीड़ के एक छोर पर इज़ा को विधवाओं से पूछते हुए उनके उत्तर सुनते हुए अपने-अपने पैडों पर कुछ लिखते हुए देख रही थी। शायद उसे सब कुछ बेमानी और बकवास लग रहा था और जैसे सुमोना का सारा नशा-चूर था उसी तरह उसके भीतर भी नशा चूर को मान्यता देने की ईमानदारी भर उठी थी।

एक युवक ने आकर संयत आवाज में कहा, "मैडम, आप सब अन्दर आइए और एक कप चाय लीजिए।"

"हम तो रोजदार हैं भई...।" हुर्रत ने जवाब दिया और फिर एक ठहराव के बाद पूछा, "तुम रोजदार नहीं हो क्या?"

"हाँ...मगर मास्टर साहब ने कहा था कि दल में कुछ हिन्दू हैं, हमने व्यवस्था उनके लिए की।"

"चलिए, मैं चाय लेती हूँ...।" सुधा ने कहते हुए तुरन्त कदम बढ़ाया और युवक मास्टर भी उसके संग हो लिया।

चाय लेते हुए उसने देखा कि बिस्कुट की व्यवस्था भी की गयी थी...और इस सुदूर तथाकथित पाकिस्तान के प्रवेशद्वार पर लोगों ने यह हौसला दिखाया था जो हुर्रत को बुरा लगा था और सुधा को अच्छा। इस क्रिया ने एक द्वन्द्व में...एक प्रश्न में छोड़ दिया था उनको।

'हैडमास्टर चतुर व्यक्ति होना चाहिए...कूटनीति का ज्ञाता भी।' सुधा ने स्वयं से कहा।

"आपको पूर्व सूचना थी कि हम आ रहे हैं..." सुधा ने पूछा।

"हाँ, बहुत पहले ही...। पर आगमन की निश्चित तिथि का पता सिर्फ परसों लगा।"

"अच्छा...। यह अच्छी बात है...।"

"हमें आपको देखकर बहुत अच्छा लगा।" उस युवक मास्टर ने कहा जिसके साथ वहाँ दो और युवक मास्टर भी आकर कुर्सियों पर बैठ गये थे।

"क्यों?"

"क्योंकि...पता नहीं...क्योंकि...आप कश्मीरी बोलती हैं...समझती हैं...और आप ही सबसे ज्यादा हमारी परेशानी समझ सकती हैं...।"

"बस सिर्फ इस कारण आप खुश हुए मुझे देखकर...।"

"नहीं कारण और भी हैं...ऐसी बात नहीं...मतलब...।"

सुधा भाँप गयी कि वे तीनों स्थानीय संवेदनशीलता से लैस थे और एक-दूसरे की समझ और अभिव्यक्ति के मुहावरे के ज्ञान से सम्पन्न भी।

''हाँ...हाँ...।''

''जैसे देखिए...आपने भी तकलीफें उठायीं...।'' सुधा हँस दी।

''अरे उठायीं नहीं...उठा रहे हैं...। आप यहाँ कहाँ रहती थीं?''

''हूँ...हर मुसलमान हर भट्ट से पहले यही सवाल पूछता है। चाहे जहाँ भी मिले। जम्मू में, दिल्ली में, बाजार में, ट्रेन में, जहाज में...जहाँ भी...पूछता है...जी आप कहाँ रहते थे वादी में...पता नहीं यही पहला प्रश्न क्यों होता है...?''

''हाँ...हो सकता है इसलिए...कि...शायद...या क्या पता...क्यों...किसलिए...।''

''हाँ...हाँ...किसलिए...बोलिए न...?''

''हाँ, अब क्या पता...''

''नहीं, आप बताइए...खैर यह प्राइमरी स्कूल कब बना यहाँ...?''

''यह अठानवे में बना।''

''किसने बनवाया...?''

''सरकार ने...और तभी हमारी नियुक्ति भी हुई यहाँ...।''

''यह अच्छा हुआ। आपको रोज़गार भी मिल गया। यह कदम सरकार को बहुत पहले उठाना चाहिए था।''

''हमने अपनी पढ़ाई कुपवाड़ा में की है और फिर कॉलेज की तालीम लेने सोपोर जाना पड़ता था। अब कुपवाड़ा में कॉलेज हैं। कम-से-कम हाईस्कूल की पढ़ाई अपने ही गाँव में कर सकते हैं बच्चे।''

''यह बहुत ठीक है...मगर आप एक पहल क्यों नहीं करते। इन विधवाओं में कुछ विधवाएँ बेहद छोटी उम्र की विधवाएँ हैं, उनके छाटे-छोटे बच्चे भी हैं। इन्हें पढ़ाइए न। वालण्टियर कीजिए खुद को इस नेक काम के लिए। हम पीछे से आपके साथ हैं ही।''

''सही कहती हैं आप, मगर न ये पढ़ेंगी, न ही अपने बच्चों को पढ़ने के लिए ही भेजेंगी।''

''क्यों?''

''नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। हम अगर इनके बीच जाकर इनकी चेतना जगाने की ईमानदार कोशिश करेंगे तो जरूर ये मानेंगी। इनका उद्धार हो सकता है।'' सुधा के प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व ही दूसरा मास्टर जिसका नाम गुलज़ार अहमद था बोला।

''तो हमें ऐसा करना चाहिए। मैं सुमोना से बात करती हूँ अभी...सुमोना...वह

औरत...गुलज़ार अहमद...वह जिसने शॉल सिर के ऊपर से ओढ़ा है, जिसके हाथ में कैमरा है और आँखों पर काला चश्मा। यही हमारी नेता है। इससे हम इत्मीनान से बात कर सकते हैं। यहाँ की युवा विधवाओं और छोटी बच्चियों के लिए एक शिक्षा कार्य-क्रम चला सकते हैं।'' यह निर्णय लेकर वे सब उस्ताद सुधा के साथ बाहर आये और सुमोना ने झट से बहुत हँसते हुए चेहरे से सुधा से पूछा, ''क्या बातचीत हुई?''

''बातचीत क्या हुई...मेरी और इनकी राय में शिक्षा बेहद जरूरी है यहाँ। शिक्षा इन कम उम्र विधवाओं को भी दी जा सकती है और इनके बच्चों को भी। शिक्षा से ही इन्हें अपना दुःख, अपनी दशा, संसार में अपना स्थान समझ आएगा। सुमोना...क्योंकि...।'' कहते हुए सुधा अचानक चुप हो उठी, क्योंकि उसे लगा कि उसकी बात काटकर सुमोना कुछ स्वयं बोलने को आतुर है, मगर सुमोना ने देखा कि ईर्द-गिर्द की भीड़ जिसमें सिर्फ पुरुष ही थे और छोटे-छोटे लड़के एकटक सुधा की ओर देख रहे थे, यानी तन्मयता से उसकी बात सुनना चाहते थे...तो सुमोना ने क्षणांश में निर्णय ले लिया सुधा को बोलने देने का...''हाँ...हाँ तुम बोलो...'' कहकर।

''बस सुमोना! मैंने बात पूरी कर ली। कहना यह था कि जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है जब हमें अपना दुःख समझ में ही नहीं आता...एक बार उसकी थाह लगे...पता लगे तो मनुष्य उसके खिलाफ जेहाद छेड़ सकता है।''

''हाँ...हाँ...यह पढ़ाने का बीड़ा उठाएगा कौन?''

''क्यों यह गुलज़ार अहमद जैसे नवयुवक हमारे पास यहाँ मौजूद हैं...बाहर से कौन आएगा? सुमोना...अपने भीतर में से ही रोशनी मिलेगी...अप्पदीपो भव...है न...?''

सुधा यह कहते हुए सुमोना की भावभंगिमा की भी बराबर पड़ताल करती जा रही थी कि सुमोना के मन में वास्तव में क्या भाव है।

''तुम्हारी इनसे क्या बात हुई...?'' सुमोना ने सुधा को एक तरफ ले जाते हुए पूछा।

''कुछ नहीं। शिक्षा पर ही बात हुई। शिक्षा की ही जरूरत पर।'' सुधा ने उत्तर दिया।

''तुमने पूछा नहीं कि क्या शिक्षा के फैलाव से आतंकवाद का अन्त होगा?''

''सुमोना! यह पूछना मेरे ख्याल से संवेदनशीलता और अक्लमन्दी के विरुद्ध होगा। क्या अनपढ़ों ने आतंकवाद लाया?...अगर यह राय है तुम्हारी...तो...।''

''नहीं...नहीं...मगर अनपढ़ बेचारे शिकार हुए।''

''हाँ तो शिकार हुए न...पढ़ेंगे-लिखेंगे तो शिकार होना भी बन्द होंगे। है

न? बाकी आतंकवाद का खात्मा करने के लिए शिकारी का खात्मा करो। वह अच्छा-खासा, खाता-पीता, धनी वर्ग है...उसके पीछे समूचा देश है...उस देश के पीछे देशों का एक समूह है। शिकार ही शिकारी की पहचान करके उसको नेस्तनाबूद कर सकता है...।''

सुमोना मौन थी कुछ क्षण। शायद कुछ सोच रही थी। क्या सोच रही थी इस का अन्दाज या अटकल सुधा नहीं लगा सकी।

''यहाँ बहुत लोगों की तंजीमें आती हैं मगर कोई ठोस काम किसी ने नहीं किया। आश्वासन देते हैं, राय देते हैं, तोबा, तोबा करते हैं और हाथ हिलाकर अपनी दुनिया को लौट जाते हैं। शायद हाथ हिलाते हुए कसम भी खाते हैं, मन-ही-मन कि अब इस बीहड़ जहन्नुम की तरफ कभी रुख नहीं करेंगे। मुझे पूरा यकीन है मैडम कि आप भी जो इस समय जरूर लगता है कि कोई तीर मार लेंगी, मगर आखिरकार कुछ भी नहीं करेंगी चाहो तो मुझसे स्टाम्प पेपर पर लिखवा लो।'' सुमोना सुनते हुए मुस्कुरा रही थी और सुधा अविचल बस सुन रही थी।

''क्या आपको लग रहा है कि आतंकवाद में अब कुछ फर्क पड़ गया है... ?'' सुधा ने गुलज़ार अहमद से यह जानना चाहा जिसने कि अभी-अभी उनके पूरे ग्रुप पर सन्दिग्ध ईमानदारी का आरोप लगाया था।

''नहीं। जरा भी नहीं। उल्टे बढ़ गया है। बढ़ गया है आतंकवाद। कम नहीं हुआ है।''

''बढ़ क्यों गया है?''

''बेरोजगारी मैडम...। बेरोजगारी इसका सबसे बड़ा कारण है। बेरोजगारी ने हर युवक को बन्दूक उठाने पर मजबूर किया है।''

''क्यों अगर तुम्हें यहाँ मास्टर न बनाया गया होता तो तुमने भी बन्दूक उठायी होती...। यही मानना है तुम्हारा... ?''

''हाँ, क्यों नहीं...हम सबने बन्दूक उठायी होती...एक मैंने ही क्यों?''

''मगर हम कश्मीरी पण्डित भी तो बेरोज़गारी के मारे हैं पर बन्दूक की शरण में नहीं गये। यह क्या दलील हुई। इसे तो मैं नहीं मानती।''

''नहीं! नहीं! मानना पड़ेगा...जिसको नौकरी नहीं मिलेगी...वह बन्दूक उठा ही लेगा और उसके पास दूसरा कोई चारा भी क्या बचा है।''

''मगर पण्डित बेरोजगार के पास यह कोई विकल्प ही नहीं। वह बन्दूक नहीं उठाता। यह तो बहाना है। ब्लैकमेलिंग है। सबसे कम नौकरियाँ पण्डित युवकों को मिलती हैं जबकि वे सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे और लायक हैं। शेख अब्दुल्ला के आने के बाद भेदभाव इतना अधिक बढ़ गया कि राज्य सरकार में पण्डित की नियुक्ति होती ही नहीं कहीं। इंजीनियरिंग की सीटें उन्हें नहीं मिलतीं।

डॉक्टरी की सीट मिलना तो खैर कोई ख्वाब में भी नहीं सोच सकता। मगर किसी ने उफ् तक न की। बन्दूक नहीं उठायी। मारकाट नहीं मचायी। शिकवा भी न किया। शिकायत भी न की। फिर पण्डितों की संख्या भी कितनी कम है। अब जब से वनवास झेल रहे हैं पण्डित तब से तो आपकी चाँदी ही चाँदी हो गयी। हमारे पदों पर...यदि कहीं कोई नियुक्त था भी, आपकी पुनः नियुक्ति हुई। पण्डित बेचारा दोहरा मारा गया। पर आप लोगों का पेट नहीं भरा।

"मुख्यमन्त्री कहता है कि मैं पण्डितों को नौकरियाँ दूँगा, बशर्ते कि वह कश्मीर लौट आएँ। कितनी अहमकाना बात है गुलज़ार। मज़े ले रहा है मुख्यमन्त्री हमारे...चिढ़ाता है हमें...कहता है ज़िबहखाने में घुस जाओ, तब खाना दूँगा। मुख्यमन्त्री जानता है कि न पण्डित ज़िबहखाने में घुसेगा, न ही उसे उसको नौकरी देनी पड़ेगी, और न ही दुनिया यह कहेगी कि वह पण्डितों को नौकरियाँ नहीं देता।

"मगर ये बोलियाँ समझने वाले भी हैं मौजूद। जम्मू के बाहर जो ये बोलियाँ नहीं समझते हैं, माशा अल्लाह हम खूब मेहनत और कोशिश करके उन्हें ये बोलियाँ समझाते हैं। मगर इसका मतलब यह नहीं कि बेरोजगार नौजवान बन्दूक उठाएँगे। आतंक फैलाएँगे, हिंसा फैलाएँगे...नहीं...कतई नहीं। बेरोजगार पण्डित पढ़ाते हैं। बच्चों को पढ़ाते हैं। गैर-सरकारी स्कूलों में मामूली-सी तनख्वाहों पर काम करते हैं। मगर हिंसा का विचार नहीं आता उन्हें।

"मुसलमानों को भी इस तरह की भाषा त्याग देनी चाहिए। क्योंकि बन्दूक से आखिरकार जिन्दगी का खात्मा होता है...बन्दूक उठाने वाले की जिन्दगी का खात्मा। है न? करते हो न इत्तफाक मेरी बात के साथ?" सुधा ने बात समाप्त करते हुए पाया कि गुलज़ार अहमद का चेहरा लाल-पीला-सा नजर आ रहा है उसे। मगर गुलज़ार अहमद का मुँह बन्द भी हो गया था। उसे शायद सूझ ही नहीं रहा था कुछ कि उसे क्या बोलना चाहिए इन बातों के उत्तर में।

"इस गाँव में आतंकवादी हैं?"

"हाँ, हैं...मेरा मतलब है होंगे...।"

"होंगे...? आपको पता नहीं है कि कौन-कौन है आतंकवादी आपके गाँव में।"

"हाँ...हाँ...बिल्कुल। कुछ नहीं कहा जा सकता कि कौन आतंकवादी है। क्या पता मैडम आपके इर्द-गिर्द ये जितने भी लोग हैं इनमें से कौन आतंकवादी है...कुछ नहीं कहा जा सकता।" गुलज़ार के साथ अन्य युवा-उस्ताद भी एक ही भाषा साथ-साथ बोले।

"क्या आप मुझे डरा रहे हैं...?" यह सुनकर वे सब सकते में आ गये और

एकबारगी बोले—"नहीं...नहीं...मैडम...वल्लाह नहीं। आपकी कसम, नहीं। मगर यह सच है। आप तो हमारी मुअज़िज़ मेहमान हैं, हम-शीर हैं। आपको भला डराकर हमें क्या मिलेगा। आप खुद मुसीबत में हैं तब भी हमारे लिए काम कर रही हैं। आप में हमारे लिए गुस्सा होना चाहिए था मगर आप इतनी नेकदिल हैं...फिर क्यों न हों...आखिर आप भट्टिनी हो...आपको कौन डरा सकता है...आप इतनी निडर हैं...वर्ना यहाँ तक आने की हिम्मत ही क्यों करतीं आप...?"

"तो बस फिर ठीक है। तब हम मिलकर इल्म फैलाएँगे। इल्मवाद जो आतंकवाद की जगह लेगा। गुलज़ार अहमद, आप लोग मिलकर इस योजना पर सोचो और हमें बताओ।" कहते हुए सुधा ने वृत्त तोड़कर बाहर निकलने की कोशिश की ताकि वह शेष लोगों तथा विधवाओं से फिर बात कर सके।

❑❑

वृत्त से निकलते ही स्त्रियों ने एक वृत्त उसके इर्द-गिर्द बना लिया। उन्हें लगा कि मर्दों से बातचीत करने वाली यह स्त्री शायद उनके लिए कुछ कर सकने की स्थिति में हो।

वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गयी जो कुर्सियों के अर्धवृत्त में से एक लड़के ने उठाकर रख दी थी ताकि सुधा उस पर बैठ सके।

सुधा को बहुत थकान हो गयी थी। वह बैठ गयी। उसके दोनों घुटनों को कई-कई हाथों ने एक साथ छुआ। शायद स्त्रियाँ सबसे अपनी बातें कह चुकी थीं और सिर्फ सुधा से कहना बाकी रह गया था। स्त्रियाँ अपने तईं किसी तरह से भी कम मेहनत नहीं करना चाहती थीं इसलिए सुधा से बराबर गुजारिश कर रही थीं कि वह उनके नाम अपनी कॉपी पर लिखे। सुधा ने बेशक अपने हाथों में सुमोना द्वारा दिया गया पैड तथा पेन पकड़ा था पर उस पर अभी तक उसने तिथि के सिवा कुछ अंकित नहीं किया था।

"किसी का नाम लिखकर क्या करना है। आप सबका नाम हमारे पास लिखा ही लिखा है। यह गाँव ही नाम है...हमीदपुर के पास मीड़ापुर। विधवाओं का गाँव... सिर्फ विधवाओं और यतीमों का गाँव।" सुधा ने मन-ही-मन मानो उन्हें उत्तर दिया।

"मैडम आप हमारा नाम फिर भी लिख तो लीजिए...।"

"नाम नहीं लिखते। उससे क्या होगा। जो होगा आप सबके लिए होगा। जो किया जाएगा आप सबके लिए किया जाएगा।...विश्वास रखिए...।"

"नहीं...तब भी आप नाम लिखिए ही...। देखिए पिछली बार उस जाना रण्डी ने मेरा नाम नहीं लिखवाया था। मुझे बोली लिखा लिया। पर लिखा नहीं

था। अपने और अपनी बेटी के लिए सिलाई की मशीन लायी, पर मैं। मैं रह गयी। उस मैडम ने बोला, तुम्हारा नाम नहीं लिखा था। मशीन भी नहीं मिली। इसलिए मेरा नाम लिखो न मैडम।''

''तुम्हें पढ़ना आता है?'' सुधा ने पूछा।

''नहीं।''

''फिर मैं तुम्हारा नाम लिखूँगी या नहीं, तुम्हें कैसे पता चलेगा?''

वह क्षण-भर चुप रही फिर एकदम से बोली, ''मैं मास्टरजी से पता करूँगी कि आपने मेरा नाम लिखा या नहीं।''

''अगर वह भी झूठ बोले, मैंने नाम न लिखा हो और तुम्हें बताएँ कि हाँ लिखा है...तो...?''

वह फिर हतप्रभ होकर अपने भीतरी सन्नाटे और घुप्प-अँधेरे में खो-सी गयी और इसी तरह की प्रतिक्रिया लगभग उन सभी पर हुई जो वहाँ जमघट किये हुए थीं।

''इसलिए मेरी बहनो! क्या तुम पढ़ना चाहोगी... ?'' सुधा ने हल्का एलान-सा किया। सुनकर वे खीसें निपोरने लगीं। फिरनों के गले के छोर मुँह में दबा-दबाकर चबाने लगीं और एक-दूसरे को प्रश्नाकुल आँखों से देखने लगीं। मानो एक-दूसरे से पूछ रही हों कि यह मैडम क्या बकवास कर रही है कि हमें पैसा चाहिए, राहत चाहिए, पढ़ाई का क्या करेंगी।

स्त्रियों के इस दल की असाधारण चुप्पी देखकर मास्टर गुलज़ार अहमद, अन्य दो छोटे-छोटे मास्टर तथा हैडमास्टर सुधा के पास आये और दख्लअन्दोज़ होकर बोले, ''हमें आपका ख्याल बहुत कीमती लगा। अगर ये लोग पढ़े-लिखे होते तो...मेरा मतलब है इनके खाविन्द पढ़े-लिखे होते तो सब-के-सब सिर्फ पन्द्रह या बीस हजार में खुद को नहीं बेचते और अपने पीछे बेवाओं का एक पूरा गाँव ही नहीं छोड़ देते। इल्म के न होने से ही ऐसा हुआ। हमीदपुर में ऐसा करने में कामयाबी क्यों नहीं मिली आतंकवादियों को। क्योंकि वे कमोपेश पढ़े-लिखे हैं। इसीलिए अब यह बेवाओं का पूरा गाँव ही हमारे सिर पर आ गया है, क्या करें? कुछ काम-धाम भी इनसे नहीं होता। कुछ पढ़ाई-लिखाई इनके लिए शुरू हो जाए तो धीरे-धीरे इनसे अपने रोजगार तलाशने की भी कोशिश शुरू करायी जा सकती है।'' स्त्रियों की मौजूदगी हैडमास्टर के आते ही समाप्त हो चुकी थी।

पुरुषों का वृत घना हो उठा था। हमीदपुर के कई अन्य पुरुष एवं बच्चे इस टीले पर ही आ गये थे और इस समय सुधा के इर्द-गिर्द जमा थे।

❑❑

''आप अब हमारे साथ कुछ समय बैठिए...आपका आना खास वाकया है देखिए...'' हैडमास्टर ने कहा।

''आप इस गाँव की इन बेवाओं के दु:ख में शामिल हैं, यह बड़ी बात है। बड़ी जिम्मेदारी आप ऐसा करके निबाह रहे हैं। भविष्य में कोई भी बन्दूक नहीं उठाए, क्या ऐसा सुनिश्चित नहीं किया जा सकता?'' सुधा ने कहा।

''हम समझाते हैं, मगर ये लोग कहाँ मानते हैं। हमारे ही हाथ में सब कुछ हो तब तो बात और होती मगर ऐसा नहीं है न। अब ये बेवाएँ सब कुछ समझती हैं, मगर बेवा होने के बाद।'' हैडमास्टर बोले।

''आप बजा फरमा रहे हैं...सचमुच बजा फरमा रहे हैं आप।'' सुधा ने कहा।

''इस स्कूल में खूब सारे बच्चे पढ़ने आते होंगे?'' पूछा सुधा ने।

''हाँ, पढ़ने का चाव बच्चों में तो है जरूर।''

''चलिए। खुदा करे अब कोई बच्चा बन्दूक न उठाए...हम यही प्रार्थना करते हैं...अच्छा चलें...मेरा इन्तजार उस पार सभी कर रहे हैं।''

❑❑

शाम। भयावह उदास शाम घिर आयी थी। औरतें जितनी सुबह दिख रही थीं उसका तीसरा हिस्सा भी अब दिखाई नहीं दे रहा था। सिर्फ पुरुषों की संख्या लगभग डेढ़ सौ से अधिक थी। सबकी बातचीत सबके साथ खत्म हो गयी थी। पता नहीं किसने क्या किया था। किसने क्या लिया था। बेवाओं को क्या मिला था?

''औरतें कहाँ गयीं हैडमास्टर साहब?''

''चली गयीं ऊपर पहाड़ पर। चूल्हा-चौका करने। इफ़्तार का समय होने वाला है न। अभी-अभी मक्की काटी गयी है। फिलहाल सबके पास थोड़ी-थोड़ी मक्की के दाने खाने के लिए हैं ही। लेकिन आप दो मिनट हमारे साथ रुकिए। हम आपको इस तरह नहीं जाने देंगे...आप मेहरबानी करके तशरीफ रखिए।'' हैडमास्टर सुधा से कुर्सी पर बैठने का सख्त इसरार करने लगा। पार देखकर सुधा ने देखा कि सुधा के दल की सभी स्त्रियाँ जीप में बैठ चुकी हैं। गुलामा ने भी चालक की सीट सँभाली है। सभी ओर से सुधा की प्रतीक्षा हो रही है।

''आपको मैं अपनी चन्द सतरें सुनने की ज़हमत दूँगा। देखिए न आप ही समझ सकती हैं...मैं कश्मीरी में अपनी बात, अपनी ग़ज़ल कहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी ग़ज़ल में गोली से ज्यादा ताकत है और मैं हैरान हूँ कि लोग बन्दूक क्यों उठाते हैं।''

हैडमास्टर ने अपनी गजलें निकालते हुए कहा।

''माशाअल्लाह आप अपनी ग़ज़ल के अच्छे-खासे नक्काद भी खुद ही हैं।

यह मेरे देखने में कम ही आया है। खैर मेहरबानी करके आप अपनी ग़ज़ल इरशाद फरमाइए।'' सुधा ने कहा ताकि वह अब और फालतू बातें न करके ग़ज़ल सुनाएँ और उसे जाने दें।

''तो ग़ज़ल पेश करने से पहले एक शेर अर्ज़ है।''

''इरशाद...इरशाद....।''

''क्या थे तुम भी ओ आलमपनाह
सवा मन जनेऊ जब तक न मिलता
न मिलता तुम्हारी रूह को चैनोआराम''

सुनते ही सुधा के भीतर ठक ठक ठक की प्रश्नवाचक ध्वनियाँ बज उठीं। क्या हैडमास्टर का दिमाग ठीक है कि उसने ऐसा शेर, धर्मान्धता की ताईद करता, यह भयानक शेर उसी को सुनाया जो उस कट्टरवाद, उस सवा मन जनेऊ संग्रह काण्ड की सबसे बड़ी शिकार पिछले सैकड़ों वर्षों से होती आयी है। या क्या जानबूझकर हैडमास्टर ने उसे ही रोका ताकि वह उसके जरिये यह सन्देश वादी से बाहर ले जाए।'' सुधा के भीतर का मन्थन था।

हैडमास्टर को देखकर पहले तो सुधा ने सोचा था कि जरूर वह बुज़ुर्ग व्यक्ति कट्टर पन्थ के खिलाफ होगा। धर्मान्धता के खिलाफ होगा। मनुष्यता का पक्षधर होकर धार्मिक होगा। मगर वह तो जनेऊ के संग्रह-कर्ता की गौरव गाथा गाने वाला निकला। सुधा का चेहरा मानो वह स्वयं देख रही है कि लाल-पीला हो रहा है। उस पर से हवाइयाँ उड़ रही हैं।

'सच कहा था उस छोटे मास्टरजी ने कि कुछ नहीं कहा जा सकता यहाँ इस भीड़ में कौन आतंकवादी है...यह सच था...सचमुच...।' उसने मन में सोचा।

हैडमास्टर ने शेर के बाद ग़ज़ल भी सुनायी। मगर ग़ज़ल के शब्द पर भी सुधा ने कोई ध्यान नहीं दिया। सिर्फ जब उसे अहसास हुआ कि ग़ज़ल खत्म हो रही है तो वह तेज़ी से कुर्सी से उठकर जाने की कोशिश करने लगी। मगर मास्टर जी फिर इसरार पर उतर आये,...''नहीं नहीं...मैडम! आपको मेरी दो-चार और चुनिन्दा ग़ज़लें सुननी होंगी...आप घबराइए मत। वे लोग आपका इन्तजार करेंगे।''

''नहीं...नहीं।'' सुधा को भय लगने लगा था कि गुलामा कहीं चल न दे। सुमोना उसे कह न दे, ''चलो। नहीं आती है तो रहने दो इसे इसी गाँव में। बड़ी आयी भट्टिनी! कश्मीरन। हम यहाँ लोगों की ग़ज़लें और शे'र नहीं सुनने आयी हैं।''

❑❑

इतने में सुधा ने देखा कि डी.एस.पी. कुपवाड़ा, जो बस में उनकी सुरक्षा के लिए

उनके साथ आया था, ने वृत्त तोड़ा और भीतर आया और हैडमास्टर साहब से मुखातिब हुआ।

''नहीं मास्टर साहब। अब इतना ही रहने दीजिए। बाकी ग़ज़लें बाद में होंगी। मैडम को जाने दीजिए। इन्हें श्रीनगर पहुँचना है, रास्ता काफी लम्बा और खराब है। दिन छोटे हैं, गाड़ी में अन्य महिलाएँ इनका इन्तज़ार कर रही हैं।''

डी.एस.पी. सुधा के पथ को प्रशस्त करता हुआ खुद उसके पीछे-पीछे और कभी-कभी आगे...और अगल-बगल चलता गया और जीप तक उसे ले गया। लेकिन जीप तक आते-आते हैडमास्टर उसके समानान्तर चलता गया और अपने काव्य-व्यक्तित्व की चर्चा करता रहा जो कि सुधा ने लगभग कुछ नहीं सुना। मगर एक बात सुधा को चलते-चलते सूझ गयी कि क्यों न उससे--कविताओं का पाठ ही माँगा जाए। हर्ज क्या है।''

''हैडमास्टर साहब! अगर आप के पास इन कविताओं की दूसरी प्रति है तो मुझे आप यह प्रति दीजिए। मैं इनका तर्जुमा करूँगी और दिल्ली से छपवाऊँगी।''

''यह आपने लाख टके की बात कही मैडम। आप यह लेती जाइए। यह मेरी इन सारी कविताओं का पुलिन्दा। कृपा करके। मेरी ओर से आपको इनमें से किसी भी कविता का तर्जुमा करने की कहीं भी और कोई भी कविता छपवाने की पूरी-पूरी इजाजत है। इस पुलिन्दे पर मेरा पता भी लिखा है खतो-किताबत के लिए। आप तर्जुमा या प्रकाशित प्रति इस पते पर मुझे भेज सकती हैं...।''

''हाँ...हाँ...क्यों नहीं...क्यों नहीं...ज़रूर...जरूर।'' सुधा ने तेजी से कविताओं का पुलिन्दा ले लिया।

''और यह लीजिए लगे हाथों मैडम! मेरे रंगीन फोटोग्राफ भी। किस्मत से मेरे पास इस समय हैं। ये भी इसी लिफाफे में कविताओं के साथ रखिए। कविताओं के साथ चित्र भी छापिएगा।''

सुधा ने उसे भी लेते हुए कहा, ''हाँ हाँ...क्यों नहीं...क्यों नहीं...बिल्कुल... बिल्कुल...।'' और जीप में अपने को चढ़ाते हुए धम्म से स्वयं को कुर्सी पर मानो फेंक दिया हो। इस कड़ाके की ठण्ड में उसने अपने शरीर को कुछ ही कदम चलने के बाद, कुछ ही पिछले क्षण गुजारने के बाद पसीनों से तर-ब-तर पाया। और सबसे पहले पानी के कई घूँट हलक के नीचे उतारे।

गुलामा ने गाड़ी स्टार्ट की। हैडमास्टर जीप की खिड़की से बोला, ''मैडम खतोकिताबत। भूलिएगा नहीं। कविताओं के साथ मेरा चित्र छापना भी भूलिएगा नहीं।''

''नहीं नहीं...एकदम नहीं... ।'' कहते हुए उसने दूर नजर दौड़ायी। मीड़ापुर की चोटियों पर से हर झोंपड़ी से धुआँ उठता हुआ दिख रहा था।

□□

सुधा को मानो यह धुआँ घेरता-घेरता और बराबर सघन रूप से घेरता गया। पता नहीं वह कहाँ है। कहाँ जा रही है। वे कौन थीं जिनसे वह आज मिली थी। जिनकी झोंपड़ियों से निकल रहे धुएँ को वह छोटे-छोटे पर्वत शिखर पार करते हुए देख रही है। और लग रहा है कि यह धुआँ उसके पीछे-पीछे आ रहा है। वह स्वयं को उस धुएँ से आवृत होते हुए पा रही है।

'कौन थीं वे। क्या वे सब वह थीं। या वह वे सब थीं... ? कहाँ अन्तर है... ? वह कैसे वे हैं?'

हमीदपुर गाँव के इन पुरुषों की मीड़ापुर की बेवाओं के बारे में वाक्यों की ध्वनि कुल मिलाकर उसके भीतर यही निकली थी, ''कि ये कमबख्त बेवाएँ किसी काम की नहीं दुनिया के लिए। कोई नाम नहीं उनका मर्दों के बगैर... ।''

'कितनी मर्दों के काम आती होंगी? क्या-क्या बीतती होगी उनपर? क्योंकि वे शरीर हैं। बेवा शरीर। यतीम शरीर। स्त्री शरीर। युद्ध के शिकार शरीर। हर युद्ध का परिणाम होता है ये ही भीड़। ये शरीर-भीड़ जिनको पुरुष कहते हैं कि किसी काम की नहीं है यह भीड़ और...दूषित...शरीर-भीड़। निरक्षर...शरीर भीड़। स्त्रीपु दुष्टासु वार्ष्णेय! जायते वर्णसंकरः। कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे रोक सकती हैं ये शरीरों की टुकड़ियाँ वर्णसंकरों को उगने से। और स्त्री अपने शरीर में फँस जाती है, जैसे फँस जाती है मकड़ी अपने जाले में, ठीक उसी तरह। कन्फ़्यूशियस शिक्षा देता है, 'स्त्री दोयम दर्जे की आत्मा है या आत्मा नहीं स्त्री की। इसको मारकर पाप नहीं लगता। इसीलिए इसका शरीर जीवित होने पर भी न माना जाए कि वह स्त्री जीवित है...क्योंकि वह पुरुष के काम आता है। पुरुष चूँकि युद्ध लड़ता है...और स्त्री चूँकि युद्ध नहीं लड़ती, न लड़ सकती है...' कहता है कन्फ़्यूशियस और फिर से बरी करता है पुरुष को।

'पुरुष शस्त्र उठाता है। बन्दूक उठाता है। सृष्टि से मनमानी करता है। मरता है मारता है। वह नायक है। स्त्री मात्र देह है। और कुछ भी नहीं है स्त्री। स्त्रियो! सलाम। हम जा रही हैं स्त्रियाँ। हम पुरुष के निर्णयों की भोक्ता हैं। हम धरती हैं, धरती रक्तिम है...हा हा हा हम दन्दानियाँ हैं...हम सब दन्दानियाँ हैं...हम मरकर भी नहीं मरतीं...मरने पर...लगता है उन्हें कि हम वास्तव में मरीं नहीं, हँसती हैं।...हम एक-दूसरे का तमाशा भी देखती हैं...हम तुम...अन्तर नहीं कोई।'

सुधा के भीतर कलह मचा हुआ है कि इज़ा झिंझोड़ती है, ''सुधा...ओ

सुधा...क्या सोच रही हो...तुम्हारे होठ तेजी से फड़फड़ा रहे थे...सच...क्या हो गया है तुम्हें...'' और इज़ा ने जोर से सुधा की हथेली पकड़कर सहलाने की कोशिश की। उसे डर लगा कि सुधा को कुछ हो गया है। जैसे दौरा-सा पड़ा हो या पड़ने वाला हो। या वह कुछ कहना चाहती है और कह नहीं पा रही है...कुल मिलाकर सुधा किसी आन्तरिक संकट में है...इज़ा ने समझ लिया।

'शुक्र है इज़ा ने समझ लिया।' सुधा ने संयत और सामान्य होने की कोशिश करते हुए स्वयं से कहा।

इज़ा ने भी राहत की साँस ली। वर्ना उसे लगा था कि सुधा किसी भयंकर पीड़ा में है। अन्दरूनी पीड़ा में।

''पानी पियोगी... ? यह लो बोतल..पी...लो...।''

सुमोना सुन रही थी। अचानक उसे ध्यान आया कि सब रोजेदार हैं और इफ़्तार से पहले शायद श्रीनगर पहुँचना असम्भव हो और यह लाजिमी है कि बाजार में कुछ खजूर और सूखे मेवे रोजा खोलने के लिए खरीदे जाएँ। उसे सुधा की कोई चिन्ता न थी जो न रोजेदार थी और न ही उसने सुमोना की तरह यों ही रोजेदोरों का साथ देने के लिए दिनभर कुछ न खाने का संकल्प ही लिया था, फिर सुमोना को कतई यह नहीं लगा कि सुधा की भी उसपर कोई जिम्मेदारी बनती है। वह उसके प्रति बराबर लापरवाह बनी रही। बल्कि उसके चेहरे पर सुधा ने तब गुस्से की एक मोटी परत देखी थी जब सुधा ने मास्टरों के बीच बैठकर चाय पीना कबूल की थी।

❑❑

''गुलामा जी। बाजार में रोकिएगा। इफ़्तार के लिए कुछ खरीदेंगे।'' सुमोना ने आज्ञा प्रसारित की।

सुधा जहर के घूँट पी रही है और स्वयं-ही-स्वयं को शान्त कर रही है। स्वयं-ही-स्वयं को दार्शनिक दलीलें देकर, गीता के श्लोक सुनाकर समदुःख-सुखम् धीरम् सोऽमृतत्वाय कल्पते...स्वयं ही स्वयं के लिए श्लोक बाँचती प्रवचन करती है...और स्वयं से कहती है, 'स्वयं को स्वयं ही प्रवचन सुनाना सबसे मुफ़ीद होता है।' और पुनः स्वयं को समेटकर वह सीट पर बैठ जाती है। भीतर-ही-भीतर कुछ न सोचने और मन्त्रजाप का संकल्प लेती है, ताकि 'कुछ न सोचूँ...कोई ऊहापोह नहीं...कोई द्वन्द्व नहीं। मगर मन्त्रोद्वार करता नहीं। मन्त्रोद्वार खुलता नहीं...हिलता तक नहीं...खुलता है वही द्वन्द्वोद्वार...चिन्तोद्वार।'

❑❑

'श्रीनगर पहुँचकर पता नहीं सुमोना क्या व्यवहार करेगी।' सुधा सोचने लगी, कि रात पता नहीं कैसे कटेगी।

रात तेजी से घिर आयी है। बाहर सन्नाटे छा रहे हैं। उन्हें आबशार, खजाना पहाड़ न जाने क्या-क्या फिर पार करना है। 'संग्राम' सुधा का गाँव भी आएगा। जब वह वहाँ से गुजरेगी अँधेरे ने दोनों को ओढ़ा होगा। बाहर गाँव को। जीप के भीतर सुधा को। दोनों एक-दूसरे को नहीं देख पाएँगे।

जीप अब धड़ल्ले से चल रही है। सड़क साफ है। आतंक ने जीवन को मार डाला है। अँधेरा सघन होता जा रहा है।

कुपवाड़ा के एस.एस.पी. के शब्द हैं, "असली खेल अब शुरू हो रहा है।" सोचती है सुधा और कहती है, 'सचमुच।'

'सचमुच। अब पता नहीं क्या रूप धरेगी सुमोना। क्या सुलूक करेगी गुलशनआरा। ये दोनों उसका व्यवहार किस तरह का उनके प्रति चाहेंगी...हाँ असली खेल अब शुरू हो रहा है।' सोचकर उसने फिर सोचा कि, हिन्दुस्तान। हिन्दुस्तान जाकर भी हमारा कोई नहीं हुआ। हम किसी के न हुए, कोई हमारा न हुआ...माँ पाकिस्तानी कबाइयली हमले का जिक्र प्राय: करती और कहती कि हम यहाँ कहाँ किनमें रह गये...किस महाद्वन्द्व में रह गये...किसी दिन ये बुरी तरह भगाएँगे...कि मुँह-अँधेरे भागना पड़ेगा...तो अब देखो न माँ, हम इनके हवाले से हिन्दुस्तानी कुत्ते...बहुत ही विश्वसनीय कुत्ते...पर हिन्दुस्तान इन्हें रिझाने में लगा है...इन्हें मनाने में लगा है...हमें सताने में लगा है।

वह माँ भी इस तथ्य को अब बखूबी समझती है, जिसे गिला था कि क्यों फँसे हैं यहाँ, जहाँ इतने सन्त्रास और भेदभाव के शिकार हो रहे हैं और कोई सुननेवाला भी नहीं। प्रजातन्त्र को तरसती भारतीय मन-युक्त प्रजा यह अब देखती है प्रजातन्त्र के असली रूप बीच हिन्दुस्तान के। 'त्राहि! त्राहि! सुमोना जैसों से बचाओ मुझे प्रभु। हिन्दुस्तान के ऐसे धर्मनिरपेक्षों से बचाओ मुझे प्रभु! इन सत्ता के सौदागरों से बचाओ मुझे प्रभु। जो हमें कूड़े की तरह मान रहे हैं। जो कहते हैं...ये...कि जिनका कोई अर्थ नहीं...कि इनके होने और न होने से पड़नेवाला कोई फर्क नहीं...।' सुधा का हृदय फटा जा रहा है...मस्तिष्क झनझना रहा है।

'मीड़ापुर की विधवाएँ' वह स्वयं से कह रही है। अपने धर्म-विशेष के सपने को साकार करने के लिए बलि चढ़कर बनी विधवाएँ। जिनकी खबर लेने के लिए सुधा भी दौड़कर आयी है जम्मू के शरणार्थी शिविर के तम्बू में बच्चों को रखकर। विधवाएँ पाकिस्तान का वजीफा भी पाती हैं...आतंकवादी गिरोहों का वज़ीफा भी, हिन्दुस्तान की मेम सोनिया गाँधी से भी मिलने जाती हैं दिल्ली वजीफा पाने के लिए...और शिकवा भी कर रही हैं...शिकायत भी कर रही हैं।

कोई नहीं पूछ रहा तम्बू में उसके पड़ोस में रह रही प्राणा को जिसके पति को पेड़ से लटकाकर फाँसी दी गयी और बेटे को विधान सभा बम धमाके में टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया जिसका एकमात्र बचा बेटा तम्बू में एक कोना बनाकर बैठा रहता है विक्षिप्त होकर और आँकता रहता है अपने भीतर और बाहर के अन्धकार को। चीजों को समझने की कोशिश करता हुआ कविताओं को अपनी जटिलतम दुःखगाथा सुनाता है। कहता है, 'इस देश में हमारी कोई नहीं सुनता...हम देश का होने का ढोल पीट रहे हैं खुद ही...ज़बरदस्ती...जैसे कोई स्त्री...ज़बरदस्ती किसी पुरुष के गले पड़कर कहे...चल...मैं तेरी बीबी...तू मेरा खसम...इस देश को हमारी जरूरत ही नहीं...यह देश कट्टरपन्थियों और गद्दारों का खसम...यह देश जिनके हाथों में है उनकी आत्मा नहीं... सोचती है सुधा अपनी तम्बू पड़ोसन प्राणा के कोने में दुबके एकमात्र बचे बेटे मणिकान्त के भरसक स्मृति में आते ही। कविताएँ जो वह लिखता है...लकड़ी की एक मैली-कुचैली पेटी में रखता जाता है, सुनाता किसी को भी नहीं। सुधा के लाख अनुनय-विनय करने पर भी नहीं सुनायी। तब सुधा ने उसके पाँव पकड़ने की हद तक जाने में भी संकोच न किया। मणिकान्त ने अपनी डायरी निकाली और कविताएँ सुनाता गया, सुनाता गया। सुधा अपनी आँखें पोंछती गयी, पोंछती गयी और पोंछती गयी। मणिकान्त के ठीक सामने के कोने में बैठी थी प्राणा—व्यंग्यात्मक मुस्कान से लदी, गहरे अन्धकार में मानो किसी पत्थर को आकार दिया गया हो जिसके बारे में कथा हो कि अचानक यह एक मनुष्य जो सम्पन्न, सौभाग्यवान, सम्पत्तिवान था। एक क्षणिक सन्निपात से, वज्रपात से पत्थर हो गया...देखिए तो वे उस मनुष्य के होठ और चेहरा रहे होंगे शायद। वे...वे रेखाएँ...ज़रा ध्यान से देखिए। क्या कहती हैं ये रेखाएँ काल की बन्धु—ये मनुष्य पत्थरों में परिवर्तित हो उठे...अचानक...और एक झटके से मणिकान्त ने कविताओं का पुलिन्दा वापस उस गन्दी-सी पेटी में रख दिया। तब वह मुस्कराता...काली मुस्कान से लैस पत्थर बोला, "अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं घास खा लूँगी। भीख माँगकर खाऊँगी...मगर मैं इस बच्चे को बचा हुआ देखना चाहूँगी। मैं इसे बलिदान नहीं दूँगी। मैं पति को दे चुकी हूँ...बेटे को दे चुकी हूँ...गाँव दे चुकी हूँ...देश दे चुकी हूँ...भाषा...लिपि दे चुकी हूँ...आकाश दे चुकी हूँ...नदी दे चुकी हूँ...अब मणि है...मैं जरा भी इधर-उधर जाती हूँ...कुछ क्षणों के लिए ही...मैं हाँफते हुए वापस आकर देखती हूँ...कहीं मणि कहीं गया तो नहीं। यह बाथरूम में नहाने जाता है...मैं बाहर प्रतीक्षा करती हूँ और बाहर से इससे बातें करती रहती हूँ। यह कहता है, 'माँ! तुम पागल हो चुकी हो।' मैं प्रधानमन्त्री आई. के. गुजराल से मिली थी...वह बोला...देखो। मैं भी पाकिस्तान से आया हूँ। मैंने कहा, पाकिस्तान से आकर हिन्दुस्तान के प्रधानमन्त्री

हो गये हो...मैं हिन्दुस्तान से ही हिन्दुस्तान में भगायी गयी हूँ...ट्रेजेडी समझो...। वह चिढ़कर बोला, ''ओ पण्डितानी। बड़े गले से बोल रही हो...जाओ तुम कितने लाख हो...साढ़े तीन हो या सात लाख देश के हित में ये सब-के-सब मिट भी जाएँ तो इस देश को क्या फर्क पड़ता है।'' वह एकाएक चुप हो गयी फिर सुधा तमतमायी, ''अच्छा प्राणा! बड़ा बदतमीज़ प्रधानमन्त्री था।''

''हाँ-हाँ, सुधा मैं पागल नहीं हूँ जैसा कि मणि मुझे विश्वास के साथ कहता है। मैं भी मणि की बातों और हरकतों से दु:खी होकर कभी कहती हूँ, मणि पागल तुम हो गये हो...देखो मैं कई सबूत दे सकती हूँ...न हुए होते तो कविताएँ नहीं करते?'' तब वह चुप हो जाता है और मैं रो पड़ती हूँ, जानती हो सुधा! देखा होगा तुमने वहाँ स्वयं...कि वितस्ता सूख गयी है। क्यों भला? यह असम्भव बात थी न? सूखती थी कभी वितस्ता? नहीं न?...जानती हो कारण—क्योंकि वह जल हम भट्टिनियाँ साथ लायी हैं। चाहिए था मुझे कि मैं वहीं उस प्रधानमन्त्री का गला दबोचती। पुण्य है ऐसे नुपंसकों का अन्त करना...मणि कहता है, कोई बात नहीं माँ...तुम धैर्य रखो। मैं अपनी कविताओं के अर्थखड्गों से सब नाकारों का गला काट रहा हूँ...काटता चला जा रहा हूँ...देखो एक दिन मेरी कविताएँ बदल देंगी भविष्य...काल घुटने टेकेगा हमारे सामने...इन नाकारों को नेस्तनाबूद करेंगी एक दिन मेरी कविताएँ...मम्मी...पता नहीं क्या...क्या...मैं फिर रो पड़ती हूँ...इतना पागल हो गया है मणि इतना पागल अब सुधा...और प्राणा वेगिल आँसुओं की नदी में डूब जाती है।

उपसंहार

नूरा बँगले के बरामदे पर लकड़ियों का एक गट्ठर, माचिस और मिट्टी का तेल रखे हुए चहलकदमी कर रहा है। सुधा को लगता है, जैसे घर का सदस्य घर से बाहर गये सदस्यों की वापसी के लिए व्यग्र प्रतीक्षा कर रहा है।

"ओ ऽ ऽ नूरा...बुखारी नहीं जला के रखी..." कहते हुए सुधा को दरअसल लकड़ियों का गट्ठर आदि देखकर मानो रग-रग में, मन प्राण में ऊष्मा फैलती हुई लगी। फिर दरवाजा खुलते ही नूरा का बुखारी जलाने का इन्तजाम करने में जुट जाना देखकर...सुधा की आत्मा से वाह...वाह...निःसृत हुआ।

❑❑

बुखारी चिटख चिटख जल रही है। सुधा सोच रही है कि वह कितने घण्टों पश्चात वापस अपने तम्बू में होगी...। सुमोना की गतिविधियों की तरफ उसका ध्यान नहीं। पर सुमोना कुछ क्षणों के बाद सुधा के समीप आती है, हौले से...और असाधारण रूप से मुस्कुराते हुए...बड़े ही उपक्रम से सुधा के ऐन सामने के सोफे पर बैठ जाती है...। सुधा आँखें मूँदकर यह एहसास दिलाती है कि वह किसी भी प्रकार की बात करने की इच्छा नहीं रखती मगर सुमोना चूँकि बात करना चाहती है अतः वह बोलती है, "इस समय मुझे भी बुखारी की गर्मी अच्छी लग रही है।"...'हूँ'...की ध्वनि निकालकर सुधा अनुक्रिया करती है।

"भूख ज़ोरों की लगी है न...?"

"हूँ..." वह फिर वही तर्ज और ध्वनि दोहराती है...।

इसके बाद सुमोना मौन होकर धीरे-धीरे उठती है और कमरे से बाहर जाती है।

❑❑

कुछ क्षणों के मौन के बाद सुधा ने आँखें खोली और इर्द-गिर्द देखा। गुलशन नमाज पढ़ चुकी थी और जायनमाज तहा रही थी। तत्क्षण कमरे में बैरा खाने की प्लेटों से लैस ट्रे लेकर आया...पीछे...पीछे...सुमोना थी।

"भोजन लो सुधा...गर्म...गर्म है..।" सुधा को उसके वाक्यों में असाधारण व्याकरण महसूस हुआ। बहरहाल वह उठी। लेकिन मौन बनी रही।

"खाना बड़ा स्वादिष्ट है...।" कहते हुए सुमोना ने आँखें गड़ाकर सुधा को देखा। जरूर वह चाहती थी कि सुधा कुछ बोले। लेकिन सुधा ने जीभ को जैसे निसर्ग ताला लगा रखा था।

"गुलशन! तुम कल की यात्रा पर आ रही हो न...? सुधा तो जा रही है...कल...क्यों?" सुमोना ने अबके गुलशन को सम्बोधित किया और गुलशन सुधा को एकटक देखने लगी। मानो प्रश्न सुधा से पूछा गया हो...या उसका उत्तर सुधा के निर्णय पर निर्भर करता हो।

❑❑

सुबह-सुबह गुलशनआरा ने अपना सामान वापस बड़गाम जाने के लिए उठा लिया और धीमे कदमों से सुधा के पास आकर बोली, "सुधा दीदी! सुमोना दीदी सोयी है। मैं इन्हें जगाना नहीं चाहती...कहना इनसे कि मैं चली गयी। अम्मी घर में अकेली हैं। और मैं अन्दर से बेचैन हूँ।"

"अकेली हैं वह...?...ओ! फिर तो तुम्हारा बेचैन रहना कुदरती है।"

"हाँ, सुधा दीदी...मैं सोचती हूँ...कब बड़गाम पहुँचूँ...अम्मी के पास...फिर हादसे भी कैसे-कैसे होते हैं आजकल...नन्हा भाई है घर में...उसके लिए भी मन परेशान रहता है...पिछले हफ्ते की बात है...मैं और मेरा छोटा भाई दहलीज पर स्टापू खेल रहे थे कि भाई और मुझमें झगड़ा हो गया। तो हम दूर सड़क तक गये...। वह मुझे पीटने के लिए मेरे पीछे-पीछे सड़क तक आया...अचानक मेरी नजर जमीन पर पड़ी खून की लकीर पर पड़ी। मैंने भाई को बताया। मैं हैरान हो गयी...मैंने और भाई ने मिलकर सोचा कि चलो देखते हैं कि लकीर कहाँ तक जाती है...हम खून की लकीर को नापते-नापते चलते गये...और लगभग आधा किलोमीटर बाद देखा कि वहाँ झंखाड़ के पास ही एक मोटी-तगड़ी लाश पड़ी है...हम दोनों चीख पड़े...भाई रोने लगा...तब से भाई दहशत-ज़दा हो गया है...और घबराहट होती रहती है उसे...इसलिए मैं जा रही हूँ।"

सुधा से आगे कुछ न पूछा गया और बोली, "तुम जाओ गुलशन तब...जाओ तुम...सुमोना से मैं कह दूँगी कि तुम परेशान थी...अम्मी घर में अकेली हैं..." कहते हुए सुधा ने अपनी आँखों के किनारे पोंछे। वह गुलशन को रुख़सत करने बड़े गेट तक गयी। उसे ऑटो में बिठाकर वापस आयी, देखा कि सुमोना अपने बिस्तर पर बैठी है...चेहरे से व्यग्र लग रही है।

"गुडमार्निंग...।" सुधा ने कहा।

''मार्निंग...गुलशन कहाँ है...?'' सुमोना ने पूछा।

''चली गयी। कहा कि तुम सोयी हो। तुम्हें जगाना मुनासिब न समझा...उसकी अम्मी अकेली हैं बड़गाम में और छोटा भाई भी ठीक नहीं...वह परेशान थी...।''

''ओ ऽ ऽ...तो तुमने भगा दिया उस लड़की को...हाय बेचारी बच्ची।''

''सुमोना...क्या तुम होश में हो...'' सुधा ने धीमे से प्रहार किया।

''मैं होश में हूँ...सुधा...तुमने अपनी पूजा का शोर मचाकर उसकी नमाज तक हराम कर दी...उस बच्ची को भगा दिया...।''

''सुमोना...तुम होश में आओ पहले फिर सोचकर बोलो।''

''मैं होश में हूँ...होश में...हम तुम्हारे कैम्पों में जाते हैं...पण्डितों को समझाने कि देखो...मुसलमान बुरे नहीं...समझने की कोशिश करो...पर वे समझते नहीं...अपनी दलीलें देते हैं...पिछले महीने सब मुसलमान लड़कियाँ कैम्पों में जाकर पण्डितों की दुर्दशा देखकर रो...पड़ी थीं...अब इससे ज्यादा क्या करती उस पर तुम्हारी वह पड़ोसन प्राणा की बच्ची बोली थी, कि हम प्रभु से माँग रहे हैं कि प्रभु हमें तबाह करने वालों को सदियों तक बरबाद कर, उनके बच्चों...आने वाली पीढ़ियों को बरबाद कर...आदि आदि...और इससे उनको कितना हतक हो गया था...जानती हो...।''

''सुमोना, तुम होश में नहीं हो, उठो। बाथरूम जाओ...नहाओ और ईश्वर का क्षणभर के लिए नाम लो...फिर उस पर विचार कर लो जो बोल रही हो...।''

''क्यों...मैं होश में क्यों नहीं हूँ...तुम ओ...।''

''सुमोना...ऽऽऽऽऽऽ'' कहते हुए आँखें तरेर लीं सुधा ने...जबकि भीतर से वह शान्त थी।

''तुम मुझे आँखें दिखा रही हो...।'' सुमोना ने कहा।

''नहीं...मैं कह रही हूँ तुम ज्ञानी हो पर संवेदनशील नहीं हो...तुम्हारे पास लक्ष्य है...पर मानवीय स्पर्श नहीं...तुम पहले जान लो कि वास्तव में संवेदनशीलता क्या होती है?...और मानवीय लकीरों पर कैसे चला जाता है जैसे शमशीर की धार पर...।'' कहते हुए सुधा कमरे से बाहर आयी और देखा नूर मुहम्मद दहलीज की तरफ दौड़कर आ रहा है...

''क्या बात है मैडम...ठीक तो है सब कुछ...वह मैडम चिल्ला-सी रही थी...।''

''अरे नहीं...वह सुबह का व्यायाम कर रही है...।''

सुनकर नूर मुहम्मद संशय सहित चला गया।

❑❑

सुधा गाड़ी पर बैठने वाली है। उसने अपना बैग रख दिया है। सुमोना जटिल स्थिति में है...कुछ कहना चाह रही है...जोकि उसके चेहरे पर अयाँ है...पर कह नहीं पा रही कुछ...मानो शब्द आकर फिर गल जाते हों। समूचा साहस जुटाने का प्रयत्न कर रही है...पर अन्त में जब सुधा हाथ बढ़ाकर कहती है, ''अच्छा सुमोना...'' तो सुमोना उसके निकट आकर कहती है, ''सुधा, तुम मत जाओ। इस शोध में मेरी मदद करो...हो सकता है मैं सचमुच नहीं जानती कि संवेदनशीलता क्या होती है...पर मैं तुमसे समझ सकती हूँ...''

सुधा हँसती है और कहती कुछ नहीं। मानो वह कह रही हो कि ''सुमोना! मैं जानती थी कि तुम होश में आओगी।''

सुमोना फिर बोलती है, ''सुधा, मैं तुमसे बहुत कुछ कहना चाहती हूँ...मगर मैं अब जान गयी हूँ कि मैं वह सब तुमसे कह नहीं सकती सिर्फ लिखकर भेज सकती हूँ...। मैं तुम्हें एक विस्तृत पत्र कूरियर करूँगी...कृपा करके मेरी गुत्थियाँ सुलझाना...।''

''जरूर...सुमोना...जरूर...अच्छा...''

❑❑

गुलामा ने गाड़ी के चल पड़ने के बाद कहा, ''मैं चाहता था मैं आपको कृष्ण जू राज़दान की यह लीला सुनाऊँ। आपको आनन्द आता। मगर ये सब लोग थे न...मैंने हिम्मत नहीं की...अब सुनिए...''बिल्व तय मादल...व्यनगुलाब पम्पोश दस्तै...पूजायि लागस परम शिवस...शिवनाथस तै...'' चालक और सवारी दोनों...तिबतबकाल के गायन और कृष्ण जू राज़दान के शब्द गुम्फन में लहरा उठते हैं।

❑❑❑

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003

संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन

